कायचिकित्सा

(भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद नई दिल्ली
द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार)

(द्वितीय भाग)

लेखक
प्रोफेसर अजय कुमार शर्मा
एवं
डा. अविनाश जैन
डा. सीमा जैन भदौरा

विषय सूची

प्रथम खण्ड — प्राणवह स्त्रोतस् के रोग 1–146

अध्याय–01	:	हिक्का	3
अध्याय–02	:	श्वास रोग	16
अध्याय–03	:	कास रोग	34
अध्याय–04	:	पार्श्वशूल	60
अध्याय–05	:	राजयक्ष्मा	66
अध्याय–06	:	क्षतक्षीण	90
अध्याय–07	:	शोष	98
अध्याय–08	:	स्वरभेद	108
अध्याय–09	:	हृद्रोग	117
अध्याय–10	:	हृच्छूल	139
अध्याय–11	:	हृदयाभिघात	144

द्वितीय खण्ड — उदकवह स्त्रोतस् के रोग 147–222

अध्याय–12	:	तृष्णा रोग	149
अध्याय–13	:	अतिसार	164
अध्याय–14	:	प्रवाहिका रोग	186
अध्याय–15	:	विसूचिका रोग	194
अध्याय–16	:	जलोदर	204

तृतीय खण्ड — अन्नवह स्त्रोतस् के रोग 223–365

अध्याय–17	:	अरुचि	225
अध्याय–18	:	अग्निमांद्य	234
अध्याय–19	:	अजीर्ण	243
अध्याय–20	:	आनाह, आध्मान एवं आटोप	255
अध्याय–21	:	ग्रहणी दोष	269

अध्याय-22 : भस्मक रोग 291
अध्याय-23 : छर्दि 296
अध्याय-24 : गुल्म रोग 307
अध्याय-25 : अम्लपित्त 326
अध्याय-26 : अन्नद्रव शूल एवं परिणाम शूल 336
अध्याय-27 : उदर रोग 345

चतुर्थ खण्ड — रसवह स्त्रोतस् के रोग 366-585

अध्याय-28 : ज्वर- विषम ज्वर, कालाजार, मन्थर, दण्डक, श्वसनक, वातश्लैष्मिक, ग्रन्थिक, सन्धिक, आक्षेपक, कर्णमूलिक, रोमान्तिका, मसूरिका, लघु मसूरिका, मूषिक दंश 368
अध्याय-29 : पाण्डु रोग 509
अध्याय-30 : आमवात 526
अध्याय-31 : मद-मदात्यय 546
अध्याय-32 : शोथरोग 568

पंचम खण्ड — रक्तवह स्त्रोतस् के रोग 586-626

अध्याय-33 : रक्तपित्त 588
अध्याय-34 : कामला, कुम्भकामला एवं हलीमक 601
अध्याय-35 : दाह रोग 613
अध्याय-36 : रक्तगतवात 620

षष्ठम् खण्ड — शुक्रवह स्त्रोतस् के रोग 627-725

अध्याय-37 : क्लैब्य रोग 631
अध्याय-38 : बन्ध्यता 645
अध्याय-39 : उपदंश (ध्वजभंग) 653
अध्याय-40 : फिरंग रोग 667
अध्याय-41 : पूयमेह 679
अध्याय-42 : ओजक्षय (एड्स) 688
अध्याय-43 : रतिजन्य वंक्षणीय कर्णिकार्बुद 704

अध्याय-44	:	वंक्षणसन्धिय लसकणिकार्बुद	707
अध्याय-45	:	यौनमनोगतविकार	709
अध्याय-46	:	स्मरोन्माद (कामोन्माद)	718
अध्याय-47	:	बलात्कार	721
अध्याय-48	:	अप्राकृतिक मैथुन, अन्य यौन मनोगत विकार	722

सप्तम खण्ड — मूत्रवह स्त्रोतस् के रोग 726-756

अध्याय-49	:	मूत्रकृच्छ्र	728
अध्याय-50	:	मूत्राघात	738
अध्याय-51	:	अश्मरी	747

अष्टम खण्ड — पुरीषवह स्त्रोतस् के रोग 757-808

अध्याय-52	:	अलसक एवं विलम्बिका	759
अध्याय-53	:	विबन्ध	765
अध्याय-54	:	उदावर्त	771
अध्याय-55	:	कृमि रोग	781
अध्याय-56	:	अर्श रोग	793

नवम खण्ड — त्वक्गत रोग 809-873

अध्याय-57	:	कुष्ठ रोग	812
अध्याय-58	:	श्वित्र किसाल	835
अध्याय-59	:	विसर्प रोग	848
अध्याय-60	:	शीतपित्त, उदर्द एवं कोठ रोग	863
अध्याय-61	:	त्वचा रोगों में रोगाणु जन्य संक्रमण	871

दशम् खण्ड — चयापचय एवं धातु विकृति जन्य रोग 874-949

अध्याय-62	:	मधुमेह (प्रमेह)	880
अध्याय-63	:	वातरक्त	908
अध्याय-64	:	धमनी प्रतिचय	926
अध्याय-65	:	तरल-वैद्युत/अम्ल-क्षार-असन्तुलन जन्य विकार	931

प्रथम खण्ड

प्राणवह स्त्रोतस् के रोग

परिचय

प्राणवहस्त्रोतस—प्राचीन संहिता ग्रंथों में प्राकृत उच्छ्वास-नि:श्वास का स्पष्ट वर्णन उपलब्ध है। आचार्य शार्ङ्गधर ने बहुत ही सुव्यवस्थित रूप में श्वसन प्रक्रिया का वैज्ञानिक वर्णन किया है।[1] प्राणवह स्त्रोतस् के अन्तर्गत हृदय, फुफ्फुस तथा रसवाही धमनियों का समावेश किया गया है। प्राणवह स्त्रोतस् के विकारों में किसी न किसी रूप में उच्छ्वास-नि:श्वास (Respiration) की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष विकृति अवश्य मिलती है। कफ के स्थानों में ''उरस्'' का वर्णन है। अत: उर: प्रदेश में कफ क्षय या कफाधिक्य होने से भी प्राणवह स्त्रोतस् की विकृति के लक्षण मिलते हैं। रसक्षय, रक्तक्षय एवं उदकक्षय से भी हृदय एवं फुफ्फुसों (Lungs) पर प्रभाव पड़ता है तथा प्राणवह स्त्रोतस् की विकृति के लक्षण मिलते हैं।

प्राणवह स्त्रोतस् मूल[2]

प्राणवह स्त्रोतस् के मूल हृदय, फुफ्फुस व रसवाही धमनियां हैं।

प्राणवह स्त्रोतो दुष्टि के हेतु[3]

प्राणवह स्त्रोतो दुष्टि के निम्न कारण हो सकते हैं—

1. धातु क्षय
2. मल मूत्रादि के वेगों को धारण करने से।
3. रूक्ष आहार सेवन

---

1. नाभिस्थ: प्राणपवन: स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम्। कंठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम्॥
   पीत्वा चाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगत:। प्रीणयन् देहमखिलं जीवनं जठरानलं॥
   (शा.स.पू.ख. 5/51)
2. प्राणवहे द्वे तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्य:॥ (सु.शा. 9/12)
3. क्षयात् संधारणाद्रौक्ष्यात् व्यायामात् क्षुधितस्य च। प्राणवाहीनि दुष्यन्ति स्रोतांस्यन्नैश्च दारुण:॥
   (च.वि. 5/10)

4. भूख लगने पर व्यायाम करने से।
5 शक्ति से अधिक कठिन कार्य करने से।

प्राणवह स्त्रोतो दुष्टि के लक्षण[1]

प्राणवह स्त्रोतस् के दुष्ट होनें पर निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—

1. श्वास गति अधिक तेज होना।
2. रुका हुआ (रुक-रुक कर श्वास चलना) श्वास-प्रश्वास होना।
3. थोड़ा-थोड़ा, बार-बार शब्द एवं शूल के साथ श्वास होना।

ये लक्षण प्राणवह स्त्रोतस् के दुष्ट होने पर अवश्य ही प्रकट होते हैं।

प्राणवह स्त्रोतां दुष्टि चिकित्सा[2]

आचार्य चरक ने प्राणवह स्त्रोतस् के दुष्ट होने पर श्वास रोग की चिकित्सा में निर्दिष्ट चिकित्सा को ही देने का निर्देश दिया है।

प्राणवह स्त्रोतस् की व्याधियां

प्राणवह स्त्रोतस् की व्याधियों में निम्न व्याधियों का समावेश किया जा सकता है—

1. हिक्का
2. श्वास
3. कास
4. पार्श्वशूल
5. राजयक्ष्मा
6. क्षतक्षीण
7. शोष
8. स्वर भेद
9. हद् रोग
10. हृच्छूल
11. हृदयाभिघात

इन व्याधियों का क्रमशः सविस्तार वर्णन आगे किया जायेगा।



---

1. तद्यथा-अतिसृष्टमतिबद्धं प्रकुपितमल्पाल्पमभीक्ष्णंवा-
सशब्दशूलमुच्छ्वसन्तं दृष्ट्वा प्राणवहान्यस्य स्त्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात्॥ (च.वि. 5/7)
2. प्राणोदकान्नवाहानां दुष्टानां श्वासिकी क्रिया। कार्या तृष्णोपशमनी तथैवामप्रदोषिकी॥ (च.वि. 5/26)

अध्याय-1

हिक्का
(HICCOUGH)

व्याधि परिचय

प्राचीन संहिताओं में हिक्का एवं श्वास का वर्णन एक साथ किया गया है। आचार्य चरक ने हिक्का एवं श्वास की निदान, सम्प्राप्ति व चिकित्सा को भी एक समान बताया है। परन्तु हिक्का व श्वास के निदानादि में समानता होते हुये भी लक्षणों एवं पीड़ादायक स्वरूप में पर्याप्त भिन्नता मिलती है। सामान्य रूप से हिक्का छोटे स्वरूप में कभी भी उत्पन्न हो सकती है, तथा अल्प समय में ही बिना किसी कष्ट के एवं बिना किसी चिकित्सा के शांत हो जाती है। परन्तु कभी-कभी यह हिक्का जब अधिक समय तक रहती है तो कष्ट प्रद होती है। हिक्का की उत्पत्ति महास्रोतस् में क्षोभ होने से महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) के अचानक नत हो जाने से होती है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में इसे Hiccough कहते हैं। आयुर्वेदानुसार हिक्का वात-कफज व आमाशयसमुत्थ व्याधि है। हिक्का में प्रधानतः अन्नवह, उदकवह एवं प्राणवह स्रोतसों की दुष्टि पायी जाती है। हिक्का रोग श्वसन संस्थान से संचालित होने पर भी इसमें पाचन संस्थान की अत्यधिक दुष्टि परिलक्षित होती है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1.	चरक संहिता	:	चिकित्सा स्थान-अध्याय 17
2.	सुश्रुत संहिता	:	उत्तर तंत्र- अध्याय 50
3.	अष्टांग हृदय	:	चिकित्सा स्थान- अध्याय 4
4.	माधव निदान	:	अध्याय 12 (प्रथम भाग)
5.	भाव प्रकाश	:	अध्याय 13 (मध्यम खण्ड)

व्युत्पत्ति-निरूक्ति

1. ''हिगिति कृत्वा कायति शब्दायते इति हिक्का।'' (डल्हण)
2. ''हिक् इति कृत्वा कायति शब्दायते इति हिक्का।'' (मा.नि.पर मधुकोश)

'हिक्का' एवं 'हिध्मा' पर्यायवाची शब्द हैं। आधुनिक मतानुसार हिक्का महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) के एकांशिक आयाम (Spasm) के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है जो कि अनियमित रूप से होता है। इस Spasm के कारण श्वास-मार्ग का द्वार अनियत रूप से बंद होने से वायु के प्रवेश तथा निर्गम में रुकावट होती है फलस्वरूप हिक्का उत्पन्न होती है। Clonic Diaphragmatic spasm is called Hiccough (Price).

परिभाषा

शरीर के द्वारा (उदान एवं प्राण वायु, यकृत, प्लीहा और आंतों के द्वारा) 'हिक्' ऐसे शब्द के साथ श्वास का बाहर फेंका जाना हिक्का कहलाता है। आधुनिक भाषा में इसे 'Hiccough ' अथवा 'हिचकी' कहते हैं।

निदान[1]

ऐसे समस्त निदान जिनसे श्वास मार्ग पर विपरीत प्रभाव पड़ता हो हिक्का के हेतु होते हैं। इन्हें निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

1. आहारज निदान—गुरु, विष्टम्भी, अभिष्यन्दि, रुक्ष, शीतल व विदाही आहार का सेवन, विषमाशन एवं अजीर्ण।
2. विहारज निदान—शीतल स्थान पर निवास, धूम, धूल, तीव्र वायु सेवन, अति व्यायाम, अति मैथुन, अति साहस, वेगधारण, अपतर्पण एवं अतिमार्ग गमन।
3. अन्य निदान—वमन, विरेचन का अतियोग।

विशिष्ट निदान

(1) कुछ व्याधियों के अंत में भी हिक्का उत्पन्न होती है। अतः ये व्याधियां भी हिक्का का निदान हो सकती हैं यथा— पाण्डु, अलसक, उरःक्षत, क्षय, उदावर्त, रक्तपित्त, विसूचिका, अतिसार, ज्वर, छर्दि एवं प्रतिश्याय आदि। इन व्याधियों में उपद्रव स्वरूप हिक्का उत्पन्न होती है। इनकी यथाशीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये।

(2) किसी भी रोग से आक्रान्त व्यक्ति के जीवन की अंतिम अवस्था में तीव्र वेदनाप्रद हिक्का उत्पन्न हो सकती है।

---

1. विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः। शीतपानासनस्थानरजोधूमानिलानलैः॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः। हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते॥
(सु.उ.त. 50/3-5)

सम्प्राप्ति

सामान्य सम्प्राप्ति[1]

आचार्य चरक ने चिकित्सा स्थान में हिक्का व श्वास की सामान्य सम्प्राप्ति का वर्णन किया है।

उपर्युक्त वर्णित निदानों का सेवन करने से प्रकुपित वायु प्राणवह स्रोतस् में प्रवेश करके उर:प्रदेश में स्थित कफ को ऊपर उठाकर हिक्का एवं श्वास रोग को उत्पन्न करता है।

विशिष्ट सम्प्राप्ति[2]

कफ के साथ प्रकुपित वायु प्राणवह, अन्नवह एवं उदकवह स्रोतों में अवरोध उत्पन्न करके हिक्का रोग को उत्पन्न करते हैं।

हिक्का रोग की विशिष्ट सम्प्राप्ति को निम्न चित्र के अनुसार दर्शाया जा सकता है—

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन

↓

वात प्रकोप

↓

वायु द्वारा उर:स्थित कफ को ऊपर की ओर उभारना

↓

कफ सहित वायु द्वारा

↓

प्राण, अन्न एवं उदकवह स्रोतसों में रुकावट

↓

हिक्-हिक् ध्वनि के साथ हिक्का की उत्पत्ति

---

1. मारुत: प्राणवाहीनि स्रोतांस्याविश्य कुप्यति। उर:स्थ: कफमुद्धूय हिक्काश्वासान् करोति स: ॥ (च.चि. 17/17)
2. प्राणोदकान्नवाहीनि स्रोतांसि सकफोऽनिल:। हिक्का: करोति संरुद्ध्य तासां लिङ्गं पृथक् शृणु॥ (च.चि. 17/21)

सम्प्राप्ति घटक

दोष	—	कफ+वायु (प्राण, उदान)
दूष्य	—	रस, श्वास वायु
अधिष्ठान	—	आमाशयोत्थ व्याधि, स्वर यन्त्र
स्रोतस्	—	प्राण, अन्न, उदकवह
स्रोतोदुष्टिप्रकार	—	संग, विमार्गगमन
स्वभाव	—	मृदु
अग्निदुष्टि	—	अग्निमांद्य
साध्यासाध्यता	—	साध्य

भेद

आचार्यों ने हिक्का के पांच भेद वर्णित किये हैं। आचार्य चरक के अनुसार हिक्का के निम्न पांच भेद हैं[1]—

1. महा हिक्का 2. गम्भीरा हिक्का 3. व्यपेता हिक्का
4. क्षुद्रा हिक्का 5. अन्नजा हिक्का

आचार्य सुश्रुत एवं वाग्भट्ट ने भी हिक्का के पांच भेद ही बताऐ हैं[2] परन्तु 'व्येपता' हिक्का के स्थान पर 'यमला' हिक्का का वर्णन किया है।

आचार्य वाग्भट्ट ने 'अन्नजा' हिक्का को 'भक्तोद्भवा' हिक्का के नाम से वर्णित किया है।

पूर्वरूप[3]

हिक्का के निम्नलिखित पूर्वरूप संहिता ग्रंथों में वर्णित हैं—

1. कण्ठ एवं उर: प्रदेश में भारीपन (Heaviness in chest)
2. मुख में कसैलापन लगना (Bitter taste of mouth)
3. उदर में आध्मान (Flatulence)
4. अरति (सुश्रुत) (Restlessness)

सामान्य लक्षण

यकृत, प्लीहा तथा आन्त्र को वेग के साथ मुख द्वारा निकाल देने जैसी अनुभूति

---

1. पंच हिक्का इति महती गम्भीराव्यपेताक्षुद्राअन्नजा च। (च.सू. 19/4)
2. अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा। वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि॥ (सु उ. 50/7)
3. कण्ठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता। हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च॥ (च.चि. 17/19)

कराता हुआ तथा सहसा बार-बार हिक्-हिक् शब्द उत्पन्न होते हुए प्राण घातक स्थिति का उत्पन्न होना।

हिक्का के भेदानुसार लक्षण

हिक्का के भेद दोषपरक न होकर उसके विशिष्ट स्वरुप पर आधारित हैं जो निम्न प्रकार हैं—

1. महाहिक्का के लक्षण[1]

महावेग युक्त व महा उपद्रव युक्त होने से इसे महा हिक्का कहते हैं। यह शीघ्र ही प्राण हरने वाली होती है। महामूल, महावेग, महाशब्द व महाबल वाली होने से यह हिक्का संघः संघाती कही गई है। इसके निम्न लक्षण हैं—

1. एक-दो-तीन वेग एक साथ आते हैं।
2. प्राणवाही-मर्मवाही स्रोत (हृदय) एवं अग्नि को कफ सहित वायु रोककर ज्ञान नष्ट कर शरीर में जकड़ाहट उत्पन्न करती है।
3. नेत्र अश्रुपूरित रहते हैं।
4. स्मरण शक्ति नष्ट कर, अन्नवाही व उदक वाही स्रोतों को बंद कर देती है।
5. शंख प्रदेश में जकड़ाहट।
6. वाक्-स्तब्धता।
7. सम्पूर्ण शरीर में कम्प आदि।

2. गम्भीरा हिक्का के लक्षण[2]

गम्भीर शब्द व प्रतिध्वनि युक्त हिक्का गम्भीरा कहलाती है। यह पक्वाशय व नाभि से उत्पन्न होती है। आचार्य चरक ने इसे ''प्राणान्तिकी'' नाम से वर्णित किया है। इसके निम्न लक्षण हैं—

1. कभी अंग संकोच, कभी प्रसार, कभी पार्श्व संकोच करते हुए अव्यक्त शब्दों के साथ जकड़ाहट व वेदना युक्त हिक्का।
2. आँखों के आगे अंधकार छाना।
3. रोगी के बल एवं मन के व्यापार को नष्ट करती है।

---

1. क्षीणमांसबलप्राणतेजसः सकफोऽनिलः। गृहीत्वा सहसा कण्ठमुच्चैर्घोषवतीं भृशम्॥
करोति सततं हिक्कामेकद्वित्रिगुणां तथा।..... ॥
महाहिक्केति सा नृणां सद्यः प्राणहरा मता॥ (च.चि. 17/22-26)

2. हिक्कते यः प्रवृद्धस्तु कृशो दीनमना नरः। जर्जरोरसा कृच्छ्रं गम्भीरमनुनादयन्।
.....गम्भीरा नाम सा तस्य हिक्का प्राणान्तिकी मता॥ (च.चि. 17/27-30)

4. शरीर में अत्यंत क्षोभ करती है एवं वेग के समय शरीर को टेढ़ा करती है।
5. रोगी मूर्च्छित हो जाता है।
6. ज्वर-तृषा-श्वास आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

3. व्यपेता हिक्का के लक्षण[1]

चतुर्विध अन्न के सेवन से उत्पन्न होने वाली तथा जत्रुमूल से प्रारंभ होनेवाली हिक्का व्यपेता हिक्का कहलाती है। इसके लक्षण निम्न स्वरुप में प्रकट होते हैं—

1. वेग निरंतर न होकर रुक-रुक कर आते हैं।
2. अन्नपाक होने पर वेग में वृद्धि होती है।
3. प्रलाप एवं तृषा।
4. चेतना नाश।
5. वमन एवं अतिसार।
6. जंभाई लेते समय नेत्रों में जल भर जाता है। यह हिक्का भी प्राणघातक होती है। आचार्य सुश्रुत ने व्यपेता हिक्का (चरक) के स्थान पर यमला हिक्का का वर्णन किया है।

यमला हिक्का— यह हिक्का शिर एवं ग्रीवा को कंपाती हुई रुक-रुककर एक बार में दो वेगों के साथ उत्पन्न होती है। एक साथ दो वेग होने के कारण इसे यमला कहा है।

दोहरे वेग होने के कारण यह कष्टदायी होती है।

4. क्षुद्रा हिक्का के लक्षण[2]

कभी-कभी व मंद वेग से होने वाली हिक्का क्षुद्रा कहलाती है। अल्प कुपित वात जब कोष्ठ से उदर प्रदेश में आती है तब क्षुद्रा हिक्का उत्पन्न होती है। इसके निम्न लक्षण हैं—

1. अल्प वेग वाली तथा शीघ्र शांत होने वाली।
2. व्यायाम एवं परिश्रम से बढ़ती है।
3. दोष प्राणवह, अन्नवहएवं उदकवह स्रोतसों को अवरुद्ध नहीं करते।

---

1. व्यपेता जायते हिक्का याऽन्नपाने चतुर्विधे। आहारपरिणामान्ते भूयश्च लभते बलम्॥
प्रलापवम्यतीसारतृष्णार्तस्य विचेतसः। जृम्भिणो विप्लुताक्षस्य शुष्कास्यस्य विनामिनः॥
पर्याध्मातस्य हिक्का या जत्रुमूलादसंतता। सा व्यपेतेति विज्ञेया हिक्का प्राणोपरोधिनी॥ (चचि.17/31-33)

2. "क्षुद्रवातो यदा कोष्ठाद् व्यायामपरिघट्टितः। कण्ठे प्रपद्यते हिक्कां तदा क्षुद्रां करोति सः॥
अतिदुःखा न सा चोरः शिरोमर्मप्रबाधिनी। न चोच्छ्वासान्नपानानां मार्गमावृत्य तिष्ठति॥
बृंहिमायस्यतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम्। यतः प्रवर्तते पूर्वं तत् एव निवर्तते॥" (च.चि. 17/34-36)

4. भोजन करने पर वेग शांत हो जाता है।
5. जिन कारणों से वेग उत्पन्न होता है उन्हीं से शमन हो जाता है।
6. जत्रु मूल से उत्पन्न होती है।
7. यह हिक्का साध्य होती है।

5. अन्नजा हिक्का के लक्षण[1]

अविधिपूर्वक भोजन के सेवन से अर्थात् अधिक प्रमाण में शीघ्रतापूर्वक अन्नपान का सेवन करने, अति तीक्ष्ण मद्य सेवन से पीड़ित वायु कोष्ठ से ऊर्ध्व प्रदेश में गमन कर अन्नजा हिक्का उत्पन्न करती है। इसके निम्न लक्षण हैं—

1. प्राय: छींक के साथ, मंद शब्द के साथ उत्पन्न होती है।
2. जलपान करने या भोजन करने से या कभी कभी स्वत: ही दब जाती है।
3. मर्मस्थानों में पीड़ा नहीं पहुँचाती है।

साध्यासाध्यता

1. महा, गम्भीरा एवं व्यपेता हिक्का असाध्य होती हैं[2]।
2. क्षुद्रा एवं अन्नजा हिक्का साध्य होती हैं।
3. प्रलापादि लक्षण उत्पन्न होने पर हिक्का असाध्य होती है।
4. जिस रोगी में दोष प्रकोप अधिक हो व शरीर अनशन से कृश हो गया हो उसमें हिक्का असाध्य होती है।
5. वृद्ध व्यक्ति व अति व्यायाम करने वाले की हिक्का असाध्य होती है[3]।
6. हिक्का के कारण जिसका सम्पूर्ण शरीर खिंच जाये, आँखें ऊपर चढ़ जायें, भोजन में अरुचि हो जाये, अत्यधिक छींकें आयें तो वह हिक्का असाध्य होती है।
7. अधिक व्यवाय (मैथुन) करने वाले व्यक्ति की साध्य हिक्का भी असाध्य हो जाती है।

---

1. सहसाऽतत्यभ्यवहतैः पानान्नैः पीडितो निलः। ऊर्ध्वं प्रपद्यते कोष्ठान्मद्यैर्वाऽतिमदप्रदैः॥
वायुकोष्ठगतो धावन् पानभोज्यप्रपीडितः। न मर्मबाधाजननी नेन्द्रियाणां प्रबाधिनी॥
हिक्का पीते तथा भुक्ते शमं याति च साऽन्नजा॥ (च.चि. 17/38-41)
2. i) महाहिक्केति साख्याता सद्यःप्राणहरा मता।
ii) गम्भीरा नाम सा तस्य हिक्का प्राणान्तिकी मता॥ (च.चि. 17/30)
3. अतिसंचितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च। व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः॥
आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम्। यमिका च प्रलापार्तितृष्णामोहसमन्विता॥
(च.चि. 17/42-43)

चिकित्सा सिद्धांत

आचार्य चरक ने हिक्का व श्वास का चिकित्सा सिद्धांत एक ही बताया है। हिक्का के प्रमुख चिकित्सा सूत्र निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. निदान परिवर्जन
2. स्नेहन व स्वेदन[1]—हिक्का व श्वास से पीड़ित रोगी में सर्वप्रथम वक्ष प्रदेश पर सैंधव लवण तथा तिल तैल से मर्दन करने के पश्चात् स्निग्ध द्रव्यों से युक्त स्वेदन (नाड़ी स्वेद) करना चाहिए।
3. कफ वात शामक औषध व आहार-विहार का सेवन करना चाहिए।
4. वमन[2]— बलवान रोगी में वमन कराकर ग्रथित कफ को निकालना चाहिए।
5. धूमपान[3]—वमन पश्चात् धूमपान कराना चाहिए।
6. योगाभ्यास[4]—कुम्भक एवं प्राणायाम कराना चाहिए।

चिकित्सा— उपरोक्त वर्णित चिकित्सा सिद्धांत के आधार पर हिक्का के रोगियों में निम्न संशोधन एवं संशमन चिकित्सा दी जा सकती है—

(1) संशोधन चिकित्सा

(i) स्नेहन-स्वेदन (ii) वमन कर्म (iii) नस्य कर्म (iv) धूमपान

(2) संशमन चिकित्सा

(अ) हिक्का रोग की संशमन चिकित्सा हेतु आचार्यों ने अनेक लेह योगों व नस्य योगों का वर्णन किया है, जो निम्न प्रकार हैं-

I. लेह योग

(i) आमलकी तथा कपित्थ के रस में मधु एवं पिप्पली मिलाकर चाटने को दें।

(ii) हरीतकी चूर्ण 2 ग्राम मधु से बार-बार चटायें।

(iii) काली मरिच का चूर्ण शहद के साथ चटायें।

(iv) मयूर पिच्छ भस्म एवं पीपर चूर्ण शहद से प्रति 1 घंटे पर चटायें।

(v) कुटकी चूर्ण एवं शुद्ध स्वर्णगैरिक समभाग लेकर शहद से चटायें।

---

1. "हिक्काश्वासार्दितं स्निग्धैरादौ स्वेदैरुपाचरेत्। आक्तं लवणतैलेन नाडीप्रस्तरसंकरैः॥" (च.चि. 17/71)
2. "ततः श्लेष्मणि सवृंद्धे वमनं पाययेंतु तम्।" (च.चि. 17/75)
3. "लीनश्चेद्दोषशेषः स्याद् धूमस्तं निहरिद् बुधः।" (च.चि. 17/77)
4. "प्राणायामोद्वेजनत्रासनानि सूचीतोदैः संभ्रमश्चात्र शस्तः।" (सु.उ. 50/16)

(vi) छोटी पिप्पली चूर्ण, खर्जूर एवं मुस्तक चूर्ण समभाग मधु से चटायें।

II. नस्य योग

(i) मुलैठी चूर्ण, मधु तथा पिप्पली चूर्ण तथा शर्करा का अवपीड़ नस्य हिक्का शामक है।

(ii) सैंधव लवण + सुखोष्ण घृत का नस्य[1]।

(iii) रक्त चंदन को स्त्री दुग्ध में घिसकर नस्य देने से हिक्का शांत होती है[2]।

(iv) सौंठ चूर्ण में गुड़ मिलाकर नस्य देने से हिक्का शांत होती है।

(ब) हिक्का की चिकित्सा के लिए शास्त्रों में निम्न संशमन योगों का वर्णन प्राप्त होता है जिन्हें युक्ति पूर्वक प्रयोग करने से आशातीत लाभ मिलता है।

1. रसौषधि/भस्म/पिष्टी

मात्रा	:	120 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	मधु/उष्ण जल
(i) मयूर पिच्छ भस्म	:	मोर पंख
(ii) ताम्र भस्म	:	ताम्र
(iii) हिक्कान्तक रस	:	स्वर्ण भस्म, मुक्ता पिष्टी, लौह भस्म, ताम्र भस्म समभाग
(iv) सूतशेखर रस	:	पारद, गंधक, टंकण, स्वर्ण, विष, ताम्र भस्म, शंख भस्म आदि
(v) लीला विलास रस	:	पारद, गंधक, ताम्र भस्म, लौह भस्म एवं अभ्रक भस्म
(vi) श्वास कुठार रस	:	पारद, गंधक, वत्सनाभ, टंकण, मन:शिला, त्रिकटु

(vii) शंख चूल रस

2. वटी

मात्रा	:	250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान	:	उष्ण जल

1-2. "नारीपयः पिष्टमशुक्लचन्दनं, घृतं सुखोष्णं च ससैंधवं तथा।
चूर्णीकृतं सैन्धवमम्भसाऽथवा, निहन्ति हिक्कांच हितंच नस्यतः॥" (सु.उ.त. 50/17)

(i) आरोग्यवर्द्धिनि वटी	:	पारद, गंधक, लौह, अभ्रक, ताम्र भस्म, शिलाजीत, कुटकी
(ii) शंख वटी	:	शंख भस्म, पारद, गंधक, विष एवं चिंचाक्षार

3. **चूर्ण**

मात्रा	:	3-6 ग्राम
अनुपान	:	ऊष्णोदक/शहद
(i) पिप्पली चूर्ण	:	पिप्पली
(ii) त्रिकटु चूर्ण	:	सोंठ, मरिच, पिप्पली
(iii) कर्चूर चूर्ण	:	कर्चूर
(iv) भार्गी-शर्करा योग	:	भार्गी एवं शर्करा, नागर
(v) मुक्तादि चूर्ण	:	मुक्ता भस्म, प्रवाल, वैदूर्य भस्म

4. **क्वाथ/आसव/अरिष्ट**

मात्रा	:	20 - 40 मि.ली.
अनुपान	:	समभाग जल
(i) कनकासव	:	धत्तूर, दशमूल
(ii) दशमूल क्वाथ	:	दशमूल
(iii) पाठाद्यासव	:	पाठा, मूर्वा, रास्ना, देवदारु
(iv) हिंग्वादि क्वाथ	:	रेणुका, पिप्पली, हिंगु

5. **घृत**

मात्रा	:	20 - 30 मि.ली.
अनुपान	:	ऊष्णोदक
(i) मन:शिलादि घृत	:	मन:शिला, लाक्षा, हरिद्रा
(ii) तेजोवत्यादि घृत	:	तेजोवती, हरड़, कूठ, पीपर
(iii) दशमूलादि घृत	:	दशमूल, पीपर, सोंठ, यवक्षार
(iv) वासा घृत	:	अडूसा

(3) उपायाभिप्लुता चिकित्सा

जिस समय हिक्का का वेग प्रबल हो उस समय हिक्का के वेग शामक उपायों का वर्णन आचार्य चरक ने किया है। इनमें से कुछ उपाय यहां पर वर्णित किए जा रहे हैं-

(i) शीतल जल से मुख का परिषेक।

(ii) सहसा त्रास उत्पन्न करना।

(iii) आश्चर्य उत्पन्न करना।

(iv) प्राणादि का भय उत्पन्न करना।

(v) सहसा हर्ष या क्रोध या उद्वेग उत्पन्न करना।

(vi) प्रिय वस्तु की अचानक प्राप्ति से हिक्का का वेग शांत हो जाता है।

(4) योग एवं प्राकृतिक उपाय

आचार्य सुश्रुत ने कुम्भक एवं प्राणायाम का वर्णन हिक्का की चिकित्सा के संदर्भ में किया है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
2. प्रातः सायं रात्रि

   श्वास कुठार रस : 250 मि.ग्रा.

   मयूर पिच्छ भस्म : 500 मि.ग्रा.

   पिप्पली चूर्ण : 1 ग्राम

   मधु से 1x3 मात्रा
3. आरोग्य वर्द्धिनी वटी : 2/2/2, जल से
4. भोजनोत्तर :

   दशमूलारिष्ट : 20 मि.ली.

   समभाग जल से 1x2 मात्रा
5. रात्रि सोते समय

   हरीतकी चूर्ण : 3 ग्राम

   ऊष्ण जल से एक मात्रा
6. नस्यार्थ : वेग आने पर

   सैंधव लवण+सुखोष्ण : 4-4 बूंद, आवश्यकतानुसार

   घृत
7. योगाभ्यास : प्राणायाम का अभ्यास।
8. पथ्य सेवन

पथ्यापथ्य

पथ्य

आहार	विहार
मृदु एवं स्निग्ध भोजन, पुराना गेहूं, जौ, साठी का चावल, मूंग, बिजौरा नीबू, कपित्थ, परवल, मूली, लहसुन, गोदुग्ध, अजा दुग्ध, सैंधव लवण, ऊष्ण जल, ऊष्ण घृत आदि।	ऊष्ण जल से स्नान, आतप सेवन, वेगों का धारण न करना, अल्पश्रम, मैथुन व व्यायाम आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, शीत अन्नपान, दधि, उड़द, तिलकल्क, लस्सी, गरम मसाले, जलीय जीवों का मांस, कटहल, राई, कन्द, सेम, मछली, विरुद्ध भोजन आदि।	वेगधारण, धूल, धुआं, अति मैथुन, शीतल जल में तैरना, देर तक नहाना, बर्फ के स्थान में निवास, अतिश्रम व अति व्यायाम आदि ।

Latest Developments

HICCOUGH

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान (Modern Medical Science) के अनुसार हिक्का की उत्पत्ति में प्रधान कारण Diaphragm का असामयिक संकोच Clonic spasm है। स्वस्थावस्था में Diaphragm का Spasm नियमित रूप से होता है जिसके फलस्वरूप Epiglotis श्वास मार्ग को खोल देती है. जिससे वायु का आवागमन श्वास मार्ग में होता रहता है और श्वास की प्रक्रिया प्राकृत रूप से चलती रहती है। जब कभी Diaphragm का अनियमित या अस्वाभाविक रूप से संकोच होता है तब उपजिह्विका (Epiglotis) के अनियमित आवरण या अवरोध होने से हिक्का की उत्पत्ति होती है। इस Clonic Spasm के अनेक कारण होते हैं जिन्हें निम्न दो वर्गों में बांट सकते हैं—

1. **पाचन संस्थान गत कारण** (Alimentary Causes)
2. **वात संस्थानीय कारण** (Nervous Causes)

1. **पाचन संस्थानीय कारणों में** Stomach & Alimentary Canal का direct irritation प्रमुख है। ऊष्ण, तीक्ष्ण कटु भोजन जैसे मिर्च, मसाले, अचार एवं धूम्रपान आदि से Stomach में Irritation होने से Phrenic Nerve irritate होकर diaphragm का spasm करती है, फलस्वरूप हिक्का उत्पन्न होती है। यह हिक्का शीतल

जल पान से शांत हो जाती है। कुछ अन्य कारणों में Dialatation of stomach, Intestinal obstruction, Tympanitis, Flatulence आदि से भी Diaphragm का Clonic Spasm होने से हिक्का उत्पन्न होती है।

2. **वात संस्थानीय कारणों में** Hysteria (योषापस्मार), मस्तिष्कार्बुद (Cerebral tumours), मस्तिष्कावरण शोथ (Meningitis), शीर्षाम्बु (Hydro Cephalus) मदात्यय आदि व्याधियों के परिणाम स्वरूप भी diaphragm का अनियमित संकोच होने से हिक्का उत्पन्न होती है।

Chronic Nephritis (जीर्णवृक्कशोथ) व Uraemia (मूत्रविषमयता) के कारण भी हिक्का उत्पन्न होती है।

Management : Principles

(1) **General Measures**

i) A large number of home remedies are popular like eating a spoonful of sugar, sucking a candy, rebreathing in to a paper bag, lifting the uvula with a spoon, sipping ice water, or including fright etc, none of which is of proven benifit.

ii) Medical measures tried include—

(a) Relief of gastric distension by naso-gastric aspiration as gastric lavage.

(b) Counter irritation of the vagus nerve with supra orbital pressure, or stimulation of nasopharynx with lubricated catheter, carotid sinus massage etc.

(c) Respiratary centre stimulation by breathing 5% CO_2.

(d) Phrenic nerve avulsion to paralyse hemi diapnragm.

(e) Psychiatric therapy with Hypnosis

(f) Acupuncture.

(2) **Drug Therapy**

i) Antacids with or without local anaesthetics, antispasmodics should be used for relief.

ii) General anaesthesia has been tried as a last measure occasionally.

(3) **Councelling of Patient**

Patient teaching to avoid over eating, drinking too many carbonated beverages & aerophagia.

अध्याय-2

श्वास रोग
(DYSPNOEAS, ASTHMA)

व्याधि परिचय

श्वास रोग प्राणवह स्रोतस् की एक प्रमुख व्याधि है। इस रोग में प्राणवह स्रोतस् में अवरोध होने से नियमित रूप से होने वाली श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होने से रोगी को श्वासोच्छ्वास में कष्ट की अनुभूति होती है। दूष्य, दोष व स्रोतस् की समानता होने से आचार्य चरक ने हिक्का व श्वास रोग का वर्णन एक साथ किया है। आचार्य चरक ने इसे गम्भीर व प्राणहर रोग माना है[1] व अधिकांश प्राणियों में यह मृत्यु के समय अवश्य मिलता है[2]। श्वास रोग को आचार्यों ने ''पित्तस्थान समुद्भव'' कहा है[3]। इसकी उत्पत्ति में आम एवं अग्निमांद्य का विशेष महत्त्व है। यदि हिक्का एवं श्वास रोग का उचित समय पर उचित उपचार न किया जाये तो ये रोग आशीविष के समान रोगी को शीघ्र ही मार डालते हैं[4]। आयुर्वेद में विभिन्न प्रकार के वर्णित श्वास रोग अनेक श्वास कष्टों (Dyspnoeas) का ही वर्णन है। लाक्षणिक दृष्टि से तमक श्वास आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Bronchial Asthma से अत्यन्त निकट का साम्य रखता है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1.	चरक संहिता	:	चिकित्सा स्थान - अध्याय 17
2.	सुश्रुत संहिता	:	उत्तरतन्त्र - अध्याय 51
3.	अष्टांङ्ग हृदय	:	चिकित्सा स्थान - अध्याय 4
4.	माधव निदान	:	प्रथम खण्ड - अध्याय 12

---

1. ''कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा।
   यथा श्वासश्च हिक्का च प्राणानाशु निकृन्ततः॥'' (च.चि. 17/6)
2. ''अन्यैरप्युपसृष्टस्य रोगैर्जन्तोः पृथग्विधैः।
   अन्तो संजायते हिक्काश्वासो वा तीव्रवेदनः॥'' (च.चि. 17/7)
3. ''कफवातात्मकावेतौ पित्तस्थानसमुद्भवौ।'' (च.चि. 17/8)
4. ''तस्मात् साधारणावेतौ मतो परमदुर्जयौ।
   मिथ्योपचरितौ क्रुद्धौ हत आशीविषाविव॥'' (च.चि. 17/9)

5. भावप्रकाश : मध्यम खण्ड - अध्याय 14

निदान[1]

श्वास रोग मुख्यत: वात एवं कफ की विकृति से उत्पन्न होता है। अत: वात एवं कफ प्रकोपक कारण श्वास रोग के सामान्य निदान होते हैं। विभिन्न रोगों के लक्षण या उपद्रव के रूप में भी श्वास मिलता है अत: वे रोग भी श्वास रोग के निदान हो सकते हैं।

1. **वात प्रकोपक निदान**—धूम, धूल, वायु सेवन, शीतस्थान निवास, अतिव्यायाम, अपतर्पण, अतिमैथुन, वमनादि अतियोग, दौर्बल्य, मर्माभिघात, वेगावरोध आदि विहारज वात प्रकोपक निदान तथा रूक्षान्न पान सेवन, शीतल जलपान, विषमाशन आदि आहारज वात प्रकोपक निदान है।

2. **कफ प्रकोपक निदान**—शीतस्थान निवास, दिवास्वाप, शीतल जल स्नान आदि विहारज कफ प्रकोपक निदान तथा निष्पाव, माष, तिलतैल, पिष्ट, शालूक, विष्टम्भि अन्न, विदाही अन्न, गुरु भोजन, जलीय मांस, दधि सेवन, आमक्षीर आदि आहारज कफ प्रकोपक निदान है।

3. **अन्य निदान**—कंठ एवं उर:प्रदेश पर आघात तथा विबंध भी श्वास रोग का कारण हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त पाण्डु, अतिसार, छर्दि, अलसक, विसूचिका, प्रतिश्याय, क्षय, रक्तपित्त, विष, उदावर्त एवं ज्वर आदि रोगों में श्वास एक लक्षण होता है अत: ये रोग भी श्वास के निदानार्थकर रोग होते हैं। जलोदर, हृदरोग, प्लीहोदर, यकृदाल्युदर, मेद वृद्धि, गुल्म आदि में भी श्वास एक लक्षण के रूप में मिलता है। इन रोगों में दवाब (Pressure) एवं रसदुष्टि से श्वास का लक्षण मिलता है।

सम्प्राप्ति[2]

आचार्यों ने श्वास रोग की संप्राप्ति हिक्का रोग के समान ही बताई है परन्तु श्वास रोग की पृथक् से विशिष्ट सम्प्राप्ति का भी उल्लेख किया है।

जब कफ के साथ कुपित हुई वायु प्राण, अन्न तथा उदकवह स्रोतों को रोककर तथा कफ द्वारा स्वयं रूकी हुई वायु शरीर में फैलकर विभिन्न स्रोतों में गमन करती है तब श्वास रोग को उत्पन्न करती है। अर्थात् कफ के द्वारा वायु मार्गों में अवरोध होने से श्वास-प्रश्वास

---

1. "रजसा धूमवाताभ्यां शीतस्थानाम्बुसेवनात्। व्यायामाद् ग्राम्यधर्माध्वरूक्षान्नविषमाशनात्॥
आमप्रदोषादानाहाद्रौक्ष्यादत्यपतर्पणात्। दौर्बल्यान्मर्मणो घाताद् द्वन्द्वाच्छुद्धयति योगत:॥
अतिसारज्वरच्छर्दिप्रतिश्यायक्षतक्षयात्। रक्तपित्तादुदावर्ताद्विसूच्यलसकादपि॥
पाण्डुरोगाद्विषाच्चैव प्रवर्तेते गदाविमौ॥" (च.चि. 17/11-13)

2. "यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुत: कफपूर्वक:। विष्वग् व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान् करोति स:॥" (च.चि. 17/45)

के दौरान वायु प्रवेश एवं निष्कास के लिये स्थान संकीर्ण हो जाने से श्वास प्रक्रिया में कष्ट होता है एवं पुन:पुन: श्वास की प्रवृत्ति होती है। यही श्वास रोग है। प्राणवह स्रोतस् से श्वास नलिका (Bronchi), श्वास कोष (Alveoli) एवं वायुकोष (Alveolar sac) का ग्रहण करना चाहिये।

श्वास रोग को पित्तस्थान समुद्भव कहा है। अर्थात् श्वास रोग की उत्पत्ति में पित्त स्थान (आमाशय) में भी विकृति होना अभीष्ट है। अग्नि के मंद होने से आहार का पाक पूर्णरूपेण न होकर आमविष की उत्पत्ति होती है। आमविष जब रस धातु को दूषित करता है तब मलभूत कफ की उत्पत्ति होती है एवं यही मलभूत कफ श्वास मार्गों एवं स्रोतसों में अवरोध पैदा करता है एवं अग्नि को भी पुन: मंद कर अग्नि मांद्य उत्पन्न करता है। यही क्रम चलता रहता है परिणामत: श्वास रोग उत्पन्न होता है।

यहां पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि श्वास रोग में प्रथमत: वात एवं कफ की विकृति निदान सेवन से होती है। तत्पश्चात् कफ वृद्धि से अग्निमांद्य होता है। व्यवहारिक रूप में भी देखा जाता है कि अति गुरु एवं गरिष्ट भोजन करने से श्वास कष्ट बढ़ जाता है क्योंकि इस प्रकार का भोजन आमाशय में गुरुता उत्पन्न करता है एवं कफ प्रकोप होकर प्राणवह स्रोतस में अवरोध उत्पन्न होने से श्वास कष्ट की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति चक्र

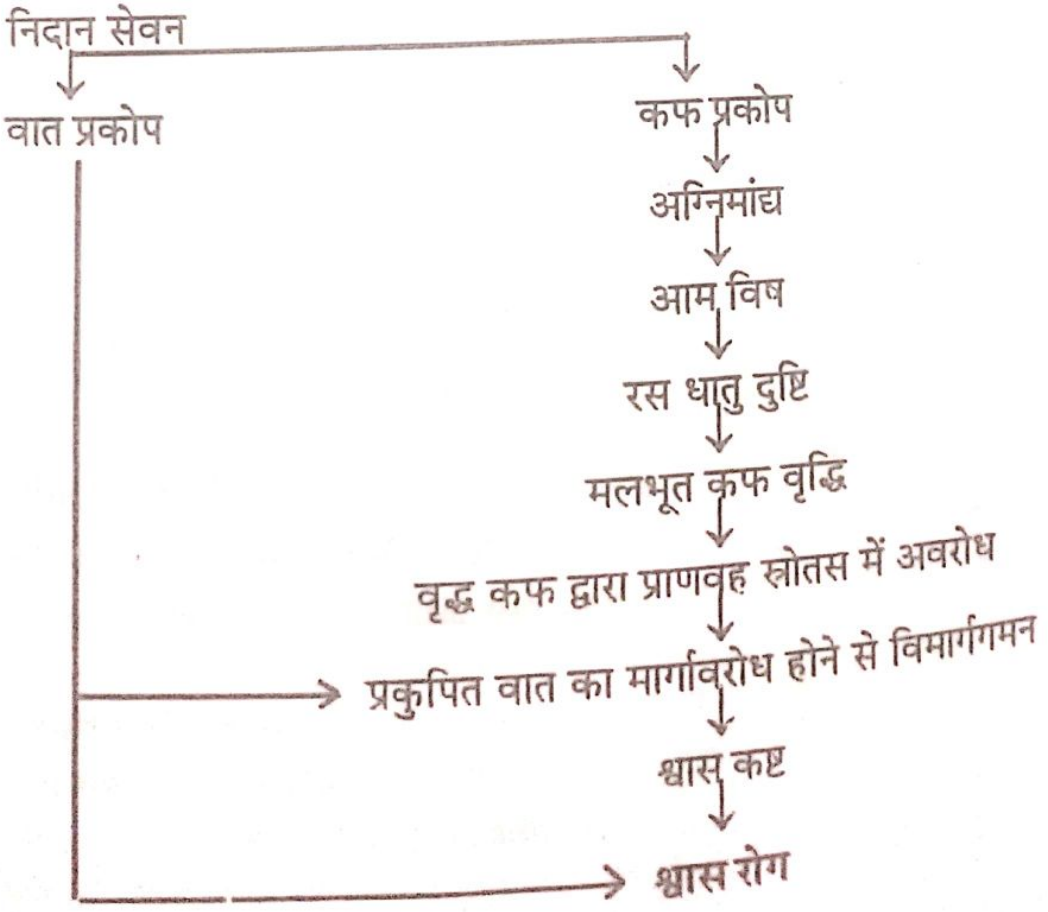

श्वास रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	कफानुगत वात
दूष्य	:	रस, प्राणवायु
अधिष्ठान	:	आमाशय, प्राणवह स्रोतस्
स्रोतस्	:	प्राणवह स्रोतस्
स्रोतोदुष्टि लक्षण	:	संग एवं विमार्गगमन
स्वभाव	:	चिरकारी
अग्निदुष्टि	:	अग्निमांद्य
साध्यासाध्यता	:	कृच्छ्रसाध्य

भेद[1]

आचार्य चरक ने श्वास के निम्न पांच भेद वर्णित किये हैं—

1. महाश्वास (Fatal Dyspnoea)
2. ऊर्ध्वश्वास (Gasping Respiration)
3. छिन्नश्वास (Cheyne Stokes Breathing)
4. तमकश्वास (Bronchial Asthma)
5. क्षुद्रश्वास (Exertional Dyspnoea)

इसमें से महाश्वास एवं ऊर्ध्वश्वास सामान्यतः मृत्यु के समय प्रकट होते हैं। छिन्नश्वास कभी-कभी बच्चों में तथा Surgery के बाद देखने को मिलता है। दौर्बल्य एवं धातुक्षय से प्रायः क्षुद्र श्वास उत्पन्न होता है। व्यवहार में तमक श्वास के रोगी ही अधिकांशतः देखने को मिलते हैं।

पूर्वरूप[2]

श्वास रोग के निम्नलिखित पूर्वरूप आचार्य चरक ने वर्णित किये हैं—

1. आनाह (Distension of Abdomen)
2. पार्श्वशूल (Chest Pain)
3. हृत्पीड़ा (Cardiac Pain)
4. शूल (Muscular Pain)

---

1. "क्षुद्रकस्तमश्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चधा। भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः॥"
(सु.उ.त. 51/4)
2. i) "आनाहः पार्श्वशूलं च पीडनं हृदस्य च। प्राणस्य च विलोमत्वं श्वासानां पूर्वलक्षणम्॥"
(च.चि. 17/20)
ii) "प्राग्रूपं तस्य हृत्पीड़ा शूलमाध्मानमेव च। आनाहे वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च॥"
(मा.नि. 12/16)

5. भक्तद्वेष (Anorexia)
6. अरति (Restlessness)
7. मुखवैरस्य (Bitter Taste of mouth)
8. शंखभेद (Pain in temporal Region)

श्वास रोग के विभिन्न भेदों में दोषों की स्थिति[1]

श्वास रोग के पांचों भेदों में विभिन्न दोषों का बाहुल्य भी मिलता है जो निम्न प्रकार है—

1.	महाश्वास	:	वात प्रधान
2.	ऊर्ध्वश्वास	:	वात प्रधान
3.	छिन्नश्वास	:	कफ+वात प्रधान
4.	तमक श्वास	:	कफ प्रधान
5.	क्षुद्र श्वास	:	वात प्रधान

श्वास रोग के भेदानुसार लक्षण

श्वास रोग के विभिन्न भेद दोषानुसार न होकर लक्षणों की विशेषता के आधार पर किये गये हैं जो कि यहां वर्णित किए जा रहे हैं—

1. महाश्वास[2]

यहां पर 'महा' शब्द व्याधि की गंभीरता का सूचक है। वायु की गति ऊर्ध्व होने के कारण महाश्वास में निम्न लक्षण मिलते हैं—

1. उन्मत्त सांड की गर्जना के समान शब्द युक्त श्वास।
2. ज्ञान-विज्ञान लुप्त हो जाना।
3. नेत्र चंचल होना।
4. मुख व नेत्र फैले हुए होना।
5. मल-मूत्र की प्रवृत्ति रूक जाना।
6. वाणी क्षीणता।
7. श्वास की ध्वनि दूर से ही सुनाई देना।
8. पार्श्वशूल।
9. रोगी संज्ञा रहित होकर नीचे झुककर श्वास लेता है।

---

1. "वाताधिको भवेत् क्षुद्रत्तमकस्तु कफोदभवः। कफवाताधिकश्चैव संसृष्ट छिन्नसंज्ञकः॥ श्वासो मारुतसंसृष्टो महानूर्ध्वस्ततोमतः।" (सु.उ. 51/4)
2. "उद्धूयमानवातो यः शब्दवद् दुःखितो नरः। उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम्॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रांतलोचनः। विकृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक्॥ ..... क्षिप्रमेव विपद्यते॥" (च.चि. 17/46-48)

10. शंख प्रदेश एवं सिर में तीव्र पीड़ा।

2. ऊर्ध्वश्वास[1]

प्राणवह स्रोतस् के श्लेष्मा से आवृत होने एवं वायु के तीव्र प्रकोप के कारण निम्न लक्षण ऊर्ध्वश्वास में प्राप्त हो सकते हैं—

1. रोगी देर तक श्वास छोड़ता है अर्थात् बहिःश्वसन देर तक करता है। (Prolonged Expiration)
2. अन्तः श्वसन में कष्ट होने से रोगी श्वास को अन्दर उतनी देर तक नहीं खींचता है। (Short Inspiration)
3. रोगी की दृष्टि ऊपर की ओर अटक जाती है। (ऊर्ध्व दृष्टि)
4. बैचेनी के साथ रोगी का मुख बार-बार सूखता है। (Restlessness & dryness of mouth)
5. तमःप्रवेश (Darkness in front of eyes)
6. बार-बार मूर्च्छा (Fainting Attacks)
7. मर्मस्थान में वेदना (Pain in vital organs)
8. स्वर विकृति (Hoarseness of voice)

3. छिन्नश्वास[2]

छिन्न श्वास के रोगी में निम्न लक्षण मिलते हैं—

1. रोगी रुक-रुककर श्वास लेता है।
2. मर्मस्थानों पर पीड़ा होने से थोड़ी देर के लिये श्वास लेना बंद कर देता है।
3. स्वेदाधिक्य (Excessive Sweating)
4. मूर्च्छा (Fainting Attacks)
5. बस्तिप्रदेश में दाह के साथ मूत्रावरोध।
6. एक आंख लाल रहती है तथा नेत्र अश्रुपूरित रहते हैं।
7. संज्ञाहानि, मुखशोष, वर्णविकृति, प्रलाप एवं नेत्र नीचे झुके होते हैं।

---

1. "दीर्घं श्वसिति यस्तूर्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः। श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः।
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्च विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः॥ प्रमुह्यन् वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीड़ितः।
..... श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून्॥" (च.चि. 17/49-51)

2. "यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीड़ितः। न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुगऽर्दितः।
आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन वस्तिना॥ विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः।
..... शीघ्रं प्रजहात्यसून्॥" (च.चि. 17/52-54)

4. तमकश्वास

श्वास रोग के पांचों प्रकारों में अधिकांशत तमकश्वास के रोगी ही मिलते हैं। तमकश्वास में कफाधिक्य होता है। नूतन अवस्था में यह साध्य होता है तथा जीर्ण होने पर कृच्छ्र साध्य हो जाता है। आचार्य चरक ने तमक श्वास की सम्प्राप्ति एवं लक्षणों का बहुत ही सटीक वर्णन किया है, जिसका साम्य पूर्णरुपेण आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Bronchial Asthma के लक्षणों से प्रतीत होता है।

सम्प्राप्ति[1]

रुक्ष, शीत पदार्थों (शीतल पेय पदार्थ, चावल, दधि, मक्का, उड़द आदि) का सेवन, शीत ऋतु, वर्षा ऋतु आदि ऋतु जन्य प्रभाव, प्रातःकाल आदि कारणों से कफाधिक्य होकर श्वास मार्गावरोध हो जाता है। अतः वायु कुपित होकर स्रोतों में प्रतिलोम गमन करती है तथा ग्रीवा एवं सिर को जकड़ कर, कफ को उभार कर पीनस रोग उत्पन्न करती है। गले में घरघराहट के साथ अत्यंत तीव्र वेग से प्राण में पीड़ा पहुंचाने वाले श्वास रोग को उत्पन्न करती है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन ← सन्निकृष्ट निदान-वात-कफ प्रकोपक आहार-विहार
विप्रकृष्ट निदान-शीत ऋतु, वर्षा ऋतु, प्रातःकाल

↓

कफाधिक्य

↓

कफ द्वारा मार्गावरोध

↓

वात प्रकोप

↓

वायु का विमार्गगमन

↓

तमकश्वास

---

1. ''प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते। ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च॥ करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरुकं तथा। अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम्॥'' (च.चि. 17/55-56)

तमकश्वास के लक्षण[1]

तमकश्वास के रोगी में निम्न लक्षण मिलते हैं—

1. श्वास कष्ट होने से रोगी तम: प्रवेश की अनुभूति करता है।
2. निश्चेष्ट।
3. प्राणवह स्रोतस् में जमे हुये कफ को निकलने के लिये बार-बार कास का वेग।
4. कास के साथ कफ निकल जाने से रोगी को लाभ मिलता है। अन्यथा खांसते-खांसते रोगी मूर्च्छित हो जाता है।
5. बार-बार कास से रोगी में स्वरभेद हो जाता है, रोगी को बोलने में कष्ट होता है, व रोगी बहुत कष्ट के साथ छोटे-छोटे शब्द वाक्य बोलता है।
6. रोगी को लेटने पर तकलीफ बढ़ जाती है क्योंकि लेटने पर प्रतिलोम हुई वायु पार्श्व में रुक जाती है एवं पार्श्व को जकड़ देती है। इस कारण रोगी को निद्रा बहुत ही कष्ट से आती है।
7. बैठने पर रोगी को आराम मिलता है। रोगी श्वास को बाहर निकालने के लिये उरस की मांस पेशियों का सहारा लेता है।
8. रोगी को ऊष्ण सेक तथा ऊष्ण पदार्थों के सेवन से आराम मिलता है।
9. श्वास कष्ट के कारण रोगी के माथे पर पसीने की बूंदे दिखती हैं तथा रोगी पसीने से तर हो जाता है। आंखे बाहर की और निकलने लगती हैं एवं मुख सूख जाता है।
10. श्वास का वेग आकाश में बादल होने पर वर्षा ऋतु में, शीत ऋतु में एवं प्रात:काल स्वाभाविक रूप से बढ़ जाता है।
11. रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाता है।

---

1. "प्रताम्यत्यतिवेगाच्च कासते सन्निरुद्धयते। प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः॥ श्लेष्मण्यमुच्यमाने तु भृंश भवति दुखितः। तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहुर्तं लभते सुखम्॥ अथास्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम्। न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीड़ितः। पार्श्वे तस्यावगृहणाति शयानस्य समीरणः। आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति॥ उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमतिमात्। विशुष्काम्यो मुहुः श्वासामुहुश्चैवावधम्यते। ..... साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः॥"
(च.चि. 17/57-62)

तमक श्वास के भेद

आचार्य चरक ने तमकश्वास के निम्न दो भेद वर्णित किये हैं[1]—

1. प्रतमक श्वास (Bronchical Asthma with Super imposed infection)
2. संतमक श्वास (Tropical Eosinophilia)

1. **प्रतमक श्वास**—जब तमकश्वास के समस्त लक्षणों के साथ ज्वर व मूर्च्छा भी उत्पन्न हो जाये तो इसे प्रतमकश्वास कहते हैं। इसमें पित्तानुबंध होता है अतः शीत पदार्थों के सेवन से लाभ मिलता है।

2. **संतमक श्वास**—जो तमक श्वास उदावर्त, रजकण, अजीर्ण, आर्द्रता एवं वेगधारण से उत्पन्न हो, तम (अन्धकार) से बढ़े एवं शीतोपचार से शांत हो उसे संतमक श्वास कहते हैं। इसमें रोगी अंधकार में पड़ा हुआ महसूस करता है। इसमें मानसिक दोष प्रभावी होते हैं।

संतमक एवं प्रतमक श्वास में वात-कफाधिक्य तो होता ही है परन्तु पित्तानुबंध होने के कारण रोगी को शीत पदार्थों के सेवन से लाभ मिलता है।

"वात कफारब्धोऽपि पित्तसम्बन्धाच्छीतैरुपशाम्यतीत्याहु।" (जेज्जट)

तमकश्वास के विशिष्ट (प्रत्यात्म) लक्षण

1. कपोत के उरस सम गोल वक्ष (Barrel Shaped Chest)
2. फुफ्फुसों में शुष्क एवं आद्रध्वनि (Rales & Rhonchi Present on Auscultation)
3. कपोतवत् कूजन (घुर्घुराहट)
5. **क्षुद्र श्वास**[2]

रुक्ष पदार्थों के सेवन, अतिश्रम व अतिभोजन से कोष्ठ स्थित वायु का अल्प रूप में प्रकोप होकर क्षुद्र श्वास उत्पन्न होता है। इसके निम्न लक्षण होते हैं—

1. क्षुद्र श्वास में अन्य श्वासों की तरह रोगी को कोई शारीरिक कष्ट नहीं होता।

---

1. "ज्वर मूर्च्छापरीतस्य विद्यात् प्रतमकं तु तम्। उदावर्तरजोऽजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः॥
तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति। मज्जतस्तमसीवाऽस्य विद्यात् संतमकं तु तम्॥"
(च.चि. 17/63-64)

2. "रुक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वात उदीरयन्। क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः॥
क्षिनस्ति न स गात्राणि न च दुःखो यथेतरे। न च भोजनपानानां निरुणद्धयुचितां [illegible]॥"
66)

2. थोड़ा विश्राम करने पर श्वास का वेग स्वयं शांत हो जाता है।
3. क्षुद्र श्वास केवल लक्षण मात्र है। अनेक रोगों में दौर्बल्य के कारण क्षुद्र श्वास उत्पन्न हो सकता है।

साध्यासाध्यता[1]

आचार्य चरक ने हिक्का व श्वास के समान प्राणघातक किसी अन्य रोग को नहीं बताया हैं[2]। अतः इनकी चिकित्सा शीघ्र ही करना चाहिये।

1. महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास एवं छिन्नश्वास असाध्य होते हैं।
2. नूतन तमक श्वास साध्य है परन्तु जीर्ण होने पर कृच्छ्रसाध्य व दुर्बल रोगी का तमक श्वास असाध्य होता है।
3. क्षुद्र श्वास साध्य होता है।

उपद्रव

आचार्यों ने स्पष्ट रूप से श्वास रोग के उपद्रवों का वर्णन नहीं किया है परन्तु यदि श्वास रोग की उपेक्षा की जाये तो वह सूखी तृण राशि में पड़ी अग्नि के गोले की भांति प्राणों को शीघ्र ही नष्ट कर सकता है।[3]

चिकित्सा सिद्धान्त

आचार्यों ने श्वास रोग की चिकित्सा के निम्न सूत्र वर्णित किऐ हैं—

1. **निदान परिवर्जन**[4]— सर्वप्रथम रोगी को रोग के कारणों का त्याग करना चाहिये। निदान परिवर्जन किसी भी व्याधि का प्रथम चिकित्सा सूत्र है।
2. श्वास से पीड़ित मनुष्य को सर्वप्रथम सेंधव लवण व तिल तैल का वक्ष प्रदेश पर मर्दन करने के बाद स्निग्ध द्रव्यों से युक्त नाड़ी स्वेद, प्रस्तर स्वेद या संकर स्वेद करना चाहिये।[5]

---

1. "क्षुद्रः साध्यमततेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते। त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च॥" (सु.उ. 51/14)
2. "कामं प्राणहरा बहवो न तु ते तथा। यथा श्वासश्च हिक्का च प्राणानाशु निकृन्ततः॥" (च.चि. 17/6)
3. "ऐषां प्राणहरा वर्ज्या घोरास्ते ह्याशुकारिणः। उपेक्षिता दहेयुर्हि शुष्कं कक्षमिवानिलः॥" (च.चि. 17/69)
4. "हिक्काश्वासविकाराणां निदानं यत् प्रकीर्तितम्। वर्ज्यमारोग्यकामैस्तद्धिक्काश्वास विकारिभिः॥" (च.चि. 17/138)
5. "हिक्का श्वासार्दितं स्निग्धैरादौ स्वेदैरुपाचरेत्। आक्तं लवणतैलेन नाड़ीप्रस्तरसंकरैः॥" (च.चि

इस प्रकार स्नेहन स्वेदन से स्रोतों में गांठ के समान बना हुआ कफ द्रवीभूत हो जाता है एवं स्रोत मृदु हो जाते हैं। फलस्वरूप वायु का अनुलोमन हो जाता है।[1]

3. स्नेहन व स्वेदन के पश्चात् श्लेष्म वृद्धि के लिये स्निग्ध भोजन कराकर वमन करना चाहिये[2]। वमन द्वारा कफ निकल जाने से स्रोतोऽवरोध कम हो जाने से रोगी को आराम मिलता है।

4. **धूम्रपान**[3]—वमन कराने के बाद स्रोतों में लीन दोषों के निर्हरण के लिये धूम्रपान कराना चाहिये।

5. स्वरभेद, अतिसार, रक्तपित्त, दाह आदि के उपद्रव-स्वरूप उत्पन्न हुये श्वास रोग की चिकित्सा सदैव मधुर, स्निग्ध एवं शीतल औषधियों से करनी चाहिये[4]।

6. वमन पश्चात् वात वृद्धि होने पर वात शामक मांस रस आदि से भोजन कराना चाहिये।

7. ऐसे रोगी जिनमें कफोत्क्लेश न हुआ हो एवं स्वेदन भी न कराया गया हो उन्हें वमन नहीं कराना चाहिये[5]।

8. कास रोग से युक्त तथा स्वरभंग से युक्त श्वास रोग में वमन कराना चाहिये तथा तमक श्वास से पीड़ित रोगी को विरेचन (वात-कफ शामक द्रव्यों से) कराना चाहिये[6]।

9. जो आहार-विहार एवं औषध कफवात शामक हो, ऊष्ण हो एवं वायु का अनुलोमन करता हो वह श्वास रोगी में लाभप्रद है[7]।

---

1. तैरस्य ग्रथितः श्लेष्मा स्रोतः स्वधिविलीयते। खानि मादर्वमायन्ति ततो वातानुलोमता॥ (च.चि. 17/72)
2. "ततः श्लेष्मणि संवृद्धे वमनं पाययेत्तु तम्।" (च.चि. 17/75)
3. "लीनश्चेद्दोषशेषः स्याद् धूमस्तं निहरित् बुधः।" (च.चि. 17/77)
4. "स्वरक्षीणतिसारासृक्पित्तदाहानुबन्धजान्। मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिक्काश्वासानुपाचरेत्॥" (च.चि. 17/81)
5. "अनुत्क्लिष्टकफास्विन्न दुर्बलानां विशोधनात्। वायुर्लब्धास्पदो मर्म संशोष्याशु हरेदसून्॥" (च.चि. 17/91)
6. "कासिनेच्छर्दनं दद्यात् स्वरभंङ्गे च बुद्धिमान्। वातश्लेष्महरैर्युक्तं तमके तु विरेचनम्॥" (च.चि. 17/121)
7. "यत्किंचित् कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्। भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वासहिक्किने॥" (च.चि. 17/147)

10. जो औषध या अन्नपान वात कारक एवं कफ नाशक हो अथवा जो औषधि या अन्नपान कफ कारक व वात शामक हो उसके द्वारा चिकित्सा करना चाहिये। किन्तु ऐकान्तिक अर्थात् केवल वात या कफ नाशक औषधियों से चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। यदि आवश्यक हो तब केवल वात नाशक चिकित्सा श्रेष्ठ है। आचार्य चरक ने श्वास रोग की चिकित्सा हेतु निम्न सिद्धान्त वर्णित किए हैं[1]—

    1. वात-कफ नाशक चिकित्सा
    2. वात कारक-कफ नाशक चिकित्सा
    3. वात नाशक-कफ कारक चिकित्सा
    4. केवल वात शामक चिकित्सा

11. आचार्य चरक ने श्वास रोग की चिकित्सा में बृंहण, कर्षन एवं शमन चिकित्सा का भी उल्लेख किया है। इसमें भी बृंहण चिकित्सा ही श्रेष्ठ है क्योंकि बृंहण से कफ की वृद्धि होती है जिसे शोधन (वमन) द्वारा निकाल देने से। वातानुलोमन हो जाने से श्वास रोग स्वयं शांत हो जाता है।

    शमन चिकित्सा से वात-कफ दोषों का शमन तो होता है परन्तु स्रोतों में लीन कफ न निकल पाने के कारण पुनः रोग होने की संभावना रहती है। कर्षन चिकित्सा से रोगी का बल घट जाने से रोग असाध्य हो जाता है[2]।

चिकित्सा

उपरोक्त वर्णित चिकित्सा सिद्धान्तों के आधार पर निम्न संशोधन एवं संशमन चिकित्सा श्वास के रोगी को दी जा सकती है जिसके आशानुकूल परिणाम प्राप्त होते हैं।

(1) संशोधन चिकित्सा

(i) स्नेहन-स्वेदन (ii) वमन
(iii) विरेचन (iv) अनुवासन वस्ति[3]
(v) नस्य (vi) धूमपान

---

1. "वातकृद्धा कफहरं कफकृद्धाऽनिलापहम्। कार्यं नैकान्तिकं ताभ्यां प्रायः श्रेयोऽनिलापहम्॥" (च.चि. 17/148)
2. "कासिनेच्छर्दनं दद्यात् स्वरभंङ्गे च बुद्धिमान्। वातश्लेष्महरैर्युक्तं तमके तु विरेचनम्॥" (च.चि. 17/121)
3. "स्नेहबस्तिं बिना केचित् ऊर्ध्वञ्चाधश्च शोधनम्। मृदु प्राणवतां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशन्ति हि॥" (सु.उ.त. 51/15)

(2) संशमन चिकित्सा

श्वास रोग की संशमन चिकित्सा में आचार्यों ने विभिन्न संशमन योगों का वर्णन किया है जो निम्नानुसार वर्णित हैं—

1. **भार्गी-नागर योग** (चरक)— भारंगी एवं नागर का कल्क बनाकर गर्म जल से पान करें।
2. श्वास रोग में गुड़ एवं सरसों का तैल समभाग मिलाकर 3 सप्ताह तक प्रयोग करने से शीघ्र लाभ मिलता है। (चक्रदत्त)
3. विभीतक चूर्ण 10 ग्राम, प्रचुर मात्रा में शहद मिलाकर चाटने से शीघ्र लाभ मिलता है।
4. **रसौषधि/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	:	125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	शहद
(i) श्वासकुठार रस	:	पारद, गंधक, विष, टंकण, मन:शिला एवं त्रिकटु।
(ii) कफकेतु रस	:	वत्सनाभ, पिप्पली, शंख भस्म एवं टंकण।
(iii) महालक्ष्मी विलास रस	:	पारद, गंधक, हरताल, अभ्रक, वंगभस्म, ताम्र भस्म आदि।
(iv) श्वासकासचिन्तामणि रस	:	पारद, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्ण, मुक्ता, गंधक, अभ्रक, लौह।
(v) नागार्जुनाभ्र रस	:	अभ्रक एवं अर्जुन।
(vi) मल्ल सिन्दूर	:	संखिया, पारद एवं गंधक।
(vii) अभ्रक भस्म	:	अभ्रक
(viii) कफ कुठार रस	:	पारद गंधक, लौह भस्म, ताम्र भस्म एवं त्रिकटु।
(ix) बसन्त मालती रस	:	स्वर्ण, मुक्ता, खर्पर, मरिच।
(x) शंख भस्म	:	शंख।
(xi) टंकण भस्म (बालसुधा)	:	टंकण (सुहागा)
(xii) मुक्ता पिष्टी	:	मुक्ता

5. **वटी (आभ्यान्तर प्रयोगार्थ / चूषणार्थ)**

मात्रा	:	250 500 मि.ग्रा. (4-6 बटी)
अनुपान	:	ऊष्णोदक
(i) विजय वटी	:	पारद, गंधक, लौह भस्म, वत्सनाभ, अभ्रक, त्रिफला, त्रिकटु।

(ii) मरिच्यादि वटी : मरिच, शुण्ठी, पिप्पली।
(iii) व्योषादि वटी : त्रिकटु (सौंठ, मरिच, पिप्पली, गुड़)
(iv) लवंगाादि वटी : लवंग, मरिच, विभीतक, दालचीनी, बबूल क्वाथ।

6. **चूर्ण**
मात्रा : 3-6 ग्राम
अनुपान : शहद/ऊष्णोदक
(i) श्रृग्यांदि चूर्ण : कर्कट श्रृंगी, कूठ, त्रिकटु, त्रिफला, भार्गी, पुष्कर मूल आदि।
(ii) शट्यादि चूर्ण : शटी, पुष्कर मूल, त्रिकटु।
(iii) मुक्ताद्यचूर्ण : मुक्ता, प्रवाल, वैदूर्य, शंख भस्म आदि।
(iv) कुष्माण्ड चूर्ण : शुष्क कुष्माण्ड।
(v) सोम चूर्ण : सोम

7. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**
मात्रा : 20-30 मि.ली.
अनुपान : समभाग जल
(i) दशमूल क्वाथ : लघु एवं बृहत पंचमूल।
(ii) भारङ्ग्यादि क्वाथ : भार्गी, पुष्कर मूल।
(iii) भांरगी-नागर क्वाथ : भार्गी एवं सोंठ।
(iv) शिरीष क्वाथ : शिरीष त्वक्।
(v) देवदार्वादि क्वाथ : देवदारु, शटी, कूठ, कंटकारी।
(vi) वासादि क्वाथ : अड़ूसा, हल्दी, धनिया, गुडुची, त्रिकटु एवं कंटकारी।
(vii) पाठाद्यासव : पाठा, मूर्वा, रास्ना।
(viii) कनकासव : धत्तूर, पुष्करमूल, कंटकारी, त्रिकटु आदि।
(ix) सोमासव : सोम

8. **घृत/तैल (आभ्यांतर प्रयोगार्थ)**
मात्रा : 10-20 मि.ली.
अनुपान : ऊष्ण जल, दुग्ध
(i) मन:शिलादि घृत : मन:शिला, राल, लाक्षा, हरिद्रा, हरताल, मंजीठ।
(ii) तेजोवत्यादि घृत : तेजोवती, हरड़, कूठ, पीपर, कुटकी, पुष्करमूल आदि।

(iii) दशमूलादि घृत : दशमूल, पीपर, सोंठ, यवक्षार, ब्राम्ही, हींग आदि।

(iv) चन्दनाद्य तैल : श्वेत एवं रक्तचन्दन, तगर देवदारु आदि।

9. अवलेह/पाक

मात्रा : 20 ग्राम

अनुपान : दुग्ध

(i) हरिद्रा खण्ड : हरिद्रा, त्रिफला, त्रिकटु, लौह भस्म, शर्करा, गोघृत।

(ii) भारंगी शर्करा : भारंगी, वासा पंचाग, कंटकारी पंचाग।

(iii) भार्गी गुड़ : भारंगी, दशमूल, हरड़

(iv) चित्रक हरीतकी : चित्रक, हरड़, आंवला, गुडूची, दशमूल।

(v) व्याघ्री हरीतकी : कण्टकारी, हरड़, त्रिकटु, चतुर्जात आदि।

10. रसायन

मात्रा : 20 ग्राम

अनुपान : दूध

(i) च्यवनप्राश रसायन : दशमूल, आमलकी, कूठ, पुष्कर मूल आदि।

11. एकल औषधियां

(1) अर्क (2) धत्तूर मूल

(3) मल्ल (4) अभ्रक

(5) पिप्पली (6) कूठ

(7) हरिद्रा (8) भारंगी

(9) वासा (10) कृष्ण मरिच

(11) पुष्करमूल (12) शटी

(13) एला (14) सुरसा

(15) आमलकी आदि

एकल श्वासहर औषधियाँ है जिनका प्रयोग प्राय: श्वास रोग की चिकित्सा में किया जाता है।

Eosinophilia में घृत भृष्ट हरिद्रा 3 ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार उष्ण जल से देने से लाभ मिलता है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
2. संशोधन चिकित्सा-वमन कर्म

3. संशमन चिकित्सा

(i)	प्रातः	: सांयम्
	श्वासकुठार रस	: 250 मि.ग्रा.
	टंकण	: 250 मि.ग्रा.
	तालिसादि चूर्ण	: 2 ग्राम
	मधु से	: 1×3 मात्रा
(ii)	भोजनोत्तर	
	कनकासव	: 20 मि.ली.,
	समभाग जल से	: 1×2 मात्रा
(iii)	चूषणार्थ -मरिच्यादि वटी	: 4-6 बटी, दिनभर में
(iv)	हरिद्राखण्ड	: 10-20 ग्राम
	दूध से	: 1×2 मात्रा
(v)	रात्रि, पंचसकार चूर्ण	: 3 ग्राम
	गर्म जल	: एक मात्रा
(vi)	योगाभ्यास	: प्राणायाम
(vii)	पथ्य सेवन	

पथ्यापथ्य

पथ्य

आहार	विहार
साठी चावल, कुलत्थ, गेहूँ, जौ, बकरी का दूध, पुराण घृत, जांगल पशु पक्षियों का मांस रस, मदिरा, शहद, बथुआ, चौलाई, लहसुन,हरड़, परवल, त्रिकटु, गोमूत्र, गर्म जल, जीवन्ती शाक, बिजौरा, नींबू आदि।	विरेचन, वमन, धूमपान, स्वेदन, दिवास्वप्न आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
भैंस का दूध, घृत, दही, कन्द के साग, सरसों, मछली, शीतल जल, उड़द, भिण्डी, मक्का, बेसन, अरबी, आलू आदि कफकारक द्रव्य।	शीत, ओस, वर्षा, काम, मैथुन, भारवहन, अध्वगमन, मूत्र, डकार, वमन, तृषा के वेगों का धारण करना, नस्य, वस्ति, अतिगमन आदि।

श्वास रोग में योग चिकित्सा

श्वास रोग के रोगी को मुख्यत: शवासन तथा प्राणायाम में कुम्भक एवं रेचक का अभ्यास करना चाहिये।

Latest Developments

BRONCHIAL ASTHMA

Bronchial Asthma is a chronic, intermittent, inflammatory disease of the airways characterised by episodes of wheezing, coughing, breathlessness & chest tightness. It is usually reversible but can be severe and occasionally fatal. There is expiratory dyspnoea.

श्वास रोग वर्तमान समय में एक प्रमुख समस्या है। 5–10% जनसंख्या इससे प्रभावित है तथा यह रोग किसी भी age group में हो सकता है। इसके Precipitating factors निम्न हैं—

1. शीतल वायु (Cold air)
2. धुंआ (Smoke)
3. व्यायाम (Exercise)
4. आवेग (Emotions)
5. संक्रमण (Infection)
6. परागकण (Pollens)
7. ग्रहधूल (Hosue dust)
8. निद्रा (Sleep)
9. Gastro esophageal reflex

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार Bronchial asthma (श्वास रोग) के मुख्य तीन कारण हैं—

1. **श्वास केंद्र की विकृति**
2. **श्वास मार्ग में किसी प्रकार के अवरोध** हो जाने पर वायु संचरण मार्ग संकीर्ण हो जाने से श्वास कृच्छ्रता की स्थिति उत्पन्न होती है। Tonsilitis, Diptheria, Pulmonary Tuberculosis एवं Pneumonia इसके मुख्य कारण हैं।
3. **श्वास क्रिया में सहायक पेशियों के कार्य में किसी प्रकार की बाधा** उत्पन्न होने से भी श्वास कृच्छ्रता होती है।

Signs/Symptoms

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में Bronchial asthma के निम्न लक्षण वर्णित हैं—

1. Episodic or Chronic Wheezing
2. Dyspnoea (श्वास कृच्छ्रता)
3. Cough (कास)
4. Tightness in the chest (छाती में भारीपन)

श्वास का attack प्रात:काल में अधिकांशत: देखने को मिलता है और इसके पूर्वरूप के रूप में मनोवसाद, छीकें आना या नाक से पानी बहना आदि लक्षण होते हैं। रोगी अचानक ही दम घुटने के कारण सोने से जाग जाता है एवं श्वास कृच्छ्रता बढ़ने से रोगी उठकर बैठ जाता है।

Management : Principles

(a) Prevention

1) The current approach to treatment of Asthma emphasises 'Prevention' with avoidance of allergens wherever possoble and chronic use of anti inflammatory drugs including cortico-steroids.
2) Inhalation of steroids are the cornerstones in the management of persistent moderate & severe types of Asthama today.
3) Acute episodes, as in the earlier times, get treated with bronchodialators, corticosteroids, anticholinergics and oxygen therepy, as needed.
4) In acute airways obstruction & chronic daily wheez, nebulisers may be used.

(b) Councelling of Patient

1) Avoid ice drinks, spicy foods & cold immersions.
2) Keep living & bed room as dust free as possible.
3) Avoid exernous exercises.
4) Avoid allergens like dust, smoke, emotional upsets & special foods.
5) Breathing exercises, especially Yoga-Meditation.
6) Avoid aspirin, tartrazine & preservatives.
7) Drink plenty of fluids & avoid dehydration.

अध्याय-3

कास रोग
(COUGHS)

व्याधि परिचय

हिक्का, कास एवं श्वास रोग एक ही कारण से उत्पन्न होते हैं परन्तु इनकी सम्प्राप्ति भिन्न है। कण्ठ में रहने वाली उदान वायु की विकृति के रूप में कास रोग उत्पन्न होता है। जब प्राण वायु भी उदान वायु के साथ मिलकर कण्ठ से वेग के साथ बाहर निकलती है तब कुशब्द के साथ कास उत्पन्न होती है। जब कास स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होती है तब उसे कास रोग (व्याधि) कहते हैं तथा परतन्त्र रूप में कास अनेक व्याधियों के एक लक्षण के रूप में भी मिलती है। कास अनेक व्याधियों का निदानार्थकर रोग होता है। यथा प्रतिश्याय अधिक बढ़कर कास एवं कास अधिक बढ़कर क्षय (राजयक्ष्मा) उत्पन्न करती है[1]।

निरुक्ति[2]

i) "कस-गतौ इत्यस्मात् कसनात् कासः।"

ii) "कसनात् कासः"

जिस रोग में वायु शिरस्थ स्त्रोतसों में गतिशील होकर बाहर निकलती है उसे 'कास' कहते हैं। यह शुष्क (Dry) एवं सकफ (Productive) दो प्रकार की होती है[3]।

श्वास प्रणाली स्थित विजातीय पदार्थ को निकालने के लिये कुपित वायु की चेष्टा 'कास' के रूप में सामने आती है। इसमें वायु शिर प्रदेश तक गमन करती है एवं इसका मूल कण्ठ होता है।

---

1. "दिवास्वप्नादिदोषैश्च प्रतिश्यायश्च जायते। प्रतिश्यायादभवेत् कासः कासात् संजायते क्षयः॥" (चक्रदत्त)
2. "कसति शिरः कण्ठादूर्ध्वं गच्छति वायुरिति कासः।" (च.चि. 18)
3. "शुष्को वा सकफो वाऽपि कसनात् कास उच्यते।" (च.चि 18/8)

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक सहिता चिकित्सा स्थान : अध्याय 18
2. सुश्रुत संहिता उत्तर तंत्र : अध्याय 52
3. अष्टांग हृदय चिकित्सा स्थान : अध्याय 3
4. माधव निदान-प्रथम खण्ड : अध्याय 11
5. भाव प्रकाश : अध्याय 14

निदान

आचार्य चरक ने कास के पांचों भेदों के पृथक-पृथक निदान वर्णित किये हैं तथा आचार्य सुश्रुत ने कास के केवल सामान्य निदानों का वर्णन किया है। अत: आचार्य सुश्रुत द्वारा वर्णित निदानों को कास के सामान्य निदान व आचार्य चरक द्वारा वर्णित निदानों को कास के विशिष्ट निदान की श्रेणी में रख सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं—

(i) **सामान्य निदान**[1]

(1) धूल, धूम, रज आदि
(2) व्यायाम
(3) रुक्षान्न सेवन
(4) भोजन का विमार्ग गमन
(5) क्षवधु (छींक) का वेग धारण

(ii) **विशिष्ट निदान**—आचार्य चरक द्वारा वर्णित विभिन्न दोषज कासों के विशिष्ट निदान निम्न प्रकार हैं—

1. **वातिक कास के निदान**[2]

आहारज

i) रुक्ष-शीत-कषाय द्रव्याति सेवन।
ii) अल्प भोजन (प्रमिताशन)

विहारज

i) उपवास
ii) अतिमैथुन
iii) वेगविधारण
iv) अतिश्रम

---

1. "धूमोपघातादृजसस्तथैव व्यायामरुक्षान्ननिषेवणाच्च।
विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव॥" (सु.उ.त. 52/4)
2. "रुक्षशीतकषायाल्पप्रमिताशनं स्त्रियाः। वेगधारणमायासो वातकासप्रवर्तकाः॥"
(च.चि. 18/10)

2. **पैत्तिक कास के निदान**[1]

आहारज

i) कटु-ऊष्ण-तीक्ष्ण, विदाही, अम्ल व क्षारीय पदार्थों का अतिसेवन

विहारज

i) अग्नि व सूर्य का ताप सेवन ii) क्रोध

3. **कफज कास के निदान**[2]

आहारज

i) गुरु-अभिष्यन्दि मधुर एवं स्निग्ध द्रव्यों का अति सेवन।

विहारज

i) निद्रा ii) अति विश्राम

4. **क्षतज कास के निदान**[3]

आहारज

i) रुक्षान्न व अल्प अन्न सेवन

विहारज

i) अतिमैथुन ii) अतिभार वहन

iii) अधिक रास्ता चलना iv) अतियुद्ध

v) अपने से अधिक शक्तिशाली से लड़ना

इन कारणों से रुक्ष शरीर वाले व्यक्ति के उर:प्रदेश में क्षत हो जाता है एवं क्षतस्थान पर वायु प्रवेश कर क्षतज कास उत्पन्न करती है।

5. **क्षयज कास के निदान**[4]

आहारज

i) विषम एवं असात्म्य भोजन ii) प्रकृति विरुद्ध भोजन

विहारज

i) अतिमैथुन ii) मलमूत्र वेग धारण

iii) सदैव चिन्ता करना

इन कारणों से जठराग्नि विकृत हो जाती है व तीनों दोष प्रकुपित होकर शरीर को नष्ट करने वाली क्षयज कास उत्पन्न करते हैं।

---

1. "कटुकोष्णविदाह्यम्लक्षाराणामतिसेवनम्। पित्तकासकरं क्रोध: संतापश्चाग्निसूर्यज: ॥" (च.चि. 18/14)
2. "गुर्वभिष्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नाविचेष्टनै:। वृद्धाश्लेष्माऽनिलं रुद्ध्वा कफकासं करोति हि ॥" (च.चि. 18/17)
3. "अतिव्यवायभाराध्वरुद्धाश्वगजविग्रहै:। रुक्षस्योर: क्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥" (च.चि. 18/20)
4. "विषमासात्म्य भोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात्। घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयोमला: ॥ कुपिता: क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥" (च.चि. 18/24-25)

सम्प्राप्ति—कास मुख्यत: वात प्रधान व्याधि है परन्तु इसमें कफानुबंध अवश्य होता है। इस धातु की दुष्टि से मलभूत कफ अधिक बनता है जो संगात्मक विकृति उत्पन्न करके आद्र कास को पैदा करता है। कास रोग में प्राणवह स्रोतस में शोथात्मक विकृति हो सकती है, एवं शोथ रस प्रदोषज विकार है एवं रस का मल कफ है। अत: कास रोग में वात के साथ कफ दोष का अनुबंध भी होता ही है। आचार्य सुश्रुत के मतानुसार स्वनिदानों से प्रकुपित प्राणवायु उदानानुगत होकर अर्थात् उदान वायु के साथ मिलकर वेग के साथ टूटे कांसे के वर्तन के समान आवाज करता हुआ मुख से बाहर निकलता है तब कास रोग उत्पन्न होता है[1]।

आचार्य चरक ने कास की अधिक स्पष्ट सम्प्राप्ति का वर्णन किया है। उनके अनुसार नीचे से अवरुद्ध या ऊपर की ओर धकेला गया प्राण वायु ऊर्ध्व स्रोत में जाकर उदान वायु से मिलकर शिर स्थित सभी स्रोतसों को पूरित करते हुये हनु, मन्या, नेत्र, पृष्ठ, उर एवं पार्श्व को पीड़ित करते हुये शुष्क या सकफ कास को उत्पन्न करता है।[2]

विशिष्ट सम्प्राप्ति

कास रोग की विशिष्ट सम्प्राप्ति चक्र को निम्न रूप में प्रदर्शित किया गया है—

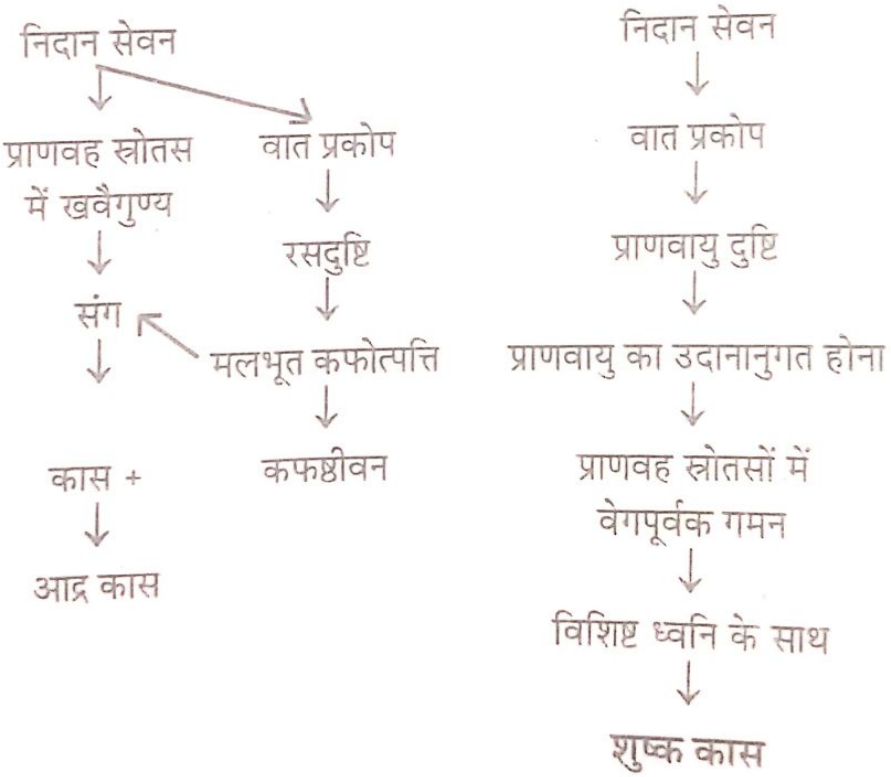

---

1. "प्राणोह्युदानानुगत: प्रदुष्ट: संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोष:।
निरेति वक्त्रात् सहसा सदोष: कास: स विद्वद्भिरुदाहृतस्तु॥" (सु.उ.त. 52/5)
2. "अध: प्रतिहतो वायुरुर्ध्वस्रोत:समाश्रित:। उदानभावमापन्न: कण्ठे सक्तस्तथोरसि।
आविश्य शिरस: खानि सर्वाणि प्रतिपूरयन्। आभञ्जनाक्षिपन् देहं हनुमन्ये तथाऽक्षिणी॥
नेत्रे पृष्ठमुर:पार्श्वे निर्भुज्य स्तम्भयंस्तत:। शुष्को वा सकफो वाऽपि कसनात् कास उच्यते॥"
(च.चि. 18/6-8)

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वात+कफ
दूष्य	:	रस, स्वर, अन्न
स्रोतस	:	रसवह एवं प्राणवह स्रोतस
स्रोतोदुष्टि लक्षण	:	संग
अधिष्ठान	:	आम-पक्वाशयोत्थ व्याधि, प्राणवह स्रोतस, उर:कण्ठ
स्वभाव	:	आशुकारी
साध्यासाध्यता	:	नवीनसाध्य, जीर्ण कृच्छ्रसाध्य
अग्निदुष्टि	:	अग्निमांद्य

भेद[1]

आचार्यों ने कास के पांच प्रकार बताये हैं, यथा—

1. वातिक कास
2. पैत्तिक कास
3. कफज कास
4. क्षतज कास
5. क्षयज कास

ये पांचों प्रकार के कास उत्तरोत्तर बलवान होते हैं एवं उपेक्षा करने पर क्षयज कास में परिवर्तित हो जाते हैं। 'मधुकोशकार' ने 'जराकास' का वर्णन कर उस का दोषज कास में ही अन्तर्भाव कर लिया है।

पूर्वरूप

संहिता ग्रंथों में कास रोग के पूर्वरूपों का स्पष्टत: वर्णन उपलब्ध है।

आचार्य चरकानुसार कास रोग के पूर्वरूप निम्न प्रकार हैं[2]—

1. मुख एवं गले में शूक भर जाने की प्रतीति।
2. कण्ठ में कण्डू
3. भोजन का गले में अटकना।

आचार्य सुश्रुत ने कास रोग के निम्न पूर्वरूप वर्णित किये हैं[3]—

1. कण्ठ कण्डू
2. भोजन में अवरोध
3. गलतालु लेप
4. अरोचक
5. अग्निसाद
6. स्वशब्द वैषम्य आदि

---

1. "पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः। क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम्॥" (अ.हृ.नि. 3/17)
2. "पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता। कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते॥" च.चि. 18/5
3. "भविष्यतस्तस्य तु कण्ठकण्डूर्भोज्योपरोधो गलतालुलेपः।
स्वशब्दवैषम्यमरोचकोऽग्निसादश्च लिङ्गानि भवन्त्यमूनि॥" (सु.उ.त. 52/7)

कास रोग के भेदानुसार लक्षण

आचार्य चरक ने कास रोग के विभिन्न भेदों के पृथक्-पृथक् लक्षण निम्न प्रकार वर्णित किये हैं—

1. वातिक कास के लक्षण[1]

1. हृद प्रदेश, पार्श्व, वक्ष प्रदेश एवं शिर में शूल (Chest pain, costal pain & headache)
2. मुख की कांतिहीनता (Loss of lusture)
3. शारीरिक बल, स्वर एवं ओज का क्षय (Loss of natural strength of body & hoarseness of voice)
4. कास का निरंतर वेग (Continuous bouts of cough)
5. स्वर भेद (Hoarseness of voice)
6. शुष्क कास (Dry cough)
7. अन्नपाक होने पर कास में वृद्धि (Cough increases after digestion of food)

इन लक्षणों को देखते हुए वातिक कास की तुलना Whooping Cough तथा Tropical Eosinophilia रोग में उत्पन्न शुष्क कास (dry cough) से की जा सकती है।

2. पैत्तिक कास के लक्षण[2]

1. उरोदाह (Burning in chest)
2. मुखशोष (Dryness of mouth)
3. मुख का स्वाद तिक्त होना (Bitter taste of mouth)
4. तृष्णा (Polydypsia)
5. भ्रम (Vertigo)
6. पाण्डु (Anaemia)
7. 3. रूचि (Anorexia)
8. कटु रस एवं पीले रंग की दाह युक्त छर्दि (Vomiting & burning sensation)

---

1. "ह्रत्पार्श्ववोरःशिरःशूलस्वरभेदकरो भृशम्। शुष्कोरःकण्ठवक्त्रस्य हृष्टलोम्नः प्रताम्यतः॥ शुष्ककासः कफं शुष्कं कृच्छ्रान मुक्त्वाऽल्पतां व्रजेत॥ ऊर्ध्ववातस्यजीर्णेऽन्ने वेगवान्मारुतो भवेत्॥" (च.चि. 18/11-13)
2. "पीतनिष्ठीवनाक्षित्वं तिक्तास्यत्वं स्वरामयः। उरोधूमायनं तृष्णा मोहोऽरूचिर्भमः॥ श्लेष्माणं पित्तसंसृष्ट निष्ठीवति च पैत्तिके॥" (च.चि. 18/15-16)

आचार्य सुश्रुत ने इन लक्षणों के अतिरिक्त ज्वर (Fever) का भी पैत्तिक कास के लक्षणों में वर्णन किया है।

इन लक्षणों के आधार पर पैत्तिक कास की तुलना जीर्ण ज्वरों में पाये जाने वाले कास से कर सकते हैं।

3. कफज कास के लक्षण[1]

1. मुख का कफ से लिप्त रहना
2. अरूचि (Anorexia)
3. मंदाग्नि (Indigestion)
4. पीनस (Coryza)
5. उत्क्लेश व वमन (Nausea & vomiting)
6. शरीर में गुरूता (Heaviness in body)
7. स्निग्ध एवं गाढ़ा कफ अधिक मात्रा में निकलता है (Secretion of excessive sticky mucous)
8. बिना वेदना के कास प्रवृत्ति (Cough without pain)
9. कफ पूरित वक्ष होने की अनुभूति

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर कफज कास की तुलना Bronchitis में होने वाले आद्र कास (Productive Cough) से की जा सकती है।

4. क्षतज कास के लक्षण[2]

आचार्य चरक ने क्षतज कास के निम्न लक्षण वर्णित किये हैं—

1. प्रारंभ में शुष्क कास पश्चात् रक्त ष्ठीवन (Initially dry cough then haemoptysis)
2. कण्ठ शूल एवं उर: शूल (Pain in throat and chest)
3. उर में सुई चुभने सी पीड़ा (Pricking sensation in chest)
4. ज्वर (Fever)
5. श्वास (Dyspoena)

---

1. "मन्दाग्नित्वारूचिच्छर्दिपीनसोत्क्लेगौरवै:। लोमहर्षास्यमाधुर्यक्लेदसंसदनैर्युतम्॥
बहुलं मधुरं स्निग्धं निष्ठीवति घनं कफम्। कासमानो ह्यरूग् वक्षः सम्पूर्णमिवमन्यते॥"
(च.चि. 18/18-19)

2. "स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम्। कण्ठेन रुजतात्यर्थं विरुग्णेनेव चोरसा॥
सूचीभिखि तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना। दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीड़ाभितापिना॥
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य पीड़ितः। पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतोद्भवात्॥"
(च.चि. 18/21-23)

6. तृष्णा (Polydypsia)
7. पारावत् कूजन
8. स्वरभेद (Hoarseness of voice)
9. पर्व भेद (Joint pain)

क्षतज कास उर:क्षत का ही लक्षण है। इसकी तुलना (Bronchiectesis and Emphysema) से कर सकते हैं। इसमें क्षत की प्रवृत्ति होती ही है।

5. **क्षयज कास के लक्षण**[1]

क्षयज कास के निम्न लक्षण संहिता ग्रंथों में वर्णित हैं—

1. गात्रशूल (Bodyache)
2. अधिक भोजन करने पर भी कृशता (Loss of Body weight /Cachexia)
3. मुख, वर्ण एवं त्वचा स्निग्ध एवं स्वच्छ हो जाती है (Clear & Shiny skin of face-pallor face)
4. नेत्र कांति युक्त (Increased shining of eyes)
5. पसलियों में पीड़ा (Pain in ribs)
6. पीनस (Rhinitis)
7. अरुचि (Anorexia)
8. कभी पतले/कभी गाढ़े मल की प्रवृत्ति (Irregular bowel habits)
9. मानसिक अस्थिरता (Mental Confusion)
10. सपूय एवं सरक्त दुर्गन्धित कफ ष्ठीवन (Purulent blood mixed Sputum expectoration)

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर इसकी तुलना Pulmonary Tuberculosis से की जा सकती है। परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से राजयक्ष्मा एवं क्षयज कास भिन्न हैं।

सापेक्ष निदान

कास के विभिन्न भेदों, उरक्षत, राजयक्ष्मा एवं शोष रोग में सापेक्ष निदान अत्यावश्यक है क्योंकि इनके लक्षणों में काफी साम्य होता है। निम्न तालिका में इनके विभेदक लक्षण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

---

1. "दुर्गन्धं हरितं रक्तं ष्ठीवेत् पूयोपमं कफज्। अकस्मादुष्णशीतार्तो बह्वाशी दुर्बलः कृशः॥
स्निग्धाच्छमुखवर्णत्वक् श्रीमद्दर्शनलोचनः। पाणिपादतलैः श्लक्ष्णैः सततासूयको घृणी॥
ज्वरोमिश्राकृतिस्तस्य पार्श्वरुक् पीनसोऽरुचिः॥"
(च.चि. 18/25–28)

व्याधि नाम	कास की विशेषता	प्रमुख सार्वदेहिक लक्षण	ष्ठीवन प्रकृति	आधुनिक साम्य
वातज कास	प्रसक्त	शूल	शुष्क	Whooping Cough
पित्तज कास	सदाह	ज्वर	पीत	Acute Bronchitis
कफज कास	सकफ	गौरव	सान्द्र, मधुर	Ch. Bronchitis
क्षतज कास	सशूल	शूल	सरक्त	Bronchiectesis
क्षयज कास	जीर्ण	क्षय	सपूय	Tuberculosis
उर:क्षत	सकफ	क्षय	दुष्ट, बहुमात्रा	Bronchiectasis
राजयक्ष्मा	सकफ	ज्वर	सरक्त	Tuberculosis
शोष	किञ्चित्	शोष	–	Consumption

साध्यासाध्यता[1]

1. वातज, पित्तज एवं कफज कास साध्य बताए गए हैं।
2. क्षतज एवं क्षयजकास अपने पूर्ण लक्षणों के साथ उपस्थित होने पर क्षीण व्यक्ति में असाध्य होते हैं परन्तु बलवान रोगी में कभी-कभी याप्य होते हैं।
3. वृद्धावस्था में समस्त कास कृच्छ्रसाध्य होते हैं।

चिकित्सा सिद्धान्त[2]

1. **निदान परिवर्जन**—किसी भी रोग की चिकित्सा का प्रथम सूत्र निदान परिवर्जन है रोगोत्पादक कारणों का त्याग ही निदान परिवर्जन होता है।
2. आचार्य चरक ने दोषानुसार कास के भेदों के पृथक्-पृथक् चिकित्सा सिद्धान्तों का उल्लेख किया है जो निम्न हैं—

1. **वातिक कास का चिकित्सा सिद्धान्त**

i) सर्वप्रथम रोगी का स्नेहन कराना चाहिये। स्नेहनार्थ वातशामक द्रव्यों से

---

1. "साध्यो बलवतां वा स्याद् याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थित:। नवौ कदाचित् सिध्येतामेतौ पादगुणान्वितौ॥ स्थविराणां जराकास: सर्वो याप्य: प्रकीर्तित:। त्रीन्साध्यान्साधयेत्पूर्वान् पञ्चैर्याप्यांश्च यापयेत्॥" (च.चि. 18/29-31)
2. "रूक्षस्यानिलजं कासमादौ स्नेहैरुपाचरेत्। सर्पिर्भिर्वस्तिभि: पेयायूषक्षीररसादिभि:॥ वातघ्नसिद्धै: स्नेहाद्यैधूमैर्लेहैश्च युक्तित:। अभ्यङ्गै परिषैकश्च स्निग्धै: स्वेदैश्च बुद्धिमान्॥ वस्तिभिर्बद्धविड्वातं शुष्कोर्ध्वं चोर्ध्वभक्तिकै:। घृते: सपित्तं सकफं जयेत् स्नेहविरेचनै:॥" (च.चि. 18/32-34)

सिद्ध घृत, वस्ति, पेया, यूष, क्षीर मांसरस आदि स्नेहों से तथा धूम, अवलेह अभ्यंग, परिषेक द्वारा युक्ति पूर्वक रोगी का स्नेहन कराना चाहिये।

ii) सम्यक् स्नेहन पश्चात् रोगी का स्वेदन करायें।

iii) विबंध की स्थिति में अनुवासन वस्ति का प्रयोग तथा अपानवायु की विगुणता होने पर घृत पान कराना श्रेष्ठ है।

iv) वातिक कास में पैत्तिक अनुबंध हो तब स्नेह योगों से विरेचन कराना चाहिये।

2. **पैत्तिक कास का चिकित्सा सिद्धान्त**[1]

i) पैत्तिक कास में यदि कफानुबंध हो तो वामक द्रव्यों से सिद्ध घृत पिलाकर वमन कराना चाहिये।

ii) वमन पश्चात् शीत व मधुर द्रव्यों से युक्त पेया व विलेपी का सेवन कराना चाहिये।

iii) यदि कफानुबंध हीन मात्रा में हो या कफ पतला हो तब विरेचन कराना चाहिये। एवं स्निग्ध एवं शीतल आहार द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।

iv) यदि कफ गाढ़ा निकलता हो तब तिक्त द्रव्यों से सिद्ध त्रिवृत का सेवन कराना चाहिये तथा रुक्ष एवं शीतल आहार द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।

v) पैत्तिक कास में चीनी का शर्बत, मुनक्के का रस, ईख का रस, गोदुग्ध तथा अन्य मधुर एवं शीतल द्रव्यों का अनुपान के रूप में प्रयोग करना चाहिये[2]।

3. **कफज कास का चिकित्सा सिद्धान्त**

i) बलवान रोगी को सर्वप्रथम वमन कराना चाहिये। पश्चात् कफ नाशक जौ एवं कटु, रूक्ष, ऊष्ण अन्न का पथ्य देना चाहिये[3]।

ii) धूमपान का प्रयोग कराना चाहिये।

---

1. ''पैत्तिके सकफे कासे वमनं सर्पिषा हितम्। हृतदोषस्ततः शीतं मधुरं च क्रमं भजेत्॥
पैत्ते तनुकफे कासे त्रिवृतां मधुरैर्युताम्। दद्याद्धनकफे तिक्तैर्विरेकार्थे युतां भिषक्।
स्निग्धशीतस्तनुकफे रूक्षशीतः कफे घने। क्रमः कार्यः परं भोज्यैः स्नेहैर्लेहैश्च शस्यते॥''
(च.चि. 18/83-86)

2. ''शर्कराम्भोऽनुपानार्थं द्राक्षेक्षूणां रसाः पयः। सर्वं च मधुरं शीतमविदाहि प्रशस्यते॥''
(च.चि. 18/98)

3. ''बलिनं वमनैरादौ शोधितं कफकासिनम्। यवान्नैः कटुरुक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्युपाचरेत्॥''
(च.चि. 18/108)

iii) पित्त का अनुबंध हो व तमक श्वास हो तब अवस्थानुसार पैत्तिक कास की चिकित्सा करनी चाहिये।

iv) वातज कास में यदि कफानुबंध हो तो कफनाशक चिकित्सा करनी चाहिये तथा वात-कफ जन्य कास में पित्त का अनुबंध हो तो पित्त नाशक चिकित्सा करनी चाहिये[1]।

v) वात-कफज कास यदि आद्र अर्थात् सकफ हों तो रूक्ष अन्न पान का प्रयोग करना चाहियेतथा यदि शुष्क कास हो तो स्निग्ध अन्नपान का प्रयोग करना चाहिये[2]।

4. **क्षतज कास का चिकित्सा सिद्धान्त[3]**

i) अत्यन्त हानिकारक मानकर शीघ्र ही मधुर व जीवनीय वर्ग के बल, मांसवर्धक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

ii) क्षतज कास से पीड़ित रोगियों की चिकित्सा पित्तज कास के समान करनी चाहिये[4]।

iii) क्षतज कास में रक्त स्राव होने पर दूध से निकाले गये घृत का पान कराना चाहिये[5]।

iv) यदि रोगी शान्त, क्षीण व दुर्बलाग्नि हो तो यवागू का सेवन कराना चाहिये[6]।

5. **क्षयज कास का चिकित्सा सिद्धान्त**

i) सर्वलक्षणों से युक्त क्षयज कास यदि दुर्बल रोगी को है तो चिकित्सा नहीं करनीा चाहिये व बलवान रोगी को नूतन क्षयज कास की प्रत्याख्यान कर चिकित्सा करनीा चाहिये[7]।

---

1. "वाते कफानुबन्धे तु कुर्यात् कफहरीं क्रियाम्। पित्तानुबंधयोर्वातकफयोः पित्तनाशिनीम्॥" (च.चि. 18/132)
2. "आर्द्रे विरुक्षणं शुष्के स्निग्धं वातकफात्मके। कासेऽन्नपानं कफजे सपित्ते तिक्तसंयुतम्॥" (च.चि. 18/133)
3. "कासमात्ययिकं मत्वा क्षतजं त्वरया जयेत्। मधुरैर्जीवनीयैश्च बलमांसविवर्धनैः॥" (च.चि. 18/134)
4. "क्षतकासाभिभूतानां वृत्ति स्यात् पित्तकासिकी।" (च.चि. 18/138)
5. "रक्ते स्रोतोभ्य आस्याद्वाऽप्यागते क्षीरजं घृतम्।" (च.चि. 18/142)
6. "नस्यं पानं यवागूनां श्रान्ते क्षामे हतानले॥" (च.चि. 18/142)
7. "संपूर्णरूपं क्षयजं दुर्बलस्य विर्वजयेत्। नवोत्थितं बलवतः प्रत्याख्यायाचरेत् क्रियाम्॥" (च.चि. 18/149)

ii) नूतज क्षयज कास में सर्वप्रथम वृहंण तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली औषधि देना चाहिये[1]।

iii) नूतन क्षयज कास का दुर्बल रोगी हो तो मृदु विरेचन द्रव्यों से सिद्ध घृत द्वारा विरेचन कराना चाहिये[2]।

iv) यदि क्षयज कास में पित्त कफ क्षीण व वात की प्रधानता हो तथा रसरक्तादि धातुयें भी क्षीण हों तब कर्कटश्रृंगी, दूध, बला व महाबला सिद्ध घृत का पान करायें[3]।

v) क्षयज कास के रोगी को दीपन, वृंहण एवं स्रोतोशोधन औषधियों का प्रयोग व्यत्यास क्रम से कराना चाहिये[4]।

vi) त्रिदोषज क्षयजकास में निरन्तर सन्निपात में हितकर औषधियों का प्रयोग हितकर है[5]।

चिकित्सा

विभिन्न प्रकार के कास की दोषानुसार चिकित्सा शास्त्र में निम्न प्रकार वर्णित है—

1. वातिक कास चिकित्सा

वातिक कास की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन व संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार है—

(I) संशोधन चिकित्सा

i) स्नेहन, स्वेदन। ii) विरेचन। iii) अनुवासन वस्ति एवं धूमपान।

(II) संशमन चिकित्सा

वातिक कास की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्न प्रकार है—

---

1. "तस्मै बृहंणमेवादौ कुर्यादग्नेश्च दीपनम्। बहुदोषाय सस्नेहं मृदु दद्याद्विरेचनम्॥" (च.चि. 18/150)
2. "सर्पिः सिद्धं पिबेद्युक्त्या क्षीणदेहो विशोधनम्॥" (च.चि. 18/152)
3. "पित्त कफे च संक्षीणे परिक्षीणेषु धातुषु। घृतं कर्कटकीक्षीरद्विबलासाधितं पिबेत्॥" (च.चि. 18/153)
4. "दीपनं बृहंण चैव स्रोतसां च विशोधनम्। व्यत्यासात्क्षयकासिभ्यो बल्यं सर्व हितं भवेत्॥" (च.चि. 18/187)
5. "सन्निपातभवोऽप्येष क्षयकासः सुदारुणः। सन्निपातहितं तस्मात् सदाकार्य भिषग्जितम्॥" (च.चि. 18/188)

1. रस/भस्म/पिष्टी

मात्रा	:	125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	शहद
(i) चन्द्रामृत रस	:	पारद, गंधक, लौह भस्म, टंकण, त्रिफला, त्रिकटु एवं चव्य।
(ii) कासान्तक रस	:	पारद, गंधक, वत्सनाभ, शालपर्णी, धनिया एवं मरिच।
(iii) पंचामृत रस	:	पारद, गंधक, ताम्र भस्म, वत्सनाभ, अभ्रक भस्म एवं काली मरिच।
(iv) लक्ष्मी विलास रस	:	पारद, हरताल, मन:शिला, वंगभस्म, खर्पर भस्म, ताम्र भस्म, लौह भस्म, कांस्य भस्म।
(v) प्रवाल भस्म	:	प्रवाल।
(vi) अभ्रक भस्म	:	अभ्रक।
(vii) लघुमालिनी वसंत	:	पारद, गंधक, स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म।

2. वटी (आभ्यान्तर प्रयोगार्थ/चूषणार्थ)

मात्रा	:	250 - 500 मि.ग्रा. (4-6 वटी)
अनुपान	:	ऊष्णोदक
(i) लवंगादिवटी	:	लवंग, मरिच, विभीतक, खदिर।
(ii) मरिच्यादि वटी	:	मरिच, पिप्पली, मिश्री, शुण्ठी।
(iii) व्योषादि वटी	:	त्रिकटु, मिश्री।
(iv) भागोत्तर गुटिका	:	पारद, गंधक, पिप्पली, हरड़, विभीतक, अडूसा।
(v) एलादि वटी	:	एला, वंग, मरिच, पिप्पली।
(vi) वासादि वटी	:	वासा, अफीम, अर्कमूल चूर्ण एवं कर्पूर।

3. चूर्ण

मात्रा	:	3 - 6 ग्राम
अनुपान	:	शहद/ऊष्णोदक
(i) श्रृंग्यादि चूर्ण	:	कर्कट श्रृंगी, अतीस, मुस्तक, सोंठ, मरिच, त्रिफला।

(ii) शट्यादि चूर्ण : शटी, पुष्करमूल, त्रिकटु।

(iii) सितोपलादि चूर्ण : सिता, वंशलोचन, पिप्पली, तुगाक्षीरी।

(iv) तालिसादि चूर्ण : तालीस, मरिच, शुण्ठी, पिप्पली, वंशलोचन, मिश्री।

(v) मरिचाद्य चूर्ण : मरिच, पिप्पली, दाड़िम बीज चूर्ण, गुड़।

(vi) समशर्कर चूर्ण : लवंग, जायफल, पीपल, मरिच सोंठ एवं मिश्री।

4. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**

मात्रा : 20 - 40 मि.ली.

अनुपान : जल+घृत

(i) पंचमूली क्वाथ : बृहत् पंचमूल।

(ii) कण्टकारी क्वाथ : कण्टकारी, पिप्पली।

(iii) गोजिह्वादि क्वाथ : गांजवा, बदिर फलमज्जा।

(iv) कनकासव : श्वास रोग में वर्णित है।

(v) दशमूल क्वाथ : बृहत् पंचमूल एवं लघु पंचमूल

5. **घृत**

मात्रा : 20 - 30 मि.ली.

अनुपान : ऊष्ण जल, दुग्ध

(i) कण्टकारी घृत : कण्टकारी, गुडुची, गोघृत।

(ii) पिप्पल्यादि घृत : पंचकोल, धनिया, पाठा, वच, रास्ना, मुलेठी, यवक्षार।

(iii) त्र्यूषणाद्य घृत : त्रिफला, त्रिकटु, मुनक्का, गम्भारी, ब्राम्ही, गोघृत।

(iv) रास्ना घृत : रास्ना, दशमूल, बेर, जौ, बकरे का मांस, गोघृत।

6. **पाक/अवलेह**

मात्रा : 10 - 20 ग्राम

अनुपान : दुग्ध/जल

(i) दुरालभादि लेह : दुरालभा, कचूर, मुनक्का, आद्रक एवं मिश्री।

(ii) दु:स्पर्शादि लेह : यवासा, पीपर, मुस्तक, भार्गी, कचूर।

(iii) बिडंगादि लेह : विडंग, सैंधव, कूठ, त्रिकटु, मन:शिला, हींग।

(iv) चित्रकादि लेह : पंचकोल, हींग, दुरालभा, कचूर, पुष्कर मूल।

(v) अगस्त्य हरीतकी : दशमूल, केवाच, शंखपुष्पी, हरड़, पुष्कर मूल, पिप्पली मूल, अपामार्ग।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रात: सांयम्

श्रृंगाराभ्र रस	:	250 मि.ग्रा.
यवक्षार	:	250 मि.ग्रा.
सितोपलादि चूर्ण	:	3 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

कण्टकारी घृत	:	10 मि.ली.
दुग्ध से	:	1x2 मात्रा
दशमूल क्वाथ	:	20 मि.ली.
समभाग जल से	:	1x2 मात्रा

(3) चूषणार्थ

लवंगादि वटी (आवश्यकतानुसार) : 4-6 गोली दिनभर में

(4) रात्रि

एरण्ड स्नेह	:	20 मि.ली.
दूध से	:	1 मात्रा
(5) धूमपान	:	मन:शिलादि धूम
(6) योगाभ्यास-प्राणायाम	:	दिन में दो बार

योग चिकित्सा

कास के रोगी को प्राणवह स्रोतस को बल देने वाली योग क्रियाओं यथा शवासन एवं प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

वातिक कास रोग में पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

साठी चावल, शालि चावल, गेंहू, जौ, बाजरा, मूंग, उड़द, कुलथी, हरिण, तीतर, मुर्गी का मांस, बथुआ, मकोय, मूली, मेथी, लौकी, गाजर आदि पथ्य अन्न हैं।

अपथ्य

मिष्ठान, दूध, दही, दिवास्वप्न, मैथुन, धूमपान आदि अपथ्य है।

2. पैत्तिक कास की चिकित्सा

शास्त्रों में पैत्तिक कास की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन एवं-संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार वर्णित है—

(I) संशोधन चिकित्सा

(i) वमन (कफानुबंध होने पर) (ii) विरेचन

(II) संशमन चिकित्सा

पैत्तिक कास की चिकित्सा में वर्णित विभिन्न शास्त्रीय योग निम्न प्रकार हैं—

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	:	125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	शहद/ऊष्ण जल
(i) श्रृंगाराभ्र रस	:	पारद, ग़ंधक, टंकण, कपूर, स्वर्ण, भस्म अभ्रक भस्म एवं चतुर्जात।
(ii) चन्द्रामृत रस	:	वातिक कास चिकित्सा में वर्णित।
(iii) बसन्त तिलक रस	:	स्वर्ण, अभ्रक, लौह, वंग भस्म, पारद, मुक्ता भस्म एवं प्रवाल भस्म।
(iv) लक्ष्मीविलास रस	:	वातिक कासोक्त।
(v) कफकेतु रस	:	टंकण, वत्सनाभ, पिप्पली एवं शंख भस्म।
(vi) सूत शेखर रस	:	हिक्का चिकित्सा में वर्णित।

2. **वटी**

मात्रा	:	250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान	:	ऊष्ण जल

वातिक कास चिकित्सा में प्रयुक्त समस्त वटी योगों का प्रयोग पैत्तिक कास चिकित्सा में भी किया जा सकता है।

3. चूर्ण

मात्रा : 3 - 6 ग्राम

अनुपान : शहद

वातिक कास चिकित्सा में कहे गये समस्त चूर्ण योगों का प्रयोग पैत्तिक कास चिकित्सा हेतु कर सकते हैं।

(i) शर्करा योग : मिश्री, सोंठ, नेत्रबाला, कचूर का चूर्ण।

4. क्वाथ/आसव-अरिष्ट

मात्रा : 20 - 30 मि.ली.

अनुपान : जल/घृत

(i) वासारिष्ट : वासा पंचाग, त्रिकटु, धातकी आदि।

(ii) गोजिह्वादि क्वाथ : वातिक कास चिकित्सोक्त।

(iii) कनकासव : वातिक कास चिकित्सोक्त।

5. घृत

मात्रा : 10 - 20 मि.ली.

अनुपान : ऊष्ण जल

वातिक कास चिकित्सा में वर्णित घृत योगों का प्रयोग सफलता पूर्वक कर सकते हैं।

6. पाक/अवलेह

मात्रा : 10 - 20 ग्राम

अनुपान : दुग्ध

आचार्य चरक ने विभिन्न क्षीरपाकों का प्रयोग पैत्तिक कास की चिकित्सा हेतु वर्णित किया है, इनमें से प्रमुख यहां वर्णित हैं—

(i) काकोली, बड़ी कटेरी, मेदा, महामेदा, अड़ूसा एवं सोंठ से सिद्ध क्षीरपाक।

(ii) शरादिक्षीरपाक : शरादि पंचमूल, पीपर एवं मुनक्का से सिद्ध क्षीर।

(iii) व्याघ्री हरीतकी : कण्टकारी, हरीतकी, गुड़।

(iv) त्वगादि लेह : दालचीनी, एला, सोंठ, मरिच पिप्पली, पिप्पली मूल एवं पुष्कर मूल।

(v) द्राक्षामलकादि लेह : द्राक्षा, आमलकी, खर्जूर।

(vi) खर्जूरादि लेह : खर्जूर, आमलकी, हरीतकी।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1)		प्रातः सायम्	
	समशर्कर लौह	:	500 मि.ग्रा.
	प्रवाल पिष्टी	:	250 मि.ग्रा.
	सितोपलादि चूर्ण	:	3 ग्राम
	शहद से	:	1x2 मात्रा
(2)	भोजनोत्तर		
	वासारिष्ट	:	20 मि.ली.
	समभाग जल से	:	1x2 मात्रा
(3)	चूषणार्थ		
	लवंगादि वटी	:	5 - 6 वटी दिनभर में
(4)	रात्रि		
	हरीतक्यादि चूर्ण	:	3 ग्राम
	ऊष्णोदक से	:	1 मात्रा

(5) योगाभ्यास-प्राणायाम

पथ्य

मधुर द्रव्य, जांगल पशुपक्षियों का मांस, मुद्ग, तिक्तशाक, यव, कोद्रव, सांवा आदि आहार प्रशस्त हैं।

अनुपानार्थ

चीनी का शर्बत, द्राक्षारस, इक्षु रस, गन्ने का रस, गोदुग्ध व शीत द्रव्यों का प्रयोग अनुपान के रूप में श्रेष्ठ है[1]।

3. कफज कास की चिकित्सा

कफज कास की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्नानुसार वर्णित है—

(I) संशोधन चिकित्सा

i) वमन
ii) विरेचन
iii) नस्य
iv) धूमपान

---

1. "शर्कराऽभ्योऽनुपानार्थं द्राक्षेक्षूणां रसाः पथः।
सर्वं च मधुरं शीतमविदाही प्रशस्यते॥" (च.चि. 18/98)

(II) संशमन चिकित्सा

कफज कास की चिकित्सा में विभिन्न संशमन योगों का युक्ति पूर्वक प्रयोग करने से वान्छित परिणाम प्राप्त होते हैं—

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	:	120 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	शहद/ऊष्ण जल
(i) आनन्द भैरव रस	:	हिंगुल, वत्सनाभ, त्रिकटु, टंकण, गंधक।
(ii) रस सिन्दूर	:	पारद एवं गंधक
(iii) कफकुठार रस	:	पारद, गंधक, ताम्र भस्म, लौह भस्म एवं त्रिकटु।
(iv) टंकण भस्म	:	टंकण।
(v) श्रृंग भस्म	:	मृग श्रृंग।
(vi) शुभ्रा भस्म	:	फिटकरी।
(vii) अभ्रक भस्म	:	अभ्रक।
(viii) नागबल्लभ रस	:	पारद, गंधक, मन:शिला, अभ्रक एवं काष्ठौषधियाँ।

2. **वटी**

मात्रा	:	250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान	:	ऊष्णोदक

वातिक कास चिकित्सा में प्रयुक्त समस्त वटी योगों का प्रयोग कफज कास की चिकित्सा हेतु किया जा सकता है।

3. **चूर्ण**

मात्रा	:	3 - 6 ग्राम
अनुपान	:	ऊष्णजल/शहद

वातिक कास चिकित्सा में वर्णित समस्त चूर्ण योगों का प्रयोग कफज कास चिकित्सा में सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

4. **क्वाथ/आसव/अरिष्ट**

मात्रा	:	20 - 30 मि.ली.
अनुपान	:	जल
(i) कट्फलादि क्वाथ	:	कट्फल, भारंगी, मुस्तक, हरड़, शुण्ठी, पिप्पली।

(ii) पाठादि फाण्ट : पाठा, सोंठ, कचूर, मुस्तक, पीपर एवं इन्द्रायण की जड़।

(iii) पौष्करादि क्वाथ : पुष्करमूल, कट्फल, भारंगी, सोंठ एवं पीपर।

(iv) दशमूली क्वाथ : दशमूल एवं पिप्पली चूर्ण

(v) कण्टकारी क्वाथ : कण्टकारी एवं पीपर चूर्ण।

5. **घृत**

मात्रा : 10 - 30 मि.ली.

अनुपान : ऊष्णोदक

(i) दशमूलादि घृत : दशमूल, घृत, पुष्कर मूल, कचूर, तुलसी पत्र, त्रिकटु।

(ii) कण्टकारी घृत : कंटकारी पंचाग, बलामूल, त्रिकटु, बिडंग, कचूर, चित्रकमूल।

(iii) कुलत्थादि घृत : पंचकोल, कुलत्थ, घृत।

(iv) पाठादि घृत : पाठा, त्रिकटु, कचूर, घृत।

(v) दशमूल षटफल घृत : दशमूल, यवक्षार, पंचकोल एवं घृत।

6. **पाक/अवलेह**

मात्रा : 10 - 20 ग्राम

अनुपान : दुग्ध/जल

(i) पिप्पल्यादि लेह : पिप्पली, पिप्पलीमूल, चित्रकमूल एवं गजपिप्पली।

(ii) हरीतकी लेह : हरड़, आंवला, मोथा, भुई आंवला एवं पीपर।

(iii) देवदार्व्यादि लेह : देवदारु, हरड़, मुस्तक, पीपर एवं सोंठ।

(iv) चित्रक हरीतकी : पूर्वोक्त

(v) व्याघ्री हरीतकी : पूर्वोक्त

7. **अन्य योग**

(i) पंचमूलसिद्ध क्षीर : पंचमूल एवं दुग्ध।

(ii) आद्रक स्वरस : श्रृंगबेर।

आदर्श व्यवस्था पत्र

(1) प्रात : सांयम्

आनन्दभैरव रस : 250 मि.ग्रा.

टंकण भस्म : 250 मि.ग्रा.

तालिसादि चूर्ण : 3 ग्राम

शहद से : 1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

चित्तचन्दिरासव	:	20 मि.ली.
समभाग जल से	:	1x2 मात्रा
(3) चित्रक हरीतकी लेह	:	15 ग्राम
दूध से	:	1x2 मात्रा

(4) चूषणार्थ

मरिच्यादि वटी : 5-6 वटी (दिनभर में)

(5) पंचकर्मार्थ

कट्फल त्वक् चूर्ण का नस्य

(6) योगाभ्यास-प्राणायाम

पथ्य

कटु रस युक्त द्रव्य, कुलत्थ यूष, मुदग यूष, तिल तैल, सर्षप तैल, लघु अन्न, मधु कांजी, अनार का रस एवं निगद (स्वच्छ मदिरा) मद्य का सेवन करना चाहिये।

4. क्षतज कास की चिकित्सा

शास्त्रों में क्षतज कास की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्नानुसार वर्णित है—

(I) संशोधन चिकित्सा

(i) सस्नेह, मृदु विरेचन (बहुदोष युक्त में)

(II) संशमन चिकित्सा

क्षतज कास की चिकित्सा पैत्तिक कास की तरह करनी चाहिये। अत:पूर्व में पैत्तिक कास चिकित्सा में वर्णित समस्त संशमन योगों का प्रयोग क्षतज कास की चिकित्सा हेतु किया जा सकता है। क्षतज कास में मुख्यत: वृंहण द्रव्यों के प्रयोग से चिकित्सा की जाती है।

1. **रस/भस्म/पिष्टी/चूर्ण/वटी/अवलेह**
   पूर्व में पैत्तिक कास चिकित्सा में वर्णित समस्त योग।
2. **घृत**

मात्रा	:	10 - 30 मि.ली.
अनुपान	:	ऊष्णोदक, दुग्ध
(i) जीवनीय घृत	:	जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, दशमूल, आमलकी, इक्षुरस, बकरे का मांस आदि।

(ii) पिप्पल्यादि लेह : पिप्पली, मुलैठी, मिश्री, इक्षुरस, दुग्ध एवं घृत।

3. अवलेह

मात्रा : 15 - 20 ग्राम

अनुपान : दुग्ध+घृत

(i) इक्ष्वाद्यवलेह : इक्षु रस, पिप्पली, वासा, मिश्री।

(ii) पिप्पल्यादि लेह : पिप्पली, पद्माख, मुनक्का, वृहती आदि।

(iii) अगस्त्य हरीतकी : पूर्वोक्त

(iv) व्याघ्री हरीतकी : पूर्वोक्त

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रातः सांयम्

चन्द्रामृत रस : 250 मि.ग्रा.

प्रवाल पिष्टी : 250 मि.ग्रा.

लाक्षा चूर्ण : 2 ग्राम

सितोपलादि चूर्ण : 2 ग्राम

शहद से : 1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

द्राक्षारिष्ट : 20 मि.ली.

समभाग जल से : 1x2 मात्रा

(3) चूषणार्थ

एलादि वटी : 5-6 वटी, दिनभर में

(4) रात्रि

समशर्कर चूर्ण : 3 ग्राम

ऊष्ण जल से : 1 मात्रा

(5) वक्ष प्रदेश पर चन्दनबला लाक्षादि तैल से अभ्यंग

(6) योगाभ्यास-प्राणायाम

पथ्य

मांसरस, मधुर एवं वृंहणीय द्रव्य, दुग्ध, घृत, इक्षुरस आदि।

5. **क्षयज कास की चिकित्सा**

क्षयज कास की चिकित्सा हेतु निम्न संशोधन एवं संशमन उपायों का प्रयोग सफलता पूर्वक किया जा सकता है—

(1) **संशोधन चिकित्सा**

(i) मृदु विरेचन

(II) संशमन चिकित्सा

क्षयज कास की चिकित्सा में वर्णित विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार प्रस्तुत है—

1. रस/भस्म/पिष्टी

	मात्रा	: 125 - 250 मि.ग्रा.
	अनुपान	: शहद
(i)	प्रवाल पिष्टी	: प्रवाल
(ii)	मुक्ता पिष्टी	: मुक्ता
(iii)	वसन्तमालती रस	: पूर्वोक्त
(iv)	चन्द्रामृत रस	: पूर्वोक्त

2. वटी

	मात्रा	: 250 - 500 मि.ग्रा.
	अनुपान	: कोष्णोदक
(i)	हरीतक्यादि गुटिका	: हरीतकी, शुण्ठी एवं मुस्तक।
(ii)	हरीतक्यादि मोदक	: हरीतकी, पीपर, सोंठ, मरिच एवं गुड़।

3. चूर्ण

	मात्रा	: 3 - 6 ग्राम
	अनुपान	: शहद
(i)	यवानी षाडव चूर्ण	: अजवाइन, सोंठ, कच्ची बेर, अमलबेत, अनारदाना, पीपर, दालचीनी।
(ii)	कृष्णमरिच चूर्ण	: काली मरिच।
(iii)	सितोपलादि, तालिसादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण	: पूर्व में वर्णित किये है।

4. क्वाथ/आसव/अरिष्ट

पूर्व में वर्णित योगों का प्रयोग क्षयज कास में प्रशस्त है।

5. घृत

	मात्रा	: 10 - 20 मि.ली.
	अनुपान	: कोष्णोदक
(i)	द्विपञ्चमूलादि घृत	: लघु एवं वृहत पंचमूल, पीपर।
(ii)	गुडूच्यादि घृत	: गुडूची, आमलकी, पीपर, घृत।
(iii)	कासमर्दादि घृत	: काममर्द, पुष्कर मूल, त्रिकटु, घृत।
(iv)	रास्नाद्य घृत	: रास्ना, पंचमूल, त्रिकटु, पिप्पली मूल, कटकारी, घृत।

6. पाक/अवलेह

मात्रा	:	10 - 20 ग्राम
अनुपान	:	दुग्ध
(i) हरीतकी लेह	:	हरड़, मन:शिला, रसौंत, गुड़ एवं पिप्पली चूर्ण।
(ii) द्राक्षादि लेह	:	द्राक्षा, पद्मकाठ, कण्टकारी, पीपर आदि।
(iii) पद्मकादि लेह	:	पदमकाष्ठ, त्रिफला, त्रिकटु, विडंग, देवदारु आदि।
(iv) जीवन्त्यादि लेह	:	जीवन्ती, मुलेठी, पाठा, त्रिफला, कचूर।

आदर्श व्यवस्था पत्र

(1) प्रात: सांयम्

लक्ष्मीविलास रस	:	250 मि.ग्रा.
प्रवाल पिष्टी	:	250 मि.ग्रा.
श्रृंग भस्म	:	1 ग्राम
तालिसादि चूर्ण	:	2 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजन पूर्व

यवानीषाडव चूर्ण	:	3 ग्राम
गर्म जल से	:	1x2 मात्रा

(3) भोजनोत्तर

चित्तचन्दिरासव	:	20 मि.ली.
समभाग जल से	:	1x2 मात्रा

(4) चूषणार्थ

एलादि वटी	:	5-6 वटी, दिनभर में
(5) धूमपान	:	ा न:शिलादि धूम का प्रयोग दिन में 2 बार करें।

(6) योगाभ्यास -प्राणायाम

पथ्य

लघु अन्न, पुराणशालि, मुद्गयूष, रुचिकर भोजन, अभ्यंग, उबटन, मांस रस, मधुरफल, बकरी या गाय का दूध, घृत पथ्य हैं।

समस्त कास रोग में सामान्य पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
शालि चावल, साठी चावल, गेहूं, कोदो, सांवा, जौ, ग्राम्य-आनूपमांस रस, पुराण घृत, बकरी का दूध, घृत, बथुआ, मकोय, बैंगन, परवल, छोटी मूली, करेरी, जीवन्ती, दाक्षा, निजौरा नीबूं, एला, गोमूत्र, लहसुन, गर्म जल, हरड़, त्रिकटु, शहद, धान का लावा आदि।	दिवा स्वप्न, स्वेदन, विरेचन, धूमपान, नियमित भोजन, परिमित भोजन करना आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, विष्टम्भी, विदाही अन्न सेवन, मछली, जमीकंद, आलू, कंदशाक, सरसों का साग, तुम्बी फल, विकृतान्न, विकृत जल सेवन, शीतल जल, शीतल अन्न सेवन, रूक्ष अन्न सेवन आदि।	वस्तिकर्म, नस्य, रक्तमोक्षण, व्यायाम दातौन, आतप सेवन, विकृत वायु का सेवन, वेग धारण, धूल, धूम्र का सेवन आदि।

योग एवं प्राकृतिक उपाय

कास के रोगी को प्राणायाम में कुम्भक एवं रेचक तथा शवासन का अभ्यास करना चाहिये। खुली हवा में लम्बी सांस लेते हुये घूमना भी लाभप्रद है।

Latest Developments

COUGH

Introduction

आधुनिक मत से Cough श्वसन संस्थान में किसी भी कारण से Irritation होने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है। Irritation का कारण Bacterial Infection, any Tumour or Allergen, Chemicals, Dust, Smoke एवं तीव्रगंध हो सकते हैं।

सामान्यतः उपरोक्त किसी भी कारणों से Respiratory tract की mucous membrane में शोथ (inflamation) होने पर वहां पर mucous secretions बंद हो जाने से शुष्कता आ जाती है एवं गले में खरास (Irritation) का आभास होता है। पश्चात्

mucous glands की क्रिया शीलता बढ़ जाने से उनसे mucoid स्राव बढ़ने लगता है। Vagus nerves के afferent fibres द्वारा medulla में सूचना पहुंचने पर प्रतिक्रिया स्वरूप कास की उत्पत्ति होती है।

Causes

1. **Respiratory causes**— It includes infections, smoking, obstructive airways disease, cystic fibrosis, occupational disease and emphysema etc.
2. **Non Respiratory Causes**— It includes post nasal discharge, sinusitis, gastro-oesophageal reflex, cardiac diseases, pericardial & diaphragmatic diseases and psychological factors.
   The three common causes of recurrent cough are post nasal discharge, asthma & reflexes.

Management : Principles

1. Avoid causes of allergy like smoke, dust, pollens, pets, mosquito repellent.
2. Appropriate antibiotics for infections.
3. Most viral respiratory infections are self limitng & are unresponsive to antibiotics.
4. Inhalant steriods may be given to patients of Bronchial Asthma to reduce airways inflammation.
5. Expectorants & Bronchodilators should be given in the patients of branchospasm.
6. Good systemic hydration, steam inhalations, cough training, postural drainage & respiratory physio-therapy are found to be far more effective.
7. Cough suppressants & antihistamincs may be useful.

Councelling of patient

1. Ensuring good hydration with adequate oral fluids, steam inhalations if required.
2. Avoidance of chilled drinks, dust, fumes exposoure & smoking.
3. Warn patient about the sedating effects of Opiates & Antihistamincs.

अध्याय-4

पार्श्वशूल
(PLEURISY)

व्याधि परिचय

वक्ष प्रदेश या पसलियों के भीतर या बाहर की ओर तथा उसके आसपास के प्रदेश में होने वाले शूल को पार्श्वशूल कहते हैं। इस व्याधि का वर्णन चरक संहिता में तथा अन्य संहिता ग्रंथों में पृथकतः नहीं किया गया है। अनेक व्याधियों के लक्षण के रूप में पार्श्वशूल का वर्णन मिलता है परंतु स्वतंत्र रूप से व्याधि के रूप में इसका वर्णन उपलब्ध नहीं है। आचार्य माधवकर ने शूल के विभिन्न भेदों के अंतर्गत इसका वर्णन किया है।

निरुक्ति

1. पार्श्वशूलं पार्श्वशूलम्।

अर्थात् पार्श्व प्रदेश में होने वाला शूल।

2. कील या कांटे के चुभने से जो पीड़ा होती है उस प्रकार की पीड़ा को शूल कहा जाता है[1]। एवं इसप्रकार की पीड़ा जब पार्श्वप्रदेश में हो तब उसे पार्श्वशूल कहते हैं।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. सुश्रुत संहिता : उत्तर तंत्र -अध्याय 42
2. माधवनिदान : अध्याय 26

निदान

पार्श्वशूल के निदान निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. आचार्य माधवकर ने इसे वातिक शूल के अंतर्गत माना है अतः समस्त वात प्रकोपक निदान पार्श्वशूल के निदान होते हैं।
2. पार्श्वशूल में वात के साथ कफ का भी अनुबंध होता है अतः कफ प्रकोपक निदान भी इसका कारण हैं।

---

1. "शंकुस्फोटनवत् तस्य यस्मात् तीव्राश्च वेदनाः।
शूलासक्तस्य लक्ष्यन्ते तस्माच्छूलमिहोच्यते॥" (सु.उ.त. 42/81)

3. **आहारज निदान**— अतिशीतल जलपान, मटर, मूद्ग, अरहर, कोदो, अतिरूक्ष पदार्थ, अध्यशन, अंकुरित अन्न, शुष्क मांस, शुष्क शाक, आनूप एवं जलचर जीवों का मांस, दुग्ध एवं दुग्ध विकार का सेवन, उड़द, कचौड़ी आदि।

4. **विहारज निदान**—अति व्यायाम, अति मैथुन, शोक, उपवास, अतिहास, मल मूत्रादि का वेगावरोध, अतिश्रम आदि।

सम्प्राप्ति

आचार्य सुश्रुत ने पार्श्वशूल की सम्प्राप्ति निम्न प्रकार बताई है—

सामान्य सम्प्राप्ति[1]

वात एवं कफ प्रकोपक आहार एवं विहार के सेवन से वात एवं कफ का प्रकोप होता है तथा प्रकुपित कफ कुक्षि प्रदेश (वक्ष) तथा पार्श्व में वायु के मार्ग को अवरुद्ध करता है एवं यह अवरुद्ध वायु विमार्गगामी होकर वक्ष प्रदेश एवं पार्श्व प्रदेश में शूल उत्पन्न करती है जिससे वक्ष व पार्श्व में सुई चुभने जैसी पीड़ा का अनुभव होता है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन

↓

वात एवं कफ दोष प्रकोप

↓

प्रकुपित कफ द्वारा वक्ष प्रदेश एवं पार्श्व में वायु के मार्ग का अवरोध

↓

विगुणित वायु द्वारा वक्ष एवं पार्श्व प्रदेश में पीड़ा

↓

पार्श्वशूल

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वात एवं कफ
दूष्य	:	रस, रक्त
स्रोतस्	:	प्राणवह स्रोतस्

---

1. "रुणद्धि मारुतं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः।
स सरुद्धः करोत्याशु साध्मानं गुडगुडायानम्॥" (सु.उ. 42/118)

अधिष्ठान	:	उरस एवं पार्श्व प्रदेश
स्रोतो दुष्टि प्रकार	:	संग एवं विमार्ग गमन
स्वभाव	:	मृदु
साध्यासाध्यता	:	साध्य

भेद

पार्श्वशूल के पृथक भेद संहिता ग्रंथों में वर्णित नहीं हैं। इसका वर्णन शूल रोग के एक भेद के रूप में किया गया है।

पूर्वरुप

पार्श्वशूल के पूर्वरुप शास्त्रों में वर्णित नहीं है।

रुप

पार्श्वशूल के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार हैं[1]—

1. आध्मान (Flatulence)
2. आटोप (Distension of abdomen)
3. पार्श्व में सुई चुभने सी पीड़ा (Pricking pain in costal region)
4. श्वास कृच्छ्रता (Dyspnoea due to pain)
5. अरूचि (Anorexia)
6. अनिद्रा (Insomnia due to pain)

आचार्य चरक ने पार्श्वशूल के निम्न लक्षण भी बताये हैं[2]—

1. आयाम (कफाधिक्य से)
2. संकोच (वाताधिक्य से)
3. नियत शूल (Continuous pain)

साध्यासाध्यता

पार्श्वशूल साध्य व्याधि है। दुर्बल रोगी में तथा उपद्रव युक्त होने पर कृच्छ्रसाध्य है। नवीन तथा बलवान रोगी में यह सुखसाध्य है।

चिकित्सा

---

1. "सं सरूद्धः करोत्याशु साध्मानं गुडगुडायनम्।
सूचीभिरिव निस्तोदं कृच्छ्रोच्छ्वासी तदा नरः।
नात्रं वाञ्छति नो निद्रामुपैत्यतिनिपीडितः॥" (सु.उ.त. 42/118)
2. "पार्श्वशूलं त्वनियतं संकोचायामलक्षणम्।" (च.चि. 8/56)

पार्श्वशूल में प्रयुक्त संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्नानुसार वर्णित है—

(I) संशोधन चिकित्सा

(i) स्नेहन

(ii) स्वेदन

(iii) अनुवासन वस्ति

(II) संशमन चिकित्सा

पार्श्वशूल की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार है-

1. रस/भस्म/पिष्टी

मात्रा	:	125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	शहद या ऊष्ण जल
(i) लक्ष्मी विलास रस	:	कास चिकित्सोक्त
(ii) श्रृंग भस्म	:	मृगश्रृंग, घृत के साथ
(iii) त्रिभुवन कीर्ति रस	:	हिंगुल, टंकण, विष, त्रिकटु, पिप्पली
(iv) त्रैलोक्य चिन्तामणि रस	:	स्वर्ण भस्म, रौप्यभस्म, लौह भस्म, प्रवाल भस्म, मुक्ता भस्म, अभ्रक भस्म, पारद एवं गंधक

2. वटी

मात्रा	:	250-500 मि.ग्रा.
अनुपान	:	उष्णोदक
(i) शूलवज्रणी वटी	:	कुचला, पुष्करमूल, त्रिकटु

3. चूर्ण

मात्रा	:	3-6 ग्राम
अनुपान	:	शहद, कोष्ण जल
(i) यवानी षाडव चूर्ण	:	क्षयज कास चिकित्सोक्त
(ii) हिंगु द्विरुत्तर चूर्ण	:	हींग, कालानमक, सोंठ, छोटी हरड़।
(iii) पुष्कर मूलादि चूर्ण	:	पुष्करमूल, हींग, सौवर्चल लवण, विडनमक, सैंधव, हरड़ आदि

4. क्वाथ/आसव/अरिष्ट

मात्रा	:	20-40 मि.ली.
अनुपान	:	जल
(i) दशमूल क्वाथ	:	दशमूल

(ii) पौष्करादि क्वाथ : पुष्करमूल, त्रिफला, शुण्ठी।

(iii) दशमूलारिष्ट : लघु एवं वृहत पंचमूल।

5. घृत

मात्रा : 10-30 मि.ली.

अनुपान : उष्णोदक, दुग्ध

(i) षट्पल घृत : षड्पण, यवक्षार, गोघृत, गोदुग्ध

(ii) हिंग्वादि घृत : हींग, एवं घृत

6. पाक/अवलेह

कास चिकित्सा में वर्णित विभिन्न पाक अवलेह योगों का युक्तिपूर्वक प्रयोग पार्श्वशूल चिकित्सा में भी किया जा सकता है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रातः सांयम्

त्रिभुवन कीर्ति रस	:	250 मि.ग्रा.
पुष्कर मूल चूर्ण	:	2 ग्राम
हिंग्वादि चूर्ण	:	2 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

षटपल घृत	:	10 मि.ली.
दूध से	:	1x2 मात्रा

(3) रात्रि

एरण्ड स्नेह	:	20 मि.ली.
दूध से	:	1 मात्रा

(4) मृगश्रृंग चूर्ण को घृत में मिलाकर पसलियों पर सुखोष्ण लेप करें।

या

आम्र+हरिद्रा+देवदारु+सौंफ को पीसकर वक्षस्थल पर सुखोष्ण लेप करें।

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

पुराणशालि, जौ, गेहूं, परवल, सहिजन की फली, बथुआ, पालक, लहसुन, हींग, सोंठ, अजवाइन, काला नमक, पपीता एवं कागजी नींबू।

अपथ्य

गुरु, विष्टम्भी तथा विरुद्ध भोजन, रात्रि जागरण, अतिश्रम, अति व्यायाम, व्यवाय, अध्यशन, विषमाशन, रुक्ष, तिक्त, कषाय द्रव्यादि सेवन, राई एवं सरसों।

Latest Developments

PLEURISY

आधुनिक मतानुसार पार्श्वशूल का साम्य Pleurisy (फुफ्फुसावरण शोथ) से किया जा सकता है जिसे कफाधिक्य होने पर Pleurisy with effusion एवं वाताधिक्य होने पर Dry Pleurisy कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त पार्श्ववेदना (Pleurodynia) तथा Intercostal Neuralgia की ज्वर रहित अवस्था से भी पार्श्वशूल का साम्य हो सकता है।

Pleurisy & Pleural Effusion

A pleural effusion is an abnormal accumulation of fluid within the pleural space as a manifestation of systemic or intrathorasic disease.

Causes of Pleurisy

1. Viral infection
2. Pneumonia & Pulmonary infarction
3. Tuberculosis
4. Bronchiectasis
5. Pancreatitis
6. Collagen disorder
7. Rib Fracture

Causes of Pleural Effusion

1. Nephrotic Syndrome
2. Cirrhosis
3. Congestive candiac failure

Signs/Symptoms

1. Chest Pain & costal pain, pain is aggravated by breathing or chest wall movement.
2. Cough.
3. Dyspnoea (Breathlessness).
4. Tachypnoea.
5. Friction rub.

Management : Principles

1. To Treat the underlying cause.
2. Anti inflammatory and analgesic drugs should be given for relief of pain.
3. Antibiotics & antimicrobial therapy.
4. Culture & sensitivity test of the exudate should be done.

अध्याय-5

राजयक्ष्मा
(TUBERCULOSIS)

व्याधि परिचय

राजयक्ष्मा अर्थात् 'राजा का रोग'[1]। सर्वप्रथम नक्षत्रराज चन्द्रमा को यह रोग हुआ था अत; इसे 'रोगराट' भी कहा है[2]। राजयक्ष्मा का प्रत्येक लक्षण एक रोग की तरह गम्भीर होता है अत: इसे 'रोगसमूह' भी कहा है[3]।

चरक संहिता के सूत्र स्थान एवं निदान स्थान में इसका वर्णन 'शोष' नाम से किया गया है तथा चिकित्सा स्थान में इसका वर्णन 'राजयक्ष्मा' नाम से है। आचार्य सुश्रुत ने इसे अनेक रोगों का अनुगामी होने से तथा बहुत से रोगों के पुरोगामी होने से इसे 'दुर्विक्षेप', 'दुश्चिकित्स्य', 'महाव्याधि' एवं 'महाबल' कहा है[4]।

राजयक्ष्मा में शरीर का बल अर्थात् ओज क्षीण हो जाता है। क्षत क्षीण एवं उर:क्षत भी सामान्यत: राजयक्ष्मा की ही एक विशेष अवस्था हैं। राजयक्ष्मा के समस्त लक्षणों के आधार पर इसका साम्य आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Tuberculosis नामक रोग से किया जा सकता है।

पर्याय

संहिता ग्रंथो में यक्ष्मा के विभिन्न पर्यायों का वर्णन प्राप्त होता है जो निम्न हैं—

1. **शोष**[5]—रसादि धातुओं का शोषण करने के कारण इसे 'शोष' कहते हैं।

---

1. "यस्मात् सराज्ञ: प्रागासीद्राजयक्ष्मा ततो मत:।" (च.चि. 8/11)
2. "रसादिशोषणाच्छोषो रोगराट् तेषु राजनात्।" (अ.ह.नि. 5/3)
3. "राजयक्ष्मा रोगसमूहानां।" (च.सू. 25/40)
4. "अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगम:।
   दुर्विक्षेयो दुर्निवार: शोषो व्याधिर्महाबल:॥" (सु.उ. 41/3)
5. "सशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते।" (सु.उ. 41/4)

2. **क्षय**[1]—शरीर की वाह्य एवं आभ्यांतर सम्पूर्ण क्रियाओं का क्षय करने से इसकी 'क्षय' संज्ञा है।
3. **रोगराट्**[2]—राजा का रोग होने के कारण 'रोगराट्' कहा है।
4. **राजयक्ष्मा**[3]—रोगों का राजा होने से इसे 'राजयक्ष्मा' कहा है।
5. **ज्वर**—ज्वर इस रोग का प्रमुख लक्षण है।
6. **दु:ख**—पीड़ित व्यक्ति को अत्याधिक कष्ट देने वाला होने से इसे दु:ख भी कहा है।
7. तपेदिक
8. Consumption
9. Pulmonary Tuberculosis

निरुक्ति

(1) 'शोषयतीति शोष:।' अर्थात् जो शरीर का शोषण करता है।

(2) यक्ष+मनिन् यक्ष्यते पूज्यते इति यक्ष्मा, अर्थात् जो पूजा जाता है। अधिक कष्टकारी होने के कारण यक्ष्मा की विशेष चिकित्सा की जाती है।

(3) 'क्षीयतेऽनेनेति क्षय:।' अर्थात् जिसके द्वारा क्षीणता हो उसे क्षय कहते है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता : निदान स्थान-अध्याय 6
2. चरक संहिता : चिकित्सा स्थान-अध्याय 8
3. सुश्रुत संहिता : उत्तर तंत्र-अध्याय 41
4. अष्टांग हृदय : निदान स्थान-अध्याय 5
5. अष्टांग हृदय : चिकित्सा स्थान-अध्याय 5
6. माधव निदान : (प्रथम खण्ड) अध्याय 10
7. भाव प्रकाश : (प्रथम खण्ड) अध्याय 11

निदान

आचार्यों ने राजयक्ष्मा के मुख्यत: 4 निदान बताये है[4] तथा चारों निदानों के आधार पर ही राजयक्ष्मा के चार प्रकार माने गये हैं। वस्तुत: राजयक्ष्मा एक ही व्याधि एवं अनेक लक्षणों का एक समूह है। आयुर्वेद में इसे संक्रामक व्याधि या औपसर्गिक व्याधि स्वीकार

1. "क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्युच्यते पुन:।।" (सु.उ.त. 41/4)
2. "रोगराट् तेषु राजनात्।" (अ.ह.नि. 5/3)
3. "यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मत:।" (अ.ह.नि. 5/2)
4. "वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात्॥" (मा.नि. 10/1)

किया गया है।[1] आधुनिक मतानुसार भी Tuberculosis रोग Mycobacterium tuberculosis नामक जीवाणु के आक्रमण होने से, दुर्बल एवं निम्न व्याधिक्षमित्व वाले व्यक्ति में अधिक होना माना गया है। इसके चार प्रमुख कारण निम्न हैं—

(i) 1. वेगधारण
2. क्षय
3. साहस
4. विषमाशन

उपर्युक्त चारों कारण राजयक्ष्मा के विप्रकृष्ट हेतु बताऐ गये हैं।

(ii) **यक्ष्मा के सन्निकृष्ट कारण** प्रतिश्याय, कास, प्रसूति रोग, मधुमेह, वातश्लैष्मिक ज्वर (Influenza) शारीरिक कृशता एवं पोषणाभाव हैं।

(ii) इसी प्रकार **यक्ष्मा के अन्य सहायक कारणों** में धूम्रपान (Cigarette smoking), अतिमैथुन, अप्राकृतिक मैथुन, बाल विवाह एवं प्रसव के समय हुए संक्रमण प्रमुख हैं जिनका भी परोक्ष रूप से यक्ष्मा की उत्पत्ति में योगदान अवश्य होता है।

सामान्य सम्प्राप्ति[2]

उपर्युक्त निदानों के निरन्तर सेवन से अग्नि विषम हो जाने से आहार एवं धातुओं का उचित पाक नहीं हो पाता है अत: कफ वृद्धि (रस के मलभूत) हो जाती है। वृद्ध कफ द्वारा मार्गावरोध हो जाने पर वात का प्रकोप होता है तथा रसादि धातुओं का क्षय प्रारंभ हो जाता है। परिणाम स्वरूप यक्ष्मा की उत्पत्ति होती है। आचार्य सुश्रुत ने इसे औपसर्गिक रोग कहा है अत: इन चारों कारणों के साथ उपसर्ग (संक्रमण) होने पर निश्चित रूप से यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति चक्र

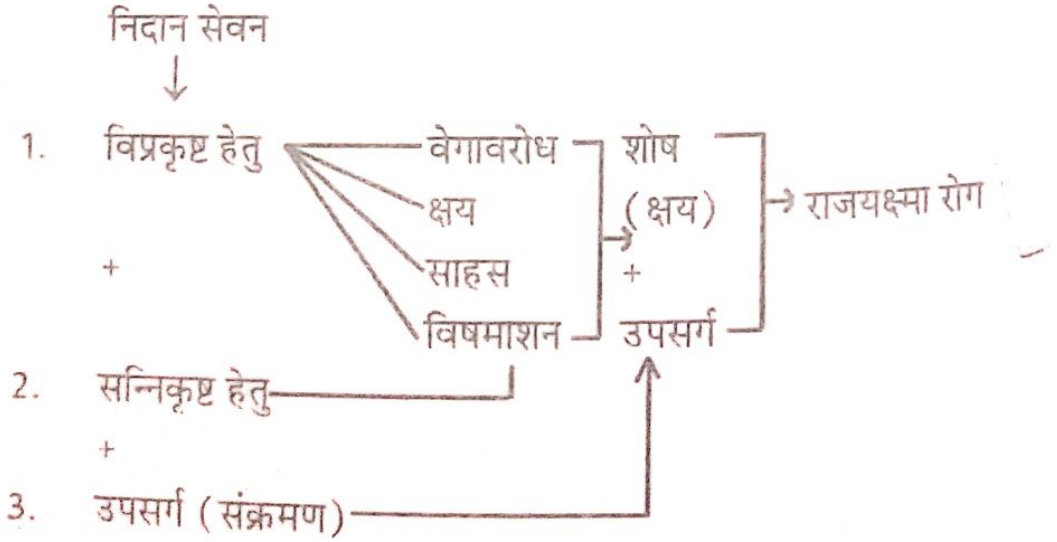

1. "कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च। औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥" (सु.नि. 5/34)
2. "स्रोतसां सन्निरोधाच्च रक्तादीनां च संक्षयात्। धातूष्मणां च अपचयात् राजयक्ष्मा प्रवर्तते॥" (च.चि. 8/40)

राजयक्ष्मा की निदानानुसार विशिष्ट सम्प्राप्ति

1. वेगावरोध जन्य यक्ष्मा की सम्प्राप्ति[1]

शास्त्रोक्त, अधारणीय वेगों (13 प्रकार) मुख्यत: वात, मूत्र एवं पुरीष के वेग धारण करने से वात का प्रकोप होता है। वात प्रकोप अग्नि दुष्टि करता है तथा अग्निदुष्टि से तीनों दोषों का प्रकोप होकर यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति होती है। आचार्य चरक के अनुसार वेगधारण से कुपित वायु, पित्त एवं कफ को उभारती हुई ऊर्ध्व, अध: एवं तिर्यक् प्रदेश में गमन कर विभिन्न रोगों को उत्पन्न करती है।

सम्प्राप्ति चक्र

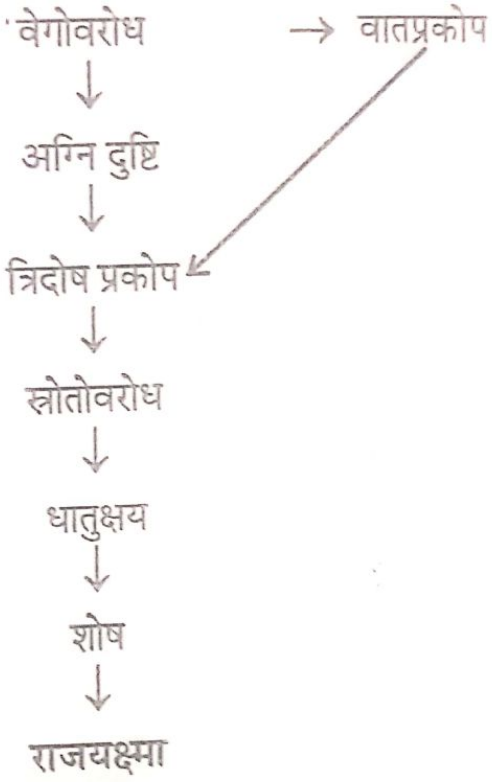

2. क्षय जन्य राजयक्ष्मा की सम्प्राप्ति[2]

ईर्ष्या, द्वेष, भय, क्रोध, शोकादि से जिनका शरीर अतिकृश हो गया हो, तथा जो अतिमैथुन एवं उपवास करते हैं उनके शरीर में शुक्र एवं ओज की हानि हो जाती है। परिणामत: वात की वृद्धि हो जाती है जो कफ एवं पित्त को उभार केर सारे शरीर में गमन करते हुये विभिन्न लक्षणों को उत्पन्न करती है। आयुर्वेद में क्षय की उत्पत्ति दो प्रकार से वर्णित की गई है—

---

1. "वात मूत्रपुरीषाणां निग्रहणाति यदा नर:। तदा वेगप्रतीघातात् कफपित्ते समीरयन्॥ ऊर्ध्वं तिर्यगधश्चैव विकारान् कुरुतेऽनिल:।" (च.चि. 8/20-21)
2. "ईर्ष्योत्कण्ठाभयत्रासक्रोधशोकातिकर्शनात्। अतिव्यवायानशनाच्छुक्रमोजश्च हीयते॥ ततः स्नेहक्षयाद्वायुर्वृद्धो दोषावुदीरयन्। संप्राप्तं राजयक्ष्माणं क्षयात् प्राणक्षयप्रदम्॥" (च.चि. 8/24-27)

1. अनुलोम क्षय 2. प्रतिलोम क्षय

1. **अनुलोम क्षय**—ईर्ष्या, भय, शोकादि कारणों से, रुक्ष अन्नपान के सेवन से रस धातु का क्षय होता है। फलतः रस के क्षय होने से अन्य धातुओं का पोषण नहीं होने से उत्तरोत्तर धातु क्षय होता रहता है एवं दौर्बल्य एवं धातु क्षय जन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं जिनसे अनुलोम क्षय जन्य राज यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति होती है।

2. **प्रतिलोम क्षय**—अति मैथुन या अन्य कारणों से शुक्र का अधिक क्षय होता है। शुक्र क्षय से वात प्रकोप होने से पूर्ववर्त्ती धातु का क्षय प्रारंभ होता है। पित्त एवं कफ के अनुबंध पूवर्क यह प्रकुपित वायु दुर्बल व्यक्ति में यक्ष्मा रोग उत्पन्न करता है। प्रतिलोम क्रम से धातु नाश होने के कारण इस प्रकार से उत्पन्न क्षय रोग को प्रतिलोम क्षय कहा जाता है।

सम्प्राप्ति चक्र

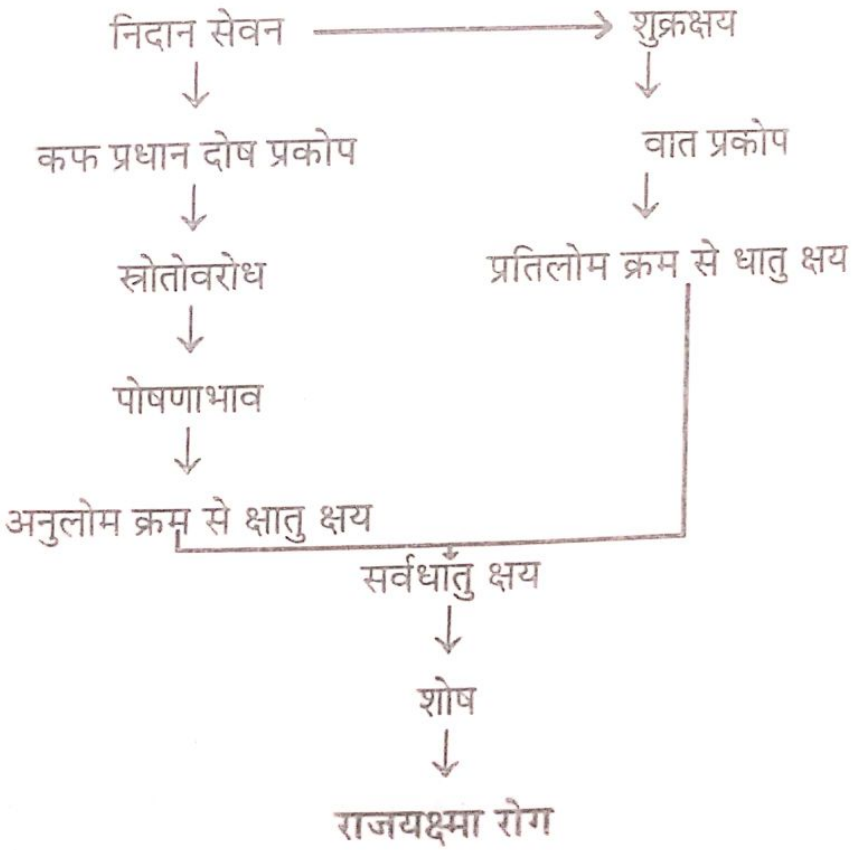

3. साहस जन्य राजयक्ष्मा की सम्प्राप्ति[1]

अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने को साहस कहते हैं। अत्यधिक साहस करने से प्रथमतः उरःक्षत होकर वायु प्रकोप होता है जो कि कफ एवं पित्त को उभार कर शरीर में विभिन्न लक्षण उत्पन्न करते हैं। अत्यधिक साहस करने से उरःक्षत होकर उपेक्षा करने पर यक्ष्मा रोग उत्पन्न हो सकता है।

---

1. युद्धाध्ययनभाराध्वलंघनप्लवनादिभिः। पतनैरभिघातैर्वा साहसैर्वा तथाऽपरैः॥
अयथाबलमारम्भैर्जन्तोरुरसि विक्षते। वायुः प्रकुपितो दोषावुदीर्याधौ प्रधावति॥ (च.चि. 8/14-15)

सम्प्राप्ति चक्र

अतिसाहस
↓
उर:क्षत
↓
वात प्रकोप
↓
प्रकुपित वायु, कफ-पित्त को उभार कर
↓
स्रोतावरोध
↓
शोष
↓
राजयक्ष्मा

4. विषमाशन जन्य यक्ष्मा की सम्प्राप्ति

विविध अन्न एवं पानों का विषम रूप से सेवन करने से कुपित वायु, कफ एवं पित्त क वाहिनी आदि स्रोतसों को अवरुद्ध करते हैं, परिणामत: पोषणाभाव होने से धातुक्षय कर यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति चक्र[1]

विषमाशन
↓
त्रिदोष प्रकोप
↓
स्रोतावरोध
↓
पोषणाभाव
↓
धातुक्षय
↓
राजयक्ष्मा

[1] "विविधान्यन्नपानानि वैषम्येण समश्नत:। जनयन्त्यामयान घोरान्विषमान्मारुतादय: ॥
स्रोतांसि रुधिरादीनां वैषम्याद्विषमं गता:। रुद्ध्वा रोगाय कल्पन्ते पुष्यन्ति च न धातव: ॥"
(च.चि. 8/28-29)

उपर्युक्त कारणों के साथ ही संक्रमणजन्य सन्निकृष्ट निदान भी राजयक्ष्मा रोग की उत्पत्ति में आवश्यक है। परन्तु आयुर्वेद वेगधारणादि विप्रकृष्ट निदानों को ही प्रमुख मानता है क्योंकि यदि शरीर में धातु क्षय होकर व्याधिक्षमत्व की हानि नहीं होगी तो संक्रमण होने पर भी रोग उत्पन्न नहीं हो सकता तथा चारों कारणों से धातुक्षय होकर व्याधिक्षमत्व का ह्रास होगा तब संक्रमण होने पर यक्ष्मा रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी यक्ष्मा को जीवाणु संक्रमण जन्य व्याधि मानता है जो कि शरीर की Immunity कम होने पर उत्पन्न होती है।

साहस एवं क्षय से प्रत्यक्षतः एवं प्रथमतः धातुक्षय होता है तथा वेगधारण एवं विषमाशन से स्रोतोवरोध पूर्वक धातुक्षय होता है। उपर्युक्त चारों कारणों से शरीर की स्वाभाविक शक्ति (Vitality) एवं व्याधि क्षमित्व (Immunity) की हानि होती है। इसी स्थिति में उपसर्ग या संक्रमण हो जाने पर राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न हो जाता है।

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	त्रिदोष, वात-कफ प्रधान
दूष्य	:	रसादि धातुयें (समस्त धातुऐं)
स्रोतस्	:	रस, रक्तवह (समस्त स्रोतस्)
अधिष्ठान	:	सर्वशरीर एवं फुफ्फुस
स्रोतोदुष्टिप्रकार	:	संग
स्वभाव	:	दारुण एवं चिरकारी
अग्निदुष्टि	:	अग्निमांद्य
साध्यासाध्यता	:	कृच्छ्रसाध्य
आशय	:	आमपक्वाशयोत्थ

भेद

राजयक्ष्मा के भेदों का स्पष्ट उल्लेख संहिताओं में नहीं है। परन्तु कारण एवं लक्षणों के आधार पर राजयक्ष्मा के निम्न भेद कर सकते हैं—

1. **कारणों के आधार** पर राजयक्ष्मा चार प्रकार का होता है—
   (i) साहस जन्य (ii) वेगधारण जन्य
   (iii) क्षय जन्य (iv) विषमाशन जन्य
2. **लक्षणों के आधार** पर राजयक्ष्मा के निम्न तीन भेद हैं
   (i) त्रिरुप राजयक्ष्मा। (ii) षडरुप राजयक्ष्मा।
   (iii) एकादश रुप राजयक्ष्मा।

3. **एकविध राजयक्ष्मा**—राजयक्ष्मा एक ही प्रकार का है जो कि त्रिदोषज है एवं रोग समूह है।

पूर्वरूप[1]

राजयक्ष्मा के निम्न पूर्वरूप संहिताओं में वर्णित हैं—

1. शारीरिक पूर्वरूप 2. मानसिक पूर्वरूप

1. शारीरिक पूर्वरूप[2]

(i) प्रतिश्याय (Rhinitis)
(ii) दौर्बल्य (Weakness)
(iii) अंगमर्द (Bodyache)
(iv) कफसंस्रव (Productive cough)
(v) वमन (Vomiting)
(vi) अग्निसाद (Poor appetite)
(vii) कास (Cough)
(viii) निद्रा (Excessive sleep)
(ix) शुक्लाक्षता (रक्ताल्पता) (Anaemia)
(x) शोफ (Oedema)
(xi) श्वास (Dyspnoea)

2. मानसिक पूर्वरूप[3]

(i) अति स्त्री प्रसंग की इच्छा।
(ii) दोष रहित वस्तु में भी दोष देखना।
(iii) मद्य एवं मांस में तीव्र रुचि।
(iv) नदी, जलाशय एवं वन को स्वप्न में शुष्क देखना।
(v) स्वप्न में पक्षियों की सवारी करना।
(vi) केश, नख का अधिक बढ़ना।

---

1. "पूर्वरूपं प्रतिश्यायो दौर्बल्यं दोषदर्शनम्। अदोषेष्वपि भावेषु काये वीभत्सदर्शनम्॥ घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः। स्त्रीम द्यमांसप्रियता प्रियता चावगुण्ठने॥ प्रायूषं बहुरुपस्य यज्ञे,वं राजयक्ष्माः॥" (च.चि. 8/33-37)
2. i) "पूर्वरूपं प्रतिश्यायो दौर्बल्यं दोषदर्शनम्।" (च.चि. 8/33)
ii) "श्वासाङ्गसादकफसंस्रावतालुशोषच्छर्द्यग्निसादमदुपीनसपाण्डुनिद्राः।" (सु.उ. 41/29)
3. "अदोषेष्वपि भावेषु काये वीभत्स दर्शनम्। घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः॥ स्त्रीमद्यमांसप्रियता प्रियता चावगुण्ठने। प्रायोऽन्नपाने केशनां नखानां चाभिवर्धनम्। जलाशयानां शैलानां वनानां ज्योतिषामपि॥" (च.चि. 8/34-36)

(vii) प्रत्येक वस्तु से घृणा करना।
(viii) स्वच्छ रहने पर भी गंदा प्रतीत होना।
(ix) शरीर में वीभत्सता दिखाई देना।
(x) तारासमूह, सूर्य एवं चन्द्र को गिरते हुये देखना।

लक्षण

आचार्यों ने राजयक्ष्मा के त्रिरुप, षड्रुप एवं एकादश रूपों का वर्णन किया है जो निम्न प्रकार है—

1. **त्रिरूप राजयक्ष्मा**[1]

इन्हें यक्ष्मा के सामान्य रूप कहते हैं एवं यह लक्षण प्रायः रोग की प्रथमावस्था के द्योतक हैं—

(i) अंस एवं पार्श्व में पीड़ा (Pain in chest & shoulder)
(ii) सन्तापः कर पादयोः (Burning in hands & feet)
(iii) ज्वर (Fever)

आचार्य भोज के अनुसार त्रिरूप राजयक्ष्मा के लक्षण निम्न प्रकार हैं[2]

(i) कास (Cough)
(ii) ज्वर (Fever)
(iii) रक्त पित्त (Haemoptysis)

2. **षड्रूप राजयक्ष्मा**[3]

राजयक्ष्मा के ये षड्रूप रोग की वर्धमानावस्था के द्योतक हैं

(i) कास (Cough)
(ii) ज्वर (Fever)
(iii) पार्श्वशूल (Chest Pain)
(iv) स्वर भेद (Hoarseness of voice)
(v) अतिसार (Diarrhoea)
(vi) अरुचि (Anorexia)

---

1. "अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः।
ज्वरः सर्वाङ्गश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः॥" (च.चि. 8/52)
2. "कासो ज्वरो रक्तपित्तं त्रिरूपे राजयक्ष्मणि।" (भोज)
3. "कासो ज्वरः पार्श्वशूलं स्वरवर्चोगदोऽरुचिः।" (च.चि. 8/46)

आचार्य सुश्रुत ने राजयक्ष्मा के निम्न षड्रुपों का उल्लेख किया है[1]—

(i) कास (Cough)
(ii) ज्वर (Fever)
(iii) स्वरभेद (Hoarseness of voice)
(iv) अरुचि (Anorexia)
(v) श्वास (Dyspnoea)
(vi) शोणित दर्शन (Haemoptysis)

3. एकादश रूप राजयक्ष्मा

विभिन्न आचार्यों द्वारा वर्णित राजयक्ष्मा के एकादश रूप निम्न प्रकार हैं—

I. आचार्य चरकानुसार एकादश रूप[2]

(i) कास (Cough)
(ii) असंताप (Pain in shoulder & chest)
(iii) स्वरभेद (Hoarseness of voice)
(iv) ज्वर (Fever)
(v) पार्श्वशूल (Chest pain)
(vi) शिर:शूल (Headache)
(vii) रक्त वमन (Haemoptysis)
(viii) श्लेष्मछर्दि (Mucoid Sputum Vomiting)
(ix) श्वास (Dyspnoea)
(x) अतिसार (Diarrhoea)
(xi) अरुचि (Anorexia)

II. आचार्य सुश्रुत अनुसार एकादश रूप[3]

(i) स्वरभेद (Hoarseness of voice)
(ii) अंश एवं पार्श्वशूल (Chest & shoulder pain)
(iii) अंश एवं पार्श्वसंकोच (Contracture of chest muscles)

] वात दोष के कारण

---

1. "भक्तद्वेषो ज्वरः कासः श्वासः शोणितदर्शनम्।
स्वरभेदश्च जायते षडरूपे राजयक्ष्मणि॥" (सु.उ. 41/11)
2. "कासोऽसंतापो वैस्वर्यं ज्वरः पार्श्वशिरोरुजा। छर्दनं रक्तकफयोः श्वासवर्चोगदोऽरुचिः॥
रूपाण्येकादशानि..... ॥" (च.चि. 8/45)
3. "स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोच अंशपार्श्वयोः। ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य वागमः॥
शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तछन्द एव च। कासः कण्ठस्य चोद्ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः॥"
(सु.उ.त. 41/12-13)

(iv) ज्वर (Fever)
(v) दाह (Burning Sensations)
(vi) अतिसार (Diarrhoea)
(vii) रक्तष्ठीवन (Haemoptysis)
] पित्त दोष के कारण

(viii) शिर:सपूर्णता (Heaviness in head)
(ix) अरुचि (Anorexia)
(x) कास (Cough)
(xi) कण्ठोध्वंस (Aphonia)
] कफ दोष के कारण

III. आचार्य वाग्भट् मतानुसार एकादश रूप[1]

(i) पीनस (Rhinitis)
(ii) श्वास (Dyspnoea)
(iii) कास (Cough)
(iv) अंसरुजा (Shoulder Pain)
(v) शिरोरुजा (Headache)
(vi) स्वररुजा (Throat Pain)
] ऊर्ध्वग दोष

(vii) अरुचि (Anorexia)
(viii) विड्भ्रंश (Diarrhoea)
] कोष्ठ स्थित दोष

(ix) छर्दि (Vomiting)
] तिर्यक स्थित दोष

(x) पार्श्वशूल (Pain in chest)
(xi) ज्वर (Fever)
] संधिस्थ दोष

भेदानुसार लक्षण

आचार्य चरक ने चार प्रकार के विषमाशनादि निदानों के द्वारा होने वाले यक्ष्मा के पृथक-पृथक एकादश लक्षण वर्णित किए हैं जो निम्न प्रकार हैं—

I. **साहसजन्य यक्ष्मा के लक्षण**[2]

(i) शिर:शूल (Headache)

---

1. "पीनसश्वासकासांसमूर्द्धस्वररुजोऽरुचि:। ऊर्ध्वं विड्भ्रंशसंशोषावध: छर्दिश्च कोष्ठगे॥ तिर्यकस्थे पार्श्वरुग्दोषे, सन्धिगे भवति ज्वर:। रुपाण्येकादशैतानि जायन्ते राजयक्ष्मण:॥" (अ.हृ.नि. 5/13-15)

2. "स शिरस्थ: शिर:शूलं करोति गलमाश्रित:। कण्ठोद्ध्वंसं च कासं च स्वरभेदमरोचकम्॥ पार्श्वशूलं च पार्श्वस्थो वर्चोभेदं गुदे स्थित:। जृम्भां ज्वरं च सन्धिश्च उर:स्थश्चोरसो रुजम्॥" (च.चि. 8/10-12)

(ii) कण्ठोध्वंस (Aphonia)
(iii) कास (Cough)
(iv) स्वरभेद (Hoarseness of voice)
(v) अरोचक (Anorexia)
(vi) पार्श्वशूल (Pain in Costal region)
(vii) अतिसार (Diarrhoea)
(viii) जृम्भा (Yawning)
(ix) ज्वर (Fever)
(x) उर:शूल (Pain in chest)
(xi) रक्तष्ठीवन (Haemoptysis)

II. **वेगधारण जन्य यक्ष्मा लक्षण**[1]

(i) शिर:शूल (Headache)
(ii) अंसावमर्द (Pain in Shoulder)
(iii) कास (Cough)
(iv) स्वरभेद (Hoarseness of voice)
(v) अरोचक (Anorexia)
(vi) पार्श्वशूल (Chest Pain)
(vii) अतिसार (Diarrhoea)
(viii) अंगमर्द (Bodyache)
(ix) ज्वर (Fever)
(x) प्रतिश्याय (Rhinitis)
(xi) वमन (Vomiting)

III. **क्षय जन्य यक्ष्मा के लक्षण**[2]

(i) शिर:शूल (Headache)
(ii) अंसताप (Shoulder Pain)

---

1. "प्रतिश्यायं च कासं च स्वरभेदमरोचकम्। पार्श्वशूलं शिर:शूलं ज्वरमंसावमर्दनम्॥
अंगमर्द मुहुश्छर्दिं वर्चोभेदं त्रिलक्षणम्। रुपाण्येकादशानि यक्ष्मा यैरुच्यते महान्॥"
(च.चि 8/22-23)

2. "प्रतिश्यायं ज्वरं कासमङ्गमर्दं शिरोरुजम्। श्वासं विड्भेदमरुचिं पार्श्वशूलं स्वरक्षयम्॥
करोति चांसमंतापमेकादशगदानिमान्।"
(च.चि 8/25-26)

(iii) कास (Cough)

(iv) स्वर क्षय (Loss of voice)

(v) अरोचक (Anorexia)

(vi) पार्श्वशूल (Pain in chest)

(vii) अतिसार (Diarrhoea)

(viii) अंगमर्द (Bodyache)

(ix) ज्वर (Fever)

(x) प्रतिश्याय (Rhinitis)

(xi) श्वास (Dyspnoea)

IV. विषमाशन जन्य यक्ष्मा के लक्षण[1]

(i) शिर:शूल (Headache)

(ii) अंसताप (Shoulder Pain)

(iii) कास (Cough)

(iv) स्वर भेद (Hoarseness of voice)

(v) अरोचक (Anorexia)

(vi) पार्श्वशूल (Pain in chest)

(vii) रक्त वमन (Haemetemesis)

(viii) प्रसेक (Excessive Salivation)

(ix) ज्वर (Fever)

(x) प्रतिश्याय (Rhinitis)

(xi) वमन (Vomiting)

सापेक्ष निदान

राजयक्ष्मा के सापेक्ष निदान में शोष, क्षतक्षीण, क्षयज कास तथा क्षतज कास से विभेद करना आवश्यक है क्योंकि कहीं न कहीं इनके लक्षणों में साम्यता है। ये समस्त रोग एक ही व्याधि की कड़ी हैं। निदान एवं सम्प्राप्ति में वैशिष्ट्य के कारण इन्हें पृथक्-पृथक् नाम दिये गये हैं। 'शोष' धातुक्षय की अवस्था मात्र है। कालान्तर में शोष ही जीवाणु संक्रमण होने पर यक्ष्मा में परिणत हो जाता है।

---

1. "प्रतिश्यायं प्रसेक च कासं छर्दिमरोचकम्। ज्वरमंसाभितापं च छर्दनं रुधिरस्य च॥
पार्श्वशूलं शिर:शूलं स्वरभेदमथापि च। कफपित्तानिलकृतं लिङ्गं विद्याद्यथाक्रमम्॥"
(च.चि. 8/30-32)

इसी प्रकार उर:क्षत भी राजयक्ष्मा का परिवर्धित रूप है। 'क्षीण' राजयक्ष्मा की उपद्रव युक्त अवस्था है जिसमें पार्श्वशूल, कटि एवं पृष्ठ ग्रह तथा रक्तमूत्रता मिलती है। क्षतज कास उर:क्षत की ही एक अवस्था है जब उर:क्षत में कास ही मुख्य लक्षण के रूप में उपस्थित हो तब उसे क्षतज कास कहा है। जब यक्ष्मा के रोगी में कास प्रमुख लक्षण के रूप में उपस्थित हो तब उसे क्षयज कास मानकर कास की चिकित्सा प्रथमत: करनी चाहिये।

इन समस्त रोगों का सापेक्ष निदान निम्न सारणी में प्रस्तुत है—

क्र.स.	रोग	धातुक्षय	प्रधान/विशिष्ट लक्षण	अन्य लक्षण
1.	शोष	++	धातुक्षय एवं बलक्षय	धातु क्षय जन्य लक्षण
2.	राजयक्ष्मा	++	ज्वर	कास, श्वास, रक्त ष्ठीवन, अंशशूल आदि
3.	उर:क्षत	+++	सरक्त एवं दुर्गन्धित कफष्ठीवन	उर:शूल,कास आदि
4.	क्षीण	+	सरक्त मूत्र, पार्श्व, पृष्ठ एवं कटि ग्रह	क्षय के अन्य लक्षण
5.	क्षतज कास	++	उर:शूल युक्त भीषण कास	रक्तष्ठीवन एवं अन्य लक्षण
6.	क्षयज कास	++++	सरक्त एवं सपूय तीव्र कास एवं प्राणक्षय	यक्ष्मा के अन्य लक्षण
7.	रक्तपित्त	+	रक्तष्ठीवन	अन्य मार्गों से भी रक्त स्राव

साध्यासाध्यता

आचार्य चरकानुसार बल-मांस की पुष्टि होने पर एकादश रूप युक्त राजयक्ष्मा भी साध्य होता है तथा बल एवं मांस क्षीण होने पर रोग असाध्य हो जाता है एवं उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये।[1]

आचार्य सुश्रुत ने साध्य एवं असाध्य राजयक्ष्मा के निम्न लक्षण वर्णित किए हैं—

1. **साध्य राजयक्ष्मा के लक्षण**

(i) ज्वरानुबंध रहित (Afebrile condition)

(ii) क्रियासह (Able to tolerate therapeutic Procedures)

1. "सर्वैरप्येतैस्त्रिभिर्वाऽपि लिङ्गैर्मांसबलक्षये। युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा॥" (च.चि. 8/47)

(iii) बलवान (Good Health)

(iv) संयमी (Careful, self disciplined)

(v) दीप्ताग्नि (Good digestion)

(vi) मांसक्षय रहित (Non emaciated)

2. **असाध्य राजयक्ष्मा के लक्षण**

(i) एकादश षडरूप या त्रिरूप लक्षणों से युक्त बल एवं मांस हीन रोगी (Rajyakshma presenting in full form)

(ii) पर्याप्त भोजन करने पर भी निरंतर क्षीण होने वाला रोगी (Progressive weakness in spite of good appetite)

(iii) अतिसार पीड़ित (Severe diarrhoea)

(iv) शुक्लाक्षता (Severe anaemic patient)

(v) अरुचि (Sever Anorexia)

(vi) उर्ध्वश्वास पीड़ित (Severe dyspnoea)

(vii) मूत्रकृच्छ्र एवं बहुमूत्रता से पीड़ित (Oliguria, Polyuria)

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त राजक्ष्मा असाध्य होता है।

राजयक्ष्मा की साध्यासाध्यता में बल एवं मांस क्षय का ही विशेष महत्व प्रतीत होता है, त्रिरुप, षडरूप व एकादश रूप का नहीं।

राजयक्ष्मा के रोगी में इन लक्षणों की तीव्रता (severity) का भी महत्व है। आचार्य चरक ने इंद्रिय स्थान में स्पष्टत: उल्लेख किया है कि रोगी के बल एवं मासं का जितना अधिक क्षय होगा रोग भी उतना ही दुश्चिकित्स्य होगा[1]।

चिकित्सा सिद्धांत

आचार्यों द्वारा प्रतिपादित रायजक्ष्मा की चिकित्सा के प्रमुख सिद्धांत निम्न प्रकार हैं—

1. समस्त राजयक्ष्मा की चिकित्सा का प्रथम सिद्धांत निदान परिवर्जन है[2]।
2. समस्त राजयक्ष्मा त्रिदोषज होते हैं, अत: दोषों के बलाबल का विचार कर अवस्थानुसार चिकित्सा करना चाहिए[3]।

---

1. "वातव्याधिरपस्मारी कुष्ठी शोफी तथोदरी। गुल्मी च मधुमेही च राजयक्ष्मी च यो नरः॥ अचिकित्स्या भवन्त्येते बलमांसक्षये सति।" (च.इ. 9/8-9)
2. "संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्।" (सु.सू. 1/25)
3. "सर्वस्त्रिदोषजो यक्ष्मा दोषाणां तु बलाबलम्। परीक्ष्यावस्थिकं वैद्यः शोषिणः समुपाचरेत्॥" (च.चि. 8/63)

3. राजयक्ष्मा में क्षय की स्थिति होती है अतः बल एवं मांस की सदृढ़ स्थिति बनाये रखने के लिए बृंहण चिकित्सा एवं मांसरस (बकरे का) का प्रयोग करना निर्दिष्ट है।

4. विभिन्न प्रकार के स्वेद यथा परिषेक, उपनाह, स्वेद, नाड़ी स्वेद एवं आलेप आदि का प्रयोग शूल की शांति हेतु करना चाहिए।

5. दाह की स्थिति में शीतल तैल से अभ्यंग एवं परिषेक प्रशस्त है।

6. **राजयक्ष्मा में संशोधन चिकित्सा**—यक्ष्मा के रोगियों में दोष की अधिकता होने पर स्नेहन-स्वेदन पश्चात् स्नेहयुक्त मृदु वमन देना चाहिए। वमन के पश्चात् बल प्राप्ति हो जाने पर स्नेहन स्वेदन पश्चात् स्नेहयुक्त विरेचन देना चाहिए[1]।

   वमन एवं विरेचन से रोगी का कर्शन नहीं होना चाहिए क्योंकि अति मल निःसरण से रोगी की मृत्यु हो जाती है। राजयक्ष्मा के रोगी में सर्वधातु क्षय हो जाने के कारण उसका पुरीष ही उसका बल होता है[2]।

7. **राजयक्ष्मा में नस्य कर्म**[3]— बलामूल एवं मुलैठी से सिद्ध घृत में सैंधव मिलाकर नस्य देने से स्वरभेद ठीक हो जाता है।

8. राजयक्ष्मा के रोगी में भोजन के बाद घृतपान कराने का विधान है।[4]

9. राजयक्ष्मा में स्रोतोरोध मुख्यतः होता है अतः दीपन पाचन चिकित्सा देने का विधान है। राजयक्ष्मा में आचार्य चरक ने संयत मात्रा में मद्य का प्रयोग बताया है।

10. बकरी का मूत्र, पुरीष, दुग्ध, घृत एवं रक्त द्वारा स्नान, उबटन एवं भक्षण तथा बकरियों के बीच में निवास करना राजयक्ष्मा के रोगी में जीवनप्रद होता हैं।

---

1. "दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम्। स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्वेदं यत्न कर्शनम्॥
   शोषी मुञ्चति गात्राणि पुरीषस्रंसनादपि।" (च.चि. 8/87-88)
2. "तस्मात् पुरीषं संरक्ष्यं विशेषाद्राजयक्ष्मणः। सर्वधातुक्षयार्तस्य बलं तस्य हि विड्बलम्॥"
   (च.चि. 8/42)
3. "बलाविदारिगन्धाद्यैर्विदार्या मधुकेन वा। सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्य स्यात्स्वर्यमुत्तमम्॥"
   (च.चि. 8/90)
4. "शिरः पार्श्वांसशूलघ्नं कासश्वासनिबर्हणम्। प्रयुज्यमानं बहुशो घृतं चौत्तरभक्तिकम्॥"
   (च.चि. 8/92)
5. "अजाशकृन्मूत्रपयोघृतासृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः।
   स्नानादिना ना विधिना जहाति मांसादशेषं नियमेन शोषम्॥" (सु.उ. 41/56)

11. लहसुन का यथा विधि सेवन, नागबला चूर्ण का दूध से सेवन तथा वर्धमान पिप्पली रसायन का सविधि प्रयोग राजयक्ष्मा में लाभप्रद है[1]।

12. आचार्यों ने राजयक्ष्मा को औपसर्गिक रोग बताया है अतः रोगी के वस्त्र, आभूषण, पात्र एवं आसन आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा रोगी के मल, मूत्र, थूक आदि को भी यथा संभव नष्ट कर देना चाहिए ताकि इस रोग का संक्रमण न हो सके।

13. रायजक्ष्मा के रोगी में ज्वर शमनार्थ स्वेदजनन औषधि तथा अतिसार बंद करने के लिए अफीम का योग व पक्व बिल्व का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

चिकित्सा

शास्त्रों में आचार्यों द्वारा राजयक्ष्मा की चिकित्सा हेतु वर्णित संशोधन चिकित्सा एवं संशमन योगों का वर्णन निम्न अनुसार है—

I **संशोधन चिकित्सा**

(i) स्नेहन एवं स्वेदन
(ii) मृदु वमन एवं विरेचन

] बलवान एवं अधिक दोष युक्त रोगी में।

(iii) अनुवासन बस्ति

(iv) नस्य कर्म

II **संशमन चिकित्सा**— यक्ष्मा की चिकित्सा में प्रयुक्त शास्त्रोक्त संशमन योग निम्न प्रकार हैं जिनके विधि सम्मत प्रयोग से रोगी में आशानुकूल लाभ प्राप्त हो सकता है—

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	:	125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	उष्ण जल/शहद

(i) जयमंगल रस, महालक्ष्मी विलास रस, बसंतमालती रस, सूतशेखर रस- ज्वरोक्त।

(ii) राजमृगांक रस : पारद, गंधक, मनःशिला, स्वर्ण भस्म, ताम्रभस्म, वराटिका।

---

1. "रसोनयोगं विधिवत् क्षयार्तः क्षीरेण वा नागबलाप्रयोगम्।
सेवेत् वा मागधिकाविधानं तथोपयोगं जतुनोऽश्मजस्य॥" (सु.उ. 41/57)

(iii) हेमगर्भ पोट्टली रस : पारद, गंधक, स्वर्ण भस्म, ताम्र भस्म।

(iv) सर्वज्वर हर लौह : ज्वरोक्त।

(v) श्वासकुठार रस, श्वासकासचिन्तामणि रस, चन्द्रामृत रस, टंकण भस्म, मृगश्रृंगभस्म, कस्तुरी भैरव रस - श्वास-कास चिकित्सा में वर्णित है।

(vi) मुक्तापिष्टी, प्रवाल पंचामृत, प्रवाल पिष्टी, ज्वर चिकित्सोक्त।

(vii) क्षय केसरी रस : त्रिफला, त्रिकटु, त्रिजात, रस सिंदूर लौह भस्म।

(viii) योगेन्द्र रस : रस सिन्दूर, वंग भस्म, अभ्रक, मुक्ता, लौह भस्म।

2. **वटी**

मात्रा : 250 - 500 मि.ग्रा.

अनुपान : दुग्ध /उष्णोदक

(i) शिलाजत्वादि वटी : शिलाजीत।

(ii) शिवा गुटिका : हरड़, विभीतक, आमलकी, शिलाजीत।

(iii) संशमनी वटी : ज्वरोक्त।

(iv) एलादि वटी : कासोक्त।

(v) चित्रकादि वटी : षडूषण, द्विक्षार, पंचलवण, हींग।

(vi) सौभाग्य वटी : ज्वरोक्त।

3. **चूर्ण**

मात्रा : 3-6 ग्राम

अनुपान : कोष्ण जल/शहद

(i) तालिसादि चूर्ण : कासोक्त।

(ii) सितोपलादि चूर्ण : कासोक्त।

(iii) बलादि चूर्ण : बला, असगंध, शतावरी, पुनर्नवा।

(iv) लवंगादि चूर्ण : लवंग, शीतल चीनी, खस, श्वेत चंदन।

(v) एलादि चूर्ण : चतुर्जात, लवंग, एला, द्राक्षा एवं मुलैठी।

(vi) यवानी षाडव चूर्ण : अजवाइन, सोंठ, अम्लवेत, अनारदाना।

(vii) अश्वगंधा चूर्ण : अश्वगंधा।

(viii) षडधरण योग : चित्रक, इन्द्रयव, पाठा, कुटकी अतीस, बड़ी हरड़।

(ix) कर्पूराद्य चूर्ण : शु. कर्पूर, त्रिजात, जायफल, जावित्री, जटामांसी, कृष्ण मरिच।

4. क्वाथ/आसव, अरिष्ट

मात्रा : 20 - 30 मि.ली.

अनुपान : जल

(i) दशमूलारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, अश्वगंधारिष्ट-पूर्वोक्त

(ii) चित्त चन्दिरासव : त्रिमद, त्रिकटु, नागकेशर, एला, हरिद्रा, द्राक्षा, कुटकी, जटामांसी।

(iii) दशमूल क्वाथ : पूर्वोक्त।

(iv) द्राक्षासव : पूर्वोक्त।

(v) खर्जुरासव : पूर्वोक्त।

5. घृत

मात्रा : 10 - 30 मि.ली.

अनुपान : उष्ण जल, दुग्ध

(i) जीवंत्यादि घृत : जीवन्ती, मुलैठी, मुनक्का, इन्द्रयव, पुष्कर मूल।

(ii) छागलाद्य घृत : बकरी का घी, मुलैठी, बड़ी कटेरी।

(iii) दशमूलाद्य घृत : पूर्वोक्त।

(iv) दुरालभाद्य घृत : यवासा, गोखरु, सारिवा चारों पर्णी, बला मूल, पर्पट।

(v) पंचपंचमूल घृत : कटंक पंचमूल, दशमूल, जीवनीय पंचमूल।

(vi) दशमूल घृत : दशमूल, पिप्पली, घृत।

(vii) खर्जूरादि घृत : खर्जूर, द्राक्षा, पिप्पली, घृत।

(viii) बलादि क्षीर : बलामूल, सारिवा, प्रश्निपर्णी, बृहती, खर्जूर एवं घृत।

6. तैल

मात्रा : आवश्यकतानुसार

(i) चन्दनादि तैल

(ii) लाक्षादि तैल

(iii) चन्दनबलालाक्षादि तैल

7. अवलेह/पाक

मात्रा	:	15 – 20 ग्राम
अनुपान	:	दुग्ध
(i) वासावलेह	:	पूर्वोक्त
(ii) सितोपलादि लेह	:	सिता, दालचीनी, पिप्पली, वंशलोचन, शहद, घृत।
(iii) च्यवनप्राश	:	आंवला, दशमूल, मुलैठी, पुष्करमूल, जीवक, शतावरी, चीनी, घृत, शहद।
(iv) तालीसादि लेह	:	तालीस, मरिच, शुण्ठी, पिप्पली, वंशलोचन, शहद, घृत।
(v) सर्पिगुड़	:	आमलकी , विदारीकन्द, इक्षु, गोघृत, गोदुग्ध, मिश्री एवं मधु।
(vi) कूष्माण्डावलेह	:	कूष्माण्ड, आंवला, शर्करा, दुग्ध।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रातः सांयम्

स्वर्णबसन्तमालती	:	125 मि.ग्रा.
प्रवाल पंचामृत	:	250 मि.ग्रा.
चौंसठ प्रहरी पिप्पली	:	250 मि.ग्रा.
सितोपलादि	:	2 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

एलादिवटी	:	2–2 गोली चूषणार्थ, 3–4 बार दिन भर में
द्राक्षारिष्ट	:	20 मि.ली.
समभाग जल से	:	1x2 मात्रा

(3) च्यवनप्राश अवलेह : 20 ग्राम

दूध से : 1x2 मात्रा

(4) रात्रि

आरोग्यवर्धनी वटी	:	2 गोली
दूध से	:	1 मात्रा

आवस्थिक चिकित्सा

I. कास, श्वास एवं पार्श्वशूल होने पर

(1) प्रातः सांयम्

श्वास कुठार रस	:	250 मि.ग्रा.
श्रृंग भस्म	:	500 मि.ग्रा.
तालिसादि चूर्ण	:	3 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

II. रक्तष्ठीवन होने पर

(1) प्रातः सांयम्

बोल बद्ध रस	:	500 मि.ग्रा.
प्रवाल पिष्टी	:	500 मि.ग्रा.
नागकेशर चूर्ण	:	1 ग्राम
शहद से	:	1x3 मात्रा

III. अतिस्वेद होने पर

(1) प्रातः सांयम्

प्रवाल पिष्टी	:	500 मि.ग्रा.
गुडुची सत्व	:	1 ग्राम
शहद से	:	1x3 मात्रा

IV. मंद-मंद ज्वर की स्थिति में

(1) प्रातः सांयम्

बसन्त मालती रस	:	125 मि.ग्रा.
गोदन्ती भस्म	:	250 मि.ग्रा.
गुडुची सत्व	:	1 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) दौर्बल्य की स्थिति में

जीवन्त्यादि घृत : 20 मि.ली.

दूध से : 1x2 मात्रा

(3) अग्निमांद्य की स्थिति में- भोजन से पूर्व

यवानी षाडव चूर्ण : 3 ग्राम

कोष्ण दूध से : 1x2 मात्रा

(4) दाह प्रशमनार्थ

चन्दनादि तैल या शतधौत घृत का स्थानिक अभ्यंग।

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
मांस एवं मांस रस, विशेषकर तीतर, बकरे का मांस, यव, गोधूम, साठी चावल, मूंग, कुलत्थ, बाजरे का प्रयोग, समस्त हरे शाक, अल्प मात्रा में मद्य, मक्खन, दूध, घी, दही, (मुख्यत: बकरी का), अनार, संतरा, सेब, अंगूर, अंजीर, आलू बुखारा, अखरोट, बादाम, मुनक्का, पिस्ता, सोंठ, पीपर, लवंग, एला, लहसुन, दालचीनी आदि।	अभ्यंग, उबटन, स्नान, अजा के मध्य निवास, पूर्ण विश्राम, स्वच्छ वातावरण में निवास, ब्रह्मचर्य पालन, सदाचार का पालन, ईश्वर ध्यान, प्रसन्न रहना आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
रुक्ष अन्न पान सेवन, विरुद्ध आहार, विदाही एवं तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन, राई, करेला, कुन्दरु, ताम्बूल , अम्ल, तिक्त, कटु एवं कषाय रस युक्त पदार्थ, तैल, हींग, उड़द, क्षार आदि।	श्रम, क्रोध, शोक, प्रजागरण, दिवा स्वप्न, स्त्री प्रसंग, अति मैथुन, अति साहस, वेग धारण, व्यायाम आदि।

Latest Developments

PULMONARY TUBERCULOSIS

आयुर्वेदोक्त राजयक्ष्मा का साम्य आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Pulmonary Tuberculosis नामक रोग से किया जा सकता है जो कि Mycobacterium tuberculosis नामक द्वारा जीवाणु द्वारा होने वाली व्याधि है।

इस रोग का मुख्य कारण शरीर की व्याधिप्रतिरोधक क्षमता Immunity का ह्रास होना है। Immunity कम होने से शरीर में जीवाणु का आक्रमण शीघ्रता से होता है। Lungs में Lymph vessels कम होने से वहां पर यह रोग सर्वाधिक होता है तथा आमाशय में यह रोग नहीं होता है। Lungs के Apex (ऊपरी भाग) में यह रोग सर्वाधिक होता है इसके निम्न कारण हैं—

1. ऊपरी भाग टेढ़ा होने से वायु का आवागमन कम होता है।
2. ऊपरी भाग Clavicle से दबा रहता है तथा neck का भी दबाव पड़ने से यह भाग दुर्बल हो जाता है एवं प्राय: विकृति प्रथमत: यहीं होती है।

यह एक चिरकालीन रोग है तथा धीर-धीरे बढ़ता है। जीवाणु संक्रमण होने के पश्चात् फुफ्फुस में Tubercles बनते हैं जो क्रमश: Caseation, Softening, Cavitation. Haemorrhage की अवस्था से गुजरने के पश्चात् यदि शरीर की immunity अच्छी है तब रोपण प्रक्रिया होने के कारण Tubercles में Calcification हो जाता है एवं जीवाणु उसके अन्दर दब जाते हैं। कालान्तर में धीरे-धीरे Tubercles समाप्त हो जाते हैं।

Signs/Symptoms

जीवाणु संक्रमण के निम्न लक्षण रोगी के शरीर में प्रकट होते हैं—

1. Low or mild grade fever at night.
2. Tachycardia.
3. Burning in palms & feet.
4. Cough.
5. Productive Cough.
6. Haemoptysis in later stage.
7. Weight loss.
8. Chest pain.
9. Weakness.
10. Night Sweats.

Investigations

1. X-Ray Chest PA view
2. Sputum culture for AFB
3. Tuberculin test (Mantoux Test)
4. Complete Blood Count.
5. E.S.R.

Management : Principles

1. The management of Pulmonary tuberculosis calls for exposure to multiple drugs for several months, briefly 6 months for Pulmonary Tuberculosis.
2. First line drugs for A.T.T. i.e. Isoniazid-300mg, Pyrazinamide (20mg), Rifampicin (600mg), Ethambutol (2.5gm) Streptomycin (1gm) per day should be given at least for 6 months.
3. Drugs are to be given in adequate doses for adequate duration.
4. In pregnant women Streptomycin should not be used.
5. To prevent side or addverse effects of these drugs hepatoprotective drugs, Vit B_6 should be given with the therapy.
6. Adequate nutrition, proteins and minerals should be given.
7. Avoidance of physical exhaustion.
8. Monthly follow up to assess progress should be done.
9. Liver functions should be monitored.
10. If any complications occur as toxic effects of the drugs, immediate hospitalisation of the patient is advised.

अध्याय-6

क्षत-क्षीण

(PULMONARY ABSCESS)

व्याधि परिचय

आयुर्वेद में वर्णित क्षत-क्षीण नामक रोग राजयक्ष्मा का एक प्रमुख हेतु है। अर्थात् क्षत या आघात के पश्चात् रोगी क्षीण होता है। क्षत एवं क्षीण एक साथ मिलकर विशेष लक्षण युक्त रोग उत्पन्न करते हैं जो कि मुख्यत: उर:प्रदेश (Lungs) में होता है। आचार्य चरक ने अपस्मार चिकित्सा के बाद क्षत-क्षीण का वर्णन किया है तथा आचार्य सुश्रुत ने इसका पृथकत: वर्णन नहीं किया है। किसी भी कारण से उर:प्रदेश में क्षत होने से यह व्याधि उत्पन्न हो सकती है तथा क्षत-क्षीण के रोगी में क्षीणता होना आवश्यक है। उर:क्षत की उपेक्षा करने से राजयक्ष्मा रोग होने की प्रबल सम्भावना रहती है[1]।

प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ

1. चरक संहिता : चिकित्सा स्थान-अध्याय 11
2. सुश्रुत संहिता : शोष प्रतिषेध उत्तरतंत्र-अध्याय 41
3. माधव निदान-अध्याय 10

निदान

1. **सामान्य निदान[2]—**

क्षत-क्षीण के सामान्य निदान निम्न हैं

(i) शक्ति से अधिक बल लगाकर बार-बार धनुष की डोर चढ़ाना।
(ii) अधिक भार उठाना।
(iii) विषम या ऊंचे स्थान से गिरना।
(iv) दौड़ते हुये बैल या घोड़े को रोकना।

---

1. "उपेक्षिते भवेत्तस्मिन्ननुबन्धो हि यक्ष्मण:।" (च.चि. 11/95)
2. "धनुषाऽऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम्। पततो विषमोच्चेभ्यो बलिभि: सह युद्धत:॥
वृषं हयं वा धावन्तंदभ्यं वाऽन्यं निगृह्णत:। शिलाकाष्ठाभ्यनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नत: परान्॥
..... समुदीर्यते॥" (च.चि. 11/4-7)

(v) काष्ठ या पत्थर को दूर तक फेंकना।
(vi) महानदी में तैरना।
(vii) तेज गति वाले वाहनों के साथ दौड़ना।

विशिष्ट निदान[1]

आचार्य चरक ने उपर्युक्त निदानों के अतिरिक्त क्षत-क्षीण के कुछ विशिष्ट निदानों का वर्णन किया है जो निम्न प्रकार हैं—

(i) व्यायाम आदि कार्य शक्ति से अधिक करना।
(ii) उत्तम भोजन न मिलना।
(iii) दुर्बल होने पर भी अतिमैथुन में प्रवृत्त होना।

सम्प्राप्ति[2]

अल्प, रूक्ष एवं प्रमिताशन करते हुये अति मैथुन में प्रसक्त रहने वाले व्यक्ति के वक्षस्थल में पीड़ा होती है, वक्ष प्रदेश फट जाता है एवं उस में टूटने के समान पीड़ा होती है। अंग सूखने लगते हैं तथा फुफ्फुस में क्षत होने से रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है तथा शुक्र एवं ओज का क्षय होने से भी रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है।

सम्प्राप्ति चक्र

रुक्ष, अल्प, प्रमिताशन+अति स्त्री सेवन
↓
कुपित त्रिदोष
↓
वक्ष प्रदेश में प्रवेश
↓
तीव्र पीड़ा
↓
पार्श्वशूल एवं रक्त मिश्रित कफ की प्रवृत्ति
↓
फुफ्फुस में क्षत
↓
शुक्र-ओज-क्षय
↓
क्षत-क्षीण

---

1. "स्त्रीषु चातिप्रसक्तत्व रुक्षाल्पप्रमिताशिनः।" (च.चि. 11/8)
2. "उरो विरुज्यते तस्य भिद्यतेऽथ विभज्यते। प्रपीड्येते ततः पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते॥
क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते। ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निवधादपि॥"
(च.चि. 11/9-10)

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	त्रिदोष
दूष्य	:	रसादि धातु
स्त्रोतस्	:	प्राणवह, रसवह
अधिष्ठान	:	वक्ष प्रदेश
स्त्रोतोदुष्टि	:	विमार्गगमन
स्वभाव	:	दारुण
साध्यासाध्यता	:	कृच्छ्रसाध्य

भेद

शास्त्रों में क्षत-क्षीण के भेदों का वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

पूर्वरूप[1]

उर:क्षत के पूर्वरूप अव्यक्त हैं। इसमें सहसा ही उपरोक्त निदानों के सेवन से उर:प्रदेश में क्षत उत्पन्न हो जाता है एवं लक्षणों की उत्पत्ति होती है। उर:क्षत के लक्षण ही रोग का सूचक हैं।

उर:क्षत[2] एवं क्षीण[3] के सामान्य लक्षण

उर:क्षत एवं क्षीण, पृथक्-पृथक् व्याधि न होकर एक ही व्याधि की दो अवस्थायें हैं इनके लक्षण निम्न प्रकार हैं—

उर:क्षत के लक्षण

(i) उर:प्रदेश में पीड़ा (Pain in chest)
(ii) रक्त वमन (Haemetemesis)
(iii) कास (Cough)

क्षीण के लक्षण

(i) सरक्त मूत्रता (Haematuria)
(ii) पार्श्व ग्रह (Stiffness in chest)
(iii) पृष्ठ ग्रह (Stiffness in back)
(iv) कटि ग्रह (Lumbar Stiffness)

सापेक्ष निदान

राजयक्ष्मा प्रकरण में वर्णित हैं।

---

1. "अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम्।" (च.चि. 11/12)
2. "उरोरुक्शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकैः क्षते।" (च.चि. 11/13)
3. "क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः॥" (च.चि. 11/13)

साध्यासाध्यता[1]

निम्न लक्षणों के आधार पर साध्यासाध्यता का निर्धारण कर सकते हैं—

साध्यता के लक्षण

निम्न लक्षणों से युक्त क्षतक्षीण का रोगी साध्य होता है—

(i) बलवान रोगी (Healthy Patient)

(ii) नूतन रोग (Early Stage)

(iii) जठराग्नि दीप्त हो (Good appetite)

(iv) अल्प लक्षणों से युक्त (Minimal Signs/Symptoms)

असाध्यता के लक्षण

निम्न लक्षणों से युक्त क्षतक्षीण का रोगी असाध्य होता है—

(i) एक वर्ष पुराना (Chronic Case)

(ii) दुर्बल रोगी (Weak Patient)

(iii) सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त (Disease presenting with all Signs & Symptoms)

चिकित्सा सिद्धान्त

1. सर्वप्रथम प्रवृत्त रक्त को रोकने के उपाय करने चाहिये। इसके लिऐ संधानीय द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।
2. धातु क्षय को दूर करने के लिये बृंहण द्रव्यों का प्रयोग तत्काल करें[2]।
3. अग्नि वृद्धि के उपाय करने चाहियें, दीपनीय-पाचनीय द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।
4. राजयक्ष्मा की चिकित्सा में वर्णित चिकित्सा सिद्धान्तों का प्रयोग क्षतक्षीण चिकित्सा में भी लाभप्रद है।

चिकित्सा

शास्त्रों में वर्णित क्षतक्षीण की चिकित्सा निम्नानुसार करने का विधान है—

---

1. "अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः।
परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गं तु वर्जयेत्॥" (च.चि. 11/14)
2. "यद्यत् संतर्पणं शीतममविदाहि हितं लघु।
अन्नपानं निषेव्यं तत्क्षतक्षीणैः सुखार्थिभिः॥" (च.चि. 11/93)

1. संशोधन चिकित्सा

क्षतक्षीण के सन्दर्भ में स्पष्टतः संशोधन चिकित्सा देने का निर्देश नहीं है। उरःक्षत की चिकित्सा में वर्णित विभिन्न घृतों का प्रयोग क्षतक्षीण के रोगियों में स्नेहनार्थ किया जाता है।

2. संशमन चिकित्सा

क्षतक्षीण की चिकित्सा में वर्णित विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्न अनुसार हैं

1. रस/भस्म/पिष्टी

मात्रा	:	125–250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	शहद/जल
(i) बोल पर्पटी	:	बोल, पारद, गंधक
(ii) बोलबद्ध रस	:	बोल, पारद, गंधक, नागकेशर
(iii) रक्तपित्तान्तक रस	:	अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, पारद, गंधक, हरताल
(iv) चन्दनादि लौह	:	रक्त चन्दन, नेत्रवाला, पाठा, खश, पिप्पली, लौहभस्म

2. वटी

मात्रा	:	250–500 मि.ग्रा.
अनुपान	:	जल
(i) एलादि वटी	:	एला, दालचीनी, तेजपत्र, मुलेठी, खजूर।

3. चूर्ण

मात्रा	:	3–6 ग्राम
अनुपान	:	जल
(i) लाक्षादि चूर्ण	:	लाक्षा।
(ii) उशीरादि चूर्ण	:	उशीर (खश)।
(iii) मधुकादि चूर्ण	:	महुआ, मुलेठी, द्राक्षा।

4. क्वाथ/आसव/अरिष्ट

मात्रा	:	20–30 मि.ली.
अनुपान	:	जल

(i) उशीरासव : उशीर, चन्दन, नागकेशर।

(ii) चन्दनासव : श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, मधूक, धातकी, गुड़।

(iii) द्राक्षारिष्ट, खर्जूरासव : पूर्वोक्त।

5. **घृत/तैल**

मात्रा : 10-30 मि.ली.

अनुपान : ऊष्ण जल

(i) श्वदंष्ट्रादि घृत : गोक्षुर, खश, मंजीठ, बलामूल, गम्भारी छाल, घृत।

(ii) अमृतप्राश घृत : जीवक, ऋषभक, मूसली, जीवन्ती, सोंठ, घृत।

(iii) जीवन्त्यादि घृत : राजयक्ष्मा में वर्णित है।

6. **पाक/अवलेह**

मात्रा : 15-20 ग्राम

अनुपान : दुग्ध

(i) सर्पिगुड़ : राजयक्ष्मोक्त।

(ii) च्यवनप्राश : राजयक्ष्मोक्त।

(iii) द्राक्षावलेह : द्राक्षा, खर्जूर, हरीतकी।

(iv) खर्जूरावलेह : खर्जूर, द्राक्षा, पिप्पली।

7. **कल्प प्रयोग**

आचार्य चरक ने क्षतक्षीण चिकित्सा में 'नागबला कल्प' के प्रयोग का निर्देश किया है—

मात्रा : 6-48 ग्राम तक

अनुपान : दुग्ध

(i) नागबला कल्प : प्रथम दिन $\frac{1}{2}$ कर्ष (6 ग्राम) नागबला चूर्ण का प्रयोग प्रारंभ करके प्रतिदिन $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ कर्ष (6 ग्राम) बढ़ाते हुये एक पल (48 ग्राम) तक बढ़ाना चाहिये पश्चात् $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ कर्ष (6 ग्राम) कम करते हुये $\frac{1}{2}$ कर्ष (6 ग्राम) मात्रा तक पुनः आना चाहिये।

इसका प्रयोग एक माह तक करना चाहिये एवं नागबला चूर्ण को दुग्ध के अनुपान से सेवन करना चाहिये।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रातः सांयम्

लाक्षा चूर्ण	:	3 ग्राम
मधुयष्ठी चूर्ण	:	2 ग्राम
बोल पर्पटी	:	500 मि.ग्रा.
दुग्ध से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

एलादि वटी	:	2 वटी 1x3 मात्रा–चूषणार्थ

(3) उशीरासव : 20 मि.ली.

समभाग जल से : 1x2 मात्रा

(4) रात्रि

सर्पिगुड़	:	20 ग्राम
दूध से	:	1 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
लघु, सुपाच्य, बृंहण आहार, सिंघाड़ा, चावल, गेहूं, मूंग, अनार, आंवला मौसमी का रस, अंगूर, गाजर, पपीता, सेब, मुनक्का, कूष्माण्ड, लौकी, तोरई, मेथी, पालक, परवल, करेला, टिण्डा, कमलनाल, कमलगट्टा आदि।	पूर्ण विश्राम एवं राजयक्ष्मा में वर्णित समस्त विहार पथ्य हैं।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, विष्टम्भी, विदाही, ऊष्ण, तीक्ष्ण, अधिक मिर्चमसालेदार भोजन, आलू, बेसन, पिष्टमयपदार्थ, तैल, इमली आदि।	साहसिक कार्य, अध्वगमन, सीढ़ी चढ़ना, दौड़ना, मैथुन, अतिक्षय आदि।

योग/प्राकृतिक चिकित्सा

प्राणायाम एवं शवासन का अभ्यास क्षतक्षीण के रोगी में लाभदायक सिद्ध होता है।

Latest Developments

PULMONARY ABSCESS

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Pulmonary Abscess का साम्य क्षतक्षीण नामक रोग से किया जा सकता है। Lung के एक भाग में क्षत या Abscess हो जाने पर क्षतक्षीण के समान लक्षण उत्पन्न होते हैं।

इसका कारण Bacterial infections हैं। Streptococcus, Pneumococcus & Staphylococcus इसके मुख्य कारण हैं। इसके अतिरिक्त Chronic Cough, Pulmonary T.B. एवं Lung cancer में भी इस तरह के लक्षण मिलते हैं।

Signs/Symptoms

1. Chest pain.
2. Fever & Chills.
3. Bad smell in breath.
4. Fever declines with perspiration.
5. Cough.
6. Haemoptysis
7. Weakness.

Management : Principles

1. To treat the causitive factor, appropriate antibiotics should be given.
2. Proper nutrition should be maintained.
3. Rest should be advised to the patient.
4. Symptomatic treatment for pain, cough & weakness should be given.
5. Antipyretics should be given to the patient.

अध्याय-7

शोष

(CONSUMPTION / EMACIATION)

व्याधि परिचय

'शोष' मुख्यतः धातुक्षय एवं बल क्षय का परिणाम है एवं शोष ही कालान्तर में राजयक्ष्मा में परिणित हो जाता है। 'शोष' एवं राजयक्ष्मा में मुख्य अन्तर 'ज्वर' का है। शोष ज्वर रहित क्षय की अवस्था मात्र है किन्तु राजयक्ष्मा में ज्वर सहित कास, रक्तष्ठीवन आदि लक्षण भी पाये जाते हैं।

आचार्य चरक ने शोष का पृथकतः वर्णन नहीं किया है। आचार्य सुश्रुत ने शोष का वर्णन करते हुये विभिन्न भेदों का वर्णन किया है तथा 'शोष' को राजयक्ष्मा से भिन्न बताया है[1]। शोष भिन्न-भिन्न कारणों से उत्पन्न होता है परन्तु उसमें क्षय की अवस्था एक समान होती है।

निरुक्ति

''व्यवायादिजनित धातुशोषणमात्रेण राजयक्ष्मत्वंनिरस्यन्नाह-व्यवायेत्यादि।''

(मधुकोश)

शोष यक्ष्मा से भिन्न अति व्यवायादि कारणों से उत्पन्न धातुशोष की स्थिति है अर्थात् शोष में धातुक्षय ही मूल विकृति है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. सुश्रुत संहिता : उत्तर तंत्र-अध्याय 41
2. चरक संहिता : निदान स्थान-अध्याय 6
3. अष्टाङ्ग हृदय-शोष प्रतिषेध प्रकरण
4. माधव निदान, प्रथम खण्ड-अध्याय 10
5. भाव प्रकाश-अध्याय 11

---

1. ''केषांचिदेवं शोषो हि कारणैर्भेदमागतः। न तत्र दोषलिङ्गानां समस्तानां निपातनम्॥ क्षया एव हि ते ज्ञेया प्रत्येकं धातुसंज्ञिताः।'' (सु.उ.त. 41/26-27)

निदान[1]

आचार्य सुश्रुत ने निम्न सात कारणों से शोष की उत्पत्ति बतलाई है—

1. अति व्यवाय (शुक्र क्षय)
2. अति शोक (मज्जा क्षय)
3. वृद्धावस्था (अस्थि क्षय)
4. अति व्यायाम (मेद क्षय)
5. अति अध्वगमन (मांस क्षय)
6. व्रण (रक्त क्षय)
7. उर:क्षत (रक्त क्षय)

इसके अतिरिक्त आचार्य सुश्रुत ने उपवास को भी शोष का कारण बताया है। उपरोक्त समस्त हेतुओं से धातु क्षय उत्पन्न होता है।

सम्प्राप्ति

उपरोक्त कारणों से अनुलोम व प्रतिलोम क्रम से रस रक्तादि धातुओं का निर्माण व पोषण प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप उत्तरोत्तर धातु क्षय होकर शोष की स्थिति उत्पन्न होती है।

सम्प्राप्ति चक्र

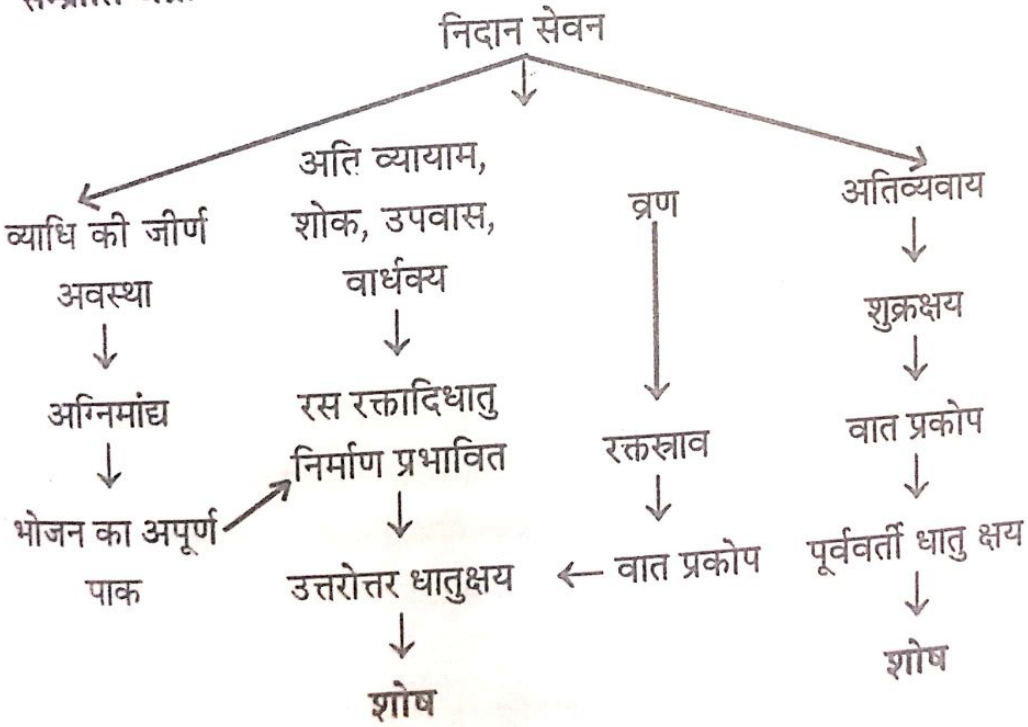

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वात प्रधान
दूष्य	:	रसादि धातुयें
स्रोतस्	:	रसवह, रक्तवह, प्राणवह

1. "व्यवायशोकस्थाविर्यव्यायामाध्वोपवासतः। व्रणोर:क्षतपीडाभ्यां शोषानन्ये वदन्ति हि॥" (सु.उ.त. 41/16)

अधिष्ठान	:	फुफ्फस, सर्वशरीर
स्वभाव	:	मृदु, दारुण (अवस्थानुसार)
अग्निदुष्टि	:	अग्निमांद्य
साध्यासाध्यता	:	साध्य

भेद[1]

आचार्य सुश्रुत ने शोष के 7 भेद वर्णित किऐ हैं—

1. व्यवाय शोष
2. शोक जन्य शोष
3. वार्धक्य शोष
4. अध्व शोष
5. व्यायामजन्य शोष
6. व्रण जन्य शोष
7. उर:क्षत जन्य शोष

शोष के भेदानुसार लक्षण

शास्त्रों में वर्णित शोष के विभिन्न भेदों के लक्षण निम्नानुसार हैं—

1. **व्यवाय शोष के लक्षण**[2]—(Emaciation due to excessive sexual activity)

(i) मेढ्र वृषण वेदना (Pain in Penis & scrotum)
(ii) अशक्ति मैथुन (Coital inability)
(iii) चिरात्प्रसेक (Delayed ejaculation)
(iv) अल्प प्रसेक (Scanty ejaculation)
(v) रक्त शुक्र दर्शन (Bleeding during ejaculation)
(vi) पाण्डु (Anaemia)
(vii) धातु क्षय (Decay of Dhatus)

2. **शोकजन्य शोष के लक्षण**[3]—(Emaciation & consumption due to anxiety grief).

(i) चिन्ता (Anxiety)
(ii) स्रस्ताङ्ग (शिथिलता) (Flaccidity)

---

1. "व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामध्वशोषितान्। व्रणोर:क्षतसंज्ञौ च शोषितौ लक्षणैः शृणु॥" (यो.र. 11)
2. "व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः। पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः॥" (सु.उ. 41/17)
3. "प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः। बिना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरभिलक्षितः॥" (सु.उ. 41/18)

(iii) पाण्डु (Anaemia)

(iv) शुक्रक्षय (Scanty semen)

(v) शुक्रक्षय जन्य लक्षणों की अनुपस्थिति।

3. **जरा शोष के लक्षण**[1]—(Senile Emaciation)

(i) कृशता (Weakness)

(ii) बल, बुद्धि, वीर्य, इन्द्रियदौर्बल्य (Vital & sensorial weakness)

(iii) कम्पन (Tremors)

(iv) अरुचि (Anorexia)

(v) क्षीणस्वर (Humble voice)

(vi) शुष्क कास (Dry cough)

(vii) अरति (Drepressive feeling)

(viii) अक्षि, मुख, नासास्राव (Discharges from eyes, nose & mouth)

(ix) रुक्ष छवि (Loss of lusture)

4. **अध्व शोष के लक्षण**[2]—(Emaciation due to excessive travelling)

(i) शिथिलता (Flaccidity of limbs)

(ii) परुष छवि (Loss of lusture)

(iii) प्रसुप्त गात्रावयव (Numbness of body)

(iv) शुष्क तालु (Dryness of Palate)

(v) शुष्क गाल (Dryness of throat)

(vi) मुखशोष (Dryness of mouth)

5. **व्यायाम शोष के लक्षण**[3]—(Emaciation due to excessive exercise)

अध्व शोष के समस्त लक्षण तथा उर:क्षत को छोड़ समस्त शोषों के लक्षण व्यायाम शोष में पाये जाते हैं।

---

1. "जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः। कम्पनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः॥
ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारुचिपीड़ितः। सम्प्रस्रुतास्यनासाऽक्षः शुष्करुक्षमलच्छविः॥"
(सु.उ. 41/19-20)

2. "अध्वप्रशोषी स्रस्ताङ्गः सम्भृष्टपरुषच्छविः। प्रसुप्तगात्रावयव शुष्कक्लोमगलाननः॥"
(सु.उ. 41/21)

3. "व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः। उरःक्षतकृतैर्लिङ्गैः संयुक्तश्च क्षताद्विना॥"
(सु.उ. 41/22)

6. **व्रण शोष के लक्षण**[1]—(Emaciation due to wound)

(i) रक्तक्षय (Loss of blood)

(ii) व्रण वेदना (Pain in the wound)

(iii) असाध्यता (Intractability)

आचार्य सुश्रुत ने व्रणशोष को असाध्यतम कहा है। प्रमेह पिड़िका तथा मधुमेह में पादव्रण (Diabetic foot) के रोगियों में व्रणशोष सामान्यतः देखा जाता है जहां पर व्रण की उपस्थिति तथा आहार नियन्त्रण के कारण काठिन्य शोष उत्पन्न हो जाता है जो कि असाध्य होता है।

7. **उरःक्षत के लक्षण**—इसका पूर्व अध्याय में सविस्तार वर्णन किया गया है।

(i) उरोरुक (Chest Pain)

(ii) शोणित वमन (Haematemesis)

(iii) कास (Cough)

(iv) क्षय (Emaciation)

सापेक्ष निदान

राजयक्ष्मा प्रकरण में सापेक्ष निदान वर्णित है।

साध्यासाध्यता

आचार्यों ने शोष की साध्यासाध्यता का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है।

1. व्यवाय शोष, व्यायाम शोष, अध्वशोष एवं शोक शोष कष्ट साध्य हैं।
2. जरा शोष याप्य है।
3. व्रणशोष एवं उरःक्षत प्रारम्भिक अवस्था में कष्टसाध्य किन्तु जीर्ण अवस्था में असाध्य होते हैं।

चिकित्सा सिद्धान्त

शास्त्र में शोष के विभिन्न भेदों के चिकित्सा सिद्धान्त निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. **व्यवाय शोष**[2]

(i) दुग्ध, मांस रस, घृत आदि बृंहणीय द्रव्यों का विशेष प्रयोग करना चाहिये।

(ii) सुगन्धित पुष्प-इत्र एवं जीवनीय द्रव्यों का सेवन करना चाहिये।

---

1. "रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात्। व्रणितस्यभवेच्छोषः स चासाध्यतमः स्मृतः॥" (सु.उ. 41/23)
2. "व्यवायशोषिणं क्षीररसमांसाज्यभोजनैः। मुकुलैर्मधुरैर्गन्धैर्जीवनीयरुपाचरेत्॥" (यो.र. राजयक्ष्मा चि.)

2. **व्यवाय एवं उरःक्षत जन्य शोष**[1]

(i) स्निग्ध, श्लेष्म वर्धक, शीतल एवं जीवनीय द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।

(ii) लाक्षा चूर्ण एवं सद्य-संतर्पण का प्रयोग हितकर है।

3. **व्रण शोष**[2]

(i) स्निग्ध, शीतल, लघु एवं मधुर अन्न का सेवन हितकारी है।

(ii) दीपन एवं पाचन औषध एवं आहार द्रव्यों का प्रयोग प्रशस्त है।

4. **शोक शोष**[3]

(i) स्निग्ध, मधुर, शीतल भोजन एवं दुग्ध का सेवन करना चाहिये।

(ii) रोगी को आश्वासन देना चाहिये एवं प्रसन्न रखने के उपाय करना चाहिये।

5. **जरा शोष**

(i) वातशामक, दीपन, पाचन चिकित्सा करना चाहिये।

(ii) लघु एवं बृंहण पदार्थ, क्षीर एवं मांस रस का सेवन हितकर है।

(iii) बल्य तैलों द्वारा अभ्यंग करना भी श्रेष्ठ है।

6. **अध्व शोष**[4]

(i) मधुर, शीतल एवं बृंहण भोजन देना चाहिये।

(ii) विशेषकर मांस रस का प्रयोग करना चाहिये।

(iii) शांत रोगी को दिवाशयन, विश्राम तथा अभ्यंग कराना चाहिये।

(iv) यूष का सेवन करना चाहिये।

शोष के सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त

1. सर्वप्रथम निदान परिवर्जन करना चाहिये।
2. शोष के रोगी में संशोधन कर्म वर्ज्य है। परन्तु स्रोतोरोध एवं मल संचय की स्थिति में मृदु संशोधन दिया जा सकता है।

---

1. "व्यायामशोषिणः स्निग्धैः क्षतक्षयहितैर्हिमैः। उपचारैर्जीवनीयैर्विधिना श्लेष्मिकेण तु॥" (यो.र. राजयक्ष्मा चि.)
2. "व्रणशोषं जयेत्स्निग्धैर्दीपनैः स्वादुभोजनैः। दीपनैर्लघुभिश्चान्नैः शोकशोषमुपाचरेत्॥" (यो.र. राजयक्ष्मा चि.)
3. "हर्षणाश्वासनैः क्षीरैः स्निग्धैर्मधुरशीतलैः।" (यो.र. राजयक्ष्मा)
4. "आस्यासुखैर्दिवास्वप्नैः शीतैर्मधुरबृंहणैः। तत्र मांसरसाहारैरध्व शोषिणमाचरेत्॥ इक्षुदम्लैरनम्लैर्वा यूषमांसरसादिभिः॥" (यो.र. राजयक्ष्मा)

3. संशमन चिकित्सा के लिये बृंहण, बल्य एवं पोषक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।
4. एकल औषधियों का प्रयोग भी शोष में लाभकारी है। यथा-जीवन्ती, बला, शतावरी, यष्ठीमधु, अश्वगंधा, पुनर्नवामूल, विदारीकन्द, रास्ना, कुष्माण्ड का प्रयोग।

चिकित्सा

शोष की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार प्रस्तुत है-

I. **संशोधन चिकित्सा**—निषेध है।

II. **संशमन चिकित्सा**

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	:	125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	शहद/ऊष्ण जल
(i) शिलाजत्वादि लौह	:	पूर्वोक्त।
(ii) राजमृगांक रस	:	पूर्वोक्त।
(iii) मुक्ता पंचामृत	:	प्रवाल, मुक्ता।
(iv) प्रवाल पंचामृत	:	प्रवाल।
(v) श्रृंगभस्म	:	पूर्वोक्त।
(vi) चन्द्रामृत रस	:	कासोक्त।

2. **वटी**

मात्रा	:	250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान	:	जल
(i) चन्द्रप्रभा वटी	:	त्रिफला, त्रिमद, षड्‌षण, शिलाजीत, गुग्गुलु लौह भस्म।
(ii) एलादि वटी	:	पूर्वोक्त।

3. **चूर्ण**

मात्रा	:	3 - 6 ग्राम
अनुपान	:	जल
(i) सैंधवादि चूर्ण	:	सैंधव, सोंठ, सौवर्चल, वृक्षाम्ल, अनारदाना, तुलसीपत्र।

(ii) तालिसादि चूर्ण : पूर्वोक्त।

(iii) सितोपलादि चूर्ण : पूर्वोक्त।

4. **क्वाथ/आसव/अरिष्ट**

मात्रा : 20 - 30 मि.ली.

अनुपान : जल

(i) उशीरासव : पूर्वोक्त।

(ii) चन्दनासव : पूर्वोक्त।

(iii) द्राक्षारिष्ट : पूर्वोक्त।

(iv) खर्जूरासव : पूर्वोक्त।

(v) बलारिष्ट : बला, पुनर्नवा, द्राक्षा, मंजीठ, जीवन्ती।

(vi) मृद्वीकारिष्ट : मुनक्का, खर्जूर, फालसा।

5. **घृत**

मात्रा : 20 - 30 मि.ली.

अनुपान : ऊष्ण जल

(i) पिप्पली घृत : पिप्पली, घृत, शुण्ठी, आमलकी

(ii) रास्ना घृत : पूर्वोक्त।

(iii) छागलाद्य घृत : पूर्वोक्त।

(iv) अमृतप्राश घृत : पूर्वोक्त।

(v) श्वदंष्ट्रा घृत : पूर्वोक्त।

6. **पाक/अवलेह**

मात्रा : 15 - 20 ग्राम

अनुपान : दूध

(i) च्यवनप्राश : पूर्वोक्त।

(ii) सर्पिगुड़ : पूर्वोक्त।

(iii) खर्जूरादि लेह : पूर्वोक्त।

(iv) वासावलेह : पूर्वोक्त।

(v) कूष्माण्डावलेह : पूर्वोक्त।

आदर्श व्यवस्था पत्र

(1) पर्याप्त विश्राम

प्रातः सांयम्

(2)

प्रवाल पिष्ठी	:	500 मि.ग्रा.
राजमृगांक रस	:	125 मि.ग्रा.
शतावरी चूर्ण	:	3 ग्राम
अश्वगंधा चूर्ण	:	2 ग्राम
मधु से	:	1x2 मात्रा

(3) भोजन से पूर्व

चित्रकादि वटी	:	2 गोली 1x2 मात्रा, कोष्ण जल से

(4) भोजनोत्तर

बलारिष्ट	:	20 मि.ली.
समभाग जल से	:	1x2 मात्रा

(5) रात्रि

ब्राम्ही वटी	:	2 गोली
दूध से	:	1 मात्रा

(6) यापना बस्ति व बृंहण बस्ति का प्रयोग काल वस्तिक्रम से (16 वस्ति)

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
गेहूं, जौ, मुद्ग, पुराणशालि, अरहर, मसूर, चना, मयूर, मुर्गा, बतख, तीतर का मांस रस, नक्र के अण्डे, बकरी या गाय का दूध, मक्खन, गोघृत, वारुणी, अनार, अंगूर, सेब, पपीता, मौसमी, केला, पिण्डखर्जूर, मुनक्का, अंजीर, काजू, अखरोट, बादाम चिरौंजी आदि।	विश्राम, सुख पूर्वक बैठना, हर्ष, अचिन्त मन को प्रसन्न करने वाले वातावरण में निवास आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
रुक्ष अन्न पान, विरुद्ध आहार, विदाही पदार्थ, करेला, कन्दरु, अम्ल, तिक्त, कषाय एवं कटुरस वाले पदार्थ, तैल, हिंगु एवं क्षार युक्त पदार्थों का सेवन।	शोक, क्रोध, चिन्ता, अति व्यवाय, श्रमाधिक्य, स्वेदन, प्रजागरण, दिवास्वप्न, अति साहस आदि।

योग/प्राकृतिक उपाय

(1) शोष के रोगी को प्रात:काल खुली हवा में भ्रमण करना चाहिये।

(2) प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

Latest Developments

CONSUMPTION / EMACIATION

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के मतानुसार वे सभी अवस्थायें जिनमें धातु क्षय होता है शोष के अन्तर्गत ग्रहण की जा सकती हैं। आयुर्वेदोक्त 7 अवस्थाओं के अतिरिक्त भी Starvation (दारिद्रय), श्रमाधिक्य (Excessive exertion), कुपोषण (Protein energy malnutrition), क्रमिरोग (Helminthiasis) में तथा अनेक व्याधियों के परिणाम स्वरूप भी शोष की उत्पत्ति होती है जैसे Diabetes mellitus, Whooping Cough, Measles, Malaria, Kala-zar आदि रोगों के Complications के रूप में शोष रोग की उत्पत्ति होती है।

Management : Principles

1. To treat the underlying cause.
2. Maintain nutrition & hydration of the body.
3. Symptomatic management.

अध्याय-8

स्वरभेद

(HOARSENESS OF VOICE)

व्याधि परिचय

स्वरभेद एक विशिष्ट लक्षण है परन्तु आयुर्वेद में इसे स्वतंत्र रोग माना गया है। आचार्य चरक ने इसका पृथकत: वर्णन नहीं किया है परन्तु आचार्य सुश्रुत ने उत्तर तंत्र में एक पृथक् अध्याय में स्वरभेद का वर्णन किया है।

बोलते समय स्वरोच्चारण में होने वाले विकारों को स्वरभेद कहते हैं। इसे 'वैस्वर्य' भी कहते हैं। आधुनिक मतानुसार स्वरयन्त्र की स्थानिक विकृति तथा मस्तिष्क स्थित वाणी केंद्र में विकृति के परिणाम स्वरूप स्वरभेद होता है। यह रोग स्थानीय विकृति के परिणाम स्वरूप खर स्वरता (Hoarseness), स्वरकृच्छ्रता (Dysphasia) एवं स्वरावसाद (Aphonia) के रूप में शरीर में उत्पन्न हो सकती है। मस्तिष्कगत वाणी केंद्र में विकृति होने से पूर्ण स्वरनाश (Aphasia), गदगद वाक्य (Dysarthria) एवं वाक् कृच्छ्रता (Dysphasia) होती है।

स्वरभेद वात जन्य दोष है अत: इसका वर्णन वात व्याधि के अन्तर्गत किया गया है। आयुर्वेद में चार स्वरवाही स्रोतस माने गए हैं। इनमें से दो के द्वारा भाषण तथा दो के द्वारा 'घोष' होता है[1] तथा इनमें विकृति होने से स्वरभेद होता है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. सुश्रुत संहिता उत्तरतंत्र-अध्याय 53
2. चरक संहिता चिकित्सा स्थान-अध्याय 8
3. अष्टांग हृदय निदान स्थान-अध्याय 5
4. अष्टांग हृदय चिकित्सा स्थान-अध्याय 5
5. माधव निदान-अध्याय 13
6. भाव प्रकाश-अध्याय 15

---

1. "द्वाभ्यां भाषते, द्वाभ्यां घोषं करोति।" (सु.शा. 9/5)

निदान[1]

आचार्य सुश्रुत ने स्वरभेद के निम्न निदान वर्णित किए हैं—

1. अति उच्चभाषण
2. उच्च स्वर में पढ़ना
3. अधिक बोलना
4. अभिघात
5. विष सेवन
6. अतिशीतल वस्तुओं का सेवन

सम्प्राप्ति[2]

उपरोक्त निदानों के सेवन से प्रकुपित हुये वातादि दोष स्वरवाही स्रोतसों में प्रविष्ट कर स्वर को नष्ट या विकृत कर देते हैं एवं स्वरभेद की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन
↓
वात प्रकोप
↓
स्वरवाही स्रोतसों में प्रवेश
↓
स्वर हानि/स्वर विकृति
↓
स्वरभेद

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वात
दूष्य	:	स्वर
स्रोतस	:	स्वरवाही स्रोतस
अधिष्ठान	:	स्वरयंत्र
स्रोतोदुष्टिप्रकार	:	विमार्गगमन
स्वभाव	:	आशुकारी
साध्यासाध्यता	:	साध्य

भेद[2]

आचार्य सुश्रुत एवं वाग्भट् ने स्वरभेद के निम्न छः प्रकार माने हैं—

---

1. "अत्युच्चभाषणविषाध्ययनातिगीतशीतादिभिः प्रकुपिताः पवनादयस्तु।
स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः॥" (सु.उ.त. 53/3)
2. "दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात् षष्ठश्च भेदसा स्वरभेदो भवेत्॥" (अ.हृ.नि. 5/24)

1. वातज स्वरभेद
2. पित्तज स्वरभेद
3. कफज स्वरभेद
4. त्रिदोषज स्वरभेद
5. क्षयज स्वरभेद
6. मेदोज स्वरभेद

आचार्य चरक के मतानुसार स्वरभेद के निम्न छः भेद हैं[1]—

1. वातज स्वरभेद
2. पित्तज स्वरभेद
3. कफज स्वरभेद
4. रक्तज स्वरभेद
5. कासवेगज स्वरभेद
6. पीनस जन्य स्वरभेद

भेदानुसार स्वरभेद के लक्षण

1. **वातिक स्वरभेद के लक्षण**[2]

(i) नेत्र, मुख, मलमूत्र में कृष्णता (Blackish face, eyes, urine & faeces)

(ii) गदर्भ सम कठोर स्वर (Rough voice like donkey)

(iii) रोगी में क्षीणता (Weakness)

(iv) स्वर में रुक्षता एवं खरता (Harsh voice)

(v) कण्ठ में शूक चुभने की प्रतीति।

(vi) स्निग्ध एवं ऊष्ण सेवन से लाभ।[3]

2. **पैत्तिक स्वरभेद के लक्षण**[4]

(i) नेत्र, मुख, मल मूत्र में पीतता (Yellowish face, eyes, urine & stool)

(ii) बोलते समय कण्ठदाह (Burning in throat)

(iii) वाक् कष्ट (Dysphonia)

(3) **कफज स्वरभेद के लक्षण**[5]

(i) कण्ठ कफ से अवरुद्ध होने से रोगी धीरे-धीरे बोलता है (Slow Speech)

(ii) दिन में आसानी से बोलता है (Fluent speech during day)

(4) **त्रिदोषज स्वरभेद के लक्षण**[6]

त्रिदोषज स्वरभेद में तीनों दोषों के मिश्रित लक्षण मिलते हैं।

---

1. "वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात् कासवेगात्सपीनसात्।" (च.चि. 8/53)
2. "वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गदगदवत् स्वरं च।" (सु.उ.त. 53/4)
3. "तत्र क्षामो रुक्षश्लथः स्वरः। शूकपूर्णाभकण्ठत्वं स्निग्धोष्णोपशयोऽनिलात्।" (अ.हृ.नि. 5/24)
4. "पित्तेन पीतवदनाक्षिपुरीषमूत्रो ब्रूयादगलेन परिदाहसमन्वितेन॥" (सु.उ. 53/4)
5. "ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात्॥" (मा.नि. 13/2)
6. "सर्वात्मके भवति सर्वविकारसम्पत्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहु॥" (मा.नि. 13/3)

(5) **क्षयज स्वरभेद के लक्षण**[1]

(i) मुख व नासा से धुंआ निकलने सी प्रतीति।

(ii) क्षय के कारण वाक्शक्ति का नाश।

(iii) असाध्यता। इसका साम्य Tubercular laryngitis से किया गया है।

(6) **मेदोज स्वरभेद के लक्षण**[2]

(i) गले में मेदाच्छादित होने से रोगी का स्वर बाहर नहीं निकलता।

(ii) तृष्णाधिक्य (Polydypsia)

इसका साम्य Myxoedema से किया गया है।

साध्यासाध्यता

साध्यता

(i) वातिक, पैत्तिक, कफज एवं सन्निपातिक स्वरभेद साध्य होते हैं।

(ii) मेद रहित रोगी का मेदोज स्वरभेद साध्य होता है।[3]

(iii) नूतन एवं बलवान पुरुष में स्वरभेद साध्य होता है।

असाध्यता[4]

(i) मेदोज एवं क्षयज स्वरभेद असाध्य होते हैं।

(ii) क्षीण, वृद्ध, अतिकृश स्त्री एवं पुरुष का तथा जन्मजात एवं मेदस्वी पुरुषों का स्वरभेद असाध्य होता है।

चिकित्सा सूत्र

स्वरभेद की चिकित्सा के प्रमुख सिद्धान्त निम्न प्रकार वर्णित किए गए हैं—

1. सर्वप्रथम निदान परिवर्जन करना चाहिये।
2. रोगी को कुछ दिन मौन धारण करके स्वरवाही स्रोतस को विश्राम देना चाहिये।
3. कफ-वातहर, बलप्रद, पुष्टिदायक अन्न पान का सेवन करना चाहिये।
4. स्वरभेद में ऊष्ण क्रियाओं एवं ऊष्ण अन्नपान के प्रयोग से आराम मिलता है।

---

1. "धूप्येत् वाक् क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च वागेष चापि हतवाक् परिवर्जनीयः।" (मा.नि. 13)
2. "अन्तर्गतं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोऽन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्त्तः॥" (मा.नि. 13/4)
3. "अमेदस्विनस्तु मेदोदुष्टया यो जातः स साध्यःपूर्वमुक्त इति न विरोधः।" (मधुकोष)
4. "क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य वाऽपि, चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः।
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति॥" (मा.नि. 13/5)

5. स्वरभेद में संशोधन चिकित्सा में सामान्यतः स्वेदन, वस्ति, धूम्रपान, विरेचन-नस्य, कवलग्रह आदि कर्म सम्पादित किये जाते हैं।

विशिष्ट चिकित्सा सूत्र

1. **वातिक स्वरभेद**

वातिक स्वरभेद की चिकित्सा में भोजनोत्तर घृतपान का विधान है।

2. **पैत्तिक स्वरभेद**

(i) मधुर द्रव्यों से सिद्ध दुग्ध का प्रयोग।
(ii) सघृत मधुयष्ठी क्वाथ प्रयोग।
(iii) शतावरी, बला व लाजचूर्ण का मधु से सेवन।
(iv) संशोधन चिकित्सा में मृदु विरेचन।

3. **कफज स्वरभेद**

(i) पिप्पली, पिप्पलीमूल, मरिच एवं शुण्ठी का चूर्ण गोमूत्र के साथ सेवन।
(ii) कफशामक आहार-विहार का प्रयोग।

4. **त्रिदोषज स्वरभेद**

(i) अजमोद, हरिद्रा, आंवला, चित्रक आदि का समभाग चूर्ण मधु व घृत से सेवन।
(ii) त्रिदोष शामक आहार व औषध का प्रयोग।

5. **क्षयज व मेदोज स्वरभेद**

क्षयज व मेदोज स्वरभेद की विशिष्ट चिकित्सा क्षय रोग व मेदोरोग के समान करनी चाहिये।

चिकित्सा

स्वरभेद की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन एवं संशमन चिकित्सा का वर्णन निम्न प्रकार है—

I. संशोधन चिकित्सा

(i) स्नेहन-स्वेदन
(ii) मृदु विरेचन
(iii) वस्ति
(iv) विरेचन नस्य
(v) धूमपान
(vi) कवल ग्रह

II. संशमन चिकित्सा

स्वरभेद की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	:	125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	शहद/जल
(i) भैरवरस	:	पारद, गंधक, वत्सनाभ, टंकण, मरिच, चव्य व चित्रक।
(ii) किन्नर कण्ठ रस	:	पारद, गंधक, अभ्रक भस्म, वैक्रान्त भस्म, माक्षिक भस्म।
(iii) त्र्यम्बकाभ्र रस	:	अभ्रक, कण्टकारी, बला, गोक्षुर, हरिद्रा, आमलकी।
(iv) रसेन्द्र गुटिका	:	लौह भस्म, अभ्रक भस्म, पारद, गंधक, खर्पर, प्रवाल।

2. **वटी**

मात्रा	:	250 - 500 मि.ग्रा. (4-6 वटी)
अनुपान	:	जल/चूषणार्थ
(i) लंवगादि वटी	:	पूर्वोक्त।
(ii) एलादि वटी	:	पूर्वोक्त।
(iii) मरिच्यादि वटी	:	पूर्वोक्त।
(iv) व्योषादि वटी	:	पूर्वोक्त।

3. **चूर्ण**

मात्रा	:	3 - 6 ग्राम
अनुपान	:	जल/शहद
(i) अजमोदादि चूर्ण	:	अजमोद, हरिद्रा, आंवला।
(ii) पिप्पली चूर्ण	:	पिप्पली, पिप्पलीमूल, मरिच, सोंठ।
(iii) मधुयष्ठी चूर्ण	:	मधुयष्ठी।
(iv) चव्यादि चूर्ण	:	त्रिकटु, चव्य, अम्लवेत, इमली, तालीस पत्र।

4. **क्वाथ/आसव/अरिष्ट**

मात्रा	:	20 - 30 मि.ली.
अनुपान	:	जल

(i) कण्टकारी क्वाथ : कण्टकारी।

(ii) गोजिह्वादि क्वाथ : पूर्वोक्त।

5. घृत

मात्रा : 10 - 30 मि.ली.

अनुपान : ऊष्ण जल

(i) सारस्वत घृत : ब्राम्ही, हरिद्रा, आमलकी, कुष्ठ, त्रिवृत।

(ii) व्याघ्री घृत : रास्ना, बला, गोक्षुर, सोंठ।

(iii) भृंगराज घृत : भांगरा, गुडुची, वासा, दशमूल।

6. पाक/अवलेह

मात्रा : 15 - 20 ग्राम

अनुपान : दुग्ध

(i) निदिग्धिकावलेह : छोटी कटेरी, चित्रक, पिप्पली मूल एवं दशमूल।

(ii) कल्याणावलेह : हल्दी, वचा, मीठाकूठ, त्रिकटु, जीरा।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रातः सांयम्

भैरव रस : 250 मि.ग्रा.

मधुयष्टी चूर्ण : 2 ग्राम

त्रिकटु चूर्ण : 2 ग्राम

शहद से : 1x2 मात्रा

(2) निदिग्धिकावलेह : 20 ग्राम

दूध से : 1x2 मात्रा

(3) चूषणार्थ

मरिच्यादिवटी : 4-6 वटी, दिनभर में

(4) नमक के पानी से गरारे।

(5) भोजन एवं पान में ऊष्ण जल का प्रयोग।

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य[1]

आहार	विहार
यव, शालि, चावल, हंस, मुर्गा, मयूर का मांस रस, सुरा, गोक्षुर, मकोय, जीवन्ती, कच्ची छोटी मूली, मुनक्का, हरड़, बिजौरा नींबू, लहसुन, लवण मिश्रित आद्रक, पान, काली मरिच एवं घृत तथा कफ शामक आहार आदि।	स्वेदन, वस्ति, धूम्रपान, विरेचन, कवल धारण, नस्य, ललाट पर शिरावेध, ऊष्ण जलपान आदि।

अपथ्य[2]

आहार	विहार
कैथ का कच्चा फल, अन्य कच्चे फल, बकुल, जलीयकन्द, जामुन, तिन्दुक, कसैले फल, अम्लीय पदार्थ, खट्टे, पदार्थ, ठण्डे पदार्थ, शीतल पेय, खट्टा दही आदि।	वमन कर्म, दिवास्वप्न, अधिक बोलना ऊंचे स्वर में बात करना, चीखना चिल्लाना आदि कर्म।

Latest Developments

HOARSENESS OF VOICE

आधुनिक मतानुसार स्वरभेद को Hoarseness of voice कहा जाता है। इसका मुख्य कारण Larynx एवं उसके सहायक अंगों में विकृति होना है। साथ ही यदि Brain के Speech centre ये विकृति हो तब भी स्वर भेद उत्पन्न हो सकता है।

Signs/Symptoms

I. स्वरयंत्र (Larynx) में विकृति होने पर निम्न लक्षण मिलते हैं—

1. स्वर में रुक्षता (Hoarseness)
2. बोलने में कठिनाई (Dysphasia)
3. स्वरावसाद (Aphonia)

---

1. "स्वेदो बस्तिर्धूमपानं विरेकः कवलग्रहः। नस्यं भाले शिरावेधो यवा लोहितशालयः॥ हंसाटवीताम्रचूड़कैकिमांसरस सुरा। गोकण्टकः काकमाची जीवन्ती बालमूलकं॥" (भै.र. 17/62-63)

2. "आमं कपित्थं बकुलं शालूकं जम्बवानि च। तिन्दुकानि कषायाणि वमिं स्वप्नं प्रजल्पनम्॥ अम्लं दधि च यत्नेन स्वरभेदी विवर्जयेत्॥" (भै.र. 17/66)

II. मष्तिष्क के speech centre में विकृति होने पर निम्न लक्षण मिलते है—

1. पूर्ण स्वर नाश (Aphasia)
2. आंशिक स्वर नाश (Dysphasia)
3. गद्गद् वाक्य (Stammering of voice)

क्षयज स्वर भेद का साम्य Tubercular laryngitis से तथा मेदोज स्वरभेद का साम्य Myxoedema से किया जा सकता है।

Management : Principles

1. Treat the underlying cause of hoarseness of voice.
2. Saline gargles.
3. Symptomatic management.

अध्याय-9

हृद्रोग

(HEART DISEASES)

व्याधि परिचय

आयुर्वेद में हृद्रोगों का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है। हृद्रोगों के लक्षणों पर विचार करने से आयुर्वेदीय हृद्रोगों का वर्णन सामान्यतः 'हृद्शूल' (Angina) के सदृश प्रतीत होता है। शूल प्रकरण में भी शूल के भेदों में आचार्य माधवकर ने 'हृद्शूल' का वर्णन किया है। अतः जिन रोगों में हृदय स्थान में शूल होता है उन्हें 'हृद्रोग' के अन्तर्गत रखा गया प्रतीत होता है।

आचार्य चरक ने पृथकतः हृद्रोग का वर्णन नहीं किया है परन्तु सूत्र स्थान 17, चिकित्सा स्थान 26 तथा सिद्धि स्थान 9 में हृद्रोग का वर्णन किया है। आचार्य सुश्रुत ने उत्तर तंत्र में प्रथम अध्याय के रूप में 'हृद्रोग' का वर्णन किया है।

साधक पित्त, अवलम्बक कफ एवं व्यान वायु हृदयाश्रित होते हैं एवं हृदय की सामान्य क्रिया के लिये उत्तरदाई होते हैं। इनमें विकृति होने पर हृदय रोगों की उत्पत्ति होती है।

निरुक्ति[1]

आचार्य माधवकर ने हृदरोग की निम्न व्याख्या की है—

हृदय में होने वाले विकार हृद रोग हैं।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता सूत्रस्थान-अध्याय 17
2. चरक संहिता चिकित्सा स्थान-अध्याय 26
3. चरक संहिता सिद्धि स्थान-अध्याय 9
4. सुश्रुत संहिता उत्तर तंत्र-अध्याय 43
5. अष्टाङ्ग हृदय निदान स्थान-अध्याय 5
6. अष्टाङ्ग हृदय चिकित्सा स्थान-अध्याय 6

1. "हृदरोगमिति "वा शोकष्यञ रोगेषु"-इति रोगे परे हृदयस्य हृद्भावः, अथवा हृदोरोगो हृद्रोगः॥" (मा.नि. 29/2 पर मधुकोश)

7. माधव निदान-अध्याय 29

I. निदान

शास्त्रोक्त हृद्रोग के सामान्य एवं विशिष्ट निदान निम्नानुसार वर्णित हैं—

1. सामान्य निदान[1]

(i) अति ऊष्ण एवं रूक्षान्न सेवन।

(ii) कषाय रस का अति सेवन।

(iii) विरुद्धाशन।

(iv) अध्यशन करना।

(v) अतिश्रम, चिन्ता, भय एवं त्रास।

(vi) अधारणीय वेगों को धारण करना।

(vii) तिक्त रस एवं असात्म्य अन्न का अतिसेवन।

(viii) गुरु अन्न का अतिसेवन।

(ix) अतिलंघन करना।

(x) तीक्ष्ण विरेचन, बस्ति का प्रयोग।

(xi) रोगों का ठीक से उपचार न करना।

(xii) शरीर का अधिक कर्षण।

(xiii) शरीर पर अभिघात लगना।

(xiv) अजीर्णावस्था।

II. हृद्रोगों के भेदानुसार विशिष्ट निदान

1. वातिक हृद्रोग

शास्त्रों में वातिक हृद्रोग के निम्न विशिष्ट निदान वर्णित किए गए हैं—

(i) अति रुक्ष एवं शुष्कान्न सेवन।

(ii) अल्प भोजन एवं प्रमिताशन।

(iii) शोक, भय से ग्रस्त होना।

(iv) अतिश्रम तथा अतिलंघन।

2. पैत्तिक हृद्रोग

शास्त्रों में पैत्तिक हृद्रोग के विशिष्ट निदान निम्न अनुसार वर्णित हैं—

---

1. "व्यायामतीक्ष्णातिविरेकबस्तिचिन्ताभयत्रासगदातिचाराः।
छर्द्यामसंधारणकर्शनानि हृद्रोगकर्तृणि तथाऽभिघातः॥" (च.चि. 26/77)

(i) अम्ल, लवण एवं तिक्त रस का अति सेवन।

(ii) अजीर्ण होने पर भोजन।

(iii) अति ऊष्ण आहार सेवन।

(iv) मद्यपान एवं अतिक्रोध।

(v) आतप सेवन।

3. कफज हृद्रोग

कफज हृद्रोग के विशिष्ट निदान निम्न हैं—

(i) अति गुरु, स्निग्ध भोजन।

(ii) अतिभोजन करना।

(iii) अचिन्तन।

(iv) आलस्य एवं अधिक सोना।

4. कृमिज हृद्रोग

कृमिज हृद्रोग के विशिष्ट निदान शास्त्रों में निम्न प्रकार वर्णित हैं—

(i) त्रिदोषज हृद्रोग में घृत, क्षीर एवं गुड़ादि का सेवन।

(ii) मर्म प्रदेश में ग्रन्थि होना।

(iii) अधिक मधुर पदार्थों का सेवन।

सामान्य सम्प्राप्ति[1]

स्वनिदानों से प्रकुपित हुये, वातादि दोष हृदय में स्थित होकर रस धातु को दूषित कर हृदय के कार्यों में बाधा उत्पन्न करते हैं एवं हृद्रोग को उत्पन्न करते हैं।

आचार्य चरक ने कृमिज हृद्रोग की विशिष्ट सम्प्राप्ति का वर्णन किया है जिसके अनुसार त्रिदोषज हृद्रोग से पीड़ित रोगी जब कृमि रोगों के निदानों का सेवन करता है तो उसके हृदय के एक भाग में ग्रंथि उत्पन्न हो जाती है। इस ग्रंथि से स्रवित रस व क्लेद से वहां पर कृमियों की उत्पत्ति हो जाती है, एवं कृमि धीरे-धीरे बढ़कर हृदय को चारों ओर से दबाकर नष्ट कर देते हैं[2]।

---

1. "दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
कुर्वन्ति हृदये बाधां तं हृद्रोगं तं प्रचक्षते॥" (सु.उ. 43/4)

2. "त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते। तिलक्षीरगुडादीनि ग्रन्थिस्तस्योपजायते॥
मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चास्योपगच्छति। संक्लेदात् क्रिमयश्चास्य भवन्त्युपहतात्मनः॥
मर्मैकदेशे संजाताः सर्पन्तो भक्षयन्ति च॥" (च.सू. 17/36-38)

सम्प्राप्ति चक्र

स्वप्रकोपक निदान सेवन

↓

आहार-विहार व्यतिक्रम

↓

अग्निमांद्य

↓

साम रस धातु की उत्पत्ति (Hyperlipidaemia)

↓

स्रोतोरोध, धमनी प्रतिचय

(Atherosclerosis, Obstruction of arteries)

↓

उरोरुजा (Chest Pain)

↓

हृद्शूल/हृद्रोग

कृमिज हृद्रोग का सम्प्राप्ति चक्र

त्रिदोषज हृद्रोगी

+

तिल, गुड़ क्षीर का अति सेवन

↓

हृद्प्रदेश में ग्रंथि की उत्पत्ति

↓

ग्रंथि में रसादि द्वारा

↓

क्लेद की उत्पत्ति

↓

क्लेद से ग्रंथि में कृमियों की उत्पत्ति

↓

कृमियों द्वारा हृदय का भक्षण

↓

कृमिज हृद्रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वातादि त्रिदोष, वात प्रधान
दूष्य	:	रस, मेद
स्रोतस	:	रसवह, प्राणवह
अधिष्ठान	:	हृदय
स्रोतोदुष्टि	:	संग
स्वभाव	:	चिरकारी
अग्निदुष्टि	:	अग्निमांद्य
साध्यासाध्यता	:	याप्य

भेद

संहिताओं में हृद्रोगों के पांच भेद वर्णित किए गए हैं[1]। आचार्य सुश्रुत ने चार भेद तथा आयुर्वेद विज्ञानकार ने सात प्रकार के हृद्रोग का वर्णन किया है।

I. आचार्य चरक, वाग्भट् एवं माधवकर के मत से हृद्रोग

(i) वातिक हृद्रोग।
(ii) पैत्तिक हृद्रोग।
(iii) कफज हृद्रोग।
(iv) सन्निपातिक हृद्रोग।
(v) कृमिज हृद्रोग

II. आचार्य सुश्रुत मतानुसार हृद्रोग

(i) वातिक हृद्रोग।
(ii) पैत्तिक हृद्रोग।
(iii) कफज हृद्रोग।
(iv) क्रमिजन्य सन्निपातिक हृद्रोग।

III. आयुर्वेद विज्ञानकार के मतानुसार हृद्रोग

(i) आवरणिक।
(ii) कौष्ठिक।
(iii) पृथुक।
(iv) आयामिका।
(v) परिक्षय।
(vi) मेद:सूत्र।
(vii) विक्षेपिका।

सामान्य लक्षण -

शास्त्रों में हृद्रोग के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. "पंञ्च हृद्रोग इति वातपित्तकफसन्निपातकृमिजा:।" (च.सू. 19/4)
2. "वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिक्काश्वासास्यवैरस्यतृषाप्रमोहा:।
छर्दि: कफोत्क्लेशरुजोऽरुचिश्च हृद्रोगजा: स्युर्विविधास्तथाऽन्ये॥" (च.चि. 26/78)

1. अरुचि (Anorexia)
2. मुखवैरस्य (Bitter taste of mouth)
3. कफोत्क्लेश (Nausea)
4. तृष्णा (Polydypsia)
5. श्वास (Dyspnoea)
6. कास (Cough)
7. उर:शूल (Chest Pain)
8. हिक्का (Hiccough)
9. छर्दि (Vomiting)
10. ज्वर (Fever)
11. कफष्ठीवन (Productive Cough)
12. विवर्णता (Pallor/Cyanosis)
13. मूर्च्छा (Fainting)
14. प्रमोह (Stupor)
15. गलोपलेप (Coating inside throat)

हृद्रोगों के भेदानुसार विशिष्ट लक्षण

हृद्रोगों के विभिन्न भेदों के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन शास्त्र सम्मत निम्न प्रकार है–

1. वातिक हृद्रोग के लक्षण

आचार्य चरक एवं सुश्रुत मतानुसार वातिक हृद्रोग के लक्षण निम्न हैं[1]–

(i) खींचने जैसा शूल (Streching Pain)
(ii) सुई चुभने जैसा शूल (Pricking Pain)
(iii) निर्मथन (कुचलने सी पीड़ा) (Crushing Pain)
(iv) दारण (तोड़ने सी पीड़ा) (Breaking Pain)
(v) स्फोटन (फाड़ने सी पीड़ा) (Tearing Pain)

आचार्य चरक ने वातिक हृद्रोग में निम्न लक्षण अधिक माने हैं[2]–

(i) जकड़ाहट (Stiffness)
(ii) मूर्च्छा (Fainting)
(iii) वेष्टन (Cramps)

---

1. "आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा। निर्मथ्यते दीर्य्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च॥" (सु.उ.त. 43/6)
2. "वेपथुर्वेष्टनं स्तम्भः प्रमोहः शून्यता दरः॥" (च.सू. 17/31)

व्यवहारिक रूप से वातिक हृद्रोग में शूल ही प्रधान लक्षण है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Angina तथा Myocardial infarction से इसका सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है।

2. पैत्तिक हृद्रोग के लक्षण

आचार्य सुश्रुत के अनुसार पैत्तिक हृदय रोग के निम्न लक्षण हैं[1]—

(i) तृष्णा (Polydypsia)
(ii) ऊष्मा (Heat)
(iii) दाह (Burning)
(iv) चोष (Needeling Sensation)
(v) हृदयक्लम (Fatigue of Cardiac muscles)
(vi) धूमायन (Feeling of smoke in throat)
(vii) स्वेद (Sweating)
(viii) मुखशोष (Dryness of mouth)

आचार्य चरक ने पैत्तिक हृद्रोग के निम्न लक्षण वर्णित किए हैं[2]—

(i) तम:प्रवेश (Darkness in front of eyes)
(ii) नेत्रदाह (Burning in eyes)
(iii) मोह (Stupor)
(iv) संत्रास (Phobia)
(v) तापवृद्धि (Increased temprature)
(vi) ज्वर (Fever)
(vii) शरीर का पीत वर्ण होना (Yellowish colouration of body)

3. कफज हृद्रोग के लक्षण

आचार्य सुश्रुत ने कफज हृद्रोग के निम्न लक्षण वर्णित किये हैं[3]—

(i) गौरव (Heaviness) (ii) लालास्राव (Salivation)
(iii) अरुचि (Anorexia) (iv) स्तम्भ (Stiffness)
(v) अग्निमांद्य (Indigestion) (vi) मुखमाधुर्य (Sweet taste of month)

---

1. "तृष्णोष्मादाहचोषा: स्यु: पैत्तिके हृदयक्लम:। धूमायनञ्च मूर्च्छा च स्वेद: शोषो मुखस्य च॥" (सु.उ.त. 43/7)
2. "पित्तात्तमोदूयनदाहमोहा: संत्रासतापज्वरपीतभावा:।" (च.चि. 26/79)
3. "गौरवं कफसंस्त्रावोऽरुचि: स्तम्भोऽग्निमार्दवम्। माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि॥" (सु.उ.त. 43/8)

आचार्य चरक ने कफज हृद्रोग के निम्न लक्षणों का वर्णन किया है[1]—

(i) हृदय स्तब्धता (Irregular Heart Beats)
(ii) गौरव (Heaviness in chest)
(iii) स्तिमितता (Feeling of wet cloth around body)
(iv) कफप्रसेक (Productive cough)
(v) ज्वर (Fever)
(vi) कास (Cough)
(vii) तन्द्रा (Drowsiness)

4. सन्निपातज हृद्रोग के लक्षण[2]

आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने सन्निपातिक हृद्रोग में तीनों दोषों के मिश्रित लक्षण बताये हैं।

5. कृमिज हृद्रोग के लक्षण[3]

आचार्य सुश्रुत ने कृमिज हृद्रोग के निम्न लक्षण बताये हैं—

(i) उत्क्लेश (Nausea)
(ii) ष्ठीवन (Sputum expectoration)
(iii) तोद (Pricking Pain)
(iv) शूल (Pain Myalgia)
(v) हृल्लास (Nausea)
(vi) तमः प्रवेश (Darkness in front of eyes)
(vii) अरुचि (Anorexia)
(viii) श्यावनेत्रता (Blackish colouration of eyes / cyanosis)
(ix) शोथ (Odema)

आचार्य चरक ने कृमिज हृद्रोग के निम्न लक्षण वर्णित किए हैं—

(i) तीव्र वेदना (Excessive Pain)
(ii) तोद (Pricking Pain)
(iii) कण्डू (Itching)

लक्षणों के आधार पर कृमिज हृद्रोगों की तुलना Bacterial Endocarditis से की जा सकती है। इसमें Chest examination करने पर Haemic murmurs सुनाई देती हैं।

---

1. "स्तब्धं गुरुस्यात् स्तिमितं च मर्म कफात् प्रसेकज्वरकासतन्द्राः।" (च.चि. 26/80)
2. "विद्यात्त्रिदोषं त्वपि सर्वलिङ्गं तीव्रार्तितोदं कृमिजं सकण्डूम्।" (च.चि. 26/80)
3. "उत्क्लेशः ष्ठीवनं तोदः शूला हृल्लासकस्तमः।
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोथश्च कृमिजे भवेत्॥" (सु.उ. 43/9)

साध्यासाध्यता

I. साध्यता

वातिक, पैत्तिक एवं कफज हृद्रोग साध्य होते हैं। सन्निपातज एवं कृमिज हृद्रोग नवीन होने पर याप्य हैं।

II. असाध्यता

दुर्बल रोगी में उपद्रव युक्त हृद्रोग असाध्य होते हैं।

अरिष्ट लक्षण[1] जैसे स्तैमित्य (Cold clamy skin), आयताक्ष (Dialated Pupil) एवं तीव्र उरोग्रह (Tearing Retrosternal Pain) होने पर हृद्रोग असाध्य होता है।

उपद्रव[2]

आचार्य माधवकर ने हृद्ररोग के निम्न उपद्रवों का उल्लेख किया है—

(i) क्लम या बिना श्रम के थकावट (Easy fatigue)
(ii) अवसाद (Depression)
(iii) भ्रम (Giddiness)
(iv) शोष (Consumption)

चिकित्सा सिद्धान्त

हृद्रोगों की सफल चिकित्सा हेतु मुख्यत: निम्न चिकित्सा सिद्धान्तों का पालन आवश्यक है। दोष भेदानुसार विभिन्न हृद्ररोगों के चिकित्सा सिद्धान्त निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. सर्वप्रथम निदानों का त्याग करना चाहिये।
2. रोगी को पूर्ण विश्राम (शारीरिक एवं मानसिक) देना चाहिये।
3. रोगी के आहार-विहार पर पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिये।
4. विभिन्न दोषों के अनुसार चिकित्सा क्रम अपनाना चाहिये तथा हृद्य औषधियों का प्रयोग हृदय को बल देने के लिये करना चाहिये।

I. वातिक हृद्रोग का चिकित्सा सिद्धान्त[3]

(i) स्नेहन—हरीतक्यादि घृत व पुनर्नवादि तैल से स्नेहन करायें।

---

1. "वितत्य पर्शुकाग्राणि ग्रहीत्वोरश्च मारुत:। स्तिमितस्यायताक्षस्य सद्यो मुष्णाति जीवितम्॥" (च.इ. 10/9)
2. "क्लम: सादो श्रम: शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवा:। क्रिमिजे क्रिमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मता:॥" (मा.नि. 29/7)
3. "वातोपसृष्टे हृदये वामयेत् स्निग्धमातुरम्। द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन च॥" (च.द. 31/1)

(ii) वमन—घृत, सैंधव व दशमूल क्वाथ से वमन करायें।

(iii) वाताधिक्य होने पर पुष्कर मूल, बिजौरा नीबू, शुण्ठी, कचूर, हरीतकी एवं वच का कषाय पान करायें।

II. पैत्तिक हृद्रोग का चिकित्सा सिद्धान्त[1]

(i) पित्त से दूषित हृद्रोग में शीतल द्रव्यों का लेप तथा परिषेचन करायें।

(ii) मृदु विरेचन करायें।

(iii) मुलेठी तथा कुटकी को मिश्री जल के साथ पीसकर पान करायें।

III. कफज हृद्रोग का चिकित्सा सिद्धान्त[2]

(i) वच एवं नीम के कषाय से वमन करायें।

(ii) शिलाजतु रसायन का कल्प विधि से सेवन करायें।

IV. सन्निपातज हृद्रोग का चिकित्सा सिद्धान्त[3]

(i) सर्वप्रथम लंघन करायें।

(ii) त्रिदोष शामक आहार-विहार का सेवन करायें।

(iii) विरेचन भी कराया जा सकता है।

(iv) त्रिदोषज हृद्रोगों में दोषों के हीन मध्याधिकत्व को देखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

V. कृमिज हृद्रोग का चिकित्सा सिद्धान्त[4]

(i) कृमिज हृद्रोग में रोगी को स्नेह मिश्रित मांस, भात तथा दही के साथ तिल चूर्ण का तीन दिन सेवन करायें।

(ii) पर्याप्त स्नेहन हो जाने के बाद विरेचन करायें।

(iii) लंघन एवं पाचन तथा कृमिघ्न औषधियों का प्रयोग कृमिज रोग में हितकर है[5]।

---

1. "शीताः प्रदेहाः परिषेचनानि तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे।
द्राक्षा सिताक्षौद्रपरुषकैः स्यात् शुद्ध च पित्तापहमन्नपानम्?॥" (च.द. 31/6-7)
2. "वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते।
वातहृद्रोगहच्चूर्णं पिप्पल्यादि च योजयेत्॥" (च.द. 31/10)
3. "त्रिदोषजे लंघनंमादितः स्यादन्नञ्च सर्वेषु हितं विधेयम्।
हीनाधिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव कार्य्यं त्रयाणामपि कर्म शस्तम्॥" (च.द. 31/11)
4. "क्रिमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत् पिशितौदनम्।
दष्ट्वा च पललोपेत् त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत्॥" (च.द. 31/23)
5. "कार्यं तथा लंघनपाचनं व सर्वं कृमिहृद्गदे च॥" (च.चि. 26/103)

हृद्रोगों की दोषानुसार चिकित्सा

शास्त्रों में आचार्यों द्वारा हृद्रोगों की संशोधन चिकित्सा एवं संशमन चिकित्सा निम्नानुसार वर्णित है—

I. वातिक हृद्रोग

(1) संशोधन चिकित्सा

(i) स्नेहन एवं मृदु स्वेदन (ii) वमन (मृदु)

(iii) शिरोधारा

(2) संशमन चिकित्सा

वातिक हृद्ररोग की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्न अनुसार है—

1. रस/भस्म/पिष्टी

मात्रा	:	125 – 250 मि.ग्रा.
अनुपान	:	ऊष्णजल
(i) नागार्जुनाभ्र रस	:	अर्जुन एवं अभ्रक।
(ii) हृदयार्णव रस	:	पारद, गंधक, ताम्र भस्म।
(iii) चिन्तामणि रस	:	पारद, गंधक, स्वर्ण भस्म, लौहभस्म, शिलाजीत।
(iv) विश्वेश्वर रस	:	स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, वैक्रान्त भस्म, पारद।
(v) त्रिनेत्र रस	:	पारद, गंधक, अभ्रक भस्म।
(vi) कल्याणसुन्दर रस	:	रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, रजत भस्म।
(vii) अकीक भस्म	:	अकीक।
(viii) अकीक पिष्टी	:	अकीक।
(ix) मुक्ता पिष्टी	:	मुक्ता।
(x) मकरध्वज	:	पारद, गंधक।
(xi) जवाहर मोहरा	:	जवाहर मोहरा।

2. वटी

मात्रा	:	250 – 500 मि.ग्रा.
अनुपान	:	जल
(i) प्रभाकर वटी	:	स्वर्णमाक्षिक भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म एवं शिलाजतु।

(ii) शंकर वटी : पारद, गंधक, लौह भस्म, नागभस्म।
(iii) हृद्रोग वटी : पारद, गंधक, वत्सनाभ, रजत भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म।

3. चूर्ण
मात्रा : 3 - 6 ग्राम
अनुपान : जल/शहद
(i) पिप्पली चूर्ण : पिप्पली, वच व हींग, अजमोद, यवक्षार, सैंधव लवण।
(ii) पुष्करमूल चर्ण : पुष्करमूल।
(iii) हरीतक्यादि चूर्ण : हरड़, वचा, रास्ना, पिप्पली सोंठ, कचूर, पुष्करमूल।

4. क्वाथ/आसव/अरिष्ट
मात्रा : 20 - 30 मि.ली.
अनुपान : जल
(i) शुण्ठी क्वाथ : सौंठ
(ii) पुष्करादि क्वाथ : पुष्करमूल, पलाश, देवदारु, कचूर।
(iii) पथ्यादि कल्क : हरड़, कचूर, पुष्करमूल, पंचकोल।
(iv) पार्थाद्यरिष्ट : अर्जुन, मुनक्का, महुआ।

5. घृत
मात्रा : 20 - 30 मि.ली.
अनुपान : ऊष्ण जल
(i) बल्लभ घृत : हरीतकी, काला नमक।
(ii) श्वद्रष्टांद्य घृत : गोक्षुर, उशीर, मंजिष्ठा, बला, पलाश।
(iii) त्र्यूषणादि घृत : त्रिकटु, मुनक्का, खर्जूर, फालसा, त्रिफला।
(iv) हरीतक्यादि घृत : हरीतकी, सोंठ, पुष्करमूल, गुडुची, आवंला, हींग।
(v) पुर्ननवादि तैल : बृहत पंचमूल, पुनर्नवा, देवदारु, रास्ना, बिल्व।
(vi) अर्जुन घृत : अर्जुन छाल, घृत।
(vii) बलाद्य घृत : बला, नागबला, अर्जुन।

6. पाक/अवलेह

मात्रा	:	20 ग्राम
अनुपान	:	दुग्ध
(i) च्यवनप्राश	:	पूर्वोक्त।
(ii) वासावलेह	:	पूर्वोक्त।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रातः सांयम्

हृदयार्णव रस	:	250 मि.ग्रा.
मुक्तापिष्टी	:	250 मि.ग्रा.
पिप्पली चूर्ण	:	2 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

दशमूलारिष्ट	:	20 मि.ली.
समभाग जल से	:	1x2 मात्रा

(3) हिंग्वाष्टक चूर्ण : 3 ग्राम
कोष्ण जल से : 1x2 मात्रा

(4) रात्रि

हरीतकी चूर्ण	:	3 ग्राम
कोष्ण जल से	:	1 मात्रा

(5) पथ्य सेवन।

(6) नियमित व्यायाम-ध्यान, योगाभ्यास।

(7) समुचित विश्राम

(i) शारीरिक

(ii) मानसिक

II. पैत्तिक हृद्रोग की चिकित्सा

पैत्तिक हृद्रोग की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा हेतु योगों का वर्णन शास्त्रों में निम्न अनुसार वर्णित है—

(1) **संशोधन चिकित्सा**

(i) मृदु विरेचन

(2) संशमन चिकित्सा

1. रस/भस्म/पिष्टी/वटी

वातिक हृद्रोग की रस/भस्म/पिष्टी का प्रयोग पैत्तिक हृद्रोग में भी प्रशस्त है।

2. चूर्ण

मात्रा	:	3 - 6 ग्राम
अनुपान	:	जल/शहद
(i) अर्जुन चूर्ण	:	अर्जुन।
(ii) मधुयष्ठी चूर्ण	:	मुलेठी।

3. क्वाथ/आसव-अरिष्ट

मात्रा	:	20 - 30 मि.ली.
अनुपान	:	जल
(i) श्रीपर्णी मधुक क्वाथ	:	गम्भारी, मुलैठी।
(ii) पार्थाद्यरिष्ट	:	पूर्वोक्त।

4. घृत

मात्रा	:	10 - 30 मि.ली.
अनुपान	:	ऊष्ण जल
(i) द्राक्षाद्य घृत	:	द्राक्षा, बलामूल, रास्ना शतावरं नीलकमल।
(ii) कशेरुकादि घृत	:	कशेरु, अदरख, मुलैठी, गोदुग्ध, घृत।

5. क्षीरपाक

मात्रा	:	50 मि.ली.
(i) स्थिरादि क्षीर	:	लघुपंचमूल, दुग्ध।
(ii) अर्जुनक्षीर पाक	:	अर्जुन, दुग्ध।

आदर्श व्यवस्था पत्र

(1) प्रातः सांयम्

नागार्जुनाभ्र	:	250 मि.ग्रा.
अकीक पिष्ठी	:	250 मि.ग्रा.
मधुयष्ठी चूर्ण	:	2 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

अर्जुन क्षीर पाक : 50 मि.ली.

: 1x2 मात्रा

(3) रात्रि

त्रिफला चूर्ण : 3 ग्राम

कोष्ण जल से : 1 मात्रा

III. कफज हृद्रोग की चिकित्सा

कफज हृद्रोगों की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार वर्णित है—

(1) संशोधन चिकित्सा

(i) स्नेहन-स्वेदन (ii) मृदु वमन

(iii) शिरोधारा

(2) संशमन चिकित्सा

कफज हृद्रोगों को चिकित्सा हेतु प्रमुख संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार है—

1. **रस/भस्म/वटी/पिष्टी**

वातिक हृद्रोग के समान।

2. **चूर्ण**

मात्रा	:	3 - 6 ग्राम
अनुपान	:	जल/शहद
(i) सूक्ष्मैलादि चूर्ण	:	इलायची, पिप्पली मूल।
(ii) पाठादि चूर्ण	:	पाठा, वच, यवक्षार, चित्रक, त्रिकटु।
(iii) पुष्करमूल चूर्ण	:	पूर्वोक्त।
(iv) कृष्णादि चूर्ण	:	पीपर, कचूर, पुष्करमूल।
(v) त्रिवृतादि चूर्ण	:	त्रिवृत, बला, रास्ना, सोंठ।
(vi) पिप्पल्यादि चूर्ण	:	पिप्पली, सोंठ, हरड़।

3. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**

वातिक हृदरोग की चिकित्सा में वर्णित क्वाथ/आसव-अरिष्ट कफज हृद्रोगों में भी लाभकारी हैं।

(i) कटफलादि क्वाथ	:	कट्फल, अदरख, हरड़, अतीस।
(ii) दशमूल क्वाथ	:	दशमूल।

4. पाक/अवलेह

मात्रा	:	20 ग्राम
अनुपान	:	दुग्ध/गरम जल
(i) उदुम्बरादि लेह	:	गूलर, पीपल, वटत्वक्, अर्जुन त्वक्, खदिरसार।

5. रसायन

(i) शिलाजीत रसायन	:	2 तोला (लगभग 20 ग्राम) शिलाजीत 3 सप्ताह तक सेवन करना विशेष लाभकारी रहता है।

आदर्श व्यवस्था पत्र

(1) प्रातः सांयम्

हृदयेश्वर रस	:	250 मि.ग्रा.
प्रवाल पिष्टी	:	250 मि.ग्रा.
कृष्णादि चूर्ण	:	2 ग्राम
पुष्कर मूल चूर्ण	:	1 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

प्रभाकर वटी

जल से	:	2 वटी x 3 मात्रा
(3) च्यवनप्राश अवलेह	:	20 ग्राम
दूध से	:	1x2 मात्रा

(4) रात्रि

पंचसकार चूर्ण	:	3 ग्राम
कोष्ण जल से	:	1 मात्रा

IV. त्रिदोषज हृद्रोग की चिकित्सा

त्रिदोषज हृद्रोगों की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार निर्दिष्ट है—

(1) संशोधन चिकित्सा

(i) लंघन (ii) विरेचन

(2) संशमन चिकित्सा

त्रिदोषज हृद्रोगों की चिकित्सा में वर्णित संशमन योग निम्नानुसार हैं—

1. **रस/भस्म/वटी/पिष्टी**

वातिक हृद्रोग के समान हैं।

मात्रा	:	250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान	:	घृत
(i) मृग श्रृंग भस्म	:	मृग श्रृंग।

2. **चूर्ण**

मात्रा	:	3 - 6 ग्राम
अनुपान	:	जल / घृत / शहद
(i) हिंग्वादि चूर्ण	:	हींग, वच, बिड्नमक, सोंठ, पीपर, हरड़, चित्रक।
(ii) नागबला चूर्ण	:	नागबला, अर्जुनत्वक्।
(iii) गोधूमपार्थज चूर्ण	:	गेहूं, अर्जुनत्वक्।
(iv) पुष्कर मूल चूर्ण	:	पुष्करमूल।
(v) पाठादि चूर्ण	:	पाठा, वच, यवक्षार, हरड़, चित्रक, त्रिकटु।

3. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**

पूर्व में वर्णित समस्त क्वाथ-आसव-अरिष्ट त्रिदोषज हृद्रोग में सफलता पूर्वक दिये जा सकते हैं।

4. **घृत/तैल**

पूर्वोक्त समस्त घृत एवं तैलों का प्रयोग त्रिदोषज हृद्रोग में भी किया जा सकता है।

5. **अवलेह/पाक**

मात्रा	:	15 - 20 ग्राम
अनुपान	:	दुग्ध
(i) गोधूमककुभादि लेह	:	गेहूं, अर्जुनत्वक्, बकरी का दुग्ध, घृत, चीनी।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रातः सांयम्

नागार्जुनाभ्र रस	:	250 मि.ग्रा.
सिद्ध मकरध्वज	:	250 मि.ग्रा.
अकीक पिष्टी	:	500 मि.ग्रा.
नागबला चूर्ण	:	2 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

पार्थाद्यरिष्ट : 20 मि.ली.

समभाग जल से : 1x2 मात्रा

(3) शंकर वटी : 2 वटी x 3 मात्रा

जल से

(4) रात्रि

कुटकी वटी : 2 गोली

कोष्ण जल से : 1 मात्रा

V. कृमिज हृद्रोग की चिकित्सा

कृमिज हृद्रोग की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार देने का विधान है–

(1) **संशोधन चिकित्सा**

(i) स्नेहन-स्वेदन

(ii) विरेचन

(iii) पाचन एवं लंघन

(2) **संशमन चिकित्सा**

कृमिज हृद्रोग की चिकित्सा में वर्णित विभिन्न संशमन योग निम्न हैं–

1. **रस/भस्म/वटी/पिष्टी** — पूर्वोक्त।

2. **चूर्ण**

मात्रा : 3 – 6 ग्राम

अनुपान : कोष्ण जल / गोमूत्र

(i) बिडंगादि चूर्ण : बिडंग, कूठ।

(ii) पुष्करादि चूर्ण : पुष्करमूल, कचूर, सोंठ।

(iii) पिप्पल्यादि चूर्ण : पूर्वोक्त।

(iv) पलाश बीज चूर्ण : पलाश बीज।

3. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**

मात्रा : 10 – 20 मि.ली.

अनुपान : जल

(i) बिडंगारिष्ट : बिडंग, मुस्तक, चित्रक, धातकी, हरीतकी।

4. घृत

मात्रा	:	10 – 30 मि.ली.
अनुपान	:	ऊष्ण जल, दुग्ध
(i) बलाद्य घृत	:	बला, नागबला, अर्जुन।
(ii) अर्जुन घृत	:	अर्जुन, घृत।

5. पाक/अवलेह

मात्रा	:	20 ग्राम
अनुपान	:	दुग्ध
(i) बिडंगावलेह	:	बिडंग, मुस्तक, चित्रक चीनी, घृत।

6. लौह

मात्रा	:	500 मि.ग्रा.–1 ग्राम
अनुपान	:	घृत / मधु
(i) नवायस लौह	:	त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद, लौह।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) पंचकोल चूर्ण	:	2 ग्राम
गर्म जल से	:	1x2 मात्रा 3 दिन तक
(2)	प्रातः	सांयम्
हृदयार्णव रस	:	250 मि.ग्रा.
नवायस लौह	:	250 मि.ग्रा.
बिडंग चूर्ण	:	2 ग्राम
शहद से	:	1x2 मात्रा
(3) भोजनोत्तर		
बिडंगारिष्ट	:	10 मि.ली.
+		
अर्जुनारिष्ट	:	10 मि.ली.
समभाग जल से	:	1x2 मात्रा
(4) रात्रि		
पंचसकार चूर्ण	:	3 ग्राम
कोष्ण जल से	:	1 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य[1]

आहार	विहार
पुराण रक्तशालि, जांगल पशुपक्षियों का मांसरस, मूंग, कुलत्थ का यूष, खडयूष, काम्बलिक, लिसौड़ा, परवल, पेठा, केला, आम, अनार, अमलतास, नई मूली, एरण्ड तैल, आकाश का जल, सैंधव लवण, द्राक्षा, मठ्ठा, शुण्ठी, कांजी, शुक्त, शहद, मदिरा, श्वेतचन्दन, इमली का पानक, ताम्बूल आदि।	स्वेदन, वमन, विरेचन, बस्ति, लंघन, विश्राम आदि।

अपथ्य[2]

आहार	विहार
नदी का जल, भेड़ का दूध, कषाय रस, विरुद्ध अन्न, ऊष्ण, गुरुपाकी, तिक्त पदार्थ सेवन, पत्रशाक, क्षार पदार्थ, महुआ, शुष्क शाक आदि।	तृषा, वमन, मूत्र, अधोवायु, वीर्य, कास उद्‌गार, श्रमज श्वास के वेग को धारण करना, अश्रु वेग धारण करना, दातौन करना एवं रक्त विस्रावण करना आदि।

योग/प्राकृतिक उपाय

हृद्‌रोगी को निम्न प्राकृतिक उपाय तथा योग का प्रयोग करना चाहिये—

1. प्रातःकाल नंगे पैर हरी घास पर घूमना।
2. स्वच्छ हवा में जोर-जोर से गहरी सांस लेना।
3. हल्का व्यायाम।
4. पद्मासन, शवासन, सूर्य नमस्कार आदि योग क्रियाओं का अभ्यास।
5. प्राणायाम-कुम्भक-रेचक का अभ्यास।

---

1. "स्वेदो विरेको वमनं च लघनं, बस्तिर्विलेपोचिररक्तशालयः।
मृगद्विजा जांगलसंज्ञयाऽन्विता यूषा रसा मुद्‌गकुलत्थसंभव॥
रागाः खडाः काम्बलिकाश्च पाडवा भयं पटोलं कदलीफलान्यपि।
..... हृद्रोगनिपीडितस्य॥" (भै.र. 33/78-81)
2. "तृट्छर्दिमूत्रानिलशुक्रकासोद्‌गारश्रमश्वासविडश्रुवेगान्।
सह्याद्रिविन्ध्याद्रिनदीजलानि मेषीपयो दुष्टजलं कषायम्॥
विरुद्धमुष्णं..... हृद्रदवान परित्यजयेत्॥" (भै.र. 33/82-83)

Latest Developments

HEART DISORDERS-ANGINAS

आयुर्वेदोक्त हृद्रोग मुख्यत: शूल प्रधान व्याधि है जिसका सामंजस्य आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Angina Pectoris से किया जा सकता है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में हृद्रोग (Cardiac Disorder or Heart Diseases) एक वृहद रूप में प्रयुक्त हुआ शब्द है। इसके अन्तर्गत हृदय से संबंधित समस्त विकारों का समावेश किया गया है। आयुर्वेद में वर्णित विभिन्न हृद्रोगों के लक्षण आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित विभिन्न हृद्रोगों से साम्य रखते हैं यथा—

1. **वैवर्ण्य**—Mitral Valve Regurgitation में तथा Venous obstruction में भी मिलता है।
2. **ज्वर, वेदना, हृद्द्रव एवं शोथ**—Rheumatic heart disease, Bacterial endocarditis में मिलता है।
3. **रक्त वमन**—Mitral Valve prolapse में मिलता है।
4. **वमन, अरुचि, श्वासकृच्छ्रता, हृदशूल**—Coronary thrombosis में मिलता है।
5. **हृदशूल**—Angina pectoris में मिलता है।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में हृद्रोग के अन्तर्गत निम्न व्याधियां समाहित की जाती हैं—

1. Congestive Cardiac failure (हृदय विस्फार जन्य हृदय अकर्मण्यता)
2. Pericarditis (हृदयावरण शोथ)
3. Endocarditis (हृदअन्त: मांसपेशी शोथ)
4. Coronary thrombosis (हृद्धमनी घनास्रता)
5. Angina (हृदशूल)
6. Tachycardia or Palpitation (हृद्द्रव)
7. Congenital Heart disea. e (सहज हृदरोग)
   (i) P.tent ductus arteriosus (P.D.A.)
   (ii) Atrial-Septal Defect (A.S.D.)
   (iii) Ventricular Septal Defect (V.S.D.)
8. Cardiac Valvular disease (हृद् कपाट विकार)
9. Atherosclerosis (धमनी प्रतिचय)

आधुनिकोक्त हृद्रोग व आयुर्वेदोक्त हृद्रोगों में निम्न साम्य बिठाया जा सकता है-

	आयुर्वेदोक्त हृद्रोग	Probable Modern Corretates
1.	हृद्शूल	Angina Pectoris
2.	वातिक हृद्रोग	Severe Angina
3.	पैत्तिक हृद्रोग	Moderate Angina
4.	कफज हृद्रोग	Mild Angina
5.	सन्निपातिक हृद्रोग	Angina with Myocardial infarction
6.	कृमिज हृद्रोग	Manifestation of anaemia in heart due to Ankylostoma duodenale
7.	शोथयुक्त हृद्रोग	Cardiac failure with oedema
8.	क्षुद्र श्वास	Mild Cardiac insufficiency

Management : Principles

1. Avoid the Causative Factors.
2. A treatable cause should be tackled urgently.
3. Immediately hospitalize the patient.
4. Assess breathing, airways & circulation.
5. Life slyle and diet styte modifications must.
6. Councelling of the patient.
7. Symptomatic Management.

अध्याय-10

हृच्छूल
(ANGINA)

व्याधि परिचय

हृद् प्रदेश में किसी भी कारण से होने वाले शूल को 'हृद्शूल' कहते हैं। आयुर्वेद में स्पष्टतः पृथक् अध्याय के रूप में इसका वर्णन नहीं है। आचार्य सुश्रुत ने गुल्म प्रकरण के बाद शूल के एक भेद के रूप में 'हृच्छूल' का वर्णन भी किया है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार हृच्छूल का साम्य Angina Pectoris से किया जा सकता है। माधव निदान में इसे वातिक शूल के अन्तर्गत माना है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. सुश्रुत संहिता उत्तर तंत्र - अध्याय 42
2. माधव निदान - अध्याय 26
3. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड - अध्याय 30

निदान[1]

हृच्छूल के सामान्य निदान निम्न प्रकार हैं—

1. अपान वायु, मल, मूत्र के वेग रोकना।
2. अतिभोजन एवं अजीर्ण में भोजन।
3. विरुद्ध एवं असात्म्य भोजन।
4. भूख लगने पर पानी पी लेने से।
5. पिष्ट विकार तथा सूखे मांस का सेवन।
6. अंकुरित धान्य का सेवन।

---

1. "वातमूत्रपुरीषाणां निग्रहादतिभोजनात्। अजीर्णाध्यशनायासविरुद्धान्नोपसेवनात्॥
पानीयपानात् क्षुत्काले विरुढ़ानाञ्चसेवनात्। पिष्टान्नशुष्कमांसानामुपयोगात्तथैव च॥"
(सु.उ.त. 42/78-79)

सम्प्राप्ति[1]

मिथ्या आहार-विहार से कुपित हुये कफ एवं पित्त से अवरुद्ध वायु रस धातु को दूषित कर हृदय में अवस्थित होकर वहां शूल उत्पन्न करता है। शूल के कारण रोगी का उच्छ्वास रुक जाता है। इस रोग को हृच्छूल कहते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र

मिथ्या आहार-विहार सेवन
↓
कफ-पित्त प्रकोप
↓
कफ-पित्त से मार्गावरोध
↓
वायु का अवरोध
↓
कुपित वायु का रस धातु से सम्मूर्च्छन
↓
कुपित वायु+रस का हृदय में स्थान संश्रय
↓
उच्छ्वास में अवरोध के साथ तीव्र शूल की अनुभूति
↓
हृच्छूल

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	त्रिदोष, वात प्रधान
दूष्य	:	रस धातु
अधिष्ठान	:	हृदय
स्रोतस	:	रसवह, प्राणवह
स्रोतदुष्टि	:	संग
साध्यासाध्यता	:	साध्य

भेद एवं पूर्वरूप

शास्त्रों में हृच्छूल के भेद एवं पूर्वरूपों का वर्णन अलग से नहीं मिलता है।

---

1. "कफपित्तविरुद्धस्तु मारुतो रसमूर्च्छितः। हृदिस्थः कुरुते शूलमुच्छ्वासारोधकं परम्॥ स हृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतसंभवः।" (सु.उ.त. 42/132)

सामान्य लक्षण

1. हृदय प्रदेश में पीड़। (Chest Pain in Left Side)
2. ऊच्छ्वास अवरोध (Difficulty in Expiration)

साध्यासाध्यता

हच्छूल को आचार्य सुश्रुत ने गुल्म का उपद्रव कहा है। सामान्यत: उपद्रव रहित हच्छूल साध्य होता है। जीर्ण, उपद्रव युक्त, वृद्धावस्था में तथा हृदय में विकृति उत्पन्न होने पर उत्पन्न हच्छूल याप्य होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त[1]

1. आचार्य सुश्रुत ने हच्छूल की चिकित्सा हृदय रोग के समान ही बतलाई है।
2. हृदय को कफ का स्थान कहा है तथा कफज विकारों में वमन कर्म श्रेष्ठ है। अत: हच्छूल में वमन कराया जा सकता है।
3. वमनार्थ वातिक हृदय रोग की चिकित्सा में वर्णित स्नेहन-स्वेदन पश्चात् दशमूल क्वाथ में सैंधव मिलाकर आकण्ठ पान कराकर वमन कराना चाहिये[2]।

चिकित्सा

हच्छूल की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्नानुसार करने का विधान है—

1. **संशोधन चिकित्सा**

(i) स्नेहन-स्वेदन (ii) वमन
(iii) शिरोधारा

2. **संशमन चिकित्सा**

हच्छूल की चिकित्सा में वर्णित संशमन योगों का वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **रस/भस्म/वटी/पिष्टी**

मात्रा : 125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान : शहद/जल

(i) हृदयार्णव रस, हृदरोगरत्नाकर रस, नागार्जुनाभ्र रस, रत्नेश्वर रस-हृद् रोग चिकित्सा में वर्णित हैं।

(ii) मुक्ता भस्म : मुक्ता।

---

1. "तत्रापि कर्माभिहितं यदुक्तं हृद्विकारिणाम्।" (सु.उ.त. 42/133)
2. "वातोपसृष्टे हृदये वामयेत् स्निग्धमातुरम्। द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन च॥" (च.द. 31/1)

(iii) प्रवाल पिष्टी : प्रवाल।
(iv) मृग श्रृंग भस्म : मृगश्रृंग।
(v) वृहत् कस्तूरी भैरव रस : पारद, गंधक, वत्सनाभ, टंकण, कस्तूरी, मरिच, पिप्पली, जायफल।

2. चूर्ण
मात्रा : 3 - 6 ग्राम
अनुपान : जल/शहद
(i) अर्जुन चूर्ण : अर्जुन छाल।
(ii) अन्य चूर्ण हृद्रोग चिकित्सानुसार प्रयोग कर सकते हैं।

3. क्वाथ/आसव-अरिष्ट
मात्रा : 20 - 30 मि.ली.
अनुपान : जल
(i) अर्जुनारिष्ट : अर्जुन छाल, महुआ, द्राक्षा।
(ii) अर्जुनक्षीर पाक : अर्जुन छाल, गोदुग्ध।

4. घृत/तैल
मात्रा : 10 - 30 मि.ली.
अनुपान : ऊष्ण जल, दुग्ध
(i) अर्जुन घृत : अर्जुन, घृत।
(ii) लाक्षादि तैल अभ्यंगार्थ : लाक्षा।
(iii) कर्पूरादि तैल अभ्यंगार्थ : कर्पूर, रास्ना, देवदारू।

5. पाक/अवलेह —हृद्रोगानुसार।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रातः सांयम्
नागार्जुनाभ्र रस : 125 मि.ग्रा.
कस्तुरी भैरव रस : 250 मि.ग्रा.
श्रृंग भस्म : 250 मि.ग्रा.
विषमभाग मधु+घृत से : 1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर
हिग्वांदि वटी : 2 वटी x 3 मात्रा
अर्जुनारिष्ट : 20 मि.ली.
समभाग जल से : 1x2 मात्रा

(3) रात्रि
हरीतकी चूर्ण : 3 ग्राम
कोष्ण जल से : 1 मात्रा

(4) पंचकर्म
स्नेहन पश्चात् वमन करायें।
स्नेहनार्थ : अर्जुन घृत

(5) वक्ष प्रदेश पर मृगश्रृंग को पानी के साथ पत्थर पर घिसकर लेप करें।

(6) अधिक श्रम न करें। यथोचित विश्राम करें।

(7) पथ्यसेवन।

पथ्य एवं अपथ्य

हृच्छूल के पथ्य एवं अपथ्य हृदरोग में वर्णित समस्त पथ्य अपथ्य हैं। अत: उन्हें हृद्रोग में देखें।

Latest Developments

ANGINA PECTORIS

आयुर्वेदोक्त हृच्छूल को आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में Angina Pectoris कहते हैं।इसका मुख्य कारण Cardiac Muscles को किसी भी कारण से Blood Circulation कम होना या Hypoxia (आक्सीजन की कमी) होना है।

Angina Pectoris is defined as precardial pain brought on by effort, emotion or heavy meals & is relieved by rest.

Causes

हृदय की मांसपेशियों में रक्त प्रवाह (Blood Circulation) कम होने के निम्न कारण हैं—

1. Old age
2. Mental Stress
3. Cardio-Vascular Disease
4. Coronary Thrombosis
5. Heavy Meals
6. Diabetes Mellitus

Management : Principles

1. Avoid stress, over exertion & fatty diet in daily routine.
2. According to severity hospitalize the patient.
3. Nitrates combined with calcium channel blockers should be given to the patient.
4. Aspirin should be given to prevent myocardial infarction.

General Measures

1. Control systemic hypertention, Left ventricular failure and Lipid abnormalities.
2. Stop cigarette smoking and alcohol intake.
3. Approved exercise programme.
4. Decrease intake of coffee and tea.
5. Low fat, low cholesterol, weight loss diet if overweight.

अध्याय-11

हृदयाभिघात

व्याधि परिचय

हृदय पर किसी भी प्रकार से आघात लगना 'हृदयाभिघात' कहलाता है। हृदय एक सद्य: प्राणहर मर्म है अत: इस पर आघात होने से मृत्यु तक हो सकती है। अत: हृदय की आघात से विशेष रक्षा करनी चाहिये।

हृदयाभिघात का स्पष्टत: वर्णन संहिताओं में उपलब्ध नहीं है। आचार्य चरक ने सिद्धि स्थान में हृदय पर आघात लगने पर उत्पन्न लक्षणों का वर्णन किया है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

चरक संहिता सिद्धि स्थान - अध्याय 9

निदान

हृदयाभिघात का प्रमुख निदान हृदय पर किसी भी कारण वश आघात (चोट) लगना है।

सम्प्राप्ति

हृदय प्रदेश पर आघात लगने से उरस्थ कुपित वायु हृद् प्रदेश में प्रवेश कर हृदय को पीड़ित करती हुई विमार्ग गमन करके विभिन्न लक्षणों को उत्पन्न करती है।

सम्प्राप्ति चक्र

हृदय प्रदेश पर चोट लगने से

↓

उरस्थ वायु का प्रकोप

↓

हृदय प्रदेश में प्रवेश

↓

हृदय को पीड़ित कर

↓

कुपित वायु विमार्ग गमन करती हुई

↓

विभिन्न लक्षणों की उत्पत्ति

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वात
दूष्य	:	रस, रक्त
अधिष्ठान	:	हृदय
स्रोतस	:	रसवह, प्राणवह
स्रोतोदुष्टि	:	विमार्ग गमन
स्वभाव	:	आशुकारी
साध्यासाध्यता	:	कृच्छ्रसाध्य

भेद एवं पूर्वरूप

हृदयाभिघात के पूर्वरूप एवं भेद संहिताओं ने वर्णित नहीं हैं। यह एक आशुकारी व्याधि है। आघात लगने के पश्चात् तुरन्त ही लक्षण प्रकट होते है अत: पूर्वरूप नहीं होते।

हृदयाभिघात के लक्षण[1]

आचार्य चरक ने हृदय पर आघात होने पर निम्न लक्षणों की उत्पत्ति का उल्लेख किया है—

1. कास (Cough)
2. श्वास कृच्छ्रता (Dyspnoea)
3. बलक्षय (Loss of Strength)
4. कण्ठ का सूखना (Dryness of throat)
5. क्लोम के अधोभाग में आकर्षण की तरह वेदना
6. जिह्वा बाहर निकलना

चिकित्सा सिद्धान्त

1. हृदय एक मर्म स्थान है अत: मर्म स्थानों की विशेषत: वायु से रक्षा करना चाहिये।[2]
2. वात को जीतने का श्रेष्ठ उपाय बस्ति कर्म है। अत: आस्थापन एवं अनुवासन बस्ति का प्रयोग प्रशस्त है[3]।
3. हृदय प्रदेश यदि वातादि दोषों से दूषित हो तब घृत भर्जित हींग के चूर्ण को सैंधव लवण व बिजौरा नीबूं स्वरस में मिलाकर सेवन करायें[4]।

---

1. "तत्र हृद्यभिहते कासश्वासबलक्षय कण्ठशोषक्लोमाकर्षजिह्वानिर्गममुखतालुशोषापस्मारकोन्माद प्रलापचित्तनाशादय: स्यु:॥" (च.सि. 9/6)
2. "विशेषतोऽनिलाद्भक्ष्याणि।" (च.सि. 9/7)
3. "तस्मान्न वस्तिसमं किञ्चित् कर्म मर्मपरिपालनमस्ति।" (च.सि. 9/7)
4. "भूयश्च हृद्युपसृष्टे हिंङ्गुचूर्ण लवणानामन्यतमचूर्णसंयुक्तं मातुलुङ्गस्य रसेनान्येन वाऽम्लेन हृद्येन वा पायतेत्॥" (च.सि. 9/8)

4. स्थिरादि पंचमूल के क्वाथ में चीनी मिलाकर पिलायें[1]।
5. वृहत पंचमूल के क्वाथ से यवागू बनाकर खिलायें[2]।

चिकित्सा

हृदयाभिघात की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार करनी चाहिये–

1. **संशोधन चिकित्सा**

(i) स्नेहन-स्वेदन।
(ii) दशमूल क्वाथ/एरण्डमूलादि क्वाथ आस्थापन बस्ति।
(iii) दशमूल तैल से अनुवासन बस्ति।

2. **संशमन चिकित्सा**

हृदरोग की चिकित्सा में वर्णित रस/भस्म/पिष्टी/वटी/चूर्ण/घृत/पाक/अवलेह/आसव/अरिष्ट/क्वाथ आदि समस्त औषध योगों का प्रयोग हृदयाभिघात में भी लाभप्रद है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) प्रातः सांयम्

विश्वेश्वर रस	:	250 मि.ग्रा.
पुष्कर मूल चूर्ण	:	2 ग्राम
श्रृंग भस्म	:	500 मि.ग्रा.
शहद से	:	1x2 मात्रा

(2) भोजनोत्तर

दशमूलारिष्ट	:	20 मि.ली.
जल से	:	1x2 मात्रा

(3) च्यवनप्राशावलेह : 20 ग्राम
दूध से : 1x2 मात्रा

(4) दशमूल तैल से अनुवासन तथा
एरण्डमूलादि आस्थापन बस्ति : काल बस्ति क्रम से

पथ्य-अपथ्य

हृद्रोग के समस्त पथ्य-अपथ्य हृदयाभिघात के भी पथ्य-अपथ्य हैं।

---

1. "स्थिरादिपंचमूलीरसः सशर्करः पानार्थं।" (च.सि. 9/8)
2. "विल्वादिपंचमूलरससिद्धा च यवागू, हृदरोगविहितं च कर्म।" (च.सि. 9/8)

द्वितीय खण्ड

उदकवह स्त्रोतस् के रोग

स्त्रोतस् परिचय

उदकवह स्त्रोतस् का वर्णन शास्त्रों में अम्बुवह स्त्रोतस्, जलवाही स्त्रोतस्, अपावाही स्त्रोतस्, तोयवाही स्त्रोतस्, अम्बुवाही नाड़ी, जलवह नाड़ी तथा अम्बु मार्ग आदि नामों से प्राप्त होता है। उदकवह स्त्रोतस् का मूल तालु व क्लोम हैं। आचार्य सुश्रुत ने वर्णित किया है कि इस स्त्रोतस् के विद्ध होने पर पिपासा व सद्योमरण हो सकता है[1]।

आचार्य चरक के अनुसार उदकवह स्त्रोतस् के प्रदुष्ट होने पर जिह्वा, तालु, ओष्ठ, कण्ठ, क्लोम, शोष व अति प्रवृद्ध पिपासा उत्पन्न होती है[2]।

उदकवह स्त्रोतोदुष्टि हेतु

अत्यधिक उष्ण आहार-विहार, आमदोष, भय, मद्यपान, अधिक शुष्क अन्न सेवन एवं पिपासा के वेग को अधिक समय तक रोकने से अम्बुवाही स्त्रोतस् दुष्ट होते हैं[3]। इसकी चिकित्सा तृष्णोपशमनी बताई गयी है[4]। आचार्य चरक ने सिद्धि स्थान में सभी अम्बुवह स्त्रोतस् का अधिष्ठान बस्ति बताया है। उदर रोग, शोथ, जलोदर तथा तृष्णा रोग की सम्प्राप्ति में अम्बुवाही स्त्रोतस् की दुष्टि का वर्णन प्राप्त होता है। उदकवह स्त्रोतस् का सम्बन्ध सम्पूर्ण शरीर में स्थित जल की मात्रा के साथ है। जल का सम्बन्ध तृष्णा से और तृष्णा का सम्बन्ध कण्ठ व तालु से होता है। क्लोम की गणना कोष्ठाङ्ग में की गयी है। आचार्य चक्रपाणि ने क्लोम को हृदय समीप स्थित पिपासा का स्थान बताया है। आचार्य गणनाथ सेन ने क्लोम की तुलना अग्न्याशय (Pancreas) व श्वासपथ (Trachea) से की है। कुछ आचार्य क्लोम से दक्षिण फुफ्फुस का भी ग्रहण करते हैं। उपर्युक्त वर्णन

---

1. "उदकवहे द्वे, तयोर्मूलं तालु क्लोम च, तत्र विद्धस्य पिपासा सद्यो मरणं च॥" (सु.शा. 9/12)
2. "उदकवहानां स्रोतसां.....।.....विद्यात्॥"(च.वि. 5/8)
3. "औष्ण्यादामाद्भयात् पानादतिशुष्कान्नसेवनात्। अम्बुवाहीनि दुष्यन्ति तृष्णायश्चातिपीडनात्॥" (च.वि. 5/11)
4. "कार्या तृष्णोपशमनी तथैवामप्रदोषिकी॥" (च.वि. 5/26)

के आधार पर उदकवह स्रोतस् प्रत्यक्ष शारीर की दृष्टि से तालु (Palate) एवं क्लोम (Trachea and Pancreas) में प्रविष्ट होने वाली सभी रसकुल्यायें (Lymphatics) प्रतीत होती हैं।

मनुष्य शरीर में सर्वाधिक दश अंजली मात्रा उदक की होती है। उसी से शरीर में 'क्लेदन' कर्म होता है। प्रमेह रोग व कुष्ठ रोग में क्लेद की दुष्टि स्पष्ट वर्णित है। अतिसार, तृष्णा व हिक्का-श्वास रोग इत्यादि में भी उदकवह स्रोतो दुष्टि वर्णित है। उदक मूत्रवह स्रोतस् से निकलने पर 'मूत्र' कहलाता है एवं स्वेदवह स्रोतस् से निकलने पर 'स्वेद' कहलाता है। अतः उदकवह स्रोतस् की व्याधियों में मूत्र व स्वेद की भी विकृति आवश्यक रूप से मिलती है। तृष्णा रोग में उदक का क्षय होता है। जलोदर रोग में उदर प्रदेश के त्वक् मांस अन्तर्गत जल का संचय हो जाता है। उदकवह स्रोतस् का रचना शारीर (Anatomy) की दृष्टि से पृथक् अस्तित्व नहीं है, उदक रस-रक्तवह स्रोतस् के माध्यम से ही शरीर में भ्रमण करता है। रस, रक्त, लसीका, स्वेद एवं मूत्र इन सभी का प्रमुख घटक उदक ही है। उदक के प्राकृतिक विनिमय के लिये लवण (Salts) की भी आवश्यकता होती है। अतः उदकक्षय की स्थिति में लवण का प्रयोग एवं उदकवृद्धि (शोथ, जलोदर इत्यादि) में लवण वर्जित आहार देने का विधान है। शोथ व जलोदर रोग में स्थानीय (Localised) उदकवृद्धि के लक्षण प्राप्त होते हैं एवं शरीर के अन्य भागों में उदकक्षय के लक्षण प्राप्त होते हैं। प्रभावित क्षेत्र में संगात्मक विकृति के कारण इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती हैं। उदकवह स्रोतस् का सम्बन्ध प्राण, समान, अग्नि, पित्तधरा कला व मलधरा कला से भी होता है। अतः उदक स्रोतोगत व्याधियों में निम्न व्याधियों को समाविष्ट किया गया है—

1. तृष्णा (Thirst/Polydypsia)
2. अतिसार (Diarrhoea)
3. प्रवाहिका (Dysentery)
4. विसूचिका (Cholera)
5. जलोदर (Ascites)

उपर्युक्त व्याधियों का नैदानिक विवरण, चिकित्सा सूत्र एवं चिकित्सा विस्तृत रूप से इस खण्ड में वर्णित है।

अध्याय-12

तृष्णा रोग

(POLYDYPSIA)

व्याधि परिचय

तृष्णा या प्यास लगना स्वभावत: ही प्राणियों में उत्पन्न होने वाली दैनिक क्रिया है। स्वभाव से उत्पन्न होने वाली तृष्णा को रोग नहीं माना जाता है। जो तृष्णा अस्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है उसे ही रोग माना जाता है। उसी का वर्णन यहाँ किया जा रहा है। तृष्णा अनेक रोगों के लक्षण स्वरूप अथवा कभी-कभी स्वतन्त्र रोग के रूप में भी पायी जाती है। पित्त दोष के अग्निस्वरूप होने से तथा वात दोष का शोषण गुण होने से सभी प्रकार की तृष्णाओं में पित्त और वात का कारणत्व स्वीकार किया गया है। कफ दोष उदक के समान गुणधर्मी वाला होने के कारण उदक का क्षय नहीं कर सकता है, अत: तृष्णा रोग की उत्पत्ति में कफ का स्पष्ट कर्तृत्व नहीं है। इसलिये तृष्णा रोग के निदानों में वात तथा पित्त दोष प्रकोपक कारण बताये गये हैं। जिन व्याधियों में तृष्णा को लक्षण या उपद्रव के रूप में बताया गया है वे प्राय: वात या पित्त प्रधान व्याधियां होती हैं। ये व्याधियां निम्न हैं—

1. रसज ज्वर
2. रक्तज ज्वर
3. मांसज ज्वर
4. मेदज ज्वर
5. पित्तज शोथ
6. पित्तोदर
7. प्लीहोदर
8. यकृद्दाल्युदर
9. बद्धोदर
10. जलोदर
11. विसूचिका
12. वातिक ग्रहणी
13. पैत्तिक कास
14. पित्तातिसार
15. पैत्तिक छर्दि
16. त्रिदोषज छर्दि
17. पित्तज विसर्प
18. उदावर्त
19. हृदय रोग
20. पैत्तिक प्रतिश्याय आदि।

प्रमुख लक्षणों के आधार पर तृष्णा रोग का सामञ्जस्य आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में

वर्णित Polydypsia नामक रोग से किया जाता है।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चरक संहिता, सूत्रस्थान - अध्याय 19
2. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान - अध्याय 22
3. सुश्रुत संहिता, उत्तर तन्त्र - अध्याय 48
4. अष्टाङ्ग हृदय, निदान स्थान - अध्याय 5
5. अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान - अध्याय 6
6. अष्टाङ्ग संग्रह, निदान स्थान - अध्याय 6
7. माधव निदान, तृष्णा निदानम् - अध्याय 16

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

'तृष्णा' शब्द 'तृष्' धातु से बना हुआ है, जिसका अर्थ होता है लोभ या आकांक्षा। शरीर में विभिन्न कारणों से जब जलीयांश की कमी हो जाती है तो जल का लोभ तथा आकांक्षा उत्पन्न होती है।

परिभाषा

जब लगातार जल पीने पर भी मनुष्य की तृप्ति नहीं होती है तथा तृष्णा या पिपासा शान्त न हो और वह बार-बार जल की आकांक्षा करें, उस स्थिति को 'तृष्णा' रोग कहते हैं[1]।

पर्याय

तृष्णा, तृषा, तृट्, पिपासा यह सभी शब्द तृष्णा अर्थात् प्यास (Thirst) के बोधक हैं।

निदान

I. सामान्य निदान[2]

शारीरिक व मानसिक क्षोभ, भय-श्रम-शोक-क्रोध-अतिलंघन, अत्यधिक मद्यपान, अधिक क्षार-अम्ल-लवण-कटु रस सेवन, उष्ण-रूक्ष-शुष्क अन्न अधिक सेवन, धातु क्षय, जीर्ण रोग के कारण कृशित हो जाने से, वमन-विरेचन आदि संशोधन कर्मों के

---

1. "सततं यः पिबेद्वारि न तृप्तिमधिगच्छति। पुनः काङ्क्षति तोयञ्च तं तृष्णार्दितमादिशेत्॥" (सु.उ. 48/3)

2. i) "क्षोभाद्भयाच्छ्रमादपि शोकात्क्रोधाद्विलङ्घनान्मद्यात्।
क्षाराम्ललवणकटुकोष्णरूक्षशुष्कान्नसेवाभिः॥ धातुक्षयगदकर्षणवमनाद्यतियोगसूर्यसंतापैः।" (च.चि. 22/4-5)

ii) "भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा ह्यूर्ध्वं चितं पित्तविवर्धनैश्च।
पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम्॥" (मा.नि. 16/1)

अतियोग से एवं सूर्यताप में बैठने से बढ़े हुये पित्त एवं वात दोष शरीर की सौम्य (जल प्रधान) धातुओं का शोषण कर देते हैं। तत्पश्चात् जिह्वामूल, गला, तालु एवं क्लोम में स्थित रसवाहिनी नलिकाओं को सुखाकर तृष्णा रोग उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त निम्न हेतु भी तृष्णा रोग उत्पत्ति के महत्वपूर्ण कारण हैं—

II. विशिष्ट निदान

(i) **वात दोष प्रकोपक हेतु**—क्षोभ, भय, श्रम, क्रोध, शोक, अतिलंघन, रुक्ष-शुष्क अन्न, अतिमद्यपान, धातुक्षय, रोगजकृशता एवं वमन-विरेचन का अतियोग, ये वात दोष प्रकोपक हेतु हैं।

(ii) **पित्त दोष प्रकोपक हेतु**—कटु-अम्ल-उष्ण-तीक्ष्ण-क्षार-लवण पदार्थ एवं क्रोध, सूर्यताप आदि पित्त दोष प्रकोपक हेतु हैं।

(iii) **शारीरिक कारण**—कटु-अम्ल-उष्ण-तीक्ष्ण-रुक्ष-क्षार-लवण, मद्य आदि पदार्थ एवं धातुक्षय, श्रम, वमन-विरेचनाति योग एवं अतिसार आदि शारीरिक कारण हैं जिनके अतियोग से तृष्णा रोग उत्पन्न हो सकता है।

(iv) **मानसिक कारण**—भय, क्षोभ, क्रोध, शोक आदि मानसिक कारणों का अति योग तृष्णा रोग उत्पन्न कर सकता है।

(v) **आगन्तुक कारण**—तृष्णा रोग की उत्पत्ति में सूर्यसन्ताप प्रमुख आगन्तुक कारण है।

(vi) **अन्य कारण**—मधुमेह, रक्त स्राव, तीव्र ज्वर, तीव्र छर्दि, विसूचिका, अतिसार, जलोदर (वृक्क रोग जन्य) तथा ग्रीष्म ऋतु आदि तृष्णा रोग उत्पादन के अन्य कारण हैं।

सम्प्राप्ति (सामान्य)[1]

स्वप्रकोपक कारणों से प्रकुपित वात तथा पित्त दोष उदकवह स्रोतस् में जाकर उदक को सुखा देते हैं, जिससे शरीर में जल धातु की कमी हो जाती है, जिसकी पूर्ति के लिये पिपासा (तृष्णा) उत्पन्न होती है। ये प्रकुपित पित्त और वात दोष बार-बार पिया गया जल भी सुखा देते हैं। इसलिये बार-बार जल पीने पर भी तृषा (प्यास) की शान्ति नहीं होती है। भयंकर व्याधि से कृशित व्यक्ति में भी प्यास की अधिकता पायी जाती है। यह उपद्रव स्वरूप तृष्णा 'उपसर्गज' तृष्णा कहलाती है।

1. i) "पित्तानिलौ प्रवृद्धौ सौम्यान्धातूंश्च शोषयतः। रसवाहिनीश्च नालीर्जिह्वामूलगलतालुकक्लोम्नः। संशोष्य नृणां देहे कुरुतस्तृष्णां महाबलावेतौ॥ पीतं पीतं हि जलं शोषयतस्तावतो न याति शमम्। घोरव्याधिकृशानांप्रभवत्युपसर्गभूता सा॥" (च.चि. 22/5-7)

ii) "नाग्निं विना हि तर्षः पवनाद्वा तौ हि शोषणे हेतु।
अब्धातोरतिवृद्धावपां क्षये तृष्यते नरो हि॥" (च.चि. 22/19)

सम्प्राप्ति चक्र

विविध निदान सेवन
↓
वात एवं पित्त दोष प्रकोप
↓
प्रकुपित वात व पित्त दोष
↓
उर्ध्वगमन
↓
तालु-क्लोम शोष (उदकवह स्रोतस् दुष्टि)
↓
तृष्णा रोगोत्पत्ति

सम्प्राप्ति घटक

दोष	: पित्त व वात
दूष्य	: उदक (अप् धातु)
स्रोतस्	: उदकवह स्रोतस्
स्रोतोदुष्टि लक्षण	: विमार्गगमन
अधिष्ठान	: तालु, क्लोम आदि
आशय	: आमाशयोत्थ व्याधि
स्वभाव	: आशुकारी

भेद

बृहत्रयी में विभिन्न आचार्यों ने तृष्णा रोग के निम्न भेद वर्णित किये हैं–

क्रम सं.	चरक संहिता[1] 5 भेद	सुश्रुत संहिता[2] 7 भेद	अष्टांङ्ग हृदय[3] 7 भेद
1.	वातज	वातज	वातज
2.	पित्तज	पित्तज	पित्तज
3.	आमज	कफज	कफज

1. "पञ्च तृष्णा इति वातपित्तामक्षयोपसर्गात्मिकाः॥" (च.सू. 19/4(4)
2. "तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी, क्षयात्तथाऽन्याऽऽमसमुद्भवा च।
स्यात्सप्तमी भक्तनिमित्तजा तु, निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु॥" (सु.उ. 48/6)
3. "वातात्पित्तात्कफात्तृष्णा सन्निपाताद्रसक्षयात्।" (अ.ह.नि. 5/45)

4.	क्षयज	क्षयज	सन्निपातज
5.	उपसर्गज	क्षतज (व्रणज)	आमज
6.	----	आमज	क्षयज
7.	----	अन्नज	उपसर्गज

अतः वर्णन क्रम से तृष्णा के निम्न सात भेद प्राप्त होते हैं—

1. वातज तृष्णा
2. पित्तज तृष्णा
3. आमजा (कफज) तृष्णा
4. क्षयजा (सन्निपातज) तृष्णा
5. उपसर्गजा (उपद्रव स्वरूप) तृष्णा
6. अन्नजा (भक्तोद्भवा) तृष्णा
7. मद्यजा तृष्णा आदि।

पूर्वरूप[1]

'मुख शोष' तृष्णा रोग का पूर्वरूप है। इसमें सदा जल पीने की इच्छा बनी रहती है। यह तृष्णा रोग का स्वयं में एक लक्षण भी है।

आचार्य सुश्रुत ने तृष्णा रोग के निम्न पूर्वरूप वर्णित किये हैं[2]—

1. तालु-ओष्ठ-कण्ठ व मुख का सूखना
2. दाह
3. संताप
4. मोह
5. भ्रम
6. प्रलाप आदि।

सामान्य लक्षण (रूप)[3]

तृष्णा निम्न लक्षणों के माध्यम से प्रकट होती है—

1. मुख शोष
2. स्वरभेद
3. भ्रम
4. संताप
5. प्रलाप
6. संस्तम्भ

1. "प्राग्रूपं मुखशोषः, स्वलक्षणं सर्वदाऽम्बुकामित्वम्।
तृष्णानां सर्वासां लिङ्गानां लाघवमपायः॥" (च.चि. 22/8)
2. "तालोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहाः, संतापमोह भ्रमविप्रलापाः।
पूर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासा, मुत्पत्तिकालेषु विशेषतस्तु॥" (सु.उ. 48/7)
3. i) "कण्ठास्यशोषो बाधिर्यं श्रमः सादो हृदि व्यथा।" (च.सू. 7/21)
ii) "मुखशोषस्वरभेदभ्रमसंतापप्रलापसंस्तम्भान्। तालोष्ठकण्ठजिह्वाकर्कशतांचित्तनाशं च॥
जिह्वानिर्गममरुचिं बाधिर्यं मर्मदूयनं सादम्। तृष्णोद्भूता कुरुते, पञ्चविधां लिङ्गतः शृणु ताम्॥"
(च.चि. 22/9-10)

7. तालु शोष
8. ओष्ठ शोष
9. जिह्वा शोष
10. मूर्च्छा
11. जिह्वा बाहर निकलना
12. अरूचि
13. बाधिर्य
14. मर्म पीड़ा
15. शरीर शैथिल्य आदि।

भेदानुसार सम्प्राप्ति व लक्षण

उपर्युक्त भेदों के आधार पर तृष्णा के प्रत्येक भेद की सम्प्राप्ति (विशिष्ट) एवं विशिष्ट लक्षण निम्नानुसार हैं—

1. वातज तृष्णा-सम्प्राप्ति व लक्षण[1]

प्रकुपित हुई वायु जब शरीर के जल धातु का शोषण कर देती है तो रोगी सुख जाता है व तृष्णा रोग से पीड़ित हो जाता है। इस अवस्था में निद्रानाश, भ्रम, मुखविरसता एवं स्रोतों में रुकावट इत्यादि लक्षण मिलते हैं।

2. पित्तज तृष्णा-सम्प्राप्ति व लक्षण[2]

पित्त दोष को आग्नेय गुण प्रधान माना गया है। यह प्रकुपित पित्त जलीय धातु को दाहयुक्त बना देता है एवं तृष्णा रोग को उत्पन्न करता है। इसमें मुख का स्वाद तिक्त, शिर में दाह, शीतल वस्तुओं के सेवन की अधिक इच्छा, मूर्च्छा एवं नेत्र-मूत्र व मल का वर्ण पीत हो जाना इत्यादि लक्षण मिलते हैं।

3. आमज तृष्णा-सम्प्राप्ति व लक्षण[3]

जो तृष्णा आमदोष (कफ दोष) के कारण उत्पन्न होती है वह भी आम और पित्त दोष से उत्पन्न होने के कारण आग्नेय मानी जाती है। आचार्य चरक ने आम शब्द से कफ का ग्रहण कर कफज तृष्णा का भी समावेश इसी में कर लिया है। आचार्य सुश्रुत ने इसे

---

1. i) "अब्धातुं देहस्थं कुपितः पवनो यदा विशोषयति। तस्मिञ्शुष्के शुष्यत्यबलस्तृष्यत्यथ विशुष्यन्॥
निद्रानाशः शिरसो भ्रमस्तथा शुष्कविरसमुखता च।
स्रोतोऽवरोध इति च स्याल्लिङ्गं वाततृष्णायाः॥" (च.चि. 22/11-12)
ii) "शुष्कास्यता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि।
स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति॥" (सु.उ. 48/8)
2. ii) "पित्तं मतमाग्नेयं ..... । ..... पित्ततृष्णाया॥" (च.चि. 22/13-14)
ii) "मूर्च्छाप्रलापारुचिवक्त्रशोषाः पीतेक्षणत्वं प्रततश्च दाहः।
शीताभिकाङ्क्षा मुखतिक्तता च, पित्तात्मिकायां परिधूपनंञ्च॥" (सु.उ. 48/9)
3. i) "तृष्णा याऽऽमप्रभवा साऽप्याग्नेयाऽऽमपित्तजनित्वात्।
लिङ्गं तस्याश्चारुचिराध्मानकफप्रसेकौ च॥" (च.चि. 22/15)
ii) "त्रिदोषलिङ्गाऽऽमसमुद्भवा च, हृच्छूलनिष्ठीवनसादयुक्ता।" (सु.उ. 48/14)

त्रिदोष से उत्पन्न होना बताया है। इस प्रकार की तृष्णा में भोजन में अरुचि, उदर प्रदेश में आध्मान, मुख से बार-बार कफ का निकलना, हृदय में शूल एवं निष्ठीवन इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं।

4. क्षयज (सन्निपातज) तृष्णा-सम्प्राप्ति व लक्षण[1]

यह तृष्णा रोग शरीरस्थ रस धातु के क्षय से उत्पन्न होती है। अत: इसमें रस क्षय के सभी लक्षण पाये जाते हैं। इसमें रोगी का स्वर दीन हो जाता है। नेत्रों के आगे अंधेरा छा जाता है, हृदय-गला व तालु सूख जाता है। इस तृष्णा रोग से पीड़ित व्यक्ति दिन-रात बार-बार पानी पीता है किंतु फिर भी उसे आराम नहीं मिलता है। आचार्य सुश्रुत ने इसे सन्निपातज तृष्णा के नाम से वर्णित किया है।

5. उपसर्गज तृष्णा-सम्प्राप्ति व लक्षण[2]

ज्वर, प्रमेह, क्षय, शोष, श्वास आदि रोगों से पीड़ित रोगी में उपद्रव स्वरुप जो तृष्णा उत्पन्न होती है, वह उपसर्गज तृष्णा कहलाती है। इसमें रोगी के शरीर में दीन स्वर, शरीर शुष्कता, गल-तालु शुष्कता आदि लक्षण पाये जाते हैं। यह तृष्णा कृच्छ्रसाध्य होती है।

6. अन्नजा तृष्णा-सम्प्राप्ति व लक्षण[3]

इस तृष्णा को आचार्य सुश्रुत ने भक्तोद्भवा तृष्णा नाम से कहा है। गुरु, स्निग्ध अम्ल एवं लवण पदार्थों के अति सेवन से परिपाक के समय स्त्रोतों के आवृत हो जाने के कारण जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसे अन्नजा तृष्णा कहते हैं। इस तृष्णा में वायु व अग्नि (पित्त) ही कारण होते हैं।

7. मद्यजा तृष्णा-सम्प्राप्ति व लक्षण[4]

जो व्यक्ति निरंतर मद्यपान करते हैं, उनके शरीर में सेवित मद्य अपने तीक्ष्ण-उष्ण-

---

1. i) "देहो रसजोऽम्बुभवो रसश्च तस्य क्षयाच्चतृष्येद्धि। दीनस्वरं प्रताम्यन् संशुष्कहृदयगलतालु: ॥"
(च.चि. 22/16)

ii) "रसक्षयाद्या क्षयजा मता सा तयाऽर्दित: शुष्यति दह्यते च।
अत्यर्थमाकाङ्क्षति चापि तोयं, तां सन्निपातादिति केचिदाहु: ॥
रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि, तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत्।" (सु.उ. 48/13-14)

2. i) "भवति खलु योपसर्गात्तृष्णा सा शोषिणी कष्टा। ज्वरमेहक्षयशोषश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥"
(च.चि. 22/17)

ii) "शोषमेहज्वराद्यन्यदीर्घरोगोपसर्गत:। या तृष्णा जायते तीव्र सोपसर्गात्मिका स्मृता ॥"
(अ.हृ.नि. 5/57)

3. i) "गुर्वन्नपय: स्नेहै: संमूर्च्छद्विर्विदाहकाले च। यस्तृष्येद्वृत्तमार्गे तत्राप्यनिलानलौ हेतू ॥"
(च.चि. 22/20)

4. ii) "स्निग्धं तथाऽम्लं लवणञ्च भुक्तं, गुर्वन्नमेवातितृषां करोति।" (सु.उ. 48/15)
"तीक्ष्णोष्णरुक्षभावान्मद्यं पित्तानिलौ प्रकोपयति। शोषयतोऽपां धातुं तावेव हि मद्यशीलानाम् ॥"
(च.चि. 22/21)

रुक्ष गुणों के कारण पित्त और वायु दोष को कुपित कर देता है। ये बढ़े हुए वायु व पित्त दोष शारीरिक जल धातु को सुखा देते हैं जिससे तृष्णा रोग की उत्पत्ति होती है।

साध्यासाध्यता[1]

जीर्ण रोगों से जो व्यक्ति अत्यधिक कृश हो गया हो, जिस तृष्णा रोग में निरंतर छर्दि (वमन) होती हो, तृष्णा का वेग अतिप्रबल हो, उपद्रव सहित तृष्णा हो, बाधिर्य उत्पन्न हो गया हो एवं जिसकी जिह्वा बाहर निकल आयी हो उस तृष्णा रोगी की चिकित्सा न करें अर्थात् वह तृष्णा असाध्य होती है।

चिकित्सा सूत्र

1. निदान का परित्याग करें।
2. संशोधन, संशमन, निद्रासेवन, स्नानकर्म, कवल धारण एवं दीपक की ज्वाला में जलाई हुई हरिद्रा की गाँठ से जिह्वा के अधोभाग में स्थित सिराओं का दहन कर्म करना चाहिए[2]।
3. अवगाहन, अनुलेपन, गण्डूष, यूष एवं कवल धारण करवायें।

सामान्य चिकित्सा

1. **शीतज जल**—तृष्णा रोग में रोगी के शरीर में जलाभाव होने के कारण रोगी को बार-बार थोड़ा-थोड़ा जल पीने को देना चाहिए। एक साथ अधिक जल पीने से मन्दाग्नि उत्पन्न हो सकती है।
2. **ऐन्द्र जल**[3]—तृष्णा रोग में जलीयांश की पूर्ति के लिए ऐन्द्र जल (वर्षा जल) का सेवन कराना चाहिए। ऐन्द्र जलाभाव में पृथ्वी पर उपलब्ध होने वाला कषैला, पतला, लघु, शीतल, सुगन्धित, उत्तम रसयुक्त जल पीना चाहिए। यह ऐन्द्र जल मधु मिलाकर पिलाना चाहिए[2]।
3. **तृणपञ्चमूल जल**[4]—तृणपञ्चमूल द्वारा पकाये गये जल में मिश्री मिलाकर

---

1. i) "सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम्। घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः॥"
   ii) "क्षीणं विचित्तं बधिरं तृषार्तं, विवर्जयेन्निर्गतजिह्वमाशु॥" (च.चि. 22/18)
2. "शोधनं शमनं निद्रां स्नानं कवलधारणम्। जिह्वाऽधःशिरयोर्दाहो दीपदग्धहरिद्रया॥" (सु.उ. 48/16)
3. "अपां क्षयाद्धि तृष्णा संशोष्य नरं प्रणाशयेदाशु। तस्मादैन्द्रं तोयं समधु पिबेत्तद्गुणं वाऽन्यत्॥" (भै.र. 20/31)
4. "किञ्चित्तुवरानुरसं तनु लघु शीतलं सुगन्धि सुरसं च।
   अनभिष्यन्दि च यत्तत्क्षितिगतमप्यैन्द्रवज्ज्ञेयम्॥" (च.चि. 22/25) (च.चि. 22/26)

रोगी को पिलावें अथवा धान के लावा का सत्तु, मिश्री, ऐन्द्र जल एवं मधु मिलाकर रोगी को मन्थ के रुप में दें।

4. **अवगाहन व यूष**[1]—तृष्णा के रोगी को शीतल जल व शतधौतघृत से अवगाहन कराना चाहिए। अवगाहन का अर्थ है—द्रोणी स्नान (Tub Bath), तत्पश्चात् दुग्ध तथा मूंग, मसूर, चना को घृत में भूनकर उसका यूष बनाकर रोगी को पीने को दें।

5. **गण्डूष**[2]—गोदुग्ध, इक्षु रस, गुड़ोदक, मिश्री, मधु, सीधू, माध्वीक (मधु निर्मित मदिरा), वृक्षाम्ल एवं बिजौरा निम्बू का रस, इन सभी को मुख में रखकर रोगी गण्डूष करें, इससे तालु शोष नष्ट होता है।

6. **प्रलेप**[3]—जामुन, आम्रातक, बदर, वेतस, पंचवल्कल, पंचाम्ल (खट्टा बेर, खट्टा दाड़िम, इमली, चांगेरी, चूक) को समभाग लेकर कल्क बनाकर घृत मिलाकर हृदय प्रदेश, मुख व शिरः प्रदेश पर लेप लगाने से मूर्च्छा, भ्रम और तृष्णा दूर होते हैं।

7. **तृष्णानाशक स्पर्श द्रव्य**[4]—मस्तु (दधि का पानी) एवं कांजी इन दोनों को वस्त्र में भिगोकर रोगी के मस्तक, हृदय एवं मुख प्रदेश पर स्पर्श कराना चाहिए। अथवा कमल के फूल की माला या मणियों की माला को गले में धारण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त रमणियों के स्पर्श, रेशमी वस्त्र धारण तथा वराङ्गनाओं के स्पर्श से तृष्णा रोग की शांति होती है।

8. **नस्य**[5]—स्त्रीदुग्ध अथवा ऊटनी के दुग्ध में चीनी मिलाकर रोगी को नस्य के लिए दें। अथवा मधुर-शीत जीवनीय व तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत पानार्थ, अभ्यङ्गार्थ व नस्यार्थ दें अथवा रोगी को ईख के रस का नस्य देना चाहिए।

---

1. "शृतशीतं ससितोपलमथवा शरपूर्वपञ्चमूलेन। लाजासक्तुसिताह्वामधुयुतमैन्द्रेण वा मन्थम्॥" (च.चि. 22/27)
2. "शतधौतघृतेनाक्तः पयः पिबेच्छीततोयमवगाह्य। मुद्गमसूरचणकजा रसास्तु भृष्टा घृते देयाः॥" (च.चि. 22/31)
3. "क्षीरेक्षुरसगुडोदकसितोपलाक्षौद्रसीधुमाद्वीकैः। वृक्षाम्लमातुलुङ्गैर्गण्डूषास्तालुशोषघ्नाः॥" (च.चि. 22/34)
4. "जम्ब्वाम्रातकबदरीवेतसपञ्चवल्कपञ्चाम्लैः। हृन्मुखशिरःप्रदेहाः सघृतामूर्च्छाभ्रमतृष्णाघ्नाः स्युः॥" (च.चि. 22/35)
5. "मरुत्वारनालार्द्धं ..... । ..... तृष्णाघ्नाः॥" (च.चि. 22/37-39)
6. "तर्जं वा घृतमिष्टं पानाभ्यङ्गेषु नस्यमपि च स्यात्। नारीपयः सशर्करमुष्टया अपि नस्यमिक्षुरसः॥" (च.चि. 22/33)

9. **सद्यः संतर्पण द्रव्य**—रोगी को सद्यः संतर्पण हेतु द्राक्षा, खर्जूर, परुषक, शर्करा, गुड़, मिश्री आदि द्रव्य देना चाहिए।

10. **वमन**—आवश्यकता होने पर रोगी को मधूदक आकण्ठ मिलाकर वमन कराने से तृष्णा शांत होती है।

भेदानुसार चिकित्सा

1. **वातज तृष्णा चिकित्सा**[1]

(i) वातज तृष्णा की शान्ति हेतु वातघ्न, मृदु, लघु व शीतल अन्नपान का सेवन कराना चाहिए।

(ii) इसमें गुड़ मिले दधि का प्रयोग करना लाभदायक रहता है।

2. **पित्तज तृष्णा चिकित्सा**

(i) मधुर, तिक्त, द्रव, शीतल पदार्थों के सेवन से पित्तज तृष्णा का शमन होता है[2]।

(ii) मुनक्का, सफेद चन्दन, पिण्ड खर्जूर, खश से पकाये जल के शीतल हो जाने पर मधु मिलाकर पित्तज तृष्णा शमनार्थ देना चाहिए।[3]

(iii) सारिवादि गण की औषधियों का कषाय पानार्थ दें।

(iv) काश्मर्यादि शीतकषाय, लाजोदक भी पित्तज तृष्णा शमनार्थ लाभकारी रहता है।

3. **आमज तृष्णा चिकित्सा**[4]

(i) शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, वचा, भिलावा तथा तिक्त द्रव्यों के कषाय का प्रयोग आमज तृष्णा में करना चाहिए।

(ii) कफज छर्दि रोग की शांति हेतु वर्णित चिकित्सा का प्रयोग करना लाभदायक रहता है।

तृष्णा रोग में शरीर में जकड़ाहट, भोजन में अरुचि, अविपाक, आलस्य एवं छर्दि आदि लक्षण स्वरुप में उत्पन्न होते हैं। ऐसे कफानुबन्ध वाले तृष्णारोग में दधि,

---

1. "वातघ्नमन्नपानं मृदु लघु शीतञ्च वाततृष्णायाम्।
तृष्णायां पवनोत्थायां सगुड़ं दधि शस्यते॥" (भा.प्र. मध्य खण्ड 18/13-14)
2. "स्वादु तिक्तं द्रवं शीतं पित्ततृष्णाऽपहं परम्॥" (भा.प्र. मध्य खण्ड 18/14)
3. "पैत्ते द्राक्षाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुतं तोयम्॥" (च.चि. 22/41)
4. "व्योषवचाभल्लातक तिक्तकषायास्तथाऽऽमतृष्णाघ्नाः।
यच्चोक्तं कफजायां वम्यां तच्चैव कार्यं स्यात्॥" (च.चि. 22/47)

मधु, तर्पण, नमक ओर उष्ण जल मिलाकर रोगी को वमन करवाना उत्तम रहता है।[1]

4. क्षयज-क्षतज तृष्णा चिकित्सा[2]

(i) क्षयज (क्षतज) तृष्णा की शांति हेतु क्षयज कास चिकित्सा हेतु वर्णित दुग्ध-घृत का प्रयोग कराना चाहिए।

(ii) इसमें क्षतक्षीण व शोष रोगाधिकार की औषधियों का प्रयोग करें।

(iii) इसमें मांस रस सेवन, मधु, गाय व बकरी का दूध लाभदायक रहता है।

(iv) इसमें वमन कर्म निषिद्ध है।

(v) क्षतज तृष्णा में क्षत की चिकित्सा, मांस रस का प्रयोग, रक्तपान एवं रक्तस्तम्भन आदि कर्म सम्पादित करना चाहिए।

5. मद्यज तृष्णा चिकित्सा[3]

(i) मद्यज तृष्णा में मदिरा में आधा भाग पानी मिलाकर उसमें खट्टे अनार का रस, सैंधव लवण, जावित्री, जायफल आदि सुगन्धित द्रव्य मिलाकर रोगी को पिलाना चाहिए। इसे हेतु विपरीतार्थकारी चिकित्सा कहते हैं।

(ii) शीतल जल से स्नान करने के बाद जिस मद्यज व्यक्ति को तृष्णा उत्पन्न हुयी हो उसे आधे जल मिली हुई मदिरा गुड़ाम्बु का पान करवाना चाहिए।

शीतजल पान करने योग्य रोग[4]

तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, मदात्यय, रक्तदोष एवं विष सेवन आदि स्थितियों में स्वभाव से शीतल जलपान करना लाभकारी रहता है। सन्निपातज अवस्था में गर्म करने के पश्चात् शीत हुये जल का पान कराना चाहिए।

उष्ण जल पान करने योग्य रोग[5]

हिक्का, श्वास, नूतन ज्वर, पीनस, घृतपान पश्चात्, पार्श्व रोग, गले के रोग, कफ-

---

1. "स्तम्भारुच्यविपाकालस्यच्छर्दिषु कफानुगां तृष्णाम्।
ज्ञात्वा दधिमधुतर्पणलवणोष्णजलैर्वमनमिष्टम्॥" (च.चि. 22/48)
2. "क्षयकासेन तु तुल्या क्षयतृष्णा सा गरीयसी नृणाम्।
क्षीणक्षयशोषहितैस्तस्मात्रां भेषजैः शमयेत्॥" (च.चि. 22/50)
3. "पानतृषार्तः पानं त्वर्धोदकमम्ललवणगन्धाढ्यम्।
शिशिरस्नातः पानं मद्याम्बु गुड़ाम्बु वा तृषितः॥" (च.चि. 22/51)
4. "तृड्दाहमूर्च्छाभ्रमक्लममदात्ययास्रविषपित्ते।
शस्तं स्वभावशीतं, श्रृतशीतं, सन्निपातेऽम्भः॥" (च.चि. 22/57)
5. "हिक्काश्वासनवज्वरपीनसघृतपीतपार्श्वगलरोगे।
कफवातकृते स्त्याने सद्यः शुद्धे च हितमुष्णम्॥" (च.चि. 22/58)

वातज रोग एवं संशोधन (वमन-विरेचन) पश्चात् उष्ण जल पीना हितकर होता है।

अल्प जल पान करने योग्य रोग[1]

पाण्डु, उदर रोग, पीनस, प्रमेह, गुल्म, मन्दाग्नि, अतिसार एवं प्लीहा रोग आदि रोगों में जल पीना हितकर नहीं होता है। रोगी यदि सर्वथा जल का त्याग नहीं कर सकता हो तो अल्प मात्रा में जल का सेवन कर सकता है।

धान्याम्बु प्रयोग[2]

पिपासा लगने पर धान्याम्बु में चीनी और मधु मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे पिपासा की निवृत्ति होती है।

चिकित्सा (औषध योग)

निम्न औषध योगों का तृष्णा रोग के रोगियों में युक्तिपूर्वक प्रयोग करने से आशानुकूल लाभ होता है—

1. **रस/पिष्टी**

मात्रा	: 125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	: मिश्री, मधु
(i) महोदधि रस (र.सा.सं.)	: ताम्र, रससिन्दूर, वटांकुर आदि।
(ii) कुमुदेश्वर रस (र.सा.सं.)	: ताम्र, वङ्गं, मधुयष्टी आदि।
(iii) चन्द्रकला रस (वृ.नि.र.)	: कज्जली, अभ्रक, ताम्र आदि।
(iv) प्रवाल पिष्टी	: गुलाब जल भावित प्रवाल।
(v) पिपल्यादि लौह (र.यो.सा.)	: पिप्पली, द्राक्षा, विडंग आदि।

2. **वटी**

मात्रा	: 250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान	: जल, मधु
(i) वटशुङ्गादि गुटिका (च.द.)	: वट, कूठ, लाजा आदि।
(ii) रूगादि वटी (यो.र.)	: कूठ, नागरमोथा, वटांकुर आदि।
(iii) रसादि गुटिका (यो.र.)	: पारद, रजत आदि।
(iv) एलादि गुटिका (च.स.)	: ऐला, तेजपत्र, दालचीनी आदि।

---

1. "पाण्डूदरपीनसमेहगुल्ममन्दानलातिसारेषु। प्लीह्निच तोय न हित काममसद्यो पिबेदल्पम्॥" (च.चि. 22/59)
2. "तस्माद्धान्याम्बु पिबेत्तृष्यन् रोगी सशर्कराक्षौद्रम्। यद्वा तस्यान्यत्स्यात् सात्म्यं रोगस्य तच्चेष्टम्॥" (च.चि. 22/61)

3. चूर्ण

मात्रा	: 2 - 6 ग्राम
अनुपान	: जल
(i) रसादि चूर्ण (यो.र.)	: पारद, गंधक, कर्पूर, शर्करा आदि।
(ii) वटशुङ्गादि चूर्ण (च.द.)	: वटांकुर, लोध्र, दाड़िम आदि।

4. क्वाथ/कषाय

मात्रा	: 20 - 40 मि.ली.
अनुपान	: मधु
(i) आम्रादि क्वाथ (र.सा.स.)	: आम्र, जामुन, रससिन्दूर आदि।
(ii) काश्मर्यादि शीत कषाय (च.द.)	: काश्मरी, चन्दन, खस आदि।
(iii) षडंगपानीय (च.स.)	: मुस्तक, पर्पट, उशीर आदि।

5. आसव/अरिष्ट

मात्रा	: 20 - 40 मि.ली.
अनुपान	: जल
(i) लोध्रासव	: लोध्र, एला, कूठ आदि।
(ii) उशीरासव	: खस, कमल, प्रियंगु आदि।
(iii) चन्दनासव	: चन्दन, नेत्रवाला, नागरमोथा आदि।

6. घृत

मात्रा	: 10 - 20 मि.ली.
अनुपान	: क्षीर
(i) जीवनीय घृत (च.द.)	: जीवनीयगण, घृत, क्षीर आदि।
(ii) अमृतप्राश (च.स.)	: जीवन्ती, काकोली आदि।

7. लेह

मात्रा	: 10 - 20 ग्राम
अनुपान	: दुग्ध
(i) कूष्माण्डावलेह	: पेठा, गोदुग्ध, आंवला आदि।

8. उदक

मात्रा	: आवश्यकतानुसार
(i) मधूदक	: जल, मधु
(ii) षडंगपानीय	: मुस्तक, पर्पट, चन्दन आदि।
(iii) शीतल जल	
(iv) ऐन्द्र जल	

(v) श्रृतशीत जल

(vi) लाजोदक आदि

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) निदान परिवर्जन

(2) प्रातः सायं

चन्द्रकला रस	:	250 मि.ग्रा.
अमृतासत्व	:	500 मि.ग्रा.
प्रवाल पिष्टी	:	250 मि.ग्रा.
मधु से	:	1x2 मात्रा

(3) भोजनोत्तर

चन्दनासव	:	20 मि.ली.
उशीरासव	:	20 मि.ली.
समभाग जल से	:	1x2 मात्रा

(4) चूषणार्थ

एलादि वटी	:	4 वटी प्रतिदिन

(5) पानार्थ

षडंगपानीय जल	:	20 मि.ली., बार-बार

(6) शीत धारा गृह में निवास

पथ्यापथ्य

तृष्णा रोगी में निम्न पथ्यापथ्य आहार-विहार का युक्ति पूर्वक प्रयोग किया जाना हितकर होता है[1]।

पथ्य

आहार	विहार
कोद्रव, शाली चावल, पेया-विलेपी, लाजा, सक्तु, अन्नमण्ड, मांसरस, शर्करा, मुरब्बा, मूंग, मसूर, चना, केला, तक्र, द्राक्षा, पर्पटक, कपित्थ, बेर, इमली, पेठा, पुदीना, खर्जूर, अनार, आमलकी, ककड़ी, खस का जल, निम्बू स्वरस, गोदुग्ध, नारिकेल जल, मधु, सौंफ, कर्पूर, चन्दन, गुलकन्द आदि।	शीतल चांदनी में बैठना, चन्दन अनुलेपन, प्रिय अलिंगन, रत्न धारण, शीतल जल अवगाहन, धारा ग्रह में बैठना आदि।

1. "शोधनं ..... । ..... कदाचित् ॥" (भै.र. 20/31-39)

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, स्निग्ध अन्न, अम्ल पदार्थ	स्नेहन-स्वेदन कर्म, धूम्रपान
लवण-कषाय, कटु द्रव्य	अंजन, नस्य, व्यायाम
दूषित बासी जल, तीक्ष्ण पदार्थ आदि।	आतप सेवन, स्त्री संभोग आदि।

Latest Developments
POLYDYPSIA

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में 'तृष्णा' को एक लक्षण के रूप में स्वीकार किया गया है। इसे Polydypsia (Excessive Thirst) कहा जाता है। जिन रोगों में तृष्णा 'लक्षण' के रूप में पाया जाता है, वे निम्न हैं—

i) जलाल्पता (Dehydration)
ii) रक्तस्राव (Haemorrhage)
iii) वमन (Vomiting)
iv) अतिसार (Diarrhoea)
v) अत्यधिक स्वेद (Excessive Perspiration)
vi) मधुमेह (Diabetes mellitus)
vii) उदकमेह (Diabetes insipidus)
viii) अतिमूत्र स्राव (Polyurea)
ix) ज्वर (Fever)
x) विसूचिका (Cholera)
xi) चित्तोद्वेग (Anxiety)
xii) अवसाद (Depression)
xiii) जलोदर (Ascites)
xiv) वृक्क विकार (Glomerulonephritis)
xv) अपतन्त्रक (Hysteria) आदि

Polydypsia—The bodily sensation resulting from the lack of or desire for liquids. Thirst may result from drying of mucous membranes especially those of the pharynx, or from reduced salivary secretions.

Management : Principle

लाक्षणिक व रोगानुसार चिकित्सा करने से तृष्णा शांत होती है।

अध्याय-13

अतिसार

(DIARRHOEA)

व्याधि परिचय

उदकवह स्रोतस् में प्रकट होने वाली यह महत्वपूर्ण व्याधि है। आचार्य चरक ने चिकित्सा स्थान में अतिसार रोगोत्पत्ति की पौराणिक कथा का वर्णन किया है। उस वर्णन में अतिसार उत्पादक निदानों की ओर ध्यानाकृष्ट किया गया है। कथा का सार इस प्रकार है—सतयुग में वध करने के योग्य पशुओं की बलि दी जाती थी तथा उनके मांस का उपयोग खाने के लिए किया जाता है। राजा मनु के पुत्र पृषध्र ने भी यज्ञ कर पशुओं की बलि दी। पशुओं की कमी के कारण दुर्बुद्धि से गाय की भी बलि दी गयी। गोमांस के सेवन से सर्वप्रथम अतिसार की उत्पत्ति हुई। गोमांस पाचन में गुरु, उष्ण, असात्म्य, विरस व अशस्त होने के कारण मानसिक आघात कर अग्निमांद्य उत्पन्न कर अतिसार रोग उत्पन्न करने में कारण बना[1]।

अतिसार रोग कई अन्य व्याधियों में एक लक्षण के रुप में भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह स्वयं में एक पूर्ण व्याधि है। अतिसार को उदकवह, अन्नवह एवं पुरीषवह स्रोतस् की व्याधियों में रखा जाता है। द्रव मल की बार-बार प्रवृत्ति होना इसका प्रत्यात्म लक्षण (Cardinal sign) है। जब कभी उदर प्रदेश में अधिक आमदोष या मल संचित हो जाता है तब प्राकृत नियमानुसार वह वमन/छर्दि (उर्ध्वमार्ग) से एवं अतिसार (अधोमार्ग) के द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। अतिसार के निदानों में अजीर्ण भी एक प्रमुख निदान है। अतिसार उत्पत्ति में अग्निमांद्य एवं अर्जीण का भी योगदान है। आचार्य चरक ने ग्रहणी दोष अध्याय में इसी को स्पष्ट किया है। आचार्य चरक ने स्पष्ट किया है कि अर्श, अतिसार एवं ग्रहणी दोष, ये तीन रोग परस्पर एक-दूसरे के उत्पादक कारण होते हैं[2]। ये रोग अग्नि के बल का नाश (अग्निमान्द्य-मन्दाग्नि) होने पर उत्पन्न होते हैं और

---

1. "अथ भगवान् ..... । ..... पृषध्रयज्ञे ॥" (च.चि. 19/4)
2. "त्रयो विकाराः प्रायेण ये परस्परहेतवः। अर्शांसि चातिसारश्च ग्रहणीदोष एव च ॥
एषामग्निबले हीने वृद्धिर्वृद्धे परिक्षयः। तस्मादग्निबलं रक्ष्यमेषु त्रिषु विशेषतः ॥"
(च.चि. 14/244-245)

जठराग्नि के सामान्य (समाग्नि) होने पर ये रोग स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। अतः इन तीनों रोगों में जठराग्नि की विशेष रक्षा करनी चाहिए। खाये हुए अन्न के पाचन के पश्चात् प्रसाद भाग से शरीर का पोषण होता है और किट्ट भाग से मल का निर्माण। मल की सम्यक् प्रवृत्ति एवं कोष्ठ शोधन से अग्नि दीप्त रहती है और शरीर में हल्कापन रहता है। शरीर में सामान्य प्रमाण से अधिक मल संचय होने पर शरीर में मलिनता एवं स्रोतोरोध उत्पन्न होकर अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। पतले मल का बार-बार गुदा मार्ग से निकलना "अतिसार" एवं मल की असम्यक् प्रवृत्ति "बिवन्ध" नामक रोग को उत्पन्न करती है। पुरीष वह स्रोतस् का अन्नवह एवं उदक वह स्रोतस् के साथ साक्षात् सम्बन्ध रहता है। निम्न व्याधियों में अतिसार एक लक्षण के रुप में उपस्थित रहता है—

1. पैत्तिक ज्वर
2. राजयक्ष्मा
3. पैत्तिक उदर रोग
4. ग्रहणी दोष
5. विसूचिका
6. कृमि रोग
7. पैत्तिक मूर्च्छा
8. पैत्तिक मदात्यय
9. वातपैत्तिक विसर्प आदि।

व्युत्पत्ति/निरुक्ति

अतिसार रोग में द्रव मल की बार-बार गुदामार्ग से प्रवृत्ति होती है। अतिसार शब्द 'अति' उपसर्ग पूर्वक 'सृ' से बना है।

'अति' का अर्थ है—प्रभूत मात्रा में या प्रभूत संख्या में।

'सृ' का अर्थ है—सरण, निकलना या प्रवृत्त होना।

अति+सृ+णिच्+अच् प्रत्यय। अतिशयेन सारयति (रेचयति) मलम् इति अतिसारः।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान - अध्याय 19
2. सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र - अध्याय 3
3. अष्टाङ्ग हृदय, निदान स्थान - अध्याय 8
4. अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान - अध्याय 9
5. भावप्रकाश, मध्य खण्ड, चिकित्सा प्रकरण - अध्याय 2
6. माधव निदान - अध्याय 3

परिभाषा

1. 'अतिसरणम् अतिसारः।' (डल्हण)
2. 'गुदेन बहुद्रवसरणमतिसारः।' (विजयरक्षित)
3. 'अतीव सरत्यतिसारं गुदेन।' (शार्ङ्गधर)
4. 'संशम्यापां धातु शकृन्मिश्रो सरत्यतीवातिसार।' (सुश्रुत)

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि गुदमार्ग से अत्यधिक द्रवयुक्त मल का निकलना ही अतिसार है।

असंहत मलः गुदेन मुहुर्मुहः सरति इति अतिसारः।

अर्थात् गुदामार्ग से असंहत (द्रवयुक्त) मल का बार-बार निकल ग ही अतिसार है। अतिसार रोग का सामञ्जस्य आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Diarrhoea नामक रोग से किया जाता है।

पर्याय

विभिन्न ग्रंथों में अतिसार के लिए निम्न पर्यायों का वर्णन प्राप्त होता है—

1. उदरामय 2. अन्नगंधि 3. त्रिकांड शोथ आदि।

निदान

सामान्य निदान[1]

1. गुरु (मात्रा व स्वभाव गुरु), अतिस्निग्ध, अत्युष्ण, अतिद्रव, अतिस्थूल व अतिशीतल पदार्थों का सेवन।
2. अजीर्ण, अध्यशन, विषमाशन, विरुद्धाशन, अपरिपक्व भोजन सेवन करना।
3. दूषित जल, अत्यम्बुपान, दूषित मद्यपान सेवन।
4. विष प्रयोग, भय, शोक, वेग धारण करने से।
5. स्नेहन, स्वेदन, पंचकर्म के अतियोग या मिथ्या योग के कारण।
6. ऋतुविपर्यय, सात्म्य विपर्यय, अत्यधिक जलक्रीड़ (जल में खेलना, तैरना आदि)।
7. कृमि दोष[2]
8. अर्श एवं ग्रहणी दोष उत्पन्न होने पर अतिसार रोग की उत्पत्ति होती है।

विशिष्ट निदान[3]

आचार्य चरक के अनुसार अतिसार रोग के विभिन्न भेदों के निदान निम्न तालिका में वर्णित किये गये हैं—

---

1. "गुर्वतिस्निग्धरुक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः। विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यै श्चापि भोजनैः॥ स्नेहाद्येरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषाद्भयात्। शोकाद दुष्टाम्बुमद्यातिपानात् सात्म्यर्तुपर्ययात्॥ जलातिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः। नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यत॥" (सु.उ. 40/3-5)
2. "ज्वरो विवर्णता शूलं हृदोग सदनं भ्रमः। भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम्॥" (सु.उ. 54/18-19)
3. i) "अथावरककालं.....वायुः प्रकोपयापद्यते॥" (च.चि. 19/5)
   ii) "पित्तलस्य.....पित्तं प्रकोपमापद्यते॥" (च.चि. 19/6)
   iii) "श्लेष्मलस्य.....श्लेष्मा प्रकोपमापद्यते॥" (च.चि. 19/7)
   iv) "अतिशीतस्निग्ध.....जनयन्ति॥" (च.चि. 19/8)

क्र. सं.	वातज अतिसार	पित्तज अतिसार	कफज अतिसार	सन्निपातज अतिसार
1.	वात प्रकृति पुरुष	पित्त प्रकृति पुरुष	कफ प्रकृति पुरुष	अति शीत-स्निग्ध रुक्ष-उष्ण-गुरु-खर कठिन आहार द्रव्य सेवन
2.	अति वात सेवन	कटु-अम्ल-लवण रस अति सेवन	गुरु, मधुर, स्निग्ध-शीत पदार्थों का अति सेवन।	विषम, विरुद्ध, असात्म्य भोजन
3.	अति आतप सेवन	क्षार अति सेवन	अति भोजन करने वाले व्यक्ति	उपवास
4.	अति व्यायाम	उष्ण-तीक्ष्ण द्रव्य अतिसेवन	शारीरिक व मानसिक चिंता रहित।	प्रदुष्ट जल व मदिरा सेवन
5.	रुक्ष-अल्प-प्रमित भोजन	निरंतर अग्नि सूर्य ताप उष्ण वायु सेवन	दिवा शयन करना	असम्यक पंचकर्म
6.	नित्य तीक्ष्ण मद्य सेवन	क्रोध व ईर्ष्या के वशीभूत।	आलसी व्यक्ति	भय, चिंता, चित्तोदवेग
7.	नित्य मैथुन कर्म	—	—	कृमि-शोष-ज्वर-अर्श रोग
8.	नित्य मल-मूत्र अपानवायु का वेग धारण	—	—	वात-पित्त व कफ के सभी निदान सेवन।

विशेष

1. भयज व शोकज अतिसार के विशिष्ट निदान क्रमशः अतिभय एवं शोक हैं।
2. पित्तातिसार में यदि उष्ण-तीक्ष्ण-विदाही आदि पित्त प्रकोपक आहार-विहार का सेवन किया जाय तो रक्तातिसार की उत्पत्ति हो सकती है।

सम्प्राप्ति

(अ) सामान्य सम्प्राप्ति[1]— जब विभिन्न निदानों के सेवन से प्रकुपित त्रिदोष (विशेषकर वात दोष) एवं वृद्ध जलीय धातु पाचकाग्नि को मन्द करके मल के साथ

1. "संशम्यापां धातुरन्तः कृशानुं, वर्चोमिश्रो मारुतेन प्रणुन्नः।
वृद्धोऽतीवाधः सरत्येष यस्माद्, व्याधिं घोरं तं त्वतीसारमाहुः॥" (सु.उ. 40/6)

मिलकर अधोमार्ग (गुदामार्ग) से प्रचुर मात्रा में बार-बार निकलता है, तब इस घोर व्याधि को अतिसार कहते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र

विभिन्न निदान सेवन
↓
अग्निमांद्य (जठराग्निमांद्य)
↓
आम दोष (कफ) उत्पत्ति
↓
आन्त्रक्षोभ
↓
वातप्रकोप
↓
पक्वाशय गत दोष
↓
पुरीषवह, उदकवह स्रोतो दुष्टि
↓
मल-अति प्रवृत्ति
↓
अतिसार रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वात प्रधान त्रिदोष
दूष्य	:	उदक, पुरीष
स्रोतस्	:	पुरीषवह, उदकवह, अन्नवह स्रोतस्
स्रोतो दुष्टि लक्षण	:	अति प्रवृत्ति
अधिष्ठान	:	पक्वाशय/गुदा
आशय	:	पक्वाशयोत्थ
स्वभाव	:	आशुकारी (Acute)

(ब) **विशिष्ट सम्प्राप्ति**— अतिसार के विभिन्न भेदों की सम्प्राप्ति निम्नानुसार है—

(1) **वातज अतिसार सम्प्राप्ति**[1]— पूर्व वर्णित वातज अतिसार के निदानों के

---

1. "पक्वा चोपहन्यते, स वायुः, कुपितोऽग्रावुपहते मूत्रस्वेदौ पुरीषाशयमुपहत्य, ताभ्यां पुरीषं द्रवीकृत्य, अतीसाराय प्रकल्पते॥" (च.चि. 19/5)

सेवन से प्रकुपित वायु जठराग्नि को मन्द करके मूत्र-स्वेद को पुरीष के आशय में लाकर तथा मूत्र-स्वेद द्वारा पुरीष को पतला कर बार-बार अधोमार्ग द्वारा प्रवृत्त कराता है। अर्थात् अतिसार की उत्पत्ति में मन्दाग्नि का उत्पन्न होना, जलीय धातु की वृद्धि होना एवं क्षुद्रान्त्र व बृहदन्त्र की विकृति होना और इन आशयों में जलीय धातु की अधिकता से मल का द्रवीभूत होकर गुदामार्ग द्वारा निकलना, यह वातज अतिसार की विशिष्ट सम्प्राप्ति है।

(2) **पित्तज अतिसार सम्प्राप्ति**[1]— पूर्व वर्णित निदानों के सेवन से प्रकुपित पित्त द्रव व उष्ण होने के कारण पुरीषाशय अर्थात् पक्वाशय को दूषित कर एवं स्वयं पक्वाशय में आश्रित होकर उष्ण-द्रव-सर गुण के कारण पुरीष का भेदन कर पैत्तिक अतिसार को उत्पन्न करता है। इसकी उपेक्षा करने से रक्तातिसार उत्पन्न हो सकता है।

(3) **कफज अतिसार सम्प्राप्ति**[2]— कफवर्धक निदानों के सेवन से प्रकुपित कफ स्वभाव से गुरु-मधुर-शीत-स्निग्ध होने के कारण अधःप्रदेश में जाकर जठराग्नि की शक्ति को नष्टकर (मन्दाग्नि-जठराग्निमंदता) तथा अपने सौम्य स्वभाव के कारण पुरीषाशय में पहुँचकर मल को पतलाकर कफज अतिसार नामक रोग को उत्पन्न करता है।

(4) **सन्निपातज अतिसार सम्प्राप्ति**[3]— उपरोक्त वर्णित त्रिदोष प्रकोपक निदानों के एक साथ सेवन करने से प्रकुपित वात, पित्त एवं कफ दोष जठराग्नि को नष्ट कर पक्वाशय में पहुँचकर सम्पूर्ण दोषों के लक्षणों से युक्त सन्निपातज अतिसार को उत्पन्न करते हैं।

(5) **भयज व शोकज अतिसार सम्प्राप्ति**—निरंतर भय व शोक से ग्रसित रहने के कारण प्रकुपित वायु सहित दूषित त्रिदोष सारे शरीर में अवस्थित होकर शरीर की ऊष्मा एवं रक्त को दुष्ट कर अन्त में क्षोभ उत्पन्न कर क्रमशः भयज एवं शोकज अतिसार को उत्पन्न करते हैं।

भेद— बृहत्त्रयी में वर्णित अतिसार रोग के निम्न 6 भेद प्राप्त होते हैं—

---

1. "तत् प्रकुपितं द्रवत्वादूष्माणमुपहत्य पुरीषाशयविसृतमौष्ण्याद् द्रवत्वात् सरत्वाच्च भित्त्वा पुरीषमतिसाराय प्रकल्पते॥" (च.चि. 19/6)
2. "स स्वाभावाद् गुरुशीतमधुरस्निग्धः स्रस्तोऽग्निमुपहत्य सौम्यस्वाभावात् पुरीषाशयमुपहत्योपवलेश पुरीषमतिसाराय कल्पते॥" (च.चि. 19/7)
3. "त्रयो दोषाः प्रकुपिता भूय एवाग्निमुपहत्य पक्वाशय मनुप्रविश्यातीक्षारं सर्वदोषलिङ्गं जनयन्ति॥" (च.चि. 19/8)

क्र.सं.	चरक संहिता[1]	सुश्रुत संहिता[2]	अष्टाङ्ग हृदय[3]
1.	वातज	वातज	वातज
2.	पित्तज	पित्तज	पित्तज
3.	कफज	कफज	कफज
4.	सन्निपातज	सन्निपातज	सन्निपातज
5.	भयज, शोकज — आगन्तुक	शोकज	भयज, शोकज — आगन्तुक
6.		आमज	

सामान्यतया पुरीष की अवस्था के आधार पर अतिसार के निम्न दो भेद किए जाते हैं[4]—

1. आमातिसार 2. पक्वातिसार

पूर्वरुप[5]

आचार्य सुश्रुत ने अतिसार रोग के निम्न पूर्वरुप वर्णित किए हैं—

1. हृदय-नाभि-गुदा-उदर एवं कुक्षि प्रदेश में सूचीभेदनवत पीड़ा होना
2. अंग शिथिलता
3. अधोवायु (अपान वायु) अवरोध
4. मलप्रवृत्ति अभाव
5. आध्मान
6. भोजन का अविपाक आदि।

सामान्य लक्षण

गुदामार्ग से द्रव मल का बार-बार निकलना ही अतिसार का सामान्य लक्षण है।

भेदानुसार (विशिष्ट) लक्षण

1. **वातज अतिसार लक्षण[6]**— वातज अतिसार में अरुण, फेनिल (झागयुक्त), रुक्ष एवं आम मल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बार-बार पीड़ा युक्त एवं सशब्द गुदमार्ग से

---

1. "षडतीसारा इति वातपित्तकफसन्निपातभय शोकजाः।" (च.सू. 19/3 (3)
2. "एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः .....शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः।" (सु.उ. 40/7)
3. "दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च भयाच्छोकाच्च षड्विधः।"
   अतिसारः..... ॥ (अ.हृ.नि. 8/1)
4. "आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः। अतः सर्वेऽतिसारास्तु ज्ञेयाः पक्वमलक्षणैः॥" (सु.उ. 40/24)
5. "हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः।
   विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि॥" (सु.उ. 40/8-9)
6. "अरुणं फेनिलं रुक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः। शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते॥" (मा.नि. 3/6)

निकलता है।

2. **पित्तज अतिसार लक्षण**[1]— पित्तज अतिसार में पीला, नीला, लोहित, कृष्ण वर्ण का दुर्गन्ध के साथ गुदमार्ग से मल निकलता है। रोगी में तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, सर्वाङ्ग दाह, गुदपाक, स्वेदाधिक्य एवं संताप सदृश्य लक्षण भी प्राप्त होते हैं।

3. **रक्तातिसार लक्षण**[2]— पित्तातिसार से ग्रसित रोगी यदि पित्तवर्धक आहार-विहार का निरंतर सेवन करता है तो बढ़ा हुआ पित्त दोष रक्त को दूषित करके, रक्तातिसार उत्पन्न कर प्यास, शूल, दाह एवं गुदपाक सदृश लक्षण उत्पन्न करता है।

3. **कफज अतिसार लक्षण**[3]— कफज अतिसार में रोगी स्निग्ध, श्वेत, पिच्छिल, तन्तुल, गुरु, दुर्गन्धित व आम युक्त मल का शूल सहित थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बार-बार त्याग करता है। मल त्याग करते समय रोगी को बार-बार प्रवाहण करना पड़ता है। रोगी को रोमाञ्च, उत्क्लेश, निद्रा, आलस्य, अवसाद व अन्नद्वेष हो जाता है। मल त्याग कर देने पर भी मल का त्याग नहीं किया है, ऐसी प्रतीति रोगी को होती है।

4. **सन्निपातज अतिसार लक्षण**[4]— सन्निपातज अतिसार में रोगी वराह (सूअर) स्नेह मांस (चर्बी) के समान, पीला, हरा, नीला, मांस धोवन के समान निरंतर वेदनायुक्त अथवा वेदनारहित मल का त्याग बार-बार करता है। गुदमार्ग से कभी गाँठदार आम मल एवं कभी पक्व मल निकलता है। इसे कृच्छ्रसाध्य समझना चाहिए।

5. **शोकज अतिसार लक्षण**[5]— आचार्य चरक ने निर्दिष्ट किया है कि शोकज अतिसार में वातातिसार के लक्षण पाये जाते हैं। आचार्य वाग्भट्ट के मतानुसार इसमें शीघ्र ही उष्ण व द्रव मल की प्रवृत्ति होती है तथा वातातिसार एवं पित्तातिसार के लक्षण मिलते हैं। आचार्य सुश्रुत के अनुसार शोकज अतिसार में गुंजा सदृश्य रक्त मिश्रित मल, दुर्गन्ध सहित या दुर्गन्ध रहित एवं वेदना के साथ मल प्रवृत्ति होती है। इसे आचार्यों ने कष्टसाध्य बताया है। आचार्य सुश्रुत ने शोकज व भयज अतिसार को एक ही श्रेणी में माना है।

---

1. "पित्तात् पीतं नीलमालोहितं वा, तृष्णामूर्च्छादाहपाकज्वरार्तः॥" (सु.उ. 40/11)
2. "पित्तातिसारी यस्त्वेतैः क्रियां मुक्त्वा निषेवते। पित्तलान्यन्नपानानि तस्य पित्तं महाबलम्॥
कुर्यादरक्तातिसारं तु रक्तमाशु प्रदूषयेत्। तृष्णां शूलं विदाहं च गुदपाकं च दारुणम्॥"
(च.चि. 19/69-70)
3. "तस्य रूपाणि-स्निग्धं श्वेतं ..... । ..... श्लेष्मातिसारः॥" (च.चि. 19/7)
4. i) "अपि च ..... । ..... विद्यात्॥" (च.चि. 19/9)
ii) "वराहश्वेहमांसाम्बुसदृशं सर्वलक्षिणम्। कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्यादोषत्रयोद्भवम्॥"
(मा.नि. 3/8)
5. "शैलैर्भावैः ..... । ..... प्रदिष्टः॥" (सु.उ. 40/13-15)

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में शोकज एवं भयज अतिसार को Nervous Diarrhoea के अंतर्गत समाविष्ट किया जाता है।

6. **आमातिसार लक्षण**[1]— जब अजीर्ण के कारण प्रकुपित हुए दोष कोष्ठ, धातुओं एवं मलों को दूषित करके अनेक वर्णों से युक्त तथा शूल युक्त द्रवमल को बार-बार गुदामार्ग से निकालते हैं तो उस अवस्था को आमातिसार कहते हैं। इस अवस्था में मल अपक्व एवं पर्याप्त मात्रा में निकलता है। आमातिसार में तीनों दोषों का सम्बन्ध रहता है अत: जिस दोष की प्रधानता होती है उसी विकृत दोष के अनुसार मल का वर्ण व शारीरिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसकी उत्पत्ति विशेषकर आमाजीर्ण से होती है। अत: आमपाचन व लंघन इसकी चिकित्सा है।

7. **पक्वातिसार लक्षण**[2]— पूर्व वर्णित आमातिसार के लक्षणों से विपरीत लक्षण जिस मल में हों, जो मल पानी में तैरे, एवं रोगी के शरीर में हल्कापन रहे, उसको पक्वातिसार जानना चाहिए।

मल की साम-निराम परीक्षा[3]

वात आदि दोषों के लक्षणों से युक्त मल यदि अत्यंत दुर्गन्धित एवं पिच्छिलतायुक्त हो और जल में डूब जाये, शरीर व कोष्ठ में जड़ता एवं भारीपन हो तो उसे आम मल कहते हैं।

इसके विपरीत जिस मल में दुर्गन्ध व पिच्छिलता का अभाव हो, जल में डालने पर तैरे, शरीर व कोष्ठ में लघुता हो तो उस मल को पक्व (निराम) समझना चाहिए।

अतिसार रोग में कुछ प्रमाण में आम दोष अवश्य रहता है परंतु अधिक आम दोष हो तो आमातिसार समझें, कम आम दोष हो तो पक्वातिसार समझें। आम-निराम मल की परीक्षा जल निमज्जन परीक्षा से की जाती है जो निम्न है-

मल की जल निमज्जन परीक्षा

इसके लिए एक पात्र में जल स्थिर रखें एवं उसमें थोड़ा पुरीष डालें। यदि पुरीष डूब जाये तो आम पुरीष समझें। यदि पुरीष पानी में तैरता रहे तो पक्व पुरीष समझें। पक्व मल भी यदि निम्न प्रकार का हो तो जल में डूब जाता है—

1. अधिक संहत (कठिन) होने पर।
2. श्लेष्म संपृक्त होने पर।
3. अतिद्रव होने पर।

---

1. "आमाजीर्णोपद्रुता: क्षोभयन्त:, कोष्ठं दोषा: संप्रदुष्टा: सभक्तम्।
नानावर्णं नैकश: सारयन्ति कृच्छ्राज्जन्तो: षष्ठमेनं वदन्ति॥" (सु.उ. 40/15-16)
2. "एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य तु। लाघवं च मनुष्यस्य तस्य पक्वं विनिर्दिशेत्॥" (सु.उ. 40/18)
3. "संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति। पुरीषं भृश दुर्गन्धि पिच्छिलं चाम संज्ञकम्॥
एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्यतु। लाघव च मनुष्यस्य तस्य पक्वं विनिर्दिशेत्॥" (सु.उ. 40/17-18)

4. मल यदि बहुत समय तक वायु के सम्पर्क में रहे तो जल में डूब जाता है। अत: इन अपवादों के कारण जल निमज्जन परीक्षा का अतिसार या विबन्ध में महत्व घट जाता है। अत: यदि पुरीष पिच्छिल एवं बहुत दुर्गन्ध युक्त हो तो साम अन्यथा पक्व (निराम) मल समझना चाहिए।

सापेक्ष निदान

अतिसार रोग का प्रवाहिका तथा ग्रहणी दोष से निम्न बिन्दूओं के आधार पर विभेदक निदान करते हैं—

क्र.स.	अतिसार	प्रवाहिका	ग्रहणी दोष
1.	आशुकारी रोग	आशुकारी रोग	चिरकारी रोग
2.	सामान्यत: प्रवाहण नहीं (कफज को छोड़कर)	प्रवाहण अवश्य	प्रवाहण नहीं
3.	मल कभी-कभी कफ युक्त	मल सदा कफ युक्त	मल कभी-कभी कफ युक्त
4.	द्रव मल अधिक और बार-बार प्रवृत्ति	मल अधिक नहीं परन्तु बार-बार प्रवृत्ति	कभी द्रव मल व कभी बंधा हुआ मल
5.	पुरीष राशि अधिक	पुरीष राशि कम	पुरीष राशि कभी कम-कभी अधिक
6.	कार्श्य नहीं	कार्श्य नहीं	कार्श्य विशेष
7.	जिह्वा पाक नहीं	जिह्वा पाक नहीं	जिह्वा पाक
8.	पक्वाशय समुत्थ रोग	पक्वाशय समुत्थ रोग	आमाशय समुत्थ रोग
9.	रक्त आ सकता है	रक्त आ सकता है	प्राय: नहीं आता
10.	उपद्रव-शोथ	शोथ नहीं	उपद्रव-शोथ

आमातिसार तथा प्रवाहिका के लक्षणों में भी कुछ साम्य प्रतीत होता है अत: इनका सापेक्ष निदान निम्न बिन्दूओं के आधार पर किया जाता है—

क्र.स.	आमातिसार	प्रवाहिका
1.	इसमें अनेक धातुओं का क्षरण होता है।	इसमें केवल कफ का ही क्षरण होता है।
2.	मल त्याग के समय शूल होता है।	मल त्याग के समय ऐंठन (Tenesmus) होती है।
3.	इसमें मल की मात्रा अधिक व संख्या कम होती है।	इसमें मल की मात्रा कम व संख्या अधिक होती है।
4.	अपक्व अन्न भी निकलता है।	इसमें अपक्व अन्न नहीं निकलता है।

इसी प्रकार रक्तातिसार एवं अधोग रक्तपित्त रोग के लक्षण मिलते-जुलते हैं। निम्न लक्षणों के आधार पर इन दोनों रोगों में स्पष्ट भेद किया जा सकता है—

क्र.स.	रक्तातिसार	अधोग रक्तपित्त
1.	रक्त मल युक्त होता है।	रक्त का मलयुक्त होना अनिवार्य नहीं है।
2.	रक्त प्रवृत्ति गुदमार्ग से होती है।	रक्त प्रवृत्ति मूत्र व गुदमार्ग दोनों से हो सकती है।
3.	इसमें जीव रक्त के लक्षण भी मिल सकते हैं।	इसमें जीव रक्त के लक्षण नहीं होते हैं

साध्यासाध्यता

आचार्यों ने वातज, पित्तज एवं कफज अतिसार को सुखसाध्य और सन्निपातज, शोकज एवं भयज अतिसार को कृच्छ्रसाध्य माना है।

असाध्य अतिसार लक्षण[1]

निम्न लक्षणों से युक्त अतिसार को असाध्य माना गया है—

i) पक्व जामुन के समान स्निध कृष्ण वर्ण वाला मल
ii) यकृत खण्ड के समान कृष्ण लोहित वर्ण वाला मल
iii) पतला मल (अल्प-स्वच्छ)
iv) घृत, तैल, वसा, मज्जा, वेशवार, दूध, दधि, मांस धोवन के समान मल
v) कृष्ण व नील वर्ण मल
vi) मयूरपिच्छ सदृश चन्द्रिका युक्त मल

1. i) "एभिर्वर्णैरतिसार्यमाणं..... । .....सन्निपातातिसारः ॥" (च.चि. 19/9)
ii) "सर्पिर्मेदो..... । .....त्यजेत् ॥" (सु.उ. 40/19-21)

vii) शवगन्धि व अत्यन्त दुर्गन्धित मल

viii) तृष्णा, दाह, तम, श्वास, हिक्का, पार्श्वशूल तथा अस्थि शूल से पीड़ित मल

ix) मूर्च्छा, अरति, सम्मोह से युक्त मल

x) गुदवलियों में या गुदा में पाक व गुद भ्रंश होने की स्थिति में

xi) श्वास, शूल, ज्वर पीड़ित रोगी

xii) आचार्य चरक ने सन्निपातज-अतिसार को असाध्य माना है।

उपद्रव[1]

अतिसार रोग के निम्न उपद्रव शास्त्रों में वर्णित किये गये हैं—

1. शोथ
2. शूल
3. ज्वर
4. तृष्णा
5. कास-श्वास
6. अरुचि
7. वमन (छर्दि)
8. मूर्च्छा
9. हिक्का
10. जलीयांश की कमी (Dehydration)
11. मूत्राघात (Acute Renal failure)

अतिसार निवृत्ति के लक्षण[2]

अतिसार से पीड़ित रोगी के मल का अतिसरण बन्द होने के बाद जब उसकी जठराग्नि प्रदीप्त हो जाये, उदरप्रदेश हल्का मालूम होने लगे तथा मल प्रवृत्ति के बिना भी अधो वायु तथा मूत्र त्याग होने लगे, तब यह समझें कि वह रोगी अतिसार रोग से मुक्त हो गया है।

चिकित्सा सूत्र

सामान्य चिकित्सा सूत्र

(i) अतिसार में आमावस्था तथा पक्वावस्था के क्रम को छोड़कर चिकित्सा नहीं हो सकती। इसलिये आम तथा पक्व मल का लक्षण जानना आवश्यक है।[3]

(ii) बलवान रोगी के लिये अतिसार की आमावस्था में लंघन से बढ़कर कोई

---

1. i) "श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम्।
विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत्॥" (सु.सू. 33/19)
ii) "शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां कासं श्वासमरोचकम्।
छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत्॥" (मा.नि. 3/19)
2. "यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्यै स्थितस्तस्योदरामयः॥" (सु.उ. 40/162)
3. "आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः।
अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्वामलक्षणम्॥" (च.द. 3/1)

औषध नहीं हैं, क्योंकि लंघन (उपवास) से प्रवृद्ध दोषों का शमन तथा आम दोष का पाचन हो जाता हैं[1]।

आमातिसार चिकित्सा

(i) आमातिसार में सर्वप्रथम संग्राहक या स्तम्भक औषधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि आमातिसार में पहले संग्राही औषधियों के द्वारा आम मल को रोक लिया जाता है तो दण्डालसक, आध्मान, ग्रहणी, अर्श, शोथ, पाण्डु, प्लीहारोग, कुष्ठ, गुल्म, उदर रोग, ज्वर इत्यादि रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है[2]।

(ii) आमातिसार में यदि आम मल सुगमता से निकल रहा हो तो उसे निकलने देना चाहिये। यदि संचित आम दोष पूर्ण रूप से न निकलता हो अर्थात् थोड़े मलदोष निकलते हों तो रोगी को हरड़ का चूर्ण या कल्क, ईसबगोल की भूसी, एरण्ड तेल में से किसी एक को उष्णोदक से दें। इससे विरेचन होकर आम दोष शरीर से बाहर निकल जाते हैं,[3] अतिसार रोग शान्त हो जाता है, शरीर में लघुता आती है एवं जठराग्नि की वृद्धि हो जाती है।

(iii) अतिसार की आमावस्था में प्रथम लंघन अथवा पाचन औषध का प्रयोग कर अतितरल मण्ड, पेयादि लघु भोजन की व्यवस्था करनी चाहिये[4]।

(iv) अतिसार के रोगी में अल्प दोष में लंघन, मध्य दोष में दीपन-पाचन प्रमथ्या (आधाप) (द्रव्य के कल्क को 8 गुने जल में उबालकर चतुर्थांश बचाया जाता है) व अधिक दोष में विरेचन कराया जाता है।[5]

(v) i. **प्रमथ्या**

(अ) पिप्पल्यादि प्रमथ्या (पिप्पली, शुण्ठी आदि)

(ब) ह्रीबेरादि प्रमथ्या (सुगन्धवाला, मुस्तक आदि)

---

1. ''लङ्घनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः।
समुदीर्णे दोषचयं शमयति तत् पाचयत्यपि च॥'' (च.द. 3/5)
2. ''न तु संग्रहणं देयं पूर्वमामातिसारिणे। विबध्यमानाः प्राग्दोषा जनयन्त्यामयान् बहून्॥
दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा।
शोथपाण्ड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान्॥'' (च.चि. 19/15-16)
3. ''तस्मादुपेक्षेतोत्क्लिष्टान् वर्तमानान् स्वयं मलान्। कृच्छ्रं वा वहतां दद्यादभयां संप्रवर्तिनीम्॥
तथा प्रवाहिते दोषे प्रशाम्यत्युदरामयः। जायते देहलघुता जठराग्निश्च वर्धते॥''
(च.चि. 19/17-18)
4. ''आमे विलंघनं शस्तमादौ पाचनमेव च। कार्य्यञ्चानशनस्यान्ते प्रद्रवं लघुभोजनम्॥'' च.द. 3/4
5. ''प्रमथ्यां मध्यदोषाणां दद्याद्दीपनपाचनीम्। लङ्घनं चाल्पदोषाणां प्रशस्तमतिसारिणाम्॥''
(च.चि. 19/19)

(स) पृश्निपर्ण्यादि प्रमथ्या (पृश्निपर्णी, गोक्षुर आदि)

ii. क्वाथ

(अ) धान्यपंचक (धनिया, शुष्ठी, मुस्तक आदि)

(ब) नागरादि क्वाथ (शुण्ठी, अतीस आदि)

iii. चूर्ण

(अ) त्र्यूषणादि चूर्ण (शुष्ठी, अतीस, हिंगु आदि)

(ब) शुण्ठयादि चूर्ण (शुण्ठी, अतीस, मोथा आदि)

(स) शिवाक्षार पाचन चूर्ण (हरड़, हिंग्वाष्टक आदि)

(द) लवण भास्कर चूर्ण (चतुर्लवण, दाड़िम चतुर्जात आदि)

iv. वटी

(अ) संजीवनी वटी (त्रिफला, भल्लातक आदि)

(ब) शंख वटी (पारद, गंधक, वत्सनाभ आदि)

(स) रसोनादि वटी (रसोन, त्रिकटु, जीरक आदि)

पक्वातिसार चिकित्सा

इस अवस्था में स्तम्भक व संग्राही औषध योगों का प्रयोग करना चाहिये[1]। इनमें से कुछ प्रमुख योग निम्न प्रकार हैं—

(i) गंगाधर चूर्ण—मोचरस, मुस्तक, शुण्ठी, पाठा, धातकी आदि औषधियों का चूर्ण मथित दधि के साथ प्रयोग करें।

(ii) वृद्धगंगाधर चूर्ण—मुस्तक, पाठा, लोध्र, कुटज, अतीस आदि के चूर्ण को मधु व तण्डुल जल के साथ प्रयोग करें।

(iii) कुटजाष्टकावलेह—कुटज, लज्जालु, धातकी, बिल्व आदि।

(iv) अहिफेनासव—मधूक, अहिफेन, मुस्तक आदि (मात्रा 5-10 बूंद)

(v) कर्पूर रस—हिंगुल, अफीम, जायफल, आदि (मात्रा 5-15 बूंद)

(vi) जातीफलादि वटी—जायफल, खर्जूर, अहिफेन आदि।

इन औषधियों के साथ पक्वातिसार में तक्र, यवागू, कांजी व लाजा सत्तू दें।

अतिसार भेदानुसार चिकित्सा

(1) वातातिसार चिकित्सा

वातातिसार में ऐसी दीपान-पाचन तथा ग्राही औषधियों का प्रयोग करें जो वातानुलोमक हों, तथा वायु का शमन करें। वातातिसार नाशक कुछ प्रमुख योग निम्न प्रकार हैं—

1. "पक्वोऽसकृदतीसारो ग्रहणीमार्दवाद् यदा। प्रवर्तते तदा कार्य्यः क्षिप्रं साङ्ग्राहिको विधिः॥" (च.द. 3/34)

(i) पंचमूल सिद्ध तक्र—पंचमूल, बला, शुण्ठी आदि
(ii) पूतिकादि क्वाथ—करंज, पिप्पली, बला आदि
(iii) पथ्यादि क्वाथ—हरड़, देवदारु, वचा आदि
(iv) वचादि क्वाथ—वचा, अतीस, कुटज आदि
(v) अगस्तिसूतराज रस—कज्जली, हिंगुल, धत्तूर आदि
(vi) कनक सुन्दर रस—हिंगुल, धत्तूर, वत्सनाभ आदि

(2) पित्तातिसार चिकित्सा[1]

यदि पित्तातिसार से पीड़ित रोगी में आम दोष का सम्बन्ध हो तो यथा सम्भव रोगी के बलानुसार लंघन और पाचन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये। पित्त के अत्यधिक प्रकुपित होने पर विरेचन कराना चाहिये। निम्न योग पित्तातिसार में लाभकारी रहते हैं—

(i) रोगी को तृष्णा लगने पर षंडगपानीय (मुस्तक, खश, पर्पटक, सारिवा, रक्त चन्दन, सुगन्धबाला) योग पीने को दें।
(ii) धान्य चतुष्क क्वाथ—धनिया, मुस्तक, सुगन्धबाला, बिल्व।
(iii) किराततिक्तादि चूर्ण (च.द.)—चिरायता, मुस्तक, कुटज, रसांजन मधु के साथ दें।
(iv) मधुकादि चूर्ण (च.द.)—मधूक, कटफल, लोध्र, दाड़िम, मधु व तण्डुलोदक के साथ दें।
(v) बिल्वादि क्वाथ (भा.प्र.)—बिल्व, कुटज, मुस्तक, सुगन्धबाला, अतीस आदि।
(vi) पीयूषवल्ली रस—कज्जली, रजत, बिल्वफलमज्जा आदि।
(vii) कामदुधा रस—मुक्ता, प्रवाल, वराटिका आदि।
(viii) प्रवाल पञ्चामृत रस—प्रवाल, मुक्ता, शंख आदि।
(ix) सूतशेखर रस—कज्जली, वत्सनाभ, धत्तूर आदि।

(3) रक्तातिसार चिकित्सा

इसमें रक्त स्तम्भक, वेदना स्थापक, दीपन एवं पाचन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये। कुछ प्रमुख योग निम्न प्रकार हैं—

(i) तृष्णा लगने पर मधु व शर्करा मिश्रित बकरी का शीतल दुग्ध दें।
(ii) नीलकमल, मोचरस, समङ्गा, कमलकेशर के चूर्ण को बकरी के दुग्ध के

---

1. i) "पित्तातिसारं..... । ..... संप्रयोजयेदिति ॥" (च.चि. 19/50)
ii) "प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः । पलाशवत् प्रयोज्या वा त्रायमाणा विशोधिनी ॥" (च.चि. 19/60)

साथ दें। इसके साथ ही भोजन पूर्व 20 ग्राम मक्खन में 6 ग्राम मधु व 3 ग्राम शर्करा डालकर दें।

(iii) शतावरी कल्क को दूध के साथ दें।

(iv) काले तिल के कल्क में 4 गुना शर्करा मिलाकर दें।

(v) पिच्छा बस्ति (च.स.)—सेमल, दुग्ध, तैल, घृत, मुलैठी कल्क मिलाकर दें।

(vi) वत्सकादि क्वाथ (भा.प्र.) कुटज, अतिविषा, बिल्व, सुगन्धबाला, मुस्तक समभाग में क्वाथ बनाकर दें।

(vii) गुड़बिल्व—बिल्व के गूदे में गुड़ मिलाकर सेवन करें।

(viii) पित्तातिसार की सम्पूर्ण चिकित्सा दें।

(ix) निम्न औषध योग दें—

(a) रक्तपित्तकुलकण्डनरस—कज्जली, प्रवाल, स्वर्ण आदि।

(b) कुटज रसक्रिया—कुटज, मोचरस, प्रियंगु आदि।

(c) कुटजावलेह—कुटज, मोथा, बिल्व आदि।

गुद्रभंश होने पर चिकित्सा—अतिसार पीड़ित रोगी में गुदभ्रंश हो जाय तो अम्लरस वाले घृत तथा चाङ्गेरी घृत का पान एवं बस्ति में प्रयोग करें। स्थानिक स्नेहन व स्वेदन कर गुदा को मृदु बनाकर पिचु से दबाकर गुदा को अन्दर प्रविष्ट करें[1]। दशमूलादि अनुवासन बस्ति भी दें। इसी सन्दर्भ में मूषक तैल व घृत प्रयोग का भी वर्णन प्राप्त होता है।

गुदपाक होने पर चिकित्सा[2]—रक्तातिसार से पीड़ित रोगी यदि पित्तवर्धक आहार का सेवन करता है तो उसकी गुदवलियां पक जाती हैं। इस अवस्था में पटोल पत्र तथा मुलैठी के शीतल क्वाथ से गुदा का प्रक्षालन करना चाहिये। गुदा पर शतधौत घृत या सामान्य तैल का पिचु रखें।

(4) कफातिसार चिकित्सा

कफज अतिसार से पीड़ित रोगी में प्रथम लंघन व पाचन कराकर तत्पश्चात आमातिसार नाशक जो दीपन गण कहे गये हैं उनका प्रयोग करें[3]। यदि रोग का नाश नहीं हो तो निम्न कफशामक औषध योगों का प्रयोग करें—

---

1. "गुदनिःसरणे शूले पानमम्लस्य सर्पिषः। प्रशस्यते निरामाणामथवाऽप्यनुवासनम्॥
स्तब्धभ्रष्टगुदे पूर्वं स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत्। सुस्विन्नं तं मृदुभूतं पिचुना संप्रवेशयेत्॥" (च.चि. 19/42,46)

2. "यस्त्वेवं दुर्बलो मोहात् पित्तलान्येव सेवते। दारुणं स वलीपाकं प्राप्य शीघ्रं विपद्यते॥" (च.चि. 19/101, 102)

3. "श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लंघनपाचनम्। योज्यश्चामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनो गणः॥" (च.चि. 19/102 103)

(i) चव्यादि क्वाथ (भा.प्र.)—चव्य, अतीस, मुस्तक, बालविल्व, शुण्ठी, कुटज, हरड़ का समभाग में क्वाथ पानार्थ दें।

(ii) हिङ्ग्वादि चूर्ण (भा.प्र.)—घृत भर्जित हिंगु, सौवर्चल नमक, शुण्ठी, मरिच, हरड़, अतीस, वच का समभाग में चूर्ण गर्म जल से दें।

(iii) अजाज्यादि चूर्ण (च.स.)—अजाजी, पाठा, शुण्ठी, मरिच, धातकी का चूर्ण मातुलुङ्ग रस से दें।

(iv) रसाञ्जनादि चूर्ण (च.स.)—रसांजन, अतीस, कुटज, धाय पुष्प का चूर्ण मधु व शुण्ठी चूर्ण के साथ दें।

(v) कपित्थादि चूर्ण (च.स.)—कपित्थ, शुण्ठी, मरिच, पिप्पली के समभाग चूर्ण को मधु व घृत से दें।

(vi) रसौषध योग

(a) लोकनाथ रस—रससिन्दूर, गन्धक आदि

(b) लक्ष्मी विलास रस—अभ्रक, जायफल, धत्तूर आदि

(5) सन्निपातज अतिसार चिकित्सा[1]

सन्निपातज अतिसार रोग में सर्वप्रथम वात दोष की चिकित्सा करके उसके बाद पित्तदोष की चिकित्सा एवं अन्त में कफदोष की चिकित्सा करनी चाहिये। अथवा त्रिदोषों में से जो भी दोष बलवान व उग्र हो सर्वप्रथम उसकी चिकित्सा करें। आचार्य सुश्रुत ने सन्निपातज ज्वर व सन्निपातज अतिसार में सर्वप्रथम पित्त दोष की चिकित्सा का निर्देश दिया है। यह अत्यन्त कष्ट साध्य रोग है। सन्निपातज अतिसार में निम्न औषध योगों का युक्ति पूर्वक प्रयोग करना चाहिये—

(i) कुटज पुटपाक (च.द.)—कुटज, मधु।
(ii) समङ्गादि क्वाथ (च.द.)—मंजीठ, अतीस, मुस्तक आदि।
(iii) कुटजावलेह (भा.प्र.)—कुटज, मोथा, बिल्व आदि।
(iv) अङ्कोटवटक (भा.प्र.)—अंकोठ, पाठा आदि।
(v) चतुःसम मोदक (भा.प्र.)—हरड़, शुण्ठी, मुस्तक आदि।

(6) शोकज-भयज (आगन्तुक) अतिसार चिकित्सा

इसमें वातातिसार की चिकित्सा करें। वातनाशक क्रिया, हर्षोत्पादन, आश्वासन

---

1. i) "वातस्यानु जयेत् पित्तं, पित्तस्यानुजयेत कफम्।त्रयाणां वा जयेत् पूर्वं यो भवेद्बलवत्तमः॥" (च.चि. 19/122)

ii) "समवाये तु दोषाणां पूर्वं पित्तमुपाचरेत्। ज्वरे चैवातिसारे च सर्वत्रान्यत्र मारुतम्॥" (सु.उ. 40/161)

चिकित्सा दें[1]। वातहर, दीपन, पाचन, ग्राही द्रव्य दें। अभ्रक भस्म व वराटिका भस्म को शुण्ठी चूर्ण व मधु के साथ दें।

ज्वरातिसार चिकित्सा

पित्त के दूषित होने पर पित्तातिसार उत्पन्न होता है। इस पित्त दुष्टि से ज्वर भी उत्पन्न हो जाता है एवं दोष-दूष्य की समानता के कारण इस रोग को ज्वरातिसार (Pyrexial Diarrhoea) कहा जाता है[2]।

इस रोग में ज्वर व अतिसार की अलग-अलग चिकित्सा करें। क्योंकि ज्वरनाशक औषधियाँ अनुलोमन (मल का भेदन) करने वाली होती है एवं अतिसार नाशक औषधियाँ मल स्तम्भक होती हैं। अत: परस्पर विरुद्ध होने से पृथक्-पृथक् कही हुई ज्वर तथा अतिसार की औषधियाँ मिलाकर चिकित्सा नहीं करनी चाहिये[3]। यदि ज्वरातिसार का रोगी बलवान है तो उसके लिये लंघन को छोड़ कर कोई अन्य औषध ठीक नहीं है। लंघन करने से बढ़े हुये दोषों का पाचन होता है तथा उसी से शमन होता है। लंघन पश्चात् पेयादि की व्यवस्था करें।[4] अन्य औषध योग यहाँ वर्णित किये जा रहे है जिन्हें ज्वरातिसार की चिकित्सा में सफलता पूर्वक प्रयोग किया जा सकता है—

(i) गुडुच्यादि क्वाथ (च.द.)—गुडुची, अतीस, बिल्व, चिरायता आदि।
(ii) कलिङ्गादि क्वाथ (च.द.)—कुटज, अतीस, चिरायता, जवासा आदि।
(iii) किरातादि क्वाथ (च.द.)—चिरायता, मुस्तक, गुडुची, शुण्ठी आदि।
(iv) व्योषादि चूर्ण (च.द.)—शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, इन्द्रजौ आदि।
(v) कलिङ्गादि गुटिका (भै.र.)—इन्द्रयव, निम्ब, बिल्व, आम्र, कपित्थ आदि।
(vi) रसौषध
  (अ) आनंद भैरव रस—हिंगुल, वत्सनाभ, त्रिकटु, आदि
  (ब) सिद्धप्राणेश्वर रस—कज्जली, अभ्रक, त्रिफला आदि
  (स) कनक सुन्दर रस—हिंगुल, मरिच, पिप्पली आदि
  (द) गगन सुन्दर रस—सुहागा, हिंगुल, अभ्रक आदि
  (च) कनक प्रभावटी—धत्तूरबीज, मरिच, टंकण आदि
  (छ) मृत संजीवनी वटी—पिप्पली, वत्सनाभ, हिंगुल आदि

---

1. "मारुतो भयशोकाभ्यां शीघ्रं हि परिकुप्यति। तयोः क्रिया वातहरी हर्षणाश्वासनानि च॥" (च.चि. 19/12)
2. "पित्तज्वरे पित्तभवोऽतिसारस्तथाऽतिसारे यदि वा ज्वरः स्यात्।
दोषस्य दूष्यस्य समानभावाज्ज्वरातिसारः कथितो भिषग्भिः॥" (भै.र. 6/1)
3. "अनुलोमनं ज्वरघ्नं ग्राहकमतिसारहद्भवति।
पृथगुक्तमौषधं तज्ज्वरातिसारे विरुद्धमन्योऽन्यम्॥" (भा.प्र. मध्य खण्ड 3/2)
4. "ज्वरातिसारे पेयाऽऽदि-क्रमः स्याल्लङ्घिते हितः॥" (च.द. 2/1)

(vii) कुटजावलेह (कुटज, शर्करा, जायफल आदि)

अतिसार रोग में उपयोगी अन्य औषध योग

1. रस/भस्म/पर्पटी :

मात्रा	: 125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	: तक्र, मधु
(i) जातीफल रस (भै.र.)	: पारद, अभ्रक, जायफल आदि
(ii) पूर्ण चन्दोदय रस (भै.र.)	: हरताल, अभ्रक, जायफल आदि
(iii) चिन्तामणि रस (भै.र.)	: कज्जली, ताम्र, वत्सनाभ आदि
(iv) श्रीनृपतिबल्लभ रस (भै.र.)	: जायफल, अभ्रक, कज्जली आदि
(v) रस पर्पटी	: पारद, गंधक
(vi) पंचामृत पर्पटी	: पारद, गंधक, लौह, अभ्रक, ताम्र आदि
(vii) रामबाण रस (भै.र.)	: कज्जली, वत्सनाभ, जायफल आदि

2. **वटी**

मात्रा	: 250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान	: तक्र
(i) जातीफलादि वटी	: अफीम, खर्जूर, जायफल आदि
(ii) संजीवनी वटी	: भल्लातक, वत्सनाभ, त्रिफला आदि
(iii) कुटजाष्टक वटी (भै.र.)	: कुटज, मोचरस, बिल्व आदि
(iv) अतिसारहर वटी	: हिंगु, मरिच, कर्पूर, आर्द्रक रस आदि
(v) चिंचाभल्लातक वटी	: इमली, भल्लातक आदि
(vi) विषतिन्दुकादि वटी	: कुचला, पूग, मरिच, इमली आदि

3. **चूर्ण**

मात्रा	: 2 - 6 ग्राम
अनुपान	: मधु, गुड़
(i) नारायण चूर्ण	: गिलोय, कुटज, बिल्व आदि
(ii) जातीफलादि चूर्ण	: जायफल, लवंग, जीरा आदि
(iii) दाड़िमाष्टक चूर्ण	: त्रिकटु, दाड़िम, मिश्री आदि
(iv) लघु गंगाधर चूर्ण	: नागरमोथा, बिल्व, मोचरस आदि
(v) कपित्थाष्टक चूर्ण	: अजवाइन, कपित्थ, दाड़िम आदि

4. आसव/अरिष्ट

मात्रा	: 20 - 40 मि.ली.
अनुपान	: समभाग जल
(i) कुटजाद्यरिष्ट	: कुटज, मुनक्का, गुड़ आदि।
(ii) अहिफेनासव (5-15 बिन्दू)	: मधूक, अहिफेन, मुस्तक आदि।
(iii) कर्पूरासव (10-20 बिन्दू)	: सुरा, कर्पूर, एला, मोथा आदि।
(iv) जीरकाद्यरिष्ट	: जीरा, गुड़, जायफल आदि।

5. अवलेह

मात्रा	: 10 - 20 ग्राम
अनुपान	: मधु, क्षीर
(i) दाड़िमावलेह	: दाड़िम, जायफल, भंगा आदि।
(ii) कुटजाद्यवलेह	: कुटज, रसांजन, मोचरस आदि।
(iii) विजयावलेह	: भांग, जायफल, कुटज आदि।
(iv) अतिविषाऽवलेह	: बिल्व, मोचरस, लोध्र, अतीस आदि।

6. एकल औषध

कुटज	जायफल
मोचरस	नागरमोथा
बिल्व	भंगा
अफीम	दाड़िम

कर्पूर आदि।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) निदान परिवर्जन

(2) प्रातः सांय

रामबाण रस	:	250 मि.ग्रा.
पीयूषवल्ली रस	:	125 मि.ग्रा.
संजीवनी वटी	:	250 मि.ग्रा.
दाड़िमाष्टक चूर्ण	:	2 ग्राम
मधु से	:	1x2 मात्रा

(3) कुटज घन वटी : 2 वटी x 3 मात्रा

(4) भोजनोत्तर

कुटजाद्यरिष्ट	:	20 मि.ली.
जीरकाद्यरिष्ट	:	20 मि.ली.
समभाग जल से	:	1x2 मात्रा

(5) दाड़िमावलेह : 20 ग्राम
(जल से) : 1x2 मात्रा
(6) पूर्ण विश्राम
(7) पथ्य पालन

पथ्यापथ्य[1]

अतिसार रोगी में निम्न पथ्यापथ्य को युक्तिपूर्वक प्रयुक्त करना चाहिये—

पथ्य

आहार	विहार
पुराण शालिचावल, विलेपी, लाजमण्ड, मसूर, अरहर, मूंग, मधु, जामुन, दाड़िम, बिल्व, तिन्दुक, जीरा, धनिया, कच्चा केला, लिसोड़ा, कपित्थ, तक्र, अजादुग्ध, मूंग की खिचड़ी, दलिया लौकी, परवल आदि।	लंघन (उपवास) निद्रा विश्राम आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
मटर, उड़द, कटहल, सेम, ईखरस, ककड़ी, खीरा, अति जलपान, गुरुस्निग्ध आहार, बथुआ, मकोय, पूगफल, काशीफल, पेठा, बदर, ताम्बुल, मद्य, द्राक्षा, दधि, खीर, पूरी, समौसा, कचौरी, बेसन-मैदा के पदार्थ गरिष्ठ आहार, चने की दाल आदि।	स्नान, अवगाहन, अभ्यंग, नस्य कर्म, व्यायाम, आतप सेवन, दिवास्वप्न, स्वेदन कर्म, धूम्रपान, मैथुन कर्म, रात्रिजागरण, वेगधारण, क्रोध आदि।

Latest Developments

DIARRHOEA

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में अतिसार रोग का सामञ्जस्य 'Diarrhoea' नामक रोग से किया जाता है

Definition—A state in which an individual experiences a change in normal bowel habits characterized by the frequent passage of loose, fluidy unformed stools is called Diarrohoea. It is a common symptom of Gastrointestinal disturbances.

---

1. "वमनं..... । ..... पीड़ितमानवेषु ॥" (भै.र. 7/183-192)

Etiology—Diarrhoea can be due to diet, inflammation or irritation of the intestinal mucosa, gastrointestinal infections, certain drugs, and psychogenic factors.

Types

i. Acute diarrhoea (Sudden onset)
ii. Chronic diarrhoea (Persistent diarrhoea)
iii. Summer diarrhoea
iv. Traveler's diarrhoea
v. Infantile diarrhoea
vi. Emotional diarrhoea etc.

Signs/Symptoms

i. Dehydration
ii. Metabolic acidosis
iii. Excessive Thirst
iv. Dry skin
v. Abdominal pain
vi. Sunken eyes
vii. Restlessness
viii. Skin pinch goes back slowly
ix. Irritability
x. Unconsciousness
xi. Electrolyte imbalance etc.

Management : Principles

i. Avoidance of causes
ii. Oral Rehydration Therapy (ORT)
iii. Oral Rehydration Solutions (ORS)
iv. Intravenous fluid therapy
v. Electrolyte & nutrient replacement
vi. Anti diarrhoeal medications
vii. Antispasmotics medications
viii. Antibiotics

Contents of ORS

(i) Water
(ii) Salt
(iii) Potussium bicarbonate
(iv) Glucose etc.

प्रवाहिका रोग
(DYSENTERY)

व्याधि परिचय

आचार्य चरक एवं वाग्भट् ने प्रवाहिका रोग का स्वतन्त्र रूप से वर्णन नहीं किया है। आचार्य चरक ने कफातिसार या आमातिसार के अन्तर्गत ही प्रवाहिका का विशिष्ट लक्षण एवं चिकित्सा वर्णित की है[1]। आचार्य सुश्रुत, वृद्ध वाग्भट् (अष्टाङ्ग संग्रहकार) तथा माधवकर ने प्रवाहिका का स्वतन्त्र वर्णन किया है। आचार्य शार्ङ्गधर तथा भावमिश्र ने भी प्रवाहिका रोग का स्वतन्त्र वर्णन किया है। काश्यप संहिता में कुछ प्रवाहिका हर योगों का वर्णन प्राप्त होता है।

प्रवाहिका रोग में 'प्रवाहण' (Tenesmus) प्रत्यात्म लक्षण है। इस रोग में कफ (Mucous) का स्राव मल के साथ गुदमार्ग द्वारा होता है। जबकि अतिसार में विभिन्न जलीय धातुओं का बिना प्रवाहण के सरण होता है। प्रवाहिका में कफ एवं वायु दोनों दोषों का प्रभाव रहता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में 'Dysentery' नामक रोग का सामञ्जस्य प्रवाहिका से करते हैं।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

स्नेह रुक्षाभ्यां प्रभवो यासां तास्तथां एतञ्चप्रायिकम् ता प्रवाहिका॥

(आचार्य डल्हण)

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

i. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 19
ii. सुश्रुत संहिता, उत्तर स्थान-अध्याय 40
iii. अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान-अध्याय 9

---

1. "आमे परिणते यस्तु विबद्धमतिसार्यते। सशूलपिच्छमल्पाल्पं बहुशः सप्रवाहिकम्॥" (च.चि 19/30)

iv. अष्टाङ्ग संग्रह, चिकित्सा स्थान-अध्याय 11
v. माधव निदान-अध्याय 3
vi. शार्ङ्गधर संहिता, पूर्वखण्ड-अध्याय 7

परिभाषा

जब बार-बार प्रवाहण (कुंथन) करने से थोड़ी मात्रा में कफ युक्त मल गुदमार्ग से निःसरण होता है तब उस अवस्था को 'प्रवाहिका' रोग कहा जाता है। रोगी को ऐसा प्रतीत होती है कि उसका कोष्ठ (पेट) साफ नहीं हुआ है।

पर्याय

प्रवाहिका के लिये निम्न पर्यायों का प्रयोग किया जाता है-

निश्चारक — आचार्य सुश्रुत
विस्रंसी — आचार्य भोज
अन्तर्ग्रन्थि या अन्नग्रन्थि — आचार्य पराशर
निःधारक या निःसारक — आचार्य हारीत

आमभाषा में प्रवाहिका रोग को 'आँव आना' या 'पेचिश' कहते हैं। लक्षणों के आधार पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार 'प्रवाहिका' का सामञ्जस्य 'Dysentery' नामक रोग से किया जा सकता है।

निदान

i. अतिसार रोग के समस्त निदान (कारण) प्रवाहिका रोग के निदान भी होते हैं।
ii. अहित आहार सेवन (अहिताशन)
iii. वात तथा कफ दोष वर्धक आहार-विहार सेवन
iv. अत्यन्त उष्ण-तीक्ष्ण काल या समय
v. अधिक तिल पिष्ट, मिष्ठान्न सेवन करना आदि।

सम्प्राप्ति[1]

अहित आहार-विहार का सेवन करने वाले रोगी में अग्निमांद्य उत्पन्न होकर साम कफ दोष की वृद्धि होती है। पिच्छिल आम के कारण वायु प्रकुपित होकर कफ दोष को पुरीष के साथ गुदमार्ग से बाहर निकालती है। प्रवाहण करते हुये बार-बार मल से मिश्रित कफ गुदमार्ग से बाहार निकलता है। आचार्य माधव के अनुसार बहुत प्रवाहण (कुंथन) करने पर कफयुक्त अल्प मल बार-बार गुदमार्ग से बाहर निकलता हैं।

---

1. "वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य।
प्रवाहमाणस्य मुहुर्मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥" (सु.उ. 40/138)

सम्प्राप्ति चक्र

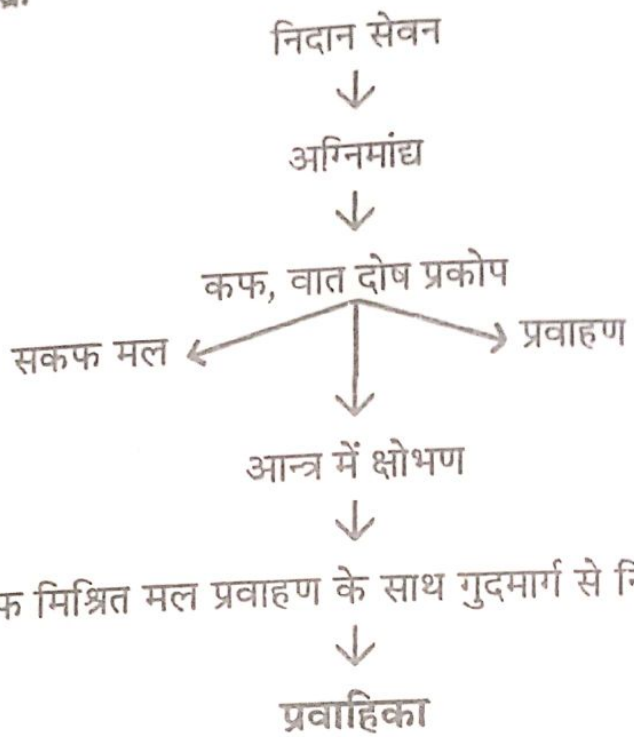

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	कफ, वात
दूष्य	:	मल, अन्न
स्रोतस्	:	पुरीषवह, उदकवह
स्रोतोदुष्टि लक्षण	:	संग पश्चात् अतिप्रवृत्ति
अधिष्ठान	:	पक्वाशय
व्याधिस्वभाव	:	आशुकारी

पूर्वरूप

प्रवाहिका रोग के पूर्वरूपों का स्वतंत्र रूप से वर्णन प्राप्त नहीं होता है। अतः अतिसार रोग के पूर्वरुप ही प्रवाहिका रोग के पूर्वरुप समझने चाहिए।

सामान्य लक्षण

प्रवाहिका रोग में निम्न सामान्य लक्षण मिलते हैं—

1. अल्प मल के साथ केवल कफ धातु का गुदामार्ग से निःसरण।
2. मल अत्यल्प मात्रा में तथा कफ अधिक मात्रा में निकलता है।
3. मल त्याग के समय प्रवाहण कुंथन (Tenesmus) होता है।
4. कफज विकार होते हुए भी प्रवाहिका रोग में प्रेरक होने के कारण वातिक लक्षणों का विशिष्ट स्थान रहता है।
5. कभी-कभी मल त्याग के साथ गुदामार्ग से रक्त भी निकल सकता है।

भेद व लक्षण

आचार्य सुश्रुत ने कारण व लक्षणानुसार प्रवाहिका के निम्न चार भेद वर्णित किए हैं[1]—

क्र.सं.	भेद	हेतु	विशेष लक्षण
1.	वातिक	रुक्ष द्रव्य सेवन	सशूल प्रवाहण
2.	पैत्तिक	तीक्ष्ण–उष्ण द्रव्य सेवन	दाह युक्त प्रवाहण
3.	श्लैष्मिक	स्निग्ध–मधुर द्रव्य सेवन	श्लेष्मायुक्त प्रवाहण
4.	रक्तज	तीक्ष्ण–उष्ण द्रव्य सेवन	रक्तयुक्त प्रवाहण

सापेक्ष निदान

अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, रक्तातिसार एवं अधोग रक्तपित्त में विभेदक लक्षण पूर्व में अतिसार व्याधि के अंतर्गत वर्णित किए गए हैं, इन्हें वहीं देखें।

समस्त प्रकार की प्रवाहिका के लक्षण, सामता–निरामता, चिकित्सा क्रम को अतिसार रोग के समान ही जानना चाहिए। द्रवसरण एवं आम–पक्व लक्षण सामान्य के कारण प्रवाहिका व अतिसार रोग में कुछ समानता है। इस रोग की विकृति का मुख्य केंद्र स्थूलान्त्र (Large Intestine) है। मल में श्लेष्मा(Mucous) प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहता है। इस अवस्था में प्रवाहण (Tenesmus) मुख्य रुप से उपस्थित रहता है। रोगी को ऐसा अनुभव होता है जैसे कि कोई वस्तु पक्वाशय से नीचे खिसकी जा रही हो, मल त्याग के पश्चात भी ऐसा प्रतीत होता है कि ठीक से कोष्ठ (पेट) साफ (शुद्धि) नहीं हुआ है। जब आमदोष पक्वाशय में पहुंच जाता है तो उस दोष के निहर्रण की प्रक्रिया का परिणाम ही प्रवाहिका है। आधुनिक दृष्टि से इसे पेचिश रोग या आंव आना (Dysentery) कहते हैं।

चिकित्सा सूत्र

1. अतिसार रोग की चिकित्सा हेतु प्रयुक्त सभी औषध योग आवश्यकता अनुरुप युक्तिपूर्वक प्रवाहिका रोग में भी प्रयोग करें[2]।
2. प्रवाहिका रोग की आमावस्था में सर्वप्रथम लंघन व पाचन कर्म कराना चाहिए। यदि लंघन पाचन से रोग शांत न हो तब पाचन औषधों से सिद्ध

---

1. "प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात् सदाहा सकफा कफाच्च।
   सशोणिता शोणितसंभवा तु ताः स्नेहरुक्षप्रभवा मतास्तु॥" (सु.उ. 40/140)
2. "तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चामविपक्वताञ्च॥" (सु.उ. 40/140)

उष्ण दुग्ध, तैल व पिच्छा बस्तियों के प्रयोग से प्रवाहिका रोग का शमन हो जाता है[1]।

3. यदि आम दोष अधिक मात्रा में हो तो स्तम्भक औषधियों का प्रयोग न करें। ऐसी अवस्था में मृदुविरेचन (ईसबगोल की भूसी, दूध अथवा एरण्ड तैल प्रयोग) देकर आम दोष को गुद मार्ग से निहर्रण करने का प्रयास करना चाहिए।
4. रक्तज प्रवाहिका में रक्तस्तम्भक चिकित्सा करें।
5. वायु को शांत करने के लिए अनुवासन बस्ति का प्रयोग करें[2]।

औषध योग

1. **शूल होने पर[3]**
   - दशमूल क्वाथ सिद्ध क्षीर व मधु युक्त आस्थापन बस्ति दें।
   - दशमूल सिद्ध दूध से सिद्ध तैल की अनुवासन बस्ति दें।
2. **शूल, मूत्रकृच्छ्र, दाह एवं ज्वर होने पर[4]**
   - मधुक, उत्पल साधित क्वाथ में क्षीर, मधु, घृत मिलाकर बस्ति दें।
3. **रक्तज प्रवाहिका में**
   - पिच्छा बस्ति का प्रयोग लाभकारी रहता है।

पिच्छा बस्ति[5]

सेमल, दूध, तैल, घृत, मुलैठी आदि को मिलाकर दी गयी बस्ति पिच्छा बस्ति है।

---

1. "न शान्तिमायाति विलङ्घनैर्या, योगैरुदीर्णा यदि पाचनैर्वा।
   तां क्षीरमेवाशु घृतं निहन्ति, तैलं तिलाः पिच्छिलबस्तयश्च॥" (सु.उ. 40/141)
2. "यथा यथा सतैलः स्याद्वातशांतिस्तथा तथा। प्रशान्ते मारुते चापि शांतिं याति प्रवाहिका।
   तस्मात् प्रवाहिकारोगे मारुतं शमयेद् भिषक्॥" (सु.उ. 40/152-153)
3. "द्विपञ्चमूलीक्वथितेन शूले प्रवाहमाणस्य समाक्षिकेण।
   क्षीरेण चास्थापनमग्र्यमुक्तं तैलेन युञ्ज्यादनुवासनञ्च॥" (सु.उ. 40/144)
4. "महारुजे मूत्रकृच्छ्रे भिषग् बस्तिं प्रदापयेत्। पयोमधुघृतोन्मिश्रं मधुकोत्पलसाधितम्॥
   स बस्तिः शमयेत्तस्य रक्तं दाहमथो ज्वरम्।" (सु.उ. 40/150-151)
5. "परिवेष्टय ..... । ..... बस्तिः॥" (च.चि. 19/64-68)

शमन चिकित्सा (विभिन्न औषध योग)

1. **रस/पर्पटी**

मात्रा	: 125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	: तक्र, मधु
(i) रामबाण रस	: कज्जली, वत्सनाभ, जायफल
(ii) कनक सुंदर रस	: हिंगुल, मरिच, पिप्पली
(iii) सिद्ध प्राणेश्वर रस	: कज्जली, अभ्रक, त्रिफला
(iv) कुटज पर्पटी	: कुटज, रस पर्पटी
(v) पीयूषवल्ली रस	: कज्जली, रजत, बिल्वफल मज्जा
(vi) गगन पर्पटी	: कज्जली, स्वर्ण, रजत, वैक्रांत
(vii) प्राणदा पर्पटी	: कज्जली, अभ्रक, वत्सनाभ
(viii) रस पर्पटी	: पारद, गंधक

2. **वटी**

मात्रा	: 250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान	: तक्र
(i) जातीफलादि वटी	: अफीम, खर्जूर, जायफल आदि
(ii) कुटज घन वटी	: कुटजत्वक्, अतीस
(iii) कुटजाष्टक वटी	: कुटज, मोच रस, बिल्व
(iv) संजीवनी वटी	: भल्लातक, वत्सनाभ, त्रिफला
(v) चिंचा भल्लातक वटी	: इमली, भल्लातक आदि।

3. **चूर्ण**

मात्रा	: 2 - 6 ग्राम
अनुपान	: मिश्री, जल, मधु
(i) जातीफलादि चूर्ण	: जायफल, नागकेशर, मरिच
(ii) बृहद् गंगाधर चूर्ण	: नागरमोथा, शुण्ठी, लोध्र
(iii) नागकेशर चूर्ण	: मक्खन, मधु, मिश्री, नागकेशर चूर्ण
(iv) नारायण चूर्ण	: गिलोय, कुटज, बिल्व

4. **क्वाथ**

मात्रा	: 20 - 40 मि. ली.
अनुपान	: जल
(i) कुटजाष्टक क्वाथ	: कुटज, अतीस, पाठा आदि
(ii) वत्सकादि क्वाथ	: कुटज, अतीस, बिल्व

5. आसव/अरिष्ट

मात्रा	: 20 - 40 मि.ली.
अनुपान	: समभाग जल
(i) कुटजाद्यरिष्ट	: कुटज, मुनक्का, गुड़
(ii) मुस्ताकद्यरिष्ट	: नागरमोथा, गुड़, धाय पुष्प

6. एकल औषध

(i) कुटज (ii) बिल्व
(iii) मोचरस (iv) नागकेशर
(v) लोध्र आदि।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जनम्
2. प्रातः सायं

रस पर्पटी	:	250 मि.ग्रा.
सिद्ध प्राणेश्वर रस	:	125 मि.ग्रा.
नागकेशर चूर्ण	:	1 ग्राम
बिल्व पूर्ण	:	1 ग्राम
मधु से	:	1×2 मात्रा

3. कुटज घन वटी : 2 वटी × 3 मात्रा
4. भोजनोत्तर

कुटजारिष्ट	:	20 मि.ली.
समभाग जल से	:	1×2 मात्रा

5. पथ्य पालन

पथ्यापथ्य

प्रवाहिका रोगी में अतिसार रोग में वर्णित पथ्यापथ्य का युक्तिपूर्वक प्रयोग किया जाना लाभप्रद रहता है, जो निम्न प्रकार है[1]—

पथ्य

आहार	विहार
लघु स्निग्ध दीपन योग, उड़द के बड़े दधि के साथ, धारोष्ण क्षीर, शुण्ठी, बिल्व, दाड़िम, जीरा, धनिया, सिद्धोदक षडंगपानीय जल आदि।	लंघन (उपवास), निद्रा सेवन आदि।

1. "लघूनि पथ्यान्यथ दीपनानि स्निग्धानिभोज्यान्युदरामयेषु।
हिताय नित्यं वितरेद्भिषज्य, योगांश्च तांस्तान् भिषगप्रमत्तः॥" (सु.उ. 40/157)

अपथ्य

आहार	विहार
बथुआ	स्वेदन
शिग्रू	आतप सेवन
पूग	रात्रि जागरण
आम, पेठा आदि।	वेग धारण आदि।

Latest Developments

DYSENTERY

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार प्रवाहिका रोग का सामञ्जस्य "Dysentery" नामक रोग से किया जाता है।

The term Dysentery is applied to various intestinal disorders, especially of the colon, marked by inflammation of the mucous membrane.

Etiology

The cause is bacterial or viral infection, infestation by protozoa or parasitic worms, or chemical irritants.

Types

i. **Amoebic dysentery**— Dysentery due to Amoeba.

ii. **Bacillary dysentery**— An acute infectious disease caused by bacteria of the genus Shigella.

Symptoms

i. Abdominal pain
ii. Tenesmus
iii. Diarrhoea with passage of mucous of blood
iv. Dehydration
v. Electrolyte imbalance

Management : Principles

i. Bed rest
ii. Amoebicidal drugs
iii. Antibiotics
iv. Intravenous fluid therapy
v. Symptomatic treatment
vi. Electroiytes therapy.

अध्याय-15

विसूचिका रोग
(CHOLERA, GASTROENTERITIS)

व्याधि परिचय

आम दोष से उत्पन्न होने वाले विकारों में अलसक, विसूचिका एवं विलम्बिका रोगों का भी वर्णन प्राप्त होता है। आचार्य चरक ने विमान स्थान में स्पष्ट किया है कि आम दोष से दो तरह के विकार उत्पन्न हो सकते हैं[1]--

(i) विसूचिका (ii) अलसक

आचार्य सुश्रुत ने उत्तर तन्त्र में निर्दिष्ट किया है कि आमाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण व विदग्धाजीर्ण से क्रमशः विसूचिका, अलसक व विलम्बिका रोग की उत्पत्ति होती है[2]। लक्षणों के आधार पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में 'विसूचिका' रोग से 'हैजा रोग' (Cholera अथवा Gastroenteritis) का सामञ्जस्य स्थापित करते हैं।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

(i) सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः।
यस्याजीर्णेन सा वैद्यैरुच्यतेतु विसूचिका॥ (सु.उ. 56/4)

अर्थात जिस रोग में अजीर्ण के कारण प्रकुपित वायु शरीर में सुई चुभने जैसी वेदना उत्पन्न करती है उसे 'विसूचिका' कहते हैं।

(ii) विविधानां विकाराणां सूचिका विसूचिका। (अरुणदत्त)

अर्थात् अनेकानेक विकारों व उपद्रवों की सूचक व्याधि को विसूचिका कहते हैं।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चरक संहिता, विमान स्थान-अध्याय 2

1: "तं द्विविधमामप्रदोषमाचक्षते भिषजः-विसूचिकाम्, अलसकं च॥" (च.वि. 2/10)

2. "अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धञ्च यदीरितम्।
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका॥" (सु.उ. 56/3)

2. सुश्रुत संहिता, उत्तर तन्त्र-अध्याय 56
3. अष्टाङ्ग संग्रह, सूत्र स्थान-अध्याय 1
4. माधव निदान-अध्याय 6

परिभाषा

ऊर्ध्व व अधोमार्ग से प्रवृत्त आम दोषयुक्त रोग को विसूचिका कहा जाता है[1]।

पर्याय

विभिन्न ग्रन्थों में इस रोग को विसूची, विसूचिका कहा गया है। आचार्य गणनाथ सेन जी ने इस रोग को कालातिसार (Cholera)की संज्ञा दी है। आम भाषा में इसे 'हैजा' कहा जाता है।

निदान

आचार्य सुश्रुत के अनुसार परिमित मात्रा में एवं यथाविधि भोजन करने वाले मनुष्य को विसूचिका रोग नहीं होता है। दूषित आमाशय वाले, अजितेन्द्रिय, खाने के लालची मूर्ख लोग विसूचिका रोग से पीड़ित होते हैं[2]। विसूचिका रोग के निदान निम्नानुसार वर्णित किये गये हैं—

1. मिथ्या आहार-विहार सेवन
2. दूषित, पर्यूषित, अशुद्ध, बासी भोजन सेवन
3. विष सेवन, कृमि रोग
4. असात्म्य भोजन सेवन
5. अध्यशन, विषमाशन
6. दूषित जल सेवन
7. ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ (अन्न का), चिन्ता, शोक
8. रात्रि जागरण
9. अतिमात्रा में गुरु-स्निग्ध-रुक्ष-शीत-शुष्क, द्विष्ट (अप्रिय), विदाही, अपवित्र भोजन ग्रहण करने से विसूचिका रोग की उत्पत्ति होती है[3]।
10. जनपदोध्वंस (Epidemic) के रूप में विसूचिका रोग बसन्त व ग्रीष्म ऋतु में प्रायः उत्पन्न होता है।

---

1. "तत्र विसूचिकामूर्ध्वं चाधश्च प्रवृत्तामदोषां यथोक्तरूपां विद्यात्॥" (च.वि. 2/11)
2. "न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः। मूढास्तामजितात्मानो लभन्ते कलुषाशयाः॥" (सु.उ. 56/5)
3. i) "न च खलु..... । ..... प्रदूषयति॥" (च.वि. 2/8)
   ii) "मात्रयाऽप्यभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति। चिन्ताशोकभयक्रोधदुःखशय्याप्रजागरैः॥" (च.वि. 2/9)

सम्प्राप्ति

अतिमात्रा में भोजन करने व पूर्ववर्णित निदानों का सेवन करने से महास्रोतस् में त्रिदोष प्रकुपित होकर सेवन किये गये आहार को ऊर्ध्व व अधो मार्ग से आमरूप में शरीर से बाहर निकालते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र

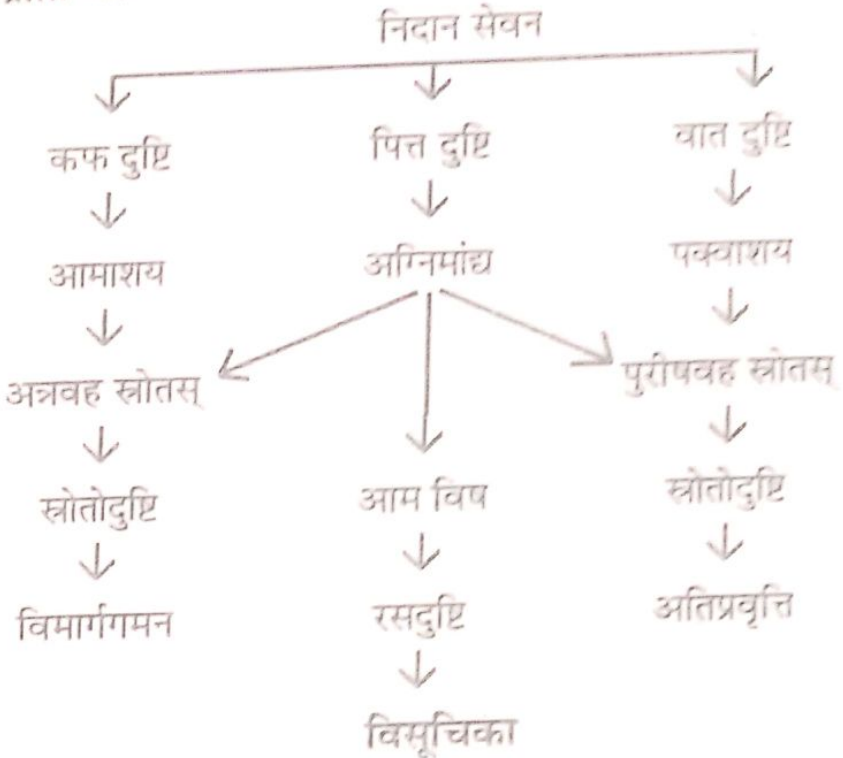

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	त्रिदोष
दूष्य	:	रस, अन्न, पुरीष
स्रोतस	:	अन्नवह, पुरीषवह तत्पश्चात उदकवह स्रोतस्
स्रोतोदुष्टि लक्षण	:	संग→विमार्गगमन→अति प्रवृत्ति
आशय	:	आमपक्वाशयोत्थ
व्याधि स्वभाव	:	आशुकारी व उग्र

अजीर्ण से आमोत्पत्ति होकर आम अन्न एवं आम आहार रस बनते हैं। इसे ही आम विष कहा जाता है। यह आम विष विरुद्धाशन, अध्यशन एवं अजीर्णाशन वाले रोगी में भी उत्पन्न होता है। यह आमविष विरुद्धोपक्रम होने से आशुकारी व शीघ्रमारक होता है। आचार्य इसे असाध्य भी मानते हैं।

भेद

विसूचिका रोग के भेदों का स्पष्टतः वर्णन प्राप्त नहीं होता है। लक्षणों के आधार पर विसूचिका रोग के निम्न तीन भेद माने जा सकते हैं—

1. वातिक विसूचिका
2. पैत्तिक विसूचिका
3. श्लैष्मिक विसूचिका

अन्यत्र विसूचिका रोग के निम्न तीन भेद भी वर्णित हैं—

1. उर्ध्वग विसूचिका इसमें केवल छर्दि उत्पन्न होती हैं।
2. अधोग विसूचिका–केवल अतिसार की उत्पत्ति होती है।
3. उभयमार्गज विसूचिका–छर्दि व अतिसार दोनों की प्रवृत्ति होती है।

पूर्वरूप

विसूचिका रोग की उत्पत्ति अत्यधिक तीव्र गति से होने के कारण इस रोग के पूर्वरुपों का वर्णन नहीं मिलता है।

सामान्य लक्षण

विसूचिका रोग में सामान्य लक्षण निम्न प्रकार होते हैं[1]—

1. अतिसार (चावल धोवन के समान) (Rice water diarrhoea)
2. छर्दि (Vomiting)
3. उदरशूल (Abdominal pain, Spasm)
4. पिपासाधिक्य (तृष्णा) (Excessive thirst)
5. ऐंठन (Painful Cramps/Tenesmus)
6. भ्रम (Vertigo)
7. मूर्च्छा (Fainting)
8. कम्प (Tremors)
9. वैवर्ण्यता (Discolouration)
10. हृदय पीड़ा (Cardiac pain)
11. शिर:शूल (Headache)
12. दाह (Burning Sensation)
13. जृम्भा (Yawning)

अन्य सामान्य लक्षण

1. जलाल्पता (Dehydration)
2. निम्न रक्तदाब (Hypotension)
3. नेत्र अन्तः प्रविष्ट (Sunken eyes)

---

1. "मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा, शूलं भ्रमोद्वेषनजृम्भदाहाः।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च, भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः॥" (सु.उ. 56/6)

4. शीत स्वेद आगमन (Cold Sweating)
5. मूत्रावरोध (Retention of Urine)
6. नाड़ी तीव्र व दुर्बल (Weak, Thready Pulse, Tachypnoea)

उपर्युक्त समस्त लक्षण Cholera एवं Gastroenteritis नामक रोगों में भी पाये जाते हैं।

विशिष्ट लक्षण (भेदानुसार)[1]

आचार्य चरक के अनुसार विसूचिका रोग (आम दोष) के दोषानुसार विशिष्ट लक्षण निम्नानुसार हैं—

क्र.सं.	वातिक	पैत्तिक	श्लैष्मिक
1.	शूल	ज्वर	छर्दि (वमन)
2.	आनाह	अतिसार	अरुचि
3.	अंगमर्द	अन्तर्दाह	अपचन
4.	मुखशोष	तृष्णा	शीतज्वर
5.	मूर्च्छा	मद	आलस्य
6.	भ्रम	भ्रम	शरीर गुरुता
7.	अग्निवैषम्य	प्रलाप	
8.	पार्श्व-पृष्ठ-कटिग्रह		
9.	सिराकुंचन		
10.	सिरास्तम्भ		

विसूचिका त्रिदोषज व्याधि है। इसमें आमदोष (आम-विष) की सद्यः उत्पत्ति के कारण रोगी को बार-बार द्रव मल का स्राव तथा छर्दि उत्पन्न होती है। अत्यधिक अतिसार तथा छर्दि के कारण शरीरस्थ जल अधिक मात्रा में शरीर से बाहर निकल जाता है, जिससे रोगी को तीव्र तृष्णा, मूत्राघात, भ्रम, मूर्च्छा, जलाल्पता, हृदय वेदना आदि आत्ययिक लक्षण भी उत्पन्न होते हैं जिनकी शीघ्र चिकित्सा करनी आवश्यक होती है।

साध्यासाध्यता[2]

विसूचिका रोग के निम्न असाध्य लक्षण हैं। इनके उत्पन्न होने पर विसूचिका रोग असाध्य की श्रेणी को प्राप्त हो जाता है-

---

1. "तत्र वातः शूलानाहाङ्गमर्द..... । ..... गात्रगौरवाणिः ॥" (च.वि. 2/7)
2. "यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञश्छर्द्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः ।
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरः सोऽपुनरागमाय ॥" (सु.उ. 56/11)

1. दन्त-ओष्ठ-नख का नीला पड़ना (Cyanosis)
2. अल्पसंज्ञा (Fainting attacks/coma)
3. निरन्तर छर्दि (Frequent Vomitings)
4. नेत्र अक्षिकूट में धसना (Sunken eye balls)
5. स्वरक्षीणता (Feeble Voice)
6. सन्धियों का ढीला पड़ना (Letharginess in Body)

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त रोगी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। अत: आचार्यों ने ऐसे रोगी की चिकित्सा नहीं करने का निर्देश दिया है।

उपद्रव[1]

आचार्य माधवकर ने विसूचिका रोग के निम्न उपद्रव बताये हैं--

1. निद्रानाश (Insomnia)
2. अरति (किसी भी स्थिति में आराम न मिलना Restlessness)
3. कम्प (Tremors/cramps)
4. मूत्राघात (Suppression of urine/Acute Renal Failure)
5. विसंज्ञता (Fainting attacks/coma)

चिकित्सा सूत्र

(i) विसूचिका रोग में सर्वप्रथम लंघन (उपवास) कराना चाहिये। तत्पश्चात् विरेचन कर्म के पश्चात जो पथ्य, पेया, विलेपी आदि के रूप में दिया जाता है उसको खाने को दें[2]। यह हेतुविपरीत उपचार है। अगर रोग शमन न हो तो व्याधि विपरीत उपचार दें।

(ii) आचार्य सुश्रुत के अनुसार साध्य विसूचिका में संज्ञा प्रबोधन के लिये एड़ी में दहन कर्म करें। पाचन के लिये अग्नि से सेंक करें। अन्नशल्य को निकालने के लिये तीक्ष्ण वमन दें। दोष के पाकाभिमुख होने पर लंघन, स्वेदन, पाचन एवं विरेचन देवें। आस्थापन बस्ति देना भी उपयोगी रहता है[3]।

---

1. "निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता। अमी ह्युपद्रवा घोरा विसूच्यां पञ्च दारुणाः॥" (मा.नि. 6/25)
2. "विसूचिकायां तु लङ्घनमेवाग्रे विरिक्तवच्चानुपूर्वी।" (च.वि. 2/13)
3. i) "साध्यासु पाष्णर्योर्दहनं प्रशस्तमग्निप्रतापो वमनञ्च तीक्ष्णम्।
पक्वे ततोऽन्ने तु विलङ्घनं स्यात् संपाचनं चापि विरेचनं च॥" (सु.उ. 56/12)
ii) "विशुद्धदेहस्य हि सद्य एव मूर्च्छाऽतिसारादिरुपैति शान्तिम्।
आस्थापनं चापि वदन्ति पथ्यं सर्वासु योगानपरान्निबोध॥" (सु.उ. 56/13)

(iii) आचार्य चक्रदत्त के अनुसार विसूचिका रोग में वमन, विरेचन, उपवास (लंघन) पश्चात क्षुधा लगने पर जठराग्नि दीपक तथा पाचक पेयादि आहार द्रव्य देना चाहिये[1]।

(iv) सामान्यतः विसूचिका की चिकित्सा अतिसार वत् ही करनी चाहिये। अजीर्ण से ही विसूचिका रोग की उत्पत्ति बतायी गयी है अतः अजीर्ण की निम्न चिकित्सा विसूचिका में भी करें—

1. लंघन
2. स्वेदन
3. वमन
4. फलवर्ति (Suppository Administration)
5. लवण जल की बस्ति (Administration of normal Saline through rectal route)
6. अल्पभोजन (अपतर्पण)

यही चिकित्सा क्रम अलसक रोग में भी प्रयोग करते हैं।[2]

(v) विसूचिका आशुकारी व्याधि है। इसलिये सर्वप्रथम अतिसार को रोकने हेतु स्तम्भन चिकित्सा अनिवार्य है। पश्चात् वमन (छर्दि) रोकने हेतु चिकित्सा दें। तत्पश्चात् जलाल्पता व तृष्णा की चिकित्सा अभीष्ट है। पश्चात् हृदवेदना, मूर्च्छा व भ्रम की भी चिकित्सा करें।

(vi) आधुनिक मतानुसार विसूचिका (Cholera) संक्रमणजन्य रोग होने के कारण रोगी को एकान्तवास (Isolation ward) में रखना चाहिये। रोगी के मलमूत्र को जमीन में गाड़ देना चाहिये। खाद्य-पेय पदार्थों को मक्खियों से बचाकर रखें। पश्चात् आत्ययिक परिस्थिति अनुसार रोगी को लाक्षणिक चिकित्सा दें।

चिकित्सा

I. शोधन चिकित्सा—विसूचिका रोग से ग्रसित रोगी को निम्न संशोधन चिकित्सा दी जानी अपेक्षित है—

i. लंघन
ii. पाचन
iii. स्वेदन
v. वमन
v. विरेचन
vi. आस्थापन बस्ति
vii. संसर्जन क्रम (पेयादि)

---

1. "विसूचिकायां वमितं विरिक्तं सुलङ्घितं वा मनुजं विदित्वा।
पेयाऽऽदिभिर्दीपनपाचनैश्च सम्यक् क्षुधाऽऽर्त्तसमुपक्रमेच्च॥" (चक्रदत्त अग्निमांद्य चि. /65)
2. "फलवर्ति वमिं स्वेदनं लङ्घनं चापतर्पणम्। विशेषादलसे कुर्याद्विसूच्यामतिसारवत्॥"
(यो.र. अजीर्ण निदानम-विसूचिका चिकित्सा/5)

II. शमन चिकित्सा—विसूचिका रोग की सफल चिकित्सा हेतु निम्न योगों को युक्तिपूर्वक प्रयोग किया जा सकता है—

1. **रस**

मात्रा	: 125 – 250 मि.ग्रा.
अनुपान	: तक्र, मधु
(i) रामबाण रस	: कज्जली, वत्सनाभ, जायफल
(ii) श्वेतपर्पटी	: सोरा, फिटकरी
(iii) हेमगर्भ-पोट्टली रस	: पारद, स्वर्ण, मुक्ता
(iv) अजीर्ण कण्टक रस	: कज्जली, वत्सनाभ, मरिच
(v) कर्पूर रस	: हिंगुल, अफीम, नागरमोथा
(vi) कस्तूरी भैरव रस	: हिंगुल, वत्सनाभ, जायफल
(vii) विसूची विध्वंसो रस	: टंकण, स्वर्णमाक्षिक, कज्जली
(viii) शंखोदर रस	: शंख, अफीम, जायफल
(ix) विसूचिकान्तक रस	: तालचन्द्रोदय, अजवाइन, कर्पूर

2. **वटी**

मात्रा	: 250 – 500 मि.ग्रा.
अनुपान	: तक्र
(i) संजीवनी वटी (2-2 गोली)	: भल्लातक, वत्सनाभ, त्रिफला
(ii) रसोन वटी	: लशुन, त्रिकटु, जीरक
(iii) चिंचाभल्लातक वटी	: इमली, भल्लातक
(iv) रसोनकर्पूर वटी	: कर्पूर, लशुन, हिंगु
(v) महाशंख वटी	: कज्जली, शंख, पंचलवण
(vi) विसूचिकाहर वटी	: हिंगु, अफीम, जायफल
(vii) जातीफलादि वटी	: अफीम, खर्जूर, जायफल
(viii) अर्क वटी	: अर्कमूल, मरिच, सैंधव

3. **आसव/अरिष्ट**

मात्रा	: 20 – 40 मि.ली.
अनुपान	: जल (समभाग)
(i) मुस्तकाद्यरिष्ट	: नागरमोथा, गुड़, अजवाइन
(ii) कर्पूरासव (10-20 बूंद)	: सुरा, कर्पूर, एला
(iii) अहिफेनास्व (5-10 बूंद)	: मधूक, अहिफेन, मुस्तक

4. **अर्क**

मात्रा	: यथावश्यक
(i) जीरक अर्क	: जीरक
(ii) सौंफ अर्क	: शतपुष्पा
(iii) पुदीना अर्क	: पुदीना

(iv) चन्दनाद्यर्क : चन्दन, पर्पटक, धनियां

5. **अन्य**

मात्रा : यथावश्यक

(i) अमृतबिन्दू : अमृता, किराततिक्त, चन्दन

(ii) अमृत धारा : सत पुदीना, सत अजवायन, पीपरमिन्ट

(iii) अमृतोज : शर्करा, सैंधव, सौवर्चल

(iv) पित्तान्तक योग : स्वर्णगैरिक, मिश्री, अमृत धारा

(v) कर्पूरधारा : कर्पूर, पुदीना, यवानी

(vi) षडंगपानीय जल : पर्पटक, नुस्तक

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जनम्
2. एकान्त वास
3. प्रातः : सायं

रामबाण रस	: 250 मि.ग्रा.
वमनकुठार रस	: 250 मि.ग्रा.
जहरमोहरा पिष्टी	: 500 मि.ग्रा.
संजीवनी वटी	: 250 मि.ग्रा.
मधु से	: 1×2 मात्रा

4. कर्पूरासव : 5–10 बूंद
   जल से : 1×2 मात्रा
5. महाशंख वटी : 2 वटी × 3 मात्रा
   जल से
6. अमृतौज : 1 ग्राम
   पित्तान्तक : 500 मि.ग्रा.
   जल से : 1×4 मात्रा

पथ्यापथ्य

विसूचिका रोगी पें निम्न पथ्यापथ्य दिया जाना लाभप्रद रहता है—

पथ्य

आहार	विहार
मूंग यूष, पेया-विलेपी, केला, लाज-मण्ड, दधि, दाड़िम नारिकेलोदक, निम्बू, रस, इमली, फलरस, तोरई, जीरा, पुदीना, धनियां, अजवाइन, हरी सब्जियां, लोकी, परवल, करेला, पालक, टिण्डा आदि।	निद्रा सेवन लंघन विश्राम आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
उड़द, सेम, कटहल, ककड़ी, खीरा, अतिजलपान, गुरु-स्निग्ध आहार, काशीफल, पूगफल, मद्य, समौसा, कचोरी आदि।	स्नान, अभ्यंग, स्वेदन, आतप सेवन, दिवास्वप्न, मैथुन कर्म, वेगधारण आदि।

Latest Developments

CHOLERA

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में विसूचिका रोग का सामञ्जस्य Cholera/ Gastroenteritis नामक रोग से किया जाता है।

An acute infection involving the entire small intestine, marked by profuse watery diarrhoea and vomiting. This produces severe loss of fluids and electrolytes, muscular cramps, oliguria, dehydration and collapse.

Etiology

A short, curved, motile gram negative Bacteria-Vibrio cholerae.

Incubation period

Few hours to 4-5 days.

Management : Principles

i. Isolation
ii. Fluid, electrolyte and alkaly therapy
iii. Oral Rehydration Solution (ORS)
iv. Antibiotics
v. Prevention-By immunization.

GASTROENTERITIS

Acute gastroenteritis (food poisoning) is characterized by vomiting, diarrhoea and abdominal cramps following ingestion of some irritant or infected food. It is caused by ingestion of Salmonella organisms or toxins of Staphylococci, E. Coli, Clostridium welchii and even normal intestinal flora.

Management : Principles

i. Diet-added salt and sour lime
ii. Fluid and electrolytes
iii. Antibacterials (Antibiotics)
iv. Symptomatic treatment
v. Prophylaxis

अध्याय 16

जलोदर
(ASCITES)

व्याधि परिचय

आयुर्वेदीय सम्प्राप्ति की दृष्टि से कई रोगों में विभिन्न स्रोतस की विकृति एक साथ पायी जाती है, जैसे—उदर रोग, हिक्का, श्वासरोग, अतिसार, ज्वर, शोथ, मधुमेह, एवं मद-मूर्च्छा-सन्यास रोग आदि। उपर्युक्त में से 'उदर रोग' शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसके अन्तर्गत उत्सेध युक्त (Generalised Abdominal Distention) व्याधियों का ग्रहण किया जाता है। शरीर में सम्पूर्ण रोग विशेषकर उदर रोग मन्दाग्नि, अजीर्ण, मलिन-पर्यूषित अन्न सेवन से एवं मल के संचय से उत्पन्न होते हैं[1]। उदर रोगों में प्रधान रूप से अन्नवह, रसवह, स्वेदवह, पुरीषवह एवं उदकवह स्रोतस् की दुष्टि पायी जाती है। उदर रोग रोगों का समूह है। आचार्यों ने उदर रोगों की संख्या 8 बतायी है जो निम्न हैं[2]

1. वातोदर
2. पित्तोदर
3. कफोदर
4. सन्निपातोदर
5. प्लीहोदर (यकृद्दाल्युदर)
6. बद्धोदर
7. क्षतोदर
8. जलोदर

'प्लीहोदर' में ही 'यकृद्दाल्युदर' का समावेश किया जाता है। 'सन्निपातोदर' एवं 'क्षतोदर' को क्रमशः 'दूष्योदर' एवं 'परिस्रावी उदर' रोग कहा जाता है। समस्त प्रकार के उदर रोगों में आध्मान, आटोप, हस्तपाद शोफ, अग्निमांद्य, गण्डस्थल की श्लक्ष्णता, कार्श्य, चलने फिरने में असमर्थता, अपानवायु व मल अवरोध, दाह, तन्द्रा आदि लक्षण

---

1. "रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि तु। अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात्॥" (अ.ह.नि. 12/1)
2. "अष्टावुदराणीति वातपित्तकफसन्निपातप्लीहबद्धच्छिद्रदकोदरणाचि॥" (च.सू. 19/3(1)

पाये जाते है[1]। विशिष्ट लक्षण के रूप में आठों उदर रोगों में निम्न लक्षण पाये जाते हैं—

1. **वातोदर (Flatulence)**—आध्मातदृतिशब्दवद् अर्थात् अंगुलिक्षेपण करने पंर उदर वायु से भरी हुई मशक के समान शब्द निकालता है।
2. **पित्तोदर (Biliary Cirrhosis)**—ज्वर, मूर्च्छा, दाह, स्वेदाधिक्य एवं तृष्णाधिक्य आदि लक्षण पाये जाते हैं।
3. **कफोदर (Ascites due to Renal Disease)**—अवसाद, शोथ, निद्रा, उत्क्लेश, श्वास एवं कास आदि लक्षण मिलते हैं।
4. **सन्निपातोदर (Portal Cirrhosis)**—इसमें कृशता, रक्ताल्पता एवं तृष्णाधिक्य पाये जाते हैं।
5. **प्लीहोदर (Hepatosplenomegaly)**—इसमें कृशता, छर्दि, मूर्च्छा, कास, श्वास एवं कच्छपसंस्थानवत् प्लीहा आदि लक्षण मिलते हैं।
6. **बद्धोदर (Intestinal obstruction)**—इसमें विबन्ध एवं हृदय-नाभि के मध्य में उदर का गोपुच्छवत् फूलना आदि लक्षण मिलते हैं।
7. **क्षतोदर (Intestinal perforation)**—इसमें नाभि के नीचे उदर फूला हुआ मिलता है।
8. **जलोदर (Ascites)**—इसमें जल से भरी मशक के समान क्षोभ, कम्पन ध्वनि मिलती है।

अपने उत्पत्तिकाल से ही समस्त प्रकार के उदररोग कृच्छ्रसाध्य होते हैं। आचार्यों ने वर्णन किया है कि उदर रोग के प्रथम सात भेद अन्त में असाध्य रूप जलोदर (Ascites) में परिणित हो जाते है[2]। बद्धगुदोदर यदि पन्द्रह दिन तक ठीक न हो तो असाध्य हो जाता है। उदरावरण गुहा में जल संचय होने से पूर्व बलवान रोगी का उदर रोग यत्न करने पर ठीक हो सकता है। उदर में जल भर जाने के पश्चात् सभी उदर रोग, जलोदर रोग व छिद्रोदर असाध्य हो जाता है। प्रथम सात उदर रोगों का विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में वर्णित अन्नवह स्रोतस् के रोगों के अन्तर्गत किया जायेगा। यहां विस्तृत रूप में जलोदर रोग का वर्णन किया जा रहा है[3]।

---

1. i) "कुक्षेराध्मानमाटोपः शोफः पादकरस्य च।
मन्दोऽग्निः श्लक्ष्णगण्डत्वं कार्श्यं चोदरलक्षणम्॥" (च.चि. 13/21)
ii) "आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता। शोफः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः॥
दाहस्तृष्णा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि।" (सु.नि. 7/25)
2. "अन्ते सलिलभावं हि भजन्ते जठराणि तु। सर्वाण्येव परीपाकात्तदा तानि विवर्जयेत्॥" (सु.नि. 7/26)
3. "वातात्पित्ता त्कफात् प्लीहः सन्निपातात्तथोदकात्। परं परं कृच्छ्रतरमुदरं भिषगादिशेत्॥
पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं यथा। प्रायो भवत्यभावाय च्छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम्॥" (च.चि. 13/50-51)

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान–अध्याय 13
2. सुश्रुत संहिता, निदान स्थान–अध्याय 17
3. सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थान–अध्याय 14
4. अष्टांङ्ग संग्रह, चिकित्सा स्थान–अध्याय 17
5. अष्टांङ्ग हृदया, निदान स्थान–अध्याय 12
6. अष्टांङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान–अध्याय 15
7. माधव निदान–अध्याय 35

परिभाषा[1]

जिस रोग में व्यक्ति के उदर प्रदेश में अवस्थित त्वचा व मांस के बीच उदक संचित हो जाता है उसे जलोदर कहते हैं।

पर्याय

विभिन्न ग्रन्थों में जलोदर रोग के निम्न पर्याय मिलते हैं—

1. दकोदर
2. उदकोदर
3. जातोदक

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Ascites नामक रोग का सामंजस्य आयुर्वेद में वर्णित जलोदर रोग से किया जाता है।

निदान

जलोदर रोग की उत्पत्ति में कुछ सामान्य एवं कुछ विशिष्ट निदान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, जो निम्न प्रकार हैं—

सामान्य निदान[2]

i. मन्दाग्नि
ii. अजीर्ण
iii. मलिन–पर्यूषित अन्न सेवन
iv. मलसंचय
v. संशोधन पश्चात् अनुचित संसर्जन क्रम

---

1. i) "यस्य वातः प्रकुपितस्त्वङ्मांसान्तरमाश्रितः। शोथं संजनयेत् कुक्षावुदरं तस्य जायते॥" (च.सू. 18/31)

   ii) "त्वङ्मंसान्तरमागम्य कुक्षिमाध्मापयन् भृशम्। जनयत्युंदरं तस्य हेतुं श्रृणु सलक्षणम्॥" (च.चि. 13/11)

2. i) "रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि तु। अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैजार्यन्ते मलसञ्चयात्॥" (अ.ह.नि. 12/1)

   ii) "अत्युष्णलवण..... । ..... विशेषतः॥" (च.चि. 13/12–15)

vi. अत्यन्त उष्ण, लवण, क्षार, विदाही अन्न सेवन
vii. गर विष सेवन
viii. प्लीह रोग, अर्श, ग्रहणी रोग से कृश होने के बाद
ix. वेगावरोध
x. शेष सातों उदर रोग के पश्चात्

विशिष्ट निदान[1]

(अ) स्वतन्त्र जलोदर (Primary Ascites)

i. स्नेहपान, अनुवासन, विरेचन, निरुह कर्म के पश्चात तुरन्त शीतल जल पीना

(ब) परतन्त्र जलोदर (Secondary Ascites)

i. प्राण (Heart), अग्नि (Liver), अपान (Renal) की दुष्टि
ii. अन्य उदर रोगों की अन्तिम परिणिति फलस्वरूप
iii. स्रोतसों का स्नेहालिप्त होना

आधुनिक मत से जलोदर रोग (Ascites) के प्रमुख हेतु

1. **हृदय रोग जन्य विकार (प्राण विकृति)**
   i. Congestive Pericarditis
   ii. Congestive Cardiac Failure (C.C.F.)
2. **यकृत विकार (अग्नि विकृति)**
   i. Hepatic Cirrhosis
   ii. Portal Hypertension
3. **वृक्क विकार (अपान विकृति)**
   i. Nephrotic Syndrome
4. **पोषक तत्त्व अभाव**
   i. Hypoproteinaemia
5. **पाण्डु (Anaemia) रोग पश्चात**

   उपर्युक्त पाँचों कारणों से **Transudate** प्रकार का जलोदर उत्पन्न होता है।
6. **उदरावरण कला शोथ**
   i. Tubercular Peritonitis

---

1. "स्नेहपीतस्य मन्दाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य वा। अत्यम्बुपानान्नष्टेऽग्नौ मारुतः क्लोन्ति संस्थितः॥" (च.चि. 13/45)

7. अर्बुद

i. Peritoneal Neoplasms

उपर्युक्त दोनों कारणों (6th & 7th) से **Exudate** प्रकार का जलोदर उत्पन्न होता है।

सम्प्राप्ति

(I) सामान्य सम्प्राप्ति[1]

निदान सेवन से उदर में संचित दोष स्वेदवह, अम्बुवह स्रोतसों में अवरोध उत्पन्न कर तथा प्राण, अग्नि एवं अपान वायु को दूषित कर उदर रोग (जलोदर) उत्पन्न करते हैं।

(II) विशिष्ट सम्प्राप्ति[2]

स्नेहपान (Oily & Fatty Diet) करने के तत्काल पश्चात शीतल जल पीने व अन्य कारणों से व्यक्ति की जठराग्नि मन्द हो जाती है, फलस्वरूप क्लोमस्थ वायु एवं अन्य स्रोतसों में अवरोध उत्पन्न हो जाने से जलमिश्रित कफ उदर की वृद्धि कर देते हैं जिससे जलोदर रोग की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति चक्र

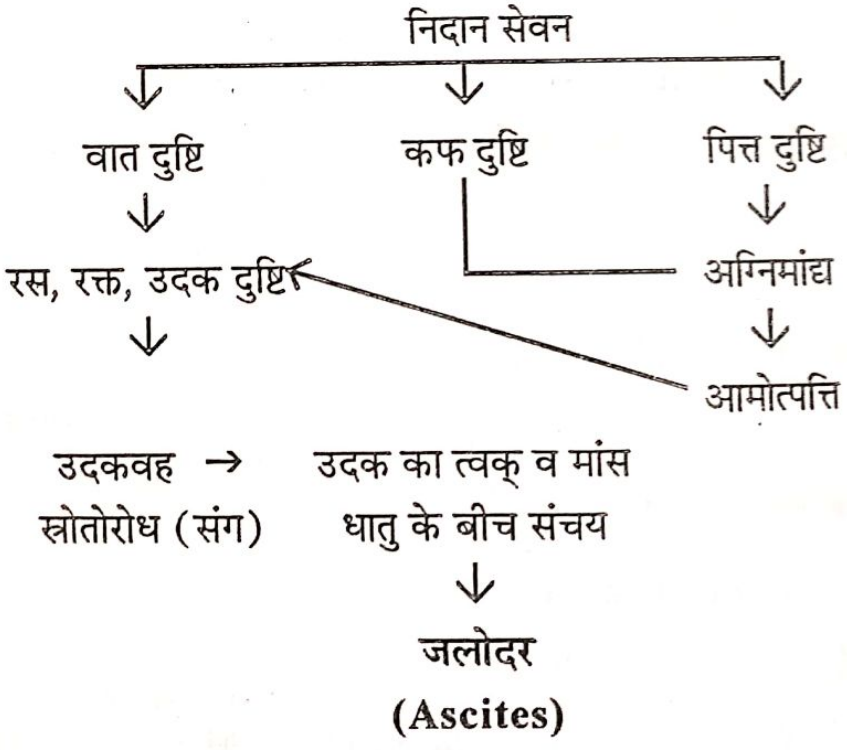

---

1. "रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः। प्राणाग्न्यपानान् संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम्॥" (च.चि. 13/20)

2. "स्नेहपीतस्य मन्दाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य वा। अत्यम्बुपानान्नष्टेऽग्नौ मारुतः क्लोम्नि संस्थितः॥ स्रोतःसु रुद्धमार्गेषु कफश्चोदकमूर्च्छितः। वर्धयेतां तदेवाम्बुः स्वस्थानादुदराय तौ॥" (च.चि. 13/45-46)

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वातप्रधान त्रिदोषज व्याधि
दूष्य	:	रस, रक्त, उदक
स्रोतस	:	उदकवह, रस-रक्तवह स्रोतस्
स्रोतोदुष्टि प्रकार	:	संग पश्चात् विमार्ग गमन
आशय	:	आमपक्वाशयोत्थ
अग्नि	:	मन्दाग्नि
व्याधि स्वरूप	:	चिरकारी (Chronic)
साध्यासाध्यता	:	कष्टसाध्य/असाध्य

पूर्वरूप[1]

जलोदर रोग के स्वतन्त्र रूप से पूर्वरूप वर्णित नहीं हैं। अतः अन्य उदर रोगों के पूर्वरूप (सामान्य पूर्वरूप) ही जलोदर के पूर्वरूप माने जा सकते हैं जो निम्न हैं—

i. क्षुधानाश
ii. मुख का मीठा रहना
iii. स्निग्ध व गुरु अन्न का देर से पचना
iv. अन्न के जीर्ण व अजीर्ण का ज्ञान न होना
v. पेट का अधिक भरना-फूलना
vi. पैरों में शोथ
vii. निरन्तर बल का ह्रास
viii. परिश्रम से श्वासकष्ट
ix. उदावर्त्त (मल-मूत्र-अपान अवरोध)
x. आध्मान
xi. उदर के ऊपर रेखाओं (राजीजन्य) का दिखाई देना एवं बली (झुर्रियों) का नाश होना।

भेद—विभिन्न शास्त्रों में जलोदर रोग के निम्न भेद वर्णित किये गये हैं—

(अ) (i) **स्वतन्त्र जलोदर**—जब जलोदर रोग स्वतन्त्र रूप से स्वयमेव उत्पन्न होता है।

(ii) **परतन्त्र जलोदर**—जब जलोदर रोग अन्य किसी रोग के उपद्रव स्वरूप उत्पन्न होता है।

---

1. "क्षुन्नाश:..... । ..... भविष्यताम्॥" (च.चि. 13/16-19)

(ब) (i) **जातोदक**—जब जलोदर रोग में जल उपस्थिति के चिन्ह मिलते हैं।

(ii) **अजातोदक**—जलोदर रोग की प्रारम्भावस्था में जब उदरगुहा में जल अनुपस्थित रहता है।

(स) (i) **Transudate Ascites**

The fluid that passes through a membrane, especially that which passes through capillary walls, compared to an exudate, a transudate has fewer cellular elements (such as cells, protein, lactic dehydrogenase and solid materials) and is of a lower specific gravity.

The process is passive and fluid appears clear. It is found in Cardiac failure, Anaemia, Hypoproteinaemia, Nephrotic Syndrome, Portal hypertension and Beri-beri disease etc.

(ii) **Exudate Ascites**

Accumulated fluid in a peritoneal cavity penetrates through vessel walls into adjoining tissues. Exudate means pathological oozing of fluids, usually the result of inflammation. In comparison with a transudate, an exudate has more cells (Polymorphs or Lymphocytes), proteins, lactic dehydrogenase and solid materials. The process is active and fluid appears clear or turbid, has higher specific gravity. It is found in Peritoneal diseases (such as in Tuberculosis, Fungal, Parasitic infections and in Neoplasms), collagen disorders and endometriosis.

लक्षण

(अ) **सामान्य लक्षण**[1]

आचार्य चरक ने जलोदर रोग के निम्न लक्षण वर्णित किये हैं

1. अन्न अनिच्छा/अरुचि (Anorexia)
2. पिपासा वृद्धि (Excessive Thirst)
3. गुदमार्ग से निरन्तर जल स्राव (Serous discharge from Rectum)
4. शूल (Abdominal pain)
5. श्वास (Dyspnoea)

---

1. i) "तस्य रुपाणि-अनन्नकाङ्क्षापिपासागुदस्रावशलश्वासकासदौर्बल्यानि, अपि चोदरं नानावर्णराजिसिरासंततमुदकपूर्णदृतिक्षोभसंस्पर्श भवति, एतदुदकोदरमिति विद्यात्।" (च.चि. 13/47)

ii) "स्निग्धं महत् संपरिवृत्तनाभि, भृशोन्नतं पूर्णमिवाम्बुना च।
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च, शब्दायते चापि दकोदरं तत्॥" (सु.नि. 7/23)

6. कास (Cough)
7. दौर्बल्य (Weakness)
8. उदर प्रदेश पर अनेक रेखाओं एवं सिराओं का जाल फैल जाना (Engorgement of veins over abdomen)
9. स्पर्श करने पर दृति (मशक) की तरह उदर पर कम्पन/क्षोभ होना (Fluid thrill)
10. नाभि का गोलाकार तथा ऊपर उठा होना (Everted umbilicus)
11. दृतिवत् शब्द या चल मन्द ध्वनि होना (Shifting Dullness)
12. उदर उत्सेध (Abdominal Distension)
13. हृदस्पन्दन (Palpitation)
14. चलने में असमर्थता (Unable to Walk)

(ब) **विशिष्ट लक्षण**

जलोदर उत्पन्न होने की निम्न तीन अवस्थायें शास्त्रों में वर्णित हैं[1]—

i. अजातोदकावस्था
ii. पिच्छावस्था
iii. जातोदकावस्था

I. **अजातोदकावस्था**—यह जलोदर रोग की प्रारम्भिक अवस्था है। इस अवस्था में उदर प्रदेश में जल संचित नहीं होता लेकिन संचय की तैयारी शुरू हो जाती है। उदकवह (रस-रक्तवह) स्रोतस् में अवरोध प्रारम्भ हो जाता है। शरीर अपने स्वभाव के अनुसार दूसरी शिराओं के माध्यम से उदक का वितरण करने का प्रयास करता है अतः इस अवस्था में निम्न लक्षणों की उत्पत्ति होती है—

i. जल का संचय न होना (No peritoneal fluid)
ii. उदर प्रदेश की शिरायें फूली हुयी व शिराजाल का दिखना (Engorgement of veins over abdomen)
iii. उदर में शोथ न होना (No Oedema)
iv. उदर प्रदेश में आध्मान (Flatulence)
v. गुड़गुड़ाहट सुनाई देना (Presence of Gurgling Sounds)
vi. हृदय, नाभि, कटि, गुदा में शूल (Pain in Cardiac region, Umbilical, inguinal, back region & anal canal)

---

1. i) "तत्र..... । .....च ॥"
(च.चि. 13/48)
ii) "अजातशोथम रुणं..... । .....विशेषवित् ॥"
(च.चि. 13/58)

vii. मूत्र अल्प मात्रा में निकलना (Oliguria)
viii. मल का गाँठ युक्त होकर निकलना (Passage of Hard Stool)

उपर्युक्त सभी लक्षण संगात्मक (Obstructive) विकृति को प्रदर्शित करते हैं।

II. पिच्छावस्था—इस अवस्था में उदकवह स्रोतस् में संग बढ़ता जाता है एवं उदर प्रदेश के त्वक् व मांस धातु के बीच श्वेत रस (Serous Fluid) का विमार्गगमन होने लगता है। इस प्रकार जल के अधिक बढ़ जाने से पहले, उदर में पिच्छा (झाग) की उत्पत्ति होती है उसके पश्चात् उदर में निम्न लक्षण मिलते हैं—

i. उदर का गोलाकार, भारी एवं स्तिमित होना
ii. ताड़न (Percussion) करने पर उदर ताड़नरहित (Dullness) होना
iii. उदर स्पर्श में मृदु होता है, कोमल रेखा और शिराओं से शून्य (रहित) होता है।
iv. ये लक्षण सर्वप्रथम नाभिप्रदेश में उत्पन्न होकर शनैः शनैः ऊपर की ओर बढ़ते हैं।

III. जातोदकावस्था—इस अवस्था में उदर में जल की पूर्ण रूपेण उत्पत्ति हो जाती है अर्थात् उदरावरण कला में जल स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। इस स्थिति को ही जलोदर कहा जाता है जिसमें जलोदर के सम्पूर्ण लक्षण प्रकट हो जाते हैं जो निम्न प्रकार हैं—

i. उदर उत्सेध (Generalised abdominal distension)
ii. सिरान्तर्धानगमनम् (Collateral circulation & engorged abdominal veins)
iii. उदक पूर्ण दृति संक्षोभसंस्पर्शत्वं च (Fluid thrill/Shifting dullness may be present)
iv. पूर्ववर्णित समस्त सामान्य लक्षण भी मिलते हैं।

सापेक्ष निदान

जलोदर रोग का निदान करने में सामान्यतया कठिनाई नहीं होती है लेकिन इसके कारणों का पता लगाना कुछ कठिन होता है। जलोदर में उदररोगों का प्रत्यात्म लक्षण उदर उत्सेध (Abdominal Distension) मिलता है। सामान्यतः उदर उत्सेध के निम्न पांच कारण होते हैं जिन्हें Five 'F' of the Abdominal Distension कहा जाता है जो निम्न हैं—

(i) वसा (Fat or obesity)
(ii) वायु (Flatus)
(iii) विष्टा या मल (Faeces)
(iv) वारि या जल (Fluid)
(v) भ्रूण (Foetus)

अतः महत्परिवृत नाभि (Everted-umbilicus), दृतिवत् शब्द (Dullness), कम्प (Shifting Dullness) एवं क्षोभ (Fluid thrill) केवल जल संचय (जलोदर) होने पर ही मिलता है अतः रोग विनिश्चय करना आसान है। स्त्रियों में जलोदर रोग का बीज-कोषग्रन्थि (Ovarian Cyst) नामक रोग से सामंजस्य देखने को मिलता है, अतः निम्न बिन्दूओं के आधार पर दोनों में सापेक्ष निदान किया जा सकता है—

जलोदर (Ascites)	बीजकोष ग्रन्थि (Ovarian Cyst)
1. उदर प्रदेश के पार्श्वों (Flanks) में अधिक फैलाव व तनाव मिलता है।	उदर प्रदेश के मध्यभाग में अधिक उभार व तनाव पाया जाता है।
2. अंगुलिताड़न करने पर पार्श्वों में ध्वनि-मन्दता (Dullness) मिलती है।	उदर प्रदेश के मध्यभाग में ध्वनि-मन्दता (Dullness) मिलती है।
3. नाभि सतह के बराबर या उठी हुयी (Flattened or everted umbilicus) रहती है।	नाभि अधिक ऊपर उठी रहती है।
4. नाभि की दरार अनुप्रस्थ (Slit of Umbilicus-Transverse) रहती है।	नाभि की दरार लम्बवत् (Slit of Umbilicus Vertical) रहती है।

उपद्रव[1]

उदरावरण कला में जल का पूर्णरुपेण संचय हो जाने पर उदर की समग्र रूप से वृद्धि हो जाती है जिसमें रोगी में निम्न उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं—

1. छर्दि (वमन)
2. अतिसार
3. तमक श्वास
4. तृष्णा
5. श्रमजन्य श्वास
6. कास
7. हिक्का
8. दौर्बल्य
9. पार्श्वशूल
10. भोजन अरुचि
11. स्वरभेद
12. मूत्राघात

इस प्रकार उपद्रव से युक्त जलोदर रोगी को अचिकित्स्य (असाध्य) समझना चाहिये।

साध्यासाध्यता

(I) साध्य लक्षण—प्रायः उत्पन्न होते ही सभी उदर रोग कष्टसाध्य। असाध्य

1. "शूनाक्षं ..... । ..... नवोत्थितम्॥" (च.चि. 13/52-54)

होते हैं। लेकिन व्यक्ति बलवान हो, रोग नवीन उत्पन्न हुआ हो, जल का संचय न हुआ हो (अजातोदकावस्था) तो यत्नपूर्वक चिकित्सा करने पर जलोदर रोग साध्य भी हो सकता है[1]।

(II) असाध्य लक्षण—जलोदर रोग के निम्न लक्षण असाध्यता को प्रदर्शित करते हैं—

(i) नेत्र प्रदेश में शोथ उत्पत्ति (Ascites due to Renal Disease)
(ii) मूत्रेन्द्रिय टेड़ी हो जाना
(iii) उदर की त्वचा आर्द्र व पतली होना
(iv) बल, रक्त, मांस, जठराग्नि क्षीण होना
(v) मर्म स्थान में शोथ उत्पत्ति
(vi) हिक्का-श्वास-अरुचि-तृष्णा मूर्च्छा-वमन व अतिसार उत्पत्ति

चिकित्सा सिद्धान्त

(I) सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त

(i) सर्वप्रथम निदान परिवर्जन करें।

(ii) सभी उदर रोग त्रिदोषों के मिश्रण से ही उत्पन्न होते हैं। अत: इनमें सर्वप्रथम त्रिदोषशामक क्रिया करें। मन्दाग्नि की चिकित्सा के लिये दीपन, लघु व सुपाच्य आहार दें[2]।

(iii) दोषों के अधिक मात्रा में संचय हो जाने से तथा स्रोतों के मार्ग में अवरोध उत्पन्न होने से उदर रोगों की उत्पत्ति होती है, अत: जलोदर रोगी व अन्य उदर रोगी में नित्य विरेचन औषध देकर शोधन कराना चाहिये। विरेचन देने से संचित दोष व उदक बाहर निकल जाता है, स्रोतों का मुख खुल जाता है[3]।

(iv) जलोदर रोगी जब विरेचन द्वारा पूर्ण शोधित हो जाता है तब पेया, विलेपी आदि सेवन द्वारा संसर्जन क्रम का पालन कराकर बल वृद्धि के लिये दूध का सेवन कराना चाहिये। गोदुग्ध, बकरी का दुग्ध या ऊंटनी का दूध सर्वोत्तम है।

---

1. "शूनाक्षं कुटिलोपस्थ..... ...। ..... नवोत्थितम्॥" (च.चि. 13/52-54)
2. i) "सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसङ्घातजं मतम्॥ तस्मात्त्रिदोषशमनीं क्रियां सर्वत्र कारयेत्।" (च.चि. 13/95,96)
   ii) "दोषैः कुक्षौ हि संपूर्णे वह्निर्मन्दत्वमृच्छति॥ तस्माद्भोज्यानि भोज्यानि दीपनानि लघूनि च।" (च.चि. 13/96,97)
3. "दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गनिरोधनात्। संभवत्युदरं तस्मान्नित्यमेव विरेचयेत्॥" (च.चि. 13/61)

दुग्ध सेवन से जब उत्क्लेश होने लगे तो दुग्ध सेवन क्रमशः बन्द कर देना चाहिये[1]।

(v) यदि उदावर्त्त (मल-मूत्र-अपानवायु अवरोध) हो तो जठराग्नि को दाड़िम रस, लवण मिश्रित मूंग यूष या मांस रस के सेवन से प्रदीप्त कराकर स्नेहन-स्वेदन पश्चात् निशोथ, अमलतास, दशमूल क्वाथ से युक्त तीक्ष्ण निरुह (आस्थापन) बस्ति देना चाहिये[2]।

(vi) स्फुरण, आक्षेप, सन्धि-अस्थि-पार्श्व-पृष्ठ-त्रिक शूल होने पर प्रदीप्त अग्नि वाले रोगी में वातघ्न-अम्ल कांजी से सिद्ध एरण्ड तैल व तिल तैल से अनुवासन बस्ति दें[3]।

(vii) जलोदर रोगी में विरेचन द्वारा मल-मूत्र आदि के निकल जाने के पश्चात उदर पर लवणयुक्त स्वेदनादि योगों द्वारा स्वेदन कर उसे कपड़े से लपेट दें अन्यथा वायु के प्रवेश से उदर फूल सकता है[4]।

(viii) उदर रोगियों में सभी औषध प्रयोगों के बाद दूध का प्रयोग अवश्य करें। इससे बल की वृद्धि होती है, दोषों के अनुबन्ध से रक्षा होती है। औषध प्रयोग से शरीर क्षीण हो जाने के पश्चात् दुग्ध अमृत के समान गुणकारी होता है[5]।

(ix) जलोदर रोगी को 6 मास तक केवल दुग्धाहार पर ही रखा जाता है। दुग्धों में उष्ट्री दुग्ध सर्वोत्तम कहा गया है। तत्पश्चात् 3 मास तक दुग्ध व पेया मिला कर पिलावें। फिर 3 मांस तक श्यामाक व कोरदूष मिश्रित दुग्ध अथवा सैंधव लवण मिश्रित पेया पिलानी चाहिये। इस प्रकार एक वर्ष तक पथ्य सेवन से

---

1. "शुद्धं संसृज्य च क्षीरं बलार्थं पाययेत्तु तम्। प्रागुत्क्लेशान्निवर्त्य च बले लब्धे क्रमात् पयः॥" (च.चि. 13/62)

2. "यूषै रसैर्वा मन्दाग्निलवणैरधिताननम्। सोदावर्तं पुनः स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेन्नरम्॥" (च.चि. 13/63)

3. "स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिषु। दीप्ताग्निं बद्धविड्वातं रूक्षमभ्यनुवासयेत्॥" (च.चि. 13/64)

4. "विरिक्तस्यानमुदरं स्वेदितं सास्त्वणादिभिः। वाससा वेष्टयेदेवं वायुर्नाध्मापयेत्पुनः॥" (अ.हृ.चि. 15/50)

5. "प्रयोगाणां च सर्वेषामनु क्षीरं प्रयोजयेत्॥ दोषानुबन्धरक्षार्थं बलस्थैर्यार्थमेव च।
प्रयोगाक्षीणदेहानां हितं ह्युदरिणां पयः। सर्वधातुक्षयार्तानां देवानाममृतं यथा॥" (च.चि. 13/193-194)

रोगी जलोदर रोग से मुक्त हो सकता है। उष्ट्र दुग्ध के अभाव में भैंस, गाय बकरी का दूध भी दे सकते हैं[1]।

(II) विशिष्ट चिकित्सा सिद्धान्त

(i) निरान्न, निर्जल, निर्लवण चिकित्सा करें।

(ii) जलोदर रोग में सर्वप्रथम जल के दोषों को नष्ट करने वाली चिकित्सा करें। इसके लिये निम्न उपचार करें[2]—

1. गोमूत्र से युक्त तीक्ष्ण क्षार एवं औषध प्रयोग करें।
2. दीपनीय व कफनाशक आहार सेवन करें।
3. जल का प्रयोग कम करायें।

(iii) उदरगत जल निकालने के लिये प्रथमतः शस्त्रकर्म का प्रयोग करें। इसके लिये नाभि के अधः उदर प्रदेश के वाम भाग में चार अंगुल छोड़ कर भेदन कर विस्रावण विधि द्वारा जल निकालें। यह विस्रावण नाड़ी यन्त्र (Cannula) द्वारा करें। जल निकालते समय उदर प्रदेश पर हाथ से मर्दन करते हुये पूर्ण जल निकालकर उदर को चौड़े वस्त्र से कसकर बाँधना चाहिये। यदि शस्त्रकर्म द्वारा जल का निहर्रण न किया जाय तब बस्ति या विरेचन द्वारा दोषों के निकल जाने के पश्चात् उदर म्लान (जल रहित) हो जाता है तब भी उदर प्रदेश पर चौड़े वस्त्र से बन्धन कर देना चाहिये। इस प्रकार जल व दोषों के निकल जाने के पश्चात् लंघन के उपरान्त जब भूख लगे तो स्नेह और नमक रहित पेया पिलानी चाहियें। इसके बाद 6 मास तक केवल दुग्धाहर पर रखना चाहिये और तीन मास दुध व पेया पिलानी चाहिये। इसके बाद 3 मास तक कोदो, सांवा के भात को दूध के साथ प्रयोग करें। नमक व तैल का प्रयोग

---

1. i) "स्यात्क्षीरवृत्तिः षण्मासांस्त्रीन् पेयां पयसा पिबेत्।
त्रींश्चान्यान् पयसैवाद्यात् फलाम्लेन रसेन व॥
अल्पशोऽस्नेहलवणं जीर्णं श्यामाककोद्रवम्। प्रयतो वत्सरेणैवं विजयेत जलोदरम्॥"
(अ.हृ.चि. 15/118-119)

ii) "अतः परं तु षण्मासान् क्षीरवृत्तिर्भवेन्नरः। त्रीन् मासान् पयसा पेयां पिबेत् त्रींश्चापि भोजयेत्॥
श्यामाकं कोरदूषं वा क्षीरेणलवणं लघु। नरः संवत्सरेणैवं जयेत् प्राप्तं जलोदरम्॥"
(च.चि. 13/191-193)

2. "अपां दोषहराण्यादौ प्रदद्यादुदकोदरे॥ मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविधक्षारवन्ति च।
दीपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारैरूपाचरेत्॥ द्रवेभ्यश्चोदकादिभ्यो नियच्छेदनुपूर्वशः।"
(च.चि. 13/93-94)

नहीं करें। इस प्रकार एक वर्ष तक चिकित्सा करने पर जलोदर रोग से मुक्ति सम्भव हो सकती है[1]।

विशेष सावधानी—जलोदर रोग में जल निकालने की प्रक्रिया (Tapping) एक ही दिन में पूर्ण न करें, अन्यथा रोगी को तृष्णा, अंगमर्द, अतिसार, श्वास, कास इत्यादि उपद्रव हो सकते हैं। अतः तीन, चार, पाँच, छह, आठ, दश, बारह, सोलह दिनों का अन्तर देकर जल का निहर्रण करें[2]।

(iv) जल निष्कासन के लिये मूत्रविरेचक व मल विरेचक औषधियों का प्रयोग कराया जाता है जैसे-पुनर्नवा, गोक्षुर, जयपाल, गोमूत्र आदि।

चिकित्सा क्रम

(1) शोधन चिकित्सा

यदि रोगी बलवान हो और उसमें उपद्रव उपस्थित न हुये हों, उस स्थिति में जलोदर रोगी में निम्न संशोधन चिकित्सा देना श्रेयस्कर रहता है—

(अ) **विरेचन कर्म**—दोषों के अधिक मात्रा में संचित हो जाने से तथा स्रोतों के मार्ग में अवरोध उत्पन्न होने से ही जलोदर रोग की उत्पत्ति होती है। अतः रोगी को नित्य विरेचक औषध देकर शोधन कराना चाहिये। रोगी को मूत्रल औषधियों से मूत्रविरेचन एवं विरेचक औषधियों से मल विरेचन करवाने से उदरगुहा में संचित जलीय भाग का निष्कासन किया जा सकता है[3]।

(ब) **निरुह बस्ति**—जलोदर के रोगी में यदि विरेचन देने पर भी दोष नष्ट न हो तो ऐसे रोगियों में तीक्ष्ण वीर्य वाले द्रव्यों के क्वाथ में क्षार और गोमूत्र मिलाकर निरुह बस्ति देना चाहिये[4]।

(2) शमन चिकित्सा

शमन चिकित्सा हेतु जलोदर के रोगी में निम्न औषध योगों का युक्तिपूर्वक प्रयोग किया जा सकता है—

---

1. "तथा जातोदकं..... ।..... .....जलोदरम्॥" (च.चि. 13/189-192)
2. "न चैकस्मिन्नेव दि .से..... ।.....सिञ्चेत॥" (सु.चि. 14/18)
3. "दोषातिमात्रोपच.यात् स्रोतोमार्गनिरोधनात्। संभवत्युदरं तस्मान्नित्यमेव विरेचयेत्॥" (च.चि. 13/61)
4. "सुविरिक्तो नरो यस्तु पुनराध्मापितो भवेत्। सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरुहैस्तमुपाचरेत्॥
सोपक्लम्भोऽपि वा वायुराहमापयति यं नरम्। तीक्ष्णः सक्षारगोमूत्रैर्बस्तिभिस्तमुपाचरेत्।" (च.चि. 13/173-174)

1. **रस/भस्म /लौह**

मात्रा	: 125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान	: मधु
(i) जलोदरारि रस	: जयपाल, ताम्र, स्नूहीक्षीर
(ii) इच्छाभेदी रस	: कज्जली, जयपाल, शुण्ठी
(iii) वारिशोषण रस	: कज्जली, वंग, अभ्रक
(iv) नाराच रस	: कज्जली, त्रिकटु, टंकण
(v) हृदयार्णव रस	: कज्जली, ताम्र, त्रिफला, मकोय
(vi) यकृतप्लीहारि लौह	: कज्जली, लौह, अभ्रक
(vii) लोकनाथ रस	: कज्जली, अभ्रक, लौह, ताम्र
(viii) पुनर्नवा मण्डूर	: दन्ती, पुनर्नवा, निशोथ, मण्डूर
(ix) ताल सिन्दूर	: कज्जली, हरताल, कुमारी
(x) ताम्र भस्म	: शुद्ध ताम्र

2. **वटी**

मात्रा	: 250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान	: अर्क सौंफ, अर्क मकोय
(i) कुटकी वटी	: कुटकी
(ii) अभया वटी	: स्नूहीक्षीर, टंकण, हरीतकी
(iii) आरोग्यवर्धिनी वटी	: ताम्र, कुटकी, अभ्रक
(iv) क्षार वटिका	: दन्ती, निशोथ, त्रिफला

3. **चूर्ण**

मात्रा	: 2 - 6 ग्राम
अनुपान	: अर्क सौंफ, अर्क मकोय
(i) नारायण चूर्ण	: त्रिफला, स्वर्णक्षीरी, इन्द्रायण
(ii) हवुषाद्य चूर्ण	: त्रिफला, स्वर्णक्षीरी, कुटकी
(iii) पटोलमूलाद्य चूर्ण	: निशोथ, कम्पील्लक, पटोल
(iv) पुनर्नवादि चूर्ण	: पुनर्नवा, देवदारु, हरीतकी

4. **क्वाथ**

मात्रा	: 20 - 40 मि.ली.
अनुपान	: अर्क सौंफ, अर्क मकोय
(i) पुनर्नवादि क्वाथ	: पुनर्नवा, देवदारु, कुटकी
(ii) दशमूलादि क्वाथ	: दशमूल, शुण्ठी, पुनर्नवा

(iii) पुनर्नवाष्टक क्वाथ : पुनर्नवा, निम्ब, पटोल

5. **आसव/अरिष्ट**

मात्रा : 20 - 40 मि.ली.

अनुपान : अर्क सौंफ, अर्क मकोय

(i) कुमार्यासव : कुमारी, हरीतकी, लौह, ताम्र

(ii) अर्जुनारिष्ट : अर्जुन, द्राक्षा, मधुक

(iii) अभयारिष्ट : हरीतकी, विडंग, द्राक्षा

(iv) रोहितकारिष्ट : रोहितक, पंचकोल

(v) पुनर्नवासव : त्रिकटु, त्रिफला, गोक्षुर, पुनर्नवा

6. **घृत**

मात्रा : 10 - 20 मि.ली.

अनुपान : कोष्ण दुग्ध

(i) नाराच घृत : त्रिफला, निशोथ, स्नूहीक्षीर, दन्ती मूल

(ii) बिन्दू घृत : अर्क क्षीर, स्नूहीक्षीर, हरीतकी

(iii) रोहितक घृत : रोहितक, पंचकोल

7. **अर्क**

मात्रा : 10 - 20 मि.ली. (आवश्यकतानुसार)

(i) अर्क मकोय (ii) अर्क पुनर्नवा

(iii) अर्क सौंफ (iv) अर्क अजवाइन

(v) अर्क पुदीना

8. **लेप**

स्थानिक प्रयोग

(i) देवदार्वादि लेप : पलाश, शिग्रू, अर्क, देवदारु

उदर प्रदेश पर गोमूत्र के साथ धीरे-धीरे लेपार्थ प्रयोग करें।

9. **रसायन चिकित्सा**

मात्रा : यथावश्यक

(i) पिप्पली वर्धमान रसायन : 10-6-3 पिप्पली

(ii) हरीतकी रसायन : प्रातः 1 हरड़

(iii) शिलाजतु रसायन : 40-20-10 ग्राम

(iv) गुग्गुलु रसायन : 3-6 ग्राम

विधान—शरीर शुद्धि (संशोधन) पश्चात एकान्त में पथ्य पालन से रहते हुये चिकित्सक के निर्देशन में उक्त रसायनों का सेवन कराना चाहिये।

10. **कल्प चिकित्सा**

मात्रा	: यथावश्यक
(i) पिप्पली वर्धमान कल्प	: 10-6-3 पिप्पली
(ii) उष्ट्र दुग्ध कल्प	: यथावश्यक
(iii) सहस्र हरीतकी कल्प	: 1000 पिप्पली

विधान—निर्जल, निर्लवण व निरन्न रहते हुये जलोदर रोगी में आरोही (Ascending order) व अवरोही (Descending order) क्रम में उपर्युक्त कल्पों का सेवन कराने से आशातीत लाभ प्राप्त होता है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जनम्
2. निर्जल, निर्लवण, निरन्न चिकित्सा
3. प्रातः सायं

जलोदरारि रस	: 250 मि.ग्रा.
पुनर्नवा मण्डूर	: 250 मि.ग्रा.
यवक्षार	: 500 मि.ग्रा.
मधु से	: 1×2 मात्रा

4. भोजनोत्तर

नारायण चूर्ण	: 2 ग्राम
त्रिकटु चूर्ण	: 2 ग्राम
अर्क सौंफ/अर्क मकोय से	: 1×2 मात्रा

5. आरोग्य वर्धिनी वटी

अर्क सौंफ/अर्क मकोय से	: 2 वटी × 3 मात्रा

6. भोजनोत्तर

पुनर्नवासव	: 20 मि.ली.
कुमार्यासव	: 20 मि.ली.
समभाग अर्क सौंफ/ अर्क मकोय से	: 1×2 मात्रा

7. रात्रि में सोते समय

कुटकी वटी	: 2 गोली
अर्क सौंफ/अर्क मकोय से	: एक बार

8. प्यास लगने पर पानार्थ

अर्क मकोय	: 10 मि.ली.
अर्क पुनर्नवा	: 10 मि.ली.
	: 1×4 मात्रा

अथवा

उष्ट्र/गाय/बकरी दुग्ध–आवश्यकतानुसार

अथवा

हरा नारियल जल

पथ्यापथ्य

जलोदर के रोगी में युक्ति पूर्वक निम्न पथ्यापथ्य का निर्देश किया जाना हितकारी रहता है[1]

पथ्य

आहार	विहार
लालशाली चावल, यव (जौ), मूंग, सावाँ, कोदो, जांगल मांसरस, उष्ट्र-क्षीर, गोमूत्र, तक्र, मधु, मुनक्का, सीधू-सुरा, दाड़िम, त्रिकटु, अजवाइन, जीरा, सौंफ, लहसुन–आर्द्रक, पटोल, करेला, पुनर्नवा, शिग्रू, हरीतकी, कुल्थी, एला आदि।	उपवास (लंघन), नित्य कोष्ठ शुद्धि , उदरवस्त्रपट्टबंधन आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
आनूप मांस, पत्रशाक, पिष्टान्न–विदाही-गुरु अन्न, अभिष्यन्दी द्रव्य, तिल, स्नेहपान, उष्ण–लवण–अम्ल द्रव्य, दूषित जल, मात्राधिक्य अन्न आदि।	व्यायाम, दिवास्वप्न, यान या वाहन की सवारी, धूम्रपान, अध्वगमन आदि।

1. "रक्तशालीन्..... । .....वर्जयेत्॥" (च.चि. 13/97–100)

Latest Developments

ASCITES

आयुर्वेदीय जलोदर रोग का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Ascites नामक रोग से सामञ्जस्य स्थापित किया जाता है।

The accumulation of serous fluid in the peritoneal cavity is called Ascites.

Etiology

Ascites may be caused by interference in venous return as occurs in cardiac disease; obstruction of flow in the vena cava or portal vein; obstruction in Lymphatic drainage; disturbances in electrolyte balance as occurs in sodium retention, depletion of plasma proteins; or cirrhosis of liver.

Signs/Symptoms

(i) Generalized distension of abdomen with more fullness in flanks.
(ii) Shifting dullness (fluid more than 500 ml)
(iii) Fluid thrill
(iv) Transversely streched Umbilicus
(v) Tense and shiny skin
(vi) Widened subcostal angle etc.

Management : Principles

(i) Treatment of cause
(ii) Diet-Low sodium diet
(iii) Diuretics
(iv) Abdominal Paracentesis
(v) Porto-venous shunting etc.

तृतीय खण्ड

अन्नवह स्रोतस के रोग

स्रोतस् परिचय

अन्नवह स्रोतस् मुख से लेकर उण्डुक (Caecum) तक फैला हुआ है। कफ तथा पित्त की दोष रूप में उत्पत्ति इसी स्रोतस् में होती हैं। जठराग्निमांद्य के कारण आम रस की उत्पत्ति होकर अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। अन्नवह स्रोतस् में भोजन का पाचन एवं शोषण होता है जिससे शरीर की समस्त धातुयें एवं अवयव पोषण ग्रहण करने के पश्चात् वृद्धि को प्राप्त होते हैं। पाचन से अवशिष्ट आहार का मल के रूप में विसर्जन हो जाता है।

समस्त रोगों का मूल मन्दाग्नि माना गया है[1]। अग्निमांद्य होने से उत्पन्न हुआ आम रस ही समस्त दोषों एवं धातुओं को दूषित करके विभिन्न रोगों की उत्पत्ति में कारण होता है। अन्नवह स्रोतस् की दुष्टि होने पर भी अनेक व्याधियां जन्म लेती हैं।

अन्नवह स्रोतस् के मूल[2]

अन्नवह स्रोतस् दो होते हैं जिनका मूल आमाशय (Stomach) एवं अन्नवाहिनी धमनियां हैं। आचार्य चरक ने इसका मूल आमाशय एवं वामपार्श्व को माना है[3]।

अन्नवह स्रोतो दुष्टि के कारण[4]

अन्नवह स्रोतस के दुष्ट होने के निम्न कारण होते हैं—

1. अतिमात्रा में भोजन करना।
2. असमय भोजन करना।
3. अहित भोजन करना।
4. जठराग्नि का विकृत होना।

---

1. "रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदाराणि तु॥" (अ.हृ.नि. 12/1)
2. "अन्नवहे द्वे, तयोर्मूलमामाशयोऽन्नवाहिन्यश्च धमन्यः॥" (सु.शा. 9/12 (आ)
3. "अन्नवहानां स्रोतसामामाशयो मूलं वामं च पार्श्वं॥" (च.वि. 5/8)
4. "अतिमात्रस्य चाकाले चाहितस्य च भोजनात्।
अन्नवाहीनि दुष्यन्ति वैगुण्यात् पावकस्य च॥" (च.वि. 5/12)

अन्नवह स्त्रोतो दुष्टि के लक्षण[1]

निम्न लक्षणों को देखकर अन्नवह स्त्रोतोदुष्टि का ज्ञान होता है—

1. भोजन की इच्छा न होना।
2. अरुचि।
3. अन्न का पाक न होना।
4. वमन होना।

आचार्य सुश्रुत ने अन्नवह स्त्रोतस् के विद्ध होने पर निम्न लक्षणों का वर्णन किया है[2]

1. आध्मान
2. शूल
3. अन्नद्वेष
4. छर्दि
5. पिपासा
6. अन्धता
7. मृत्यु

अन्नवह स्त्रोतो दुष्टि की चिकित्सा[3]

आचार्य चरक ने अन्नवह स्त्रोतस् के दुष्ट होने पर आमदोष की चिकित्सा अर्थात् लंघन, दीपन, पाचन एवं शोधन चिकित्सा का उल्लेख किया है।

अन्नवह स्त्रोतस् की व्याधियां

अन्नवह स्त्रोतस् के दुष्ट होने पर निम्न व्याधियां उत्पन्न होती हैं। इनका सविस्तार वर्णन आगे किया जा रहा है—

1. अरुचि
2. अग्निमांद्य
3. अजीर्ण
4. आनाह, अध्मान व आटोप
5. ग्रहणी दोष
6. भस्मक रोग
7. छर्दि
8. गुल्म
9. अम्लपित्त
10. अन्नद्रवशूल एवं परिणाम शूल
11. उदररोग

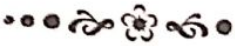

---

1. "प्रदुष्टानां तु खल्वेषामिदं विशेषविज्ञानं भवति, तद्यथा–अनन्नाभिलषणमरोचकाविपाकौ छर्दिं च दृष्ट्वा अन्नवहान्यस्य स्त्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात्॥" (च.वि. 5/8)
2. "तत्र विद्धस्याध्मानं शूलोऽन्नद्वेषश्छर्दिः पिपासाऽऽन्ध्यं मरणं च॥" (सु.शा. 9/12)
3. "प्राणोदकान्नवाहानां दुष्टानां श्वासिकी क्रिया।
कार्या तृष्णोपशमनी तथैवामप्रदोषिकी॥" (च.वि. 5/26)

अध्याय–17

अरुचि

(ANOREXIA)

व्याधि परिचय

आयुर्वेदीय संहिताओं में अरोचक रोग का बहुत विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। अरुचि भी मुख्यत: व्याधि नहीं है वरन् अनेक व्याधियों का एक लक्षण एवं उपद्रव मात्र है। चरक एवं सुश्रुत संहिता में इसके निदान, सम्प्राप्ति एवं लक्षणों का स्वतन्त्र वर्णन किया गया है। आचार्य भोज ने अरुचि के विभिन्न भेदो को भी स्पष्टत: परिभाषित किया है।

भोजन की इच्छा न होना ही अरुचि है। मुख्यत: अरुचि रस प्रदोषज विकार है। अरुचि में मुख्यत: कफ एवं रस धातु की दुष्टि होती है। आधुनिक मतानुसार इसे Anorexia कह सकते हैं।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

1. जिस विकार में अन्न में रुचि न हो उसे अरुचि या भक्तोपघात कहते हैं[1]।
2. मुख में भोजन होने पर भी उसका आस्वादन न हो उसे अरुचि कहते है[2]।

पर्याय

अरुचि, अरोचक, भक्तद्वेष, भक्तोपघात, अभक्तच्छन्द, अनन्नाभिलाषा आदि इसके पर्याय हैं।

1. **अरोचक**[3]—भूख का न लगना या कम लगना।
2. **अरुचि**[4]—भोजन में रुचि नहीं होना।
3. **भक्तद्वेष**[5]—भोजन उपस्थित होने पर भी उसकी तरफ देखने व खाने की इच्छा न होना।

---

1. "नान्ने रुचिर्भवति तं भिषजो विकारं भक्तोपघातमिह।" (सु.उ. 57/3)
2. "प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं जन्तोर्न स्वदते मुहु: अरोचक: स विज्ञेयो।" (वृद्ध भोज)
3. "प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं जन्तोर्न स्वदते मुहु: अरोचक: स विज्ञेयो।" (वृद्ध भोज)
4. "सत्यामापि बुभुक्षायाम् अभ्यवहारासामर्थ्य अरुचि:।" (वृद्ध भोज)
5. "अन्नस्यश्रवणस्मरणदर्शनगन्ध स्पर्शनैर्यजोद्विजतेस भक्तद्वेष:।" (वृद्ध भोज)

4. **अननाभिलाषा**[1]— भोजन के लिये किसी भी प्रकार की इच्छा न होना।
5. **अभक्तच्छन्द**[2]—भोजन में श्रृद्धा न होना।

वस्तुतः इन सब पर्यायों का एक ही अर्थ निकलता है भोजन में किसी भी तरह की रुचि न होना एवं भोजन करने पर भी स्वाद की अनुभूति नहीं होना। जब यह लक्षण के रूप में उपस्थित हों तब उसे अरुचि कहते हैं तथा स्वतंत्र रोग के रूप में प्रकट हों तब उसे 'अरोचक' कहते हैं।

आचार्य चरक[3] ने अरोचक के लिये 'भक्त का अनशन' तथा आचार्य सुश्रुत[4] ने 'भक्तोपघात' संज्ञा का प्रयोग किया है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 26
2. सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र-अध्याय 57
3. अष्टांग हृदय, निदान स्थान-अध्याय 5
4. अष्टांग हृदय, चिकित्सा स्थान-अध्याय 5
5. माधव निदान-अध्याय 14
6. भाव प्रकाश-अध्याय 16

निदान[5]

अरुचि के निदानों को निम्न 2 भागों में बांट सकते हैं—

1. शारीरिक या दोषज निदान
2. मानसिक निदान

(1) **शारीरिक निदान**—वात, पित्त एवं कफ का प्रकोप। त्रिदोष प्रकोप का कारण वात पित्त कफ प्रकोपक आहार एवं विहार का सेवन करना है।

(2) **मानसिक निदान**—शोक, भय, क्रोध, अतिलोभ, मनोनुकूल भोजन न मिलना, विशिष्ट गंध एवं रुप की प्राप्ति से अरोचक रोग की उत्पत्ति होती है।

---

1. "अभिलषितमप्यन्नं दीयमानं नाभ्यवहरति इत्यनन्नभिनन्दनम्॥" (वृद्ध भोज)
2. "कुपितस्य भयार्तस्य अभिचारहतस्य च।
   यस्य नान्ने भवेच्छ्रद्धा सोऽभक्तच्छन्द उच्यते॥" (वृद्ध भोज)
3. "पञ्च भक्तस्यान स्थानानीति।" (च.सू. 19/3)
4. "भक्तोपघातमिह पञ्चविधं वदन्ति।" (सु.उ. 57/3)
5. i) "वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनगन्धरूपैः।
   अरोचकाःस्युः परिहृष्टदन्तः कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन॥" (च.चि. 26/124)
   ii) "वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरुपगन्धैः, अरोचकाः स्युः।" (मा.नि. 14)

आचार्य चरक ने अरुचि की उत्पत्ति में मानसिक भावों को विशेष महत्त्वपूर्ण माना है।

सम्प्राप्ति[1]

आचार्य सुश्रुत के अनुसार निदानों के सेवन से कुपित हुए वातादि दोष तथा शोक, भय, क्रोधादि मानसिक हेतुओं से अन्नवह स्रोतस् तथा हृदय में दोष वृद्धि होकर अरुचि की उत्पत्ति होती है।

अर्थात् वातादि दोषों के दुष्ट होने पर ये अग्निमांद्य उत्पन्न कर अन्नवह स्रोतस को दूषित करके अरुचि को उत्पन्न करते हैं। शोक, भयादि मानसिक भावों से भी चेतना स्थान (हृदय) में दोष वृद्धि होकर अरुचि उत्पन्न होती है।

सम्प्राप्ति चक्र

अरुचि के सम्प्राप्ति चक्र को निम्नानुसार प्रदर्शित कर सकते हैं—

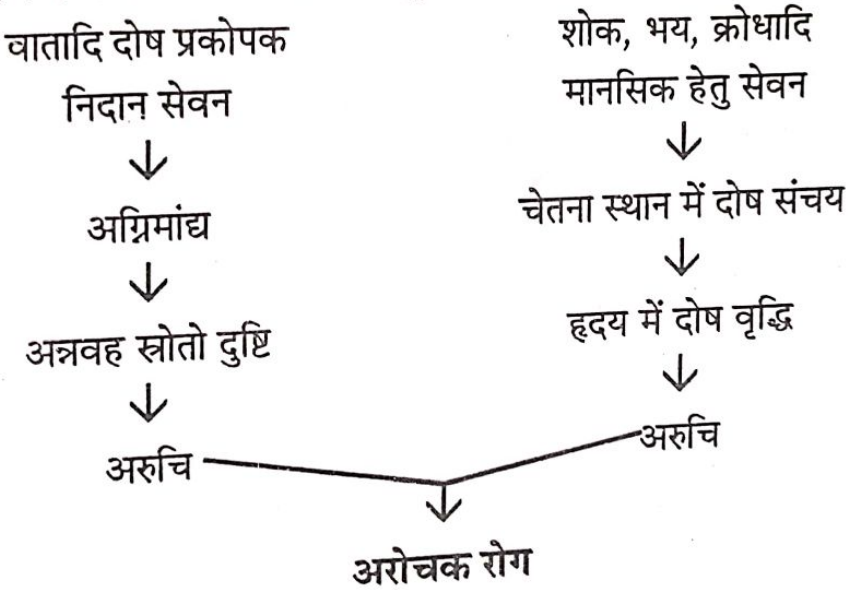

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	त्रिदोष मुख्यतः कफ तथा मानसिक दोष
दूष्य	:	रस धातु एवं अन्न
स्रोतस्	:	अन्नवह स्रोतस्, मनोवह स्रोतस्
अधिष्ठान	:	आमाशय, हृदय, जिह्वा
स्रोतोदुष्टि	:	संग
अग्नि	:	अग्निमांद्य
स्वभाव	:	मृदु
साध्यासाध्यता	:	साध्य

1. "दोषैः पृथक् सह च चित्तविपर्ययाच्च, भक्तायनेषु हृदि चावतते प्रगाढम्॥
नान्ने रुचिर्भवति तं भिषजो विकारं, भक्तोपघातमिह पञ्चविधं वदन्ति॥" (सु.उ. 57/3)

भेद[1]

1. आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने अरुचि के निम्न पांच भेद वर्णित किए हैं—

(i) वातज
(ii) पित्तज
(iii) कफज → शारीरिक
(iv) सन्निपातज
(v) आगन्तुज या मनोविघातज → मानसिक

2. आचार्य विजयरक्षित ने अरुचि के निम्न तीन भेद वर्णित किए हैं—

(i) अरुचि— भूख लगने पर खाने में असमर्थता।
(ii) अन्नानभिनन्दन— इच्छित आहार मिलने पर भी न खा पाना।
(iii) भक्त द्वेष— भोजन के स्मरण, गंध, दर्शन एवं स्पर्श मात्र से होनेवाली उद्विग्नता।

3. आचार्य भोज ने अरुचि के निम्न तीन भेद बताए हैं—

(i) अरोचक— मुख में डालने पर भी स्वाद न मिलना।
(ii) भक्तद्वेष— स्मरण आदि मात्र से भोजन से द्वेष।
(iii) अभक्तच्छन्द— क्रोध, भय आदि मानसिक कारणों से भोजन की इच्छा न होना।

भेदानुसार लक्षण

अरुचि के विभिन्न भेदों के लक्षण निम्नानुसार वर्णित हैं—

1. वातज अरुचि के लक्षण[2]

(i) दन्तहर्ष (Hypersensitive teeth)
(ii) मुख का कसैलापन (Bitter taste of mouth)
(iii) हृच्छूल (Chest pain)
(iv) आस्य वैरस्य (Diminished taste)

2. पित्तज अरुचि के लक्षण[3]

(i) मुख का स्वाद कटु, अम्ल, ऊष्ण (Bitter & Acidic taste in mouth)
(ii) मुख में विरसता (Tasteless mouth)
(iii) मुख से खट्टी गंध (Foul smell from mouth)
(iv) हृद्दाह (Burning in heart region)

---

1. "भक्तोपघातमिह पञ्चविधं वदन्ति।" (सु.उ. 57/3)
2. "परिदृष्टदन्तः कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन।" (च.चि. 26/124)
3. "कट्वम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्त्रम्। (च.चि. 26/125)

(v) मूर्च्छा (Fainting)

(vi) तृष्णा (Polydypsia)

3. **कफज अरुचि के लक्षण**[1]

(i) मुख का स्वाद मधुर एवं लवण (Sweet & salty taste of mouth)

(ii) कफ संस्राव (Salivation)

(iii) गौरव (Heaviness)

(iv) शैत्य (Feeling of cold)

(v) विबन्ध (Constipation)

4. **सन्निपातज अरुचि के लक्षण**[2]

(i) मुख का स्वाद अनेक रस युक्त होना (Disturbed sense of taste)

(ii) पीड़ा की अनुभूति (Feeling of pain)

5. **आगन्तुक अरुचि के लक्षण**[3]

शोक, भय, क्रोधादि मानसिक भावों, निद्रानाश एवं अहृद्य एवं अप्रिय पदार्थों के सेवन एवं अप्रिय गंध से जो अरुचि उत्पन्न होती है उसे आगन्तुक अरुचि कहते हैं। इसे चिन्ताविपर्यय जनित रोग कहा जाता है। इसके लक्षण निम्न प्रकार होते हैं—

(i) मुख का स्वाद सामान्य (Normal taste of mouth)

(ii) व्याकुलता (Restlessness)

(iii) मूर्च्छा (Fainting)

(iv) अरोचकता (Anorexia)

साध्यासाध्यता

समस्त प्रकार की अरुचि सामान्यतः सुख साध्य होती है।

चिकित्सा सिद्धांत[4]

1. सर्वप्रथम निदानों का त्याग करना चाहिए। किसी व्याधि के लक्षण या उपद्रव रुप में उत्पन्न अरुचि में मुख्य व्याधि की प्रथम चिकित्सा करनी चाहिए।
2. शोकादि मानसिक भावों से उत्पन्न अरुचि में सत्वावजय चिकित्सा करनी चाहिए।

---

1. "माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबद्धसंबद्धयुतं कफेन।" (च.चि. 26/125)
2. "त्रिदोषजे नैकरसं भवेत्तु।" (च.चि. 26/126)
3. "अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशनगंधजे स्यात्।
   स्वाभाविकं वक्त्रमथारुचिश्च॥" (च.चि. 26/126)
4. "अरुचौ कवलग्राहा धूमाः समुखधावनाः। मनोज्ञमन्नपानं च हर्षणाश्वासनानि च॥" (च.चि. 26/215)

3. मनोनुकूल अन्नपान का सेवन कराना, मन को प्रसन्न रखना एवं रोगी को आश्वासन देना चाहिए।
4. मुख शुद्धि हेतु कवलधारण, मुखधावन, धूमपान आदि का प्रयोग करना श्रेष्ठ है।
5. दोषानुसार अरुचि के चिकित्सा सिद्धांत निम्न हैं[1]—

वातज अरोचक	–	बस्ति
पैत्तिक अरोचक	–	विरेचन
कफज अरोचक	–	वमन
आगन्तुज अरोचक	–	मन को प्रसन्न करना एवं मनोनुकूल आहार देना।

6. **आचार्य चरक ने मुख धावन एवं कवलग्रह** के लिए विभिन्न योगों का उल्लेख किया है।

(i) **मुख धावनार्थ**[2]— त्रिफला, पाठा, मुनक्का, चमेली की पत्तियों के कषाय में मधु का प्रयोग करना चाहिए।

(ii) मुख शोधनार्थ विभिन्न कवलग्रह

वातज अरोचक में कवल ग्रह

कुष्ठ, काला नमक, जीरक, शक्कर, मरिच तथा विड्नमक समभाग लेकर मधु व तिल तैल मिलाकर कवल करें।

पित्तज अरोचक में कवलग्रह[3]

आंवला, एला, पद्माख, खश, पिप्पली, कमल एवं रक्तचंदन समभाग लेकर मधु व तिलतैल मिलाकर कवल ग्रह करायें।

कफज अरोचक में कवलग्रह[4]

लोध्र, तेजबल, बड़ी हरीतकी, त्रिकटु तथा यवक्षार में मधु व तिल तैल मिलाकर कवल ग्रह करायें।

सन्निपातज अरोचक में कवल ग्रह[5]

आर्द्रक, अनार, जीरक तथा शर्करा में मधु व तिल तैल मिलाकर कवल करायें।

---

1. "बस्ति समीरणे, पित्ते विरेकं, वमनं कफे। कुर्याद् हृद्यानुकूलानि हर्षणं च मनोघ्नजे॥" (च.चि. 26/220)
2. "सक्षौद्रास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः। कषायतिक्तकाः शीताः क्वाथाश्च मुखधावनाः॥" (च.चि. 26/205)
3. "कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचं विडम्। धात्र्येलापद्मकोशीरपिङ्गद्वल्युत्पलाचन्दनम्।।" (च.चि. 26/216)
4. "लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम्।" (च.चि. 26/217)
5. "आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजाजीशर्करायुतः॥" (च.चि. 26/217)

7. शर्करोदक का प्रयोग

शर्करा एवं नींबू रस को 6:1 अनुपात में मिलाकर इसमें लौंग एवं मरिच मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पान करायें।

8. सर्वज अरोचक नाशनार्थ[1]

मंगरैला, मरिच, जीरक, द्राक्षा, वृक्षाम्ल, दाड़िम बीज, सोंचर लवण, गुड़ एवं शहद का चूर्ण बनाकर वटी बनाकर प्रयोग करायें।

चिकित्सा

शास्त्रकारों ने अरोचक की चिकित्सा निम्नानुसार वर्णित की है—

(1) **संशोधन चिकित्सा**

(i) वमन कर्म (कफज अरोचक)

(ii) विरेचन कर्म (पित्तज अरोचक)

(iii) बस्ति कर्म (वातज असेचक)

(iv) कवल गृह

(v) धूमपान

(2) **संशमन चिकित्सा**

अरोचक की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्न अनुसार है—

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	: 125-250 मि.ग्रा.
अनुपान	: शहद/जल
(i) सुधानिधि रस	: पारद, गंधक, वत्सनाभ, टंकण, लवंग
(ii) बड़वानल रस	: पारद, गंधक, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, टंकण, समुद्र लवण, यवक्षार, शु. वत्सनाभ
(iii) शुक्ति भस्म	: शंख/शुक्ति

2. **वटी**

मात्रा	: 250-500 मि.ग्रा.
अनुपान	: जल
(i) चित्रकादि वटी	: द्विक्षार, त्रिलवण, हींग, अजमोदा
(ii) गंधक वटी	: शु.गंधक, चित्रकमूल, पीपल, काली मिर्च, सोंठ, सैंधव, यवक्षार
(iii) शंखवटी	: चिंचाक्षार, पांचों लवण, शंख भस्म, हींग
(iv) हिंग्वादि वटी	: हींग, अजमोद, अम्लवेत, वृक्षाम्ल, पिप्पली

---

1. "कारवीमरिचाजाजीद्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम्। सौवर्चलं गुडः क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम्॥" (च.चि. 26/219)

3. **चूर्ण**

मात्रा	: 3–6 ग्राम
अनुपान	: कोष्ण जल
(i) लवण भास्कर चूर्ण	: समुद्र लवण, काला नमक, सैंधव, धनियाँ, पीपर मूल, पिप्पली, त्रिजात, अम्लवेतस
(ii) हिंग्वाष्टक चूर्ण	: त्रिकटु, अजमोद, सेंधव, जीरकद्वय, हींग
प्रयोग विधि	: समभाग घृत मिलाकर भोजन के प्रथम ग्रास के साथ ग्रहण करें।
(iii) एलादि चूर्ण	: एला, लवंग, नागकेशर, धान का लावा, मुस्तक, श्वेत चन्दन, पीपर
(iv) समशर्कर चूर्ण	: सोंठ, पीपर, मरिच, नागकेशर, तेजपत्र, त्वक्, छोटी एला
(v) रोचक चूर्ण	: भुना जीरा, मरिच, सैंधव, पिप्पली, टाटरी, भुनी हींग एवं चीनी
(vi) अष्टांग लवण	: काला नमक, काला जीरा, वृक्षाम्ल, अम्लवेत, दालचीनी, एला, मरिच
(vii) यवानीषाडव चूर्ण	: अजवाइन, इमली, सोंठ, अम्लवेत, खट्टा अनारदाना, बेर चूर्ण

4. **स्वरस/विशिष्ट योग**

मात्रा	: आवश्यकतानुसार
(i) आर्द्रक स्वरस[1]	: आर्द्रक स्वरस में लवण मिलाकर सेवन
(ii) दाड़िम योग	: अनार रस, मधु एवं काला नमक का कवल धारण
(iii) मातुलुङ्ग केसर योग	: काली मिर्च तथा सैंधव का चूर्ण कागजी नींबू पर छिड़ककर चाटें

5. **पाक/अवलेह**

मात्रा	: 15–20 ग्राम
अनुपान	: दूध/जल
(i) द्राक्षावलेह	: मुनक्का, सैंधव, काला नमक, पिप्पली, अकरकरा, काली मिर्च, लोंग, हींग
(ii) आर्द्रकावलेह	: आर्द्रक, गुड़, चतुर्जात, त्रिफला, त्रिकटु, लवंग, जायफल, मुनक्का
(iii) तिन्तीडीक पानक	: इमली, खांड, धनियाँ, आर्द्रक, चतुर्जात
(iv) आर्द्रक पानक	: आर्द्रक, चतुर्जात, चीनी

---

1. "भोजनाग्रे सदापथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम्।" (भाव प्रकाश)

आदर्श चिकित्सा पत्र

		प्रात : सायं
1.	सुधानिधि रस	: 125 मि.ग्रा.
	यवानीषाड्व चूर्ण	: 3 ग्राम
	लवण भास्कर	: 3 ग्राम
	कोष्ण जल से	1×2 मात्रा
2.	भोजन पूर्व	
	हिंग्वष्टक चूर्ण	: 2 ग्राम
	घृत मिलाकर	: 1×2 मात्रा
3.	आर्द्रकावलेह	: 15 ग्राम
	जल से	: 1×2 मात्रा
4.	रात्रि में	
	त्रिफला चूर्ण	: 3 ग्राम
	कोष्ण जल	: 1 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
शालिचावल, गेहूँ, हरीशाक, केला, अनार, गोदुग्ध, घृत, लहसुन, तक्र, दही, आर्द्रक, मधुर एवं तिक्त पदार्थ, बकरा एवं खरहा का मांस रस आदि।	जिह्वा निर्लेखन, मुख की स्वच्छता, दातौन, स्नान, कवल धारण आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, पिष्टमय, पिच्छिल एवं अभिष्यन्दी भोज्य पदार्थों का सेवन आदि।	पुरीष, मूत्र, उद्गार, क्षुधा एवं तृषा के वेग को धारण करना, क्रोध, लोभ, शोक, दुर्गन्ध एवं वीभत्स दृश्य दर्शन आदि।

Latest Developments

ANOREXIA

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की भाषा में अरुचि (अरोचक) को Anorexia कह सकते हैं। आमाशय में Neurogenic factors, Gastritis, Anaemia & Psychic factors के कारण अरोचक की उत्पत्ति होती है।

Management : Principles

1. Sours, Carminatives & Bitter tonics.
2. Appetizers & Enzyme preparations.
3. Psychotherapy.

अध्याय–18

अग्निमांद्य

(DIGESTIVE INSUFFICIENCY)

व्याधि परिचय

अग्निमांद्य स्वयं एक विकार होकर अनेक व्याधियों का हेतु भी है। ग्रहण किए गए आहार का शरीरस्थ अग्नियों (धात्वाग्नि, जठराग्नि एवं भूताग्नि)[1] द्वारा पाक होकर शरीर के विभिन्न अंशों का पोषण होता है। जाठराग्नि का मुख्य कार्य आहार का पाचन है। शरीर में बल, वर्ण, प्रभा, स्वास्थ्य, उत्साह, ओज आदि अग्नि के अधीन हैं तथा जीवन-मरण भी अग्नि पर ही आश्रित हैं। जठराग्नि के चार प्रकार बताए गए हैं[2]—

(i) समाग्नि (ii) विषाग्नि
(iii) मंदाग्नि (iv) तीक्ष्णाग्नि।

इसमें समाग्नि ही जठराग्नि की प्राकृत अवस्था है। शेष तीनों दोष वैषम्य से उत्पन्न वैकृत अवस्थाएँ हैं। अग्नि का सविस्तार वर्णन काय चिकित्सा के प्रथम भाग में किया गया है।

अग्निमांद्य का शाब्दिक अर्थ है— अग्नि का मंद हो जाना, जिसके कारण लघु भोजन का भी उचित पाचन नहीं हो पाता, परिणामतः अजीर्ण की उत्पत्ति होती है। आयुर्वेदीय संहिताओं में अग्निमांद्य एवं अजीर्ण का स्वतंत्र रुप से वर्णन उपलब्ध नहीं है। माधव निदान में अग्निमांद्य एवं अजीर्ण को स्वतंत्र व्याधि के रुप में वर्णित किया गया है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता विमान स्थान : अध्याय 2
2. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान : अध्याय 15

---

1. i. "आयुर्वर्णबलं स्वास्थ्यमुत्साहोपचयौ प्रभा। ओजस्तेजोऽग्न्यः प्राणाश्चोक्ता देहाग्निहेतुकाः॥" (च.चि. 15/3)
   ii. "शान्तेऽग्नौ म्रियते, युक्ते चिरं जीवत्यनामयः। रोगी स्याद्विकृते, मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते॥" (च.चि. 15/4)
2. "मंदस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः।" (मा.नि. 6/1)

3.	सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान	:	अध्याय 46
4.	सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र	:	अध्याय 56
5.	अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा	:	अध्याय 10
6.	माधव निदान	:	अध्याय 6

निदान[1]

अग्निमांद्य के मुख्य निदान निम्न प्रकार हैं—

1. असात्म्य, अपक्व एवं अतिमात्रा में आहार सेवन।
2. अतिगुरु, अतिरुक्ष व अतिशीताहार सेवन।
3. असमय भोजन, समशन तथा अध्यशन।
4. काल की विषमता।
5. रात्रि जागरण।
6. पंचकर्म की व्यापत्ति।
7. चिरकालिक व्याधि।
8. असुखकर शैय्या।
9. वेग विधारण।
10. दिवास्वप्न।
11. ईर्ष्या, लोभ, क्रोध, शोकादि मानसिक भाव।
12. अति चिन्तन।
13. कफ प्रकोपक आहार-विहार का सेवन।
14. चाय, कॉफी, तम्बाकू, सुपारी का अति सेवन।

सम्प्राप्ति[2]

उपरोक्त निदानों के सेवन व कफ प्रकोपक आहार-विहार के सेवन से जठराग्नि कफ से दूषित होकर मंद हो जाती है एवं खाये हुए आहार का ठीक से पाक नहीं कर पाती है तथा आम विष की उत्पत्ति होती है जो कि आगे चलकर अनेक व्याधियों को उत्पन्न करता है। अतः अग्निमांद्य अनेक व्याधियों के लिए निदानार्थकर रोग का कार्य करता है[3]।

---

1. "अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विषमाशनात्। असात्म्यगुरुशीतातिरुक्षसंदुष्टभोजनात्॥
विरेकवमनस्नेहविभ्रमाद् व्याधि कर्षणात्। देशकालर्तुवैषम्याद्वेगानां च विधारणात्॥
(च.चि. 15/42-43)

2. "दुष्यत्यग्नि स दुष्टोऽन्नं न तत् पचति लघ्वपि। अपच्यमानं शुक्तत्वं यात्यन्नं विषरुपताम्॥"
(च.चि. 15/44)

3. "रोगाः सर्वेऽपिमन्देऽग्नौ।" (अ.हृ.नि. 12/1)

सम्प्राप्ति चक्र

कफ प्रकोपक आहार विहार का अति सेवन + अन्य निदान

↓

कफ दोष का प्रकोप

↓

जठराग्नि दुष्टि

↓

जठराग्नि मंदता

↓

आहार का अपूर्ण पाक

↓

आम विष उत्पत्ति

↓

अग्निमांद्य

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	त्रिदोष, मुख्यतः कफ प्रधान
दूष्य	:	अग्नि, रस धातु
स्रोतस्	:	अन्नवह
अधिष्ठान	:	ग्रहणी, आमाशय
स्रोतोदुष्टि	:	संगात्मक
अग्नि	:	मंदता
स्वभाव	:	चिरकारी
साध्यासाध्यता	:	साध्य

भेद

आचार्यों ने अग्निमांद्य के निम्न तीन भेद कहे हैं—

1. वातज अग्निमांद्य
2. पित्तज अग्निमांद्य
3. कफज अग्निमांद्य

भेदानुसार लक्षण

अग्निमांद्य के विभिन्न भेदों के लक्षण निम्नानुसार वर्णित हैं—

1. वातज अग्निमांद्य के लक्षण[1]

कटु, तिक्त, कषाय रस प्रधान, अति रुक्ष, आहार द्रव्यों का सेवन, अल्पाशन तथा विरुद्धाशन, वेगों को रोकने से तथा अति चंक्रमण से वायु कुपित होकर जठराग्नि को दूषित कर वातज अग्निमांद्य को उत्पन्न करती है।

वातज अग्निमांद्य के निम्न लक्षण हैं—

(i) उदरशूल (Pain in abdomen)
(ii) आध्मान (Tympanitis)
(iii) मलावरोध (Constipation)
(iv) तोद (Pricking pain in abdomen)
(v) मुखशोष (Dryness of mouth)
(vi) अंगवेदना (Bodyache)
(vii) दौर्बल्य (Weakness)

पित्तज अग्निमांद्य के लक्षण[2]

कटु, विदाही, अम्ल, क्षार आदि पदार्थों का अति सेवन, बार-बार विदग्धाजीर्ण होने से प्रकुपित पित्त के द्रव गुण की वृद्धि होकर अग्निमांद्य की उत्पत्ति होती है। यथा— उष्ण जल अपने द्रवत्व से अग्नि को बुझा देता है। पित्तज अग्निमांद्य के निम्न लक्षण हैं—

(i) भ्रम (Vertigo)
(ii) तृष्णा (Polydypsia)
(iii) अम्लोद्गार (Acid eructations)
(iv) दाह (Burning sensation)
(v) स्वेदागम (Perspiration)
(vi) अरुचि (Anorexia)

3. कफज अग्निमांद्य के लक्षण[3]

कफ प्रकोपक आहार यथा अति गुरु, स्निग्ध, शीत, पिच्छिल एवं मधुर आहार, अति भोजन तथा भोजन के बाद सोने से कुपित कफ जठराग्नि को मंद कर देता है। कफज अग्निमांद्य के निम्न के लक्षण हैं—

---

1. "कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीतलभोजनैः। प्रमिताशननात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः॥
करोति कुपितो मन्दमग्निं संछाद्य मारुतः।" (च.चि. 15/59-60)
2. "कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यै पित्तमुल्बणम्। अग्निमाप्लावयद्धन्ति जलं तप्तमिवानलम्॥"
(च.चि. 15/65)
3. "हितं जीर्णे मितं चाश्नंश्चिरमारोग्यमश्नुते।" (च.चि. 15/214)

(i) शरीर गौरव (Heaviness in body)
(ii) कपोल एवं नेत्र कूट में शोथ (Swelling over eyes & cheeks)
(iii) मधुरोद्गार (Sweet Eructations)
(iv) उत्क्लेश (Nausea)
(v) छर्दि (Vomiting)
(vi) मुखमाधुर्य (Sweet taste of mouth)
(vii) क्लम (Tiredness without exertion)
(viii) आलस्य (Lassitude)
(ix) स्तब्धता (Stiffness)

साध्यासाध्यता

अग्निमांद्य एक साध्य व्याधि है। उपेक्षा करने पर अनेक रोगों को उत्पन्न कर सकती है तथा अग्नि के पूर्णत: शांत (नष्ट) होने पर मृत्यु भी हो सकती है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. सर्वप्रथम निदान परिवर्जन आवश्यक है।
2. हितकर आहार का उचित काल पर उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।
3. दीपन एवं पाचन औषधियों का प्रयोग अग्निवर्धन के लिए करना चाहिए।
4. घृत श्रेष्ठ अग्निदीपक है अत: घृत पान कराना चाहिए।
5. स्निग्ध पदार्थों के अतिसेवन जन्य अग्निमांद्य में चूर्ण एवं आसव-अरिष्टों का प्रयोग करना चाहिए[1]।
6. दोषाधिक्य जन्य अग्निमांद्य में वमन, विरेचन, बस्ति आदि संशोधन चिकित्सा करनी चाहिए।
7. दीर्घकाल तक किसी व्याधि से ग्रसित रहने से उत्पन्न अग्निमांद्य में स्निग्ध मांसरस का प्रयोग करना चाहिए[2]।
8. आन्त्र में रुक्षता होने से उत्पन्न अग्निमांद्य में दीपन औषधियों से सिद्ध घृत/तैल तथा दीपन द्रव्यों के चूर्ण को घृत या तैल में मिलाकर पीना चाहिए[3]।
9. मंदाग्नि होने पर उचित रुप से घृत, अन्न, पान, चूर्ण, आसव, अरिष्ट, सुरा का प्रयोग करने से जठराग्नि बहुत दिनों तक स्थिर रहती है।[4]

---

1. "अतिस्नेहात्तु मन्देऽग्नौ चूर्णारिष्टासवा हिता:।" (च.चि. 15/206)
2. "दीर्घकालप्रसङ्गात्तु क्षामक्षीणकृशान्नरान्। प्रसहानां रसै: साम्लैर्भोजयेत् पिशिताशिनाम्॥" (च.चि. 15/209)
3. "रौक्ष्यान्मन्दे पिबेत्सर्पिस्तैलं वा दीपनैर्युतम्।" (च.चि. 15/205)
4. "यथा निरिन्धनो वह्निरल्पो वाऽतीन्धनावृत:। स्नेहान्नविधिभिश्चित्रैश्चूर्णारिष्टसुरासवै:॥ सम्यक्प्रयुक्तैर्भिषजा बलमग्ने प्रवर्धते॥" (च.चि. 15/212-213)

चिकित्सा

अग्निमांद्य की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्नानुसार वर्णित है—

1. संशोधन चिकित्सा

(i) वमन (ii) विरेचन (iii) बस्ति

2. संशमन चिकित्सा

अग्निमांद्य की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार है—

1. रस/भस्म/पिष्टी

मात्रा : 125–250 मि.ग्रा.

अनुपान : कोष्ण जल या घृत

(i) अग्नितुण्डी रस : पारद, गंधक, वत्सनाभ, अजवाइन, त्रिफला, द्विक्षार, टंकण।

(ii) क्षुधासागर रस : त्रिफला, त्रिकटु, पंचलवण, द्विक्षार, टंकण, पारद, गंधक।

(iii) अजीर्णकण्टक रस : पारद, गंधक, वत्सनाभ, काली मरिच।

(iv) रामबाण रस : पारद, वत्सनाभ, लवंग, मरिच, जायफल।

(v) अग्नि कुमार रस : पारद, गंधक, टंकण, वत्सनाभ, राख भस्म, कपर्द भस्म।

(vi) हुताशन रस : पारद, गंधक, टंकण, वत्सनाभ, काली मरिच।

(vii) अग्निसंदीपन रस : षड्षण, पंचलवण, त्रिक्षार, हींग, पारद, गंधक, वत्सनाभ, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, शंख भस्म, वंग भस्म।

(viii) भास्कर रस : पारद, गंधक, वत्सनाभ, टंकण, जायफल, त्रिकटु, लौह भस्म, कपर्द भस्म।

(ix) क्रव्याद रस : पारद, गंधक, ताम्र भस्म, लौह भस्म, पंचकोल, टंकण।

2. वटी

मात्रा : 250–500 मि.ग्रा.

अनुपान : जल

(i) गंधक वटी : पारद, गंधक, सोंठ, लौंग, मरिच।

(ii) शंख वटी : चिंचाक्षार, पंचलवण, हींग, अजमोद।
(iii) चित्रकादि वटी : द्विक्षार, षड्लवण, पंच लवण।
(iv) जातीफलादि वटी : जायफल, लौंग, पीपर, सैंधव, वत्सनाभ, सोंठ, धत्तूर बीज।
(v) लंवगादि वटी : लवंग, शुण्ठी, काली मिर्च, अपामार्ग, चित्रक, टंकण।
(vi) हिंग्वादि वटी : हींग, अजमोद, त्रिकटु, सैंधव।

3. **चूर्ण**

मात्रा : 3-6 ग्राम
अनुपान : कोष्ण जल
(i) लवण भास्कर चूर्ण : अरुचि चिकित्सा में वर्णित है।
(ii) हिंग्वाष्टक चूर्ण : अरुचि में वर्णित है।
(iii) बडबामुख चूर्ण : हरड़, सोंठ, पीपर, करंज बीज, बिल्व का गूदा, चित्रक।
(iv) अग्निमुख चूर्ण : हींग, वच, पीपल, शुण्ठी।
(v) बडवानल चूर्ण : सैंधव, पिप्पलीमूल, पिप्पली, चव्य, चित्रक, हरीतकी।
(vi) सैंधवाद्य चूर्ण : सैंधव, चित्रक, हरड़ लवंग, काली मरिच, पिप्पली।
(vii) पथ्यादि चूर्ण : हरड़, पिप्पली, सौंचर लवण।
(viii) वज्र क्षार : सज्जीखार, सोवर्चल लवण, यवक्षार।

4. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**

मात्रा : 20-30 मि.ली.
अनुपान : जल
(i) फल त्रिकादि क्वाथ : त्रिफला।
(ii) अमृतारिष्ट : गुडुची, त्रिकटु, धातकी, गुड़।
(iii) कुमार्यासव : घृतकुमारी, त्रिफला, त्रिकटु।

5. **घृत/तैल**

मात्रा : 10-30 मि० ली०
अनुपान : ऊष्णोदक
(i) अग्निघृत : पंचकोल, हींग, अजमोद, पंचलवण, यवक्षार, दही, काञ्जी, शुक्त, आर्द्रक।
(ii) मुस्तषट्फल घृत : पंचकोल, यवक्षार, घृत, दही।

6. **पाक/अवलेह**

मात्रा	: 15-20 ग्रा.
अनुपान	: दूध/जल
(i) चित्रक गुड़	: चित्रक, हरड़, त्रिकटु।
(ii) क्षार गुड	: दशमूल, त्रिफला, अर्कमूल, शतावरी, दन्तीमूल, चीता, रास्ना।
(iii) अमृताहरीतकी	: हरड़, षड्षण, पंचलवण, हींग, यवक्षार, टंकण, अजमोद, निशोथ।
(iv) गुड़ाष्टक	: शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, दन्ती, त्रिवृत चित्रक, पिप्पली मूल।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रात : सायं

अग्नि कुमार रस	: 250 मि.ग्रा.
शंख भस्म	: 250 मि.ग्रा.
अग्निसंदीपन चूर्ण	: 2 ग्राम
मधु से	1×2 मात्रा

2. भोजन पूर्व

चित्रकादि वटी	: 2 वटी × 3 मात्रा
लवण एवं आर्द्रक स्वरस	: 10 मि.ली.
गर्म जल से	: 1×2 मात्रा

3. भोजनोत्तर

लवणभास्कर चूर्ण	: 3 ग्राम
गर्म जल से	: 1×2 मात्रा

4. रात्रि

अविपत्तिकर चूर्ण	: 3 ग्राम
उष्ण जल से	: 1 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
पुराण रक्तशालि चावल, विलेपी, लाजमण्ड, सुरा, मुद्ग, हरिण, मयूर खरगोश का मांस रस, बथुआ, कच्ची मूली, लहसुन, पुराना पेठा, कच्चा केला, सहजन, परवल, बैंगन, नीम,	वमन, विरेचन, वस्ति, स्वेदन, व्यायाम आदि।

ककोड़ा, मेषशृंगी, चौपतिया, आंवला,
नारंगी,अनार, निम्बू, अम्लवेत, शहद,
मक्खन, घृत, मठ्ठा, तुषोदक, धान्याम्ल,
सर्षपतैल, हींग, अजवाइन, काली मरिच,
मेथी, धनियाँ, जीरा, दही, पान, गरम
जल, कटु एवं तिक्त द्रव्य आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
शमी धान्य सेवन, मछली, अति जलपान, उड़द के बने पदार्थ, जामुन, आलू, कूर्चिका, मोरट, दुग्ध, किलाट, शरबत, दूषित जल, असात्म्य अन्नपान, गुरु पाकी पदार्थ आदि।	तीव्र विरेचन, मल, मूत्र वायु का वेग धारण, अनशन, समशन, रात्रि जागरण, विषमाशन, रक्तमोक्षण आदि।

Latest Developments

Digestive Insufficiency

आधुनिक चिकित्साशास्त्र मतानुसार अग्निमांद्य को Digestive Insufficiency कह सकते हैं। किसी भी प्रकार से Digestion ठीक प्रकार से न हो पाना ही Digestive Insufficiency है।

Management : Principles

1. Avoid the causative factors
2. Symptomatic management

अध्याय–19

अजीर्ण

(INDIGESTION)

व्याधि परिचय

अग्निमांद्य एवं अजीर्ण पाचन संस्थान के प्रमुख विकार हैं और ये ही अनेक विकारों के जनक भी हैं। खाये हुये भोजन का पूर्णतः पाक न होना 'अजीर्ण' है। इसका कारण जठराग्नि की मंदता है। जठराग्निमांद्य होने से अन्न अपक्व रह जाता है एवं आम दोष की उत्पत्ति होती है। यह आम रस अन्य धातुओं को दूषित करता है एवं शरीर में परिभ्रमण करते हुये अनेक लक्षणों को उत्पन्न करता है।

अजीर्ण को आयुर्वेद में 'रोग समूह' का मूल कहा गया है। जो मनुष्य अनात्मवान् होकर पशुओं की तरह अमात्रा व अप्रमाण में भोजन करते हैं उन्हें अजीर्ण रोग होता है[1]। भोजन के सम्यक जीर्ण (पाक) होने पर उद्गार शुद्धि, उत्साह, यथा समय वेग प्रवृत्ति, लघुता, क्षुधा तथा तृषा समय पर लगना आदि लक्षण मिलते हैं[2]।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

अजीर्ण – नञ्+जृ+क्तिन् प्रत्यय=मदाग्नि

अर्थात् बल एवं शक्ति का अभाव होना।

''पित्तादिदुष्टस्याजीर्ण लक्षणमाह''

(चक्रपाणि)

अर्थात् आहार के पित्तादि से दूषित होने पर अजीर्ण उत्पन्न होता है।

---

1. ''अनात्मवन्तःपशुवत् भुञ्जते येऽप्रमाणतः। रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि॥'' (मा.नि. 6/14)

2. ''उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः। लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम्॥'' (मा.नि. 6/24)

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, विमान स्थान-अध्याय 2
2. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 15
3. सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान-अध्याय 46
4. सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र-अध्याय 56
5. अष्टांग हृदय, चिकित्सा स्थान-अध्याय 10
6. माधव निदान-अध्याय 6

निदान[1]

शास्त्रों में अजीर्ण के निदान निम्न प्रकार से वर्णित हैं—

1. **आहारज निदान**—आचार्य सुश्रुत ने अजीर्ण के निम्न आहारज निदान वर्णित किये हैं—

(i) अति जलपान (ii) विषमाशन (iii) असात्म्य भोजन
(iv) गुरु, विष्टम्भी, शीत आदि कफ वर्धक आहार का अति सेवन

2. **विहारज निदान**[2]—आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने अजीर्ण के निम्न विहारज निदान वर्णित किये हैं—

(i) वेग धारण
(ii) स्वप्न विपर्यय
(iii) वमन, विरेचन व स्नेह का विभ्रम या मिथ्या योग
(iv) व्याधि के कारण शरीर क्षीण होने पर
(v) देश, काल व ऋतु का वैषम्य
(vi) असुखकर शय्या पर शयन
(vii) रात्रि जागरण

3. **मानसिक निदान**[3]—अजीर्ण की उत्पत्ति में मानसिक भावों का भी महत्त्व है। निम्न मानसिक कारणों से अजीर्ण की उत्पत्ति होती है—

---

1. "अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाद्वा सन्धारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य॥
ईर्ष्याक्रोधभयपरिक्षतेन लुब्धेन रूग्दैन्यनिपीडितेन्।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाममेति॥" (सु.सू. 46/507-508)
2. "विरेकवमनस्नेहविभ्रमात् व्याधिकर्षणात्। देशकालर्तुवैषम्याद्वेगानां च विधारणात्॥
दुष्यत्यग्निः स दुष्टोऽन्नं न तत् पचति लघ्वपि॥" (च.चि. 15/42-43)
3. "मात्रयाऽप्यभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति। चिन्ताशोकभयक्रोधदुःखशैयाप्रजागरैः॥" (च.वि. 2/9)

(i) चिन्ता
(ii) क्रोध-शोक
(iii) भय-लोभ
(iv) दु:ख
(v) दीनता
(vi) अन्नद्वेष होने पर भी भोजन
(vii) ईर्ष्या

सम्प्राप्ति

उपर्युक्त तीनों प्रकार के निदानों से जब जाठराग्नि मंद हो जाती है तो वात एवं कफ की वृद्धि हो जाती है। परिणामत: वृद्ध कफ अग्नि को और मंद कर देता है। अत: अन्न का पूर्णत: परिपाक नहीं हो पाता एवं अजीर्ण नामक रोग की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन
(आहारज+विहारज+मानसिक हेतु)
↓
कफ प्रधान त्रिदोष प्रकोप
↓
जठराग्नि मांद्य
↓
अन्न का अपूर्णपाक
↓
अजीर्ण रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	कफ प्रधान त्रिदोष
दूष्य	:	जठराग्नि, रसधातु
स्रोतस्	:	अन्नवह स्रोतस
अधिष्ठान	:	आमाशय, पक्वाशय
स्रोतोदुष्टि	:	संगात्मक
स्वभाव	:	दारुण
साध्यासाध्यता	:	कृच्छ्रसाध्य
अग्नि	:	अग्निमांद्य

भेद

आयुर्वेदीय ग्रंथों में अजीर्ण के निम्न भेदों का वर्णन मिलता है—

1. **आचार्य सुश्रुत मतानुसार**[1]—आचार्य सुश्रुत ने अजीर्ण के 4 भेद बताये हैं—

(i) आमाजीर्ण (ii) विदग्धाजीर्ण
(iii) विष्टब्धाजीर्ण (iv) रसशेषाजीर्ण

2. **आचार्य माधवकर के अनुसार**—आचार्य माधवकर ने अजीर्ण के छः भेद वर्णित किए हैं[2]—

(i) आमाजीर्ण (ii) विदग्धाजीर्ण
(iii) विष्टब्धाजीर्ण (iv) रसशेषाजीर्ण
(v) दिनपाकी अजीर्ण (vi) प्राकृत अजीर्ण

3. **आचार्य चरक** ने उपरोक्त अजीर्ण के अतिरिक्त अन्नविष अजीर्ण का पृथक् वर्णन किया है।[3]

पूर्वरुप[4]

अजीर्ण के पूर्वरूपों का शास्त्र में स्पष्ट उल्लेख नहीं है किन्तु अन्नवह-स्रोतस् के दुष्ट होने पर उत्पन्न लक्षण ही इसके पूर्वरूप कहे जा सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं—

1. अनन्नाभिलाषा (Diminished desire to eat)
2. अरुचि (Anorexia)
3. अविपाक (Indigestion)
4. छर्दि (Vomiting)

सामान्य लक्षण[5]

आचार्यों ने अजीर्ण के लक्षणों का स्पष्ट वर्णन किया है जो निम्न प्रकार हैं—

1. मल का विबन्ध या अतिप्रवृत्ति (Constipation or Diarrhoea)
2. विष्टम्भ (Stasis of food)

---

1. "आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः। अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः॥"
2. "अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च। वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम्॥" (सु.सू. 46/499)
3. "..... घोरमन्नविषं च तत्।" (मा.नि. 6/6)
4. "तद्यथा-अनन्नाभिलषणमरोचकाविपाकौ छर्दिं च।" (च.चि. 15/45)
5. i) "तस्य लिङ्गमजीर्णस्य विष्टम्भः सदनं तथा। शिरसोरुक् च मूर्च्छा च भ्रमः पृष्ठकटिग्रहः॥ जृम्भाऽङ्गमर्दस्तृष्णा च ज्वरश्छर्दि प्रवाहणम्। अरोचकोऽविपाकश्च, घोरमन्नविषं च तत्॥" (च.चि. 15/45-46)

ii) "तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गण्डाक्षिकूटगः। उद्गारश्च यथाभुक्तविदग्धः प्रवर्तते॥ विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः। उदगारश्च सधूमाम्ल स्वेदो दाहश्च जायते॥" (मा.नि. 6/10-11)

3. संदन (Heaviness of Body)
4. भ्रम (Vertigo)
5. शिर:शूल (Headache)
6. मूर्च्छा (Fainting)
7. पृष्ठ एवं कटिग्रह (Stiffness of back)
8. जृम्भा (Yawning)
9. अंगमर्द (Bodyache)
10. तृष्णा (Polydypsia)
11. ज्वर (Fever)
12. छर्दि (Vomiting)
13. प्रवाहण (Tenesmus)
14. अरुचि (Anorexia)
15. शरीर गौरव (Heaviness of body)
16. शैथिल्य (Looseness of body)
17. उदर में अफारा (Flatulence)
18. अविपाक (Indigestion)

भेदानुसार लक्षण

अजीर्ण के विभिन्न भेदों के पृथक्-पृथक् लक्षण शास्त्रों में निम्नानुसार वर्णित हैं—

1. **आमाजीर्ण**—आमाशय में कफ की अधिकता होने से आमाजीर्ण होता है। कफाधिक्य होने से क्लेदक कफ की वृद्धि होने से अग्निमांद्य हो जाता है, परिणामत: खाया हुआ आहार आम स्थिति में रह जाता है। इसके लक्षण निम्न हैं[1]—

(i) शरीर गौरव (Heaviness in Body)
(ii) उत्क्लेश (Nausea)
(iii) कपोल व अक्षिकूट शोथ (Swelling over cheeks & eyes)
(iv) अविदग्ध उद्गार (Acid eructations)
(v) प्रसेक (Salivation)

---

1. i) "अजीर्णं च कफादामं तत्र शोफोऽक्षि गण्डयो:। सद्योभुक्त इवोद्गार: प्रसेकोत्क्लेशगौरवम्॥" (अ.ह्र. 8/25)

ii) "तत्रामे गुरुतोत्क्लेद: शोथो गण्डाक्षिकूटग:। उद्गारश्च यथाभुक्तम विदग्ध: प्रजायते॥" (मा.नि. 6/10)

2. **विदग्धाजीर्ण**[1]—पित्त की वृद्धि होने पर विदग्धाजीर्ण उत्पन्न होता है। पित्त की अधिकता से पित्त के अम्ल एवं द्रव गुण की वृद्धि हो जाने से भी अग्निमांद्य उत्पन्न हो जाता है जिससे भुक्तान्न विदग्ध होकर अजीर्ण की उत्पत्ति होती है एवं निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—

(i) भ्रम (Vertigo) (ii) तृष्णा (Polydypsia)
(iii) दाह (Burning) (iv) मूर्च्छा (Fainting)
(v) अम्लोद्गार (Acid eructations)
(vi) हृद् प्रदेश में दाह (Burning in chest)
(vii) स्वेद प्रवृत्ति (Sweating)

3. **विष्टब्धाजीर्ण**[2]—आमाशय में वायु की अधिकता से विष्टब्धाजीर्ण होता है। वायु की अधिकता से अग्नि विषम हो जाती है जिससे भोजन का कभी पाक होता है एवं कभी नहीं हो पाता। इस प्रकार भोजन का असम्यक् पाक होने से अजीर्ण की उत्पत्ति होती है, जिसके निम्न लक्षण हैं[3]—

(i) दाह (Burning) (ii) अंग पीड़न (Bodyache)
(iii) विबन्ध (Constipation) (iv) आटोप (Tympanitis)
(v) आध्मान (Flatulence) (vi) शूल (Pain in abdomen)

4. **रसशेषाजीर्ण**[4]—आहार द्रव्य के अधिकांश भाग का पाचन हो जाने पर भी कुछ अंश का अपाचित रह जाना ही रसशेषाजीर्ण है।

रस शेषाजीर्ण में शुद्ध उद्गार आते हैं। आहर जनित रस में अनुप्रविष्ट आहारावयवों की उपस्थिति ही रसशेषाजीर्ण है। इसके निम्न लक्षण होते हैं -

(i) उद्गार शुद्धि (Belching)
(ii) हृदय प्रदेश में भारीपन (Heaviness in chest)

---

1. i) "विदग्धे भ्रमतृष्णमूर्च्छा: पित्ताच्च विविधा रुज:। उद्गारश्च सधूमाम्ल: स्वेदो दाहश्च जायते॥" (मा.नि. 6/11)
ii) "स्रोतस्यन्नवहे पित्तं पक्तौ वा यस्य तिष्ठति। विदाहि भुक्तमन्यद्वा तस्याप्यन्नं विदह्यते॥" (सू.सू. 46/504)
2. "यदान्न विष्टध: पचति इति विष्टब्धाजीर्ण।" (मधुकोश)
3. i) "विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदना:। मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम्॥" (मा.नि. 6/12)
ii) "भृशतोदशूलं विष्टब्धमानद्धविरुद्ध वातम्।" (सु.सू. 46/509)
4. i) "उद्गारशुद्धावपि भक्तकाङ्क्षा न जायते हृद्गुरुता च यस्य।
रसावशेषेण तु सप्रसेकं चतुर्थमेतत् प्रवदन्त्यजीर्णम्॥" (सु.सू. 46/503)
ii) "रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे।" (मा.नि. 6/13)

(iii) प्रसेक (Salivation)

(iv) भोजन की इच्छा नहीं होना (No desire to eat)

(v) गौरव (Heaviness)

5. **दिनपाकी अजीर्ण**—किसी कारण वश जब भोजन का पाचन यथा काल में (24-26 घंटे में) नहीं होता या अगले दिन होता है तब उसे दिनपाकी अजीर्ण कहते हैं। इसे निर्दोष माना गया है। इसमें कोई लक्षण उत्पन्न नहीं होता है। केवल उचित नियमन एवं समय परिपालन हेतु इसे अजीर्ण की श्रेणी में रखा है।

6. **प्राकृत अजीर्ण**—यह प्राकृत स्थिति है जिसमें भोजन के उपरांत उसका पाक होने के पूर्व की अवस्था का समावेश किया गया है। उस स्थिति में प्राकृतावस्था में भी भोजन अपरिपक्व रहता है। यह प्राकृत रुप से सभी स्वस्थ व्यक्तियों में पाया जाता है। भोजनोपरांत वाम पार्श्व से सोना चाहिए, इस आचार का पालन करने के लिये ही इसका उपदेश किया है।

7. **अन्नविष अजीर्ण**—आचार्य चरक ने अन्न विष नामक अजीर्ण का उल्लेख किया है। जब अन्न के अपूर्ण पाक से आम विष की उत्पत्ति होती है तब यह आम अन्न विष वात, पित्त, कफादि से संसृष्ट होकर विभिन्न लक्षणों को उत्पन्न करता है।

उपद्रव

अजीर्ण के उपद्रवों को निम्न तीन वर्गों में बांट सकते हैं—

1. सामान्य उपद्रव
2. विशेष उपद्रव
3. चिरकालिक उपद्रव

I. **सामान्य उपद्रव**[1]

अजीर्ण के सामान्य उपद्रव निम्न प्रकार हैं—

(i) मूर्च्छा (Fainting)
(ii) प्रलाप (Delirium)
(iii) वमथु (वमन) (Vomiting)
(iv) प्रसेक (Salivation)
(v) शैथिल्य (Looseness)
(vi) भ्रम (Vertigo)
(vii) मृत्यु (Death)

II. **विशिष्ट उपद्रव**

अजीर्ण से अन्न विष उत्पन्न होने पर उसके विभिन्न दोष व धातुओं से संसर्ग होने पर निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं—

---

1. "मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः। उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः॥" (सु.सू. 46/511)

.. वात संसृष्ट अन्नविष के लक्षण[1]

(i) विष्टम्भ (Stasis of Food) (ii) शूल (Pain)
(iii) आध्मान (Tympanitis)
(iv) अनेक वात विकार (Neurological disorders)।

2. पित्त संसृष्ट अन्नविष के लक्षण[2]

(i) दाह (Burning sensation) (ii) तृष्णा (Polydypsia)
(iii) मुखरोग (Oral disease) (iv) अम्ल पित्त (Acidity)
(v) पित्तज रोग (Bilious Disorders)

3. कफ संसृष्ट अन्नविष के लक्षण[3]

(i) यक्ष्मा (Tuberculosis) (ii) पीनस (Rhinitis)
(iii) प्रमेह (Diabetes) (iv) कफज रोग

4. मूत्र संसृष्ट अन्न विष के लक्षण[4]

मूत्र से संसृष्ट अन्न विष विभिन्न मूत्र विकारों को उत्पन्न करता है।

5. पुरीष संसृष्ट अन्न विष के लक्षण[5]

पुरीष से संसृष्ट अन्न विष विभिन्न कुक्षि के रोगों को उत्पन्न करता है।

6. धातु संसृष्ट अन्न विष के लक्षण[6]

विभिन्न धातुओं से संसृष्ट अन्न विष विभिन्न धातुगत विकारों को उत्पन्न करता है।

III. चिरकालिक उप्रदव

अजीर्ण के परिणामस्वरुप उत्पन्न आमरस व आमअन्नविष विभिन्न रोगों को उत्पन्न करते हैं-

(i) आम अन्नविष : अलसक, विसूचिका
(ii) आम रस : आमवात

---

1. "करोति वातसंसृष्टं वातजांश्च बहून् गदान्।" (च.चि. 15/48)
2. "संसृज्यमानं पित्तेन दाहं तृष्णां मुखायान्। जनयत्यम्लपित्तं च पित्तजांश्चापरान् गदान्॥" (च.चि. 15/47)
3. "यक्ष्मपीनसमेहादीन् कफजान् कफसङ्गतम्॥" (च.चि. 15/48)
4. "मूत्ररोगांश्च मूत्रस्थ कुक्षिरोगान्शकृद्गतम्॥" (च.चि. 15/48)
5. "रसादिभिश्च संसृष्टं कुर्याद्रोगान् रसादिजान्॥" (च.चि. 15/49)
6. i. "शान्तिरामविकाराणां भवति त्वपतर्पणात्।" (अ.हृ.सू. 8/20)
   ii. "लङ्घनं कार्यमामे तु, विष्टब्धे स्वेदनं भृशम्। विदग्धे वमनं, यद्वा यथास्वस्थं हितं भवेत्॥" (अ.हृ.सू. 8/27)

चिकित्सा सिद्धांत

अजीर्ण चिकित्सा के प्रमुख सिद्धांत निम्न प्रकार हैं[1]—

1. सर्वप्रथम निदान परिवर्जन करायें।
2. आमाजीर्ण में उपवास या लंघन करायें[2]।
3. विदग्धाजीर्ण में वमन कराकर विकृत पित्त को निकाल देना चाहिए। तथा बार-बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में शीतल जल का पान कराते रहना चाहिए[3]।
4. विष्टब्धाजीर्ण में वायु का अनुलोमन करना चाहिए। गर्म पानी से उदर प्रदेश पर सेक करना चाहिए।
5. रोगी को लवणोदक का पान कराना चाहिए।
6. रसशेषाजीर्ण में रोगी को पूर्ण विश्राम के साथ शयन कराना चाहिए। लंघन एवं पाचन द्रव्यों का प्रयोग करायें।

चिकित्सा

अजीर्ण की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार वर्णित है—

1. **संशोधन चिकित्सा**

(i) वमन (ii) विरेचन (iii) स्वेदन

2. **संशमन चिकित्सा**

अग्निमांद्य की चिकित्सा में प्रयुक्त समस्त संशमन योगों का प्रयोग अजीर्ण चिकित्सा में किया जाता है। पूर्वोक्त (अग्निमांद्य चिकित्सोक्त) संशमन योगों के अतिरिक्त अन्य योग निम्न प्रकार हैं—

1. **चूर्ण**

मात्रा	: 3-6 ग्राम
अनुपान	: कोष्ण जल
(i) शिवाक्षार पाचन चूर्ण	: त्रिकटु, अजमोद, सैंधव, जीरक द्वय, हरड़, सज्जीक्षार
(ii) हिंगुद्विरुत्तरादि चूर्ण	: हींग, अजमोद, सैंधव
(iii) अविपत्तिकर चूर्ण	: त्रिफला, त्रिकटु, विडंग, मुस्तक, निशोथ, लवगं, मिश्री

---

1. i. "विष्टब्धे स्वेदनं भ्रशम्।" (अ.हृ.सू. 8/27)
   ii. "विष्टब्धे स्वेदनं वर्त्यो लवणोष्णाम्बु शस्यते।" (खरनाद)
2. i) "रसशेषे दिवास्वापं लघनं वातवर्जनम्।" (यो.र.)
   ii) "रसशेषे शयीत् च॥" (भा.प्र.)

2. वटी

मात्रा	: 250-500 मि.ग्रा.
अनुपान	: उष्ण जल
(i) संजीवनी वटी	: विडंग, नागर, कृष्णा, पथ्या, आंवला, विभीतक, गुडुची, भल्लातक, वत्सनाभ
(ii) गंधक वटी	: सोंठ, सैंधव लवण, गंधक
(iii) अर्क वटी	: कालानमक, नौसादर, काली मिर्च, अर्क पुष्प की लवंग
(iv) रसोन वटी	: लहसुन, जीरा, सैंधव, हींग, त्रिकटु, गंधक

आदर्श व्यवस्था पत्र

I. आमाजीर्ण

1. प्रात : सायं

शंख भस्म	: 250 मि.ग्रा.
अजीर्ण कण्टक रस	: 250 मि.ग्रा.
पंचकोल चूर्ण	: 2 ग्राम
मधु से	1×2 मात्रा

2. भोजन के पूर्व चूषणार्थ

रसोन वटी	: 2 बटी × 3 बार

3. भोजनोत्तर

लवणभास्कर चूर्ण	: 3 ग्राम
कोष्ण जल से	: 1×2 मात्रा

4. रात्रि

त्रिफला चूर्ण	: 3 ग्राम
कोष्ण जल से	: 1 मात्रा

II. विष्टब्धाजीर्ण

1. प्रात : सायं

रसोन वटी	: 250 मि.ग्रा.
अजीर्णारि रस	: 250 मि.ग्रा.
शिवाक्षारपाचन चूर्ण	: 3 ग्राम
ऊष्ण जल से	1×2 मात्रा

2. भोजन पूर्व
   हिंग्वष्टक चूर्ण : 3 ग्राम
   ऊष्ण जल से 1×2 मात्रा
3. भोजनोत्तर
   चित्रकादि वटी : 2 बटी × 3 बार
4. रात्रि
   पंचसकार चूर्ण : 3 ग्राम
   ऊष्ण जल से : 1 मात्रा

III. विदग्धाजीर्ण

1. प्रात : सायं
   अविपत्तिकर चूर्ण : 3 ग्राम
   शंख भस्म : 250 मि.ग्रा.
   अष्टांग लवण : 250 मि.ग्रा.
   कोष्ण जल से 1×2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   शंख वटी : 2 बटी × 3 बार
3. रात्रि में
   कुटकी वटी : 2 बटी
   कोष्ण जल से : 1 मात्रा

IV. रसशेषाजीर्ण

1. प्रात : सायं
   शिवाक्षार पाचन चूर्ण : 3 ग्राम
   शंख भस्म : 250 मि.ग्रा.
   गर्म जल से 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   लशुन वटी या गंधक वटी : 2 बटी × 3 बार
3. दिन में शयन करायें

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
लघु आहार, कटु तथा तिक्त द्रव्यों का सेवन, पुराण चावल, मूंग, यूष, लाज-मण्ड, बथुआ, कच्चीमूली, सहिजन, परवल, आवंला, आर्द्रक, अजवाइन, काली मिर्च, मेथी, धनिया, जीरा, गरम जल, सुरा, घी, नीबूं, आदि।	व्यायाम, चंक्रमण, रात्रि जागरण, वेगों को न रोकना, वमन, स्वेदन आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
मटर, सेम, मांस, अति जल पान, गुरु, विदाही, विष्टम्भी भोज्य पदार्थ, आलू, जामुन, असात्म्य अन्न, विरुद्ध आहार आदि।	तीक्ष्ण विरेचन, वेग धारण, अध्यशन, समशन, विषमाशन, रक्तभोक्षण आदि।

योग/प्राकृतिक उपाय

भोजन के पश्चात 10 मिनिट तक वज्रासन में बैठना चाहिये।

Latest Developments

INDIGESTION

आधुनिक मत से अजीर्ण रोग का सामंजस्य Indigestion से किया गया है। Indigestion का कारण आमाशयिक पाचक रसों का कम या पतला (Dilute) हो जाना है जिसके कारण भोजन का पूर्ण परिपाक नहीं हो पाता।

Management : Principles

1. Avoid causative factors
2. Symptomatic management
3. Simple, Bland diet etc.

अध्याय–20

आनाह, आध्मान एवं आटोप

(CONSTIPATION, TYMPANITIS, FLATULENCE)

व्याधि परिचय

आनाह, आध्मान एवं आटोप का वर्णन आयुर्वेदीय संहिताओं में पृथक् रूप से तो प्राप्त नहीं होता है परन्तु इनका पर्याप्त वर्णन यत्र तत्र उपलब्ध है। सामान्यत: 'आनाह' से कब्ज या Constipation, आध्मान से उदर में वायु का संचय (गैस बनना Flatulence) तथा आटोप से उदर में होने वाली गुड़-गुड़ की ध्वनि का अर्थ ग्रहण किया जाता है। आध्मान रोग में पेट फूलता है तथा आनाह रोग में उदर में स्तब्धता रहती है।

I. आनाह [CONSTIPATION]

वायु की विगुणता से आमाशय में अपक्व अन्न रस का निष्क्रिय संचय होना, तथा विगुणित वायु से अवरुद्ध होकर पुरीष का न निकल पाना तथा उद्गार एवं अधोवायु के रूप में वायु का न निकल पाना ही 'आनाह' है[1]।

अर्थात् अपानवायु द्वारा उदगार एवं मल प्रवृत्ति का अवरोध ही आनाह है।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

मल एवं वायु का वात की विगुणता से स्वमार्गों से न निकल पाना आनाह है।

''आ समन्तात् नह्यते बाध्यते अवरुध्यते, वा मलस्य वायोश्चमार्गो यस्मिन् रोगे स आनाह:।''

(मधुकोश)

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान–अध्याय 26
2. सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र–अध्याय 56

---

1. ''आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन।
प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति॥'' (सु.उ. 56/20)

3. सुश्रुत संहिता, निदान स्थान-अध्याय 1
4. अष्टांग संग्रह, सूत्रस्थान-अध्याय 4
5. भाव प्रकाश, चिकित्सा-अध्याय 31
6. भैषज्य रत्नावली-अध्याय 31
7. माधव निदान-अध्याय 22

निदान

आनाह के निदान निम्न हैं—

1. तेरह प्रकार के वेगों का धारण करना।
2. कटु-तिक्त-कषाय रस प्रधान द्रव्यों का सेवन।
3. रुक्षान्न सेवन।
4. शारीरिक श्रम नहीं करना, निरन्तर बैठे रहना।

सम्प्राप्ति

उपर्युक्त निदानों का निरन्तर सेवन करने से कुपित हुआ वात पक्वाशय में पुरीष तथा ऊर्ध्ववात एवं अधोवायु का अवरोध कर आनाह उत्पन्न करता है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन
↓
वात प्रकोप
↓
पक्वाशय में पुरीष तथा ऊर्ध्ववायु व
अधोवायु का वात द्वारा अवरोध
↓
पुरीष, उद्‌गार व अधोवायु की अप्रवृत्ति
↓
आनाह रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वात (अपानवायु)
दूष्य	:	अपक्व अन्न, रस, पुरीष
स्रोतस्	:	अन्नवह, पुरीषवह
अधिष्ठान	:	आमाशय, पक्वाशय
स्रोतोदुष्टि	:	विमार्गगमन, संग

अग्नि : मंद
स्वभाव : आशुकारी
साध्यासाध्यता : साध्य

भेद

आनाह के मुख्यत: निम्न दो भेद शास्त्रों में वर्णित हैं—

1. आमाशयोत्थ या आमज आनाह
2. पक्वाशयोत्थ या पुरीषज आनाह

लक्षण[1]

आनाह के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. हृद स्तम्भ (Stiffness in chest)
2. शिरोरोग (Headache)
3. गात्र-गौरव (Heaviness)
4. पीनस (Rhinitis)
5. उद्गारावरोध (Obstruction in Belching)
6. उदर स्तब्धता (Stiffness in abdomen)
7. अविपाक (Indigestion)
8. बेचैनी (Restlessness)

आनाह के भेदानुसार लक्षण[2]

शास्त्रों में आनाह के भेदानुसार लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. **आमज आनाह (Pyloric spasm) के लक्षण**

आमज आनाह के लक्षण निम्न हैं—

(i) तृष्णा (Polydypsia)
(ii) प्रतिश्याय (Running nose)
(iii) शिरोदाह (Burning in head)
(iv) आमाशय में शूल (Pain in abdomen)
(v) गात्र गौरव (Heaviness in body)
(vi) हृद् स्तम्भ (Stiffness in chest)
(vii) उद्गार विघात (No Belching, No discharge of wind)

---

1. "हृत्स्तम्भमूर्धामयगौरवाभ्यामुद्गारसङ्गेन सपीनसेन्।" (च.चि. 26/26)
2. "तस्मिन् भवन्त्यामसमुद्भवे तु, तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः। आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृल्लास उद्गारविघातनञ्च॥" (सु.उ. 56/21)

2. **पुरीषज आनाह (Intestinal Obstruction) के लक्षण**[1]

(i) कटि-पृष्ठ की स्तब्धता (Stiffness in back)
(ii) मल-मूत्र अवरोध (Obstruction of urine & faeces)
(iii) शूल (Pain in abdomen)
(iv) मूर्च्छा (Fainting)
(v) पुरीष वमन (Vomiting containing faecal matter)
(vi) श्वासकृच्छ्रता (Dyspnoea)
(vii) अलसक

चिकित्सा सिद्धांत

आनाह की चिकित्सा निम्न सिद्धांत अनुसार करनी चाहिए—

1. आमदोषत तथा अपक्व अन्न रस जनित आनाह में प्रथम वमन कर्म कराना चाहिए[2]।
2. वमन के पश्चात् दीपनीय औषधियों से सिद्ध पेया, विलेपी, यवागू आदि खाने को देना चाहिए[3]।
3. संशमन चिकित्सा के पूर्व आमज आनाह के रोगी में स्वेदन, अभ्यंग आदि का प्रयोग कर वायु का अनुलोमन करना चाहिए।
4. पुरीषज आनाह में वातानुलोमन कराना चाहिए।
5. मुख मार्ग से पुरीष आने पर उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।
6. पुरीषज आनाह में स्वेदन, अभ्यंग, अंजन, नस्य, पाचन औषध प्रयोग, फलवर्ति एवं विरेचन देना चाहिए।
7. रोगी के उदर प्रदेश पर स्वेदन करना चाहिए।

चिकित्सा

आनाह की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार है—

(i) स्नेहन, स्वेदन, अभ्यंग
(ii) वमन कर्म (आमज आनाह में)
(iii) विरेचन कर्म
(iv) आस्थापन बस्ति — (पुरीषज आनाह में)
(v) नस्य

---

1. "स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छासशकृद्वमेच्च।
श्वासश्च पक्वाशयजे भवन्ति लिङ्गानि चात्रालसकोद्भवानि॥" (सु.उ. 56/22)
2. "आमोद्भवे वान्तमुपक्रमेत.....।" (सु.उ. 56/23)
3. "आमोद्भवे वान्तमुपक्रमेत संसर्गभक्तक्रमदीपनयैः।" (सु.उ. 56/23)

2. संशमन चिकित्सा

आनाह की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्न प्रकार है—

1. रस/भस्म/पिष्टी

मात्रा	: 125–250 मि.ग्रा.
अनुपान	: कोष्ण जल/मधु
(i) इच्छाभेदी रस	: शुण्ठी, मरिच, गंधक, पारद, टंकण, जयपाल।
(ii) शंख भस्म	: शंख।
(iii) नाराच रस	: दन्ती, पारद, शुण्ठी, पिप्पली, मरिच, गंधक।

2. वटी

मात्रा	: 250–500 मि.ग्रा.
अनुपान	: कोष्ण जल से
(i) लशुनादि वटी	पूर्वोक्त
(ii) हिंग्वादि वटी	पूर्वोक्त
(iii) आरोग्यवर्धनी वटी	पूर्वोक्त
(iv) गंधक वटी	पूर्वोक्त
(v) अर्क वटी	पूर्वोक्त

3. चूर्ण

मात्रा	: 3–6 ग्रा.
अनुपान	ऊष्ण जल
(i) पंचसकार चूर्ण	: सैंधव, शुण्ठी, शिवा (हरड़), सोंफ एवं सनाय।
(ii) हरीतक्यादि चूर्ण	: हरीतकी।
(iii) त्रिफला चूर्ण	: हरड़, बहेड़ा, आंवला।
(iv) तरुणी कुसुमाकर चूर्ण	: गुलाब, सैंधव, सौवर्चल, जीरक द्वय, यवक्षार।
(v) सुख विरेचन चूर्ण	: जीरक द्वय, सोंठ, लवंग, एला, मरिच, अजमोद।
(vi) दीनदयाल चूर्ण	: सनाय, अजवाइन, समुद्र लवण।

4. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**

अर्जीणोक्त समस्त क्वाथ / आसव - अरिष्ट आनाह में भी उपयोगी है।

5. **घृत/तैल**

मात्रा	: 15-20 मि.ली.
अनुपान	: दूध या उष्ण जल
(i) एरण्ड तैल	: एरण्ड।

आदर्श चिकित्सा पत्र

I. आमज आनाह

1. प्रात : सायं

हिंगुद्विरुत्तरादि चूर्ण	: 3 ग्राम
पंचकोल चूर्ण	: 2 ग्राम
शंख भस्म	: 500 मि.ग्रा.
कोष्ण जल से	1×2 मात्रा

2. भोजनोत्तर

i. चित्रकादि वटी	: 2 बटी × 3 बार
ii. अभयारिष्ट	: 20 मि. ली.
समभाग जल मिलाकर	1×2 मात्रा

3. रात्रि में

तरुणीकुसुमाकर चूर्ण	: 3 ग्राम
गर्म जल से	: 1 मात्रा

II. पुरीषज आनाह

1. प्रात : सायं

हिंग्वष्टक चूर्ण	: 3 ग्रा.
हरीतकी चूर्ण	: 3 ग्रा.
रसोन वटी	: 250 मि.ग्रा.
ऊष्ण जल से	1×2 मात्रा

2. भोजनोत्तर

i. अग्नितुण्डी वटी	: 2 बटी × 3 बार
ii. कुमार्यासव	: 20 मि.ली.
समभाग जल से	1×2 मात्रा

3. चूषणार्थ - हिंग्वादि वटी : 4 गोली दिनभर में

4. रात्रि

एरण्ड तैल	: 20 मि. ली.
दूध से	: 1 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
जौ की रोटी, मुद्ग, आर्द्रक, लहसुन, नींबू, पतली मूली, मिर्च, सैंधव, अजवाइन, सौंफ आदि।	उद्गार, स्वेदन, वमन, विरेचन, अभ्यंग, व्यायाम आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, वातकारक, विष्टम्भी, रुक्ष पदार्थ, अति तला हुआ मिर्च, मसालेदार भोजन, चाय, कॉफी आदि।	दिवास्वप्न, सुखस्वप्न, रात्रि जागरण, चिंता आदि।

योग/प्राकृतिक उपाय

निम्न यौगिक चिकित्सा भी आनाह रोगी में श्रेष्ठ है—

1.	प्रातः सायं वज्रासन	:	5-5 मिनट।
2.	योगमुद्रा	:	2 मिनट।
3.	पवन मुक्तासन	:	2 मिनट।
4.	सर्वाङ्गासन	:	1/2-1 मिनट।
5.	शवासन	:	10 मिनट।
6.	चंक्रमण	:	30 मिनट।

Latest Developments

Constipation

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में आनाह से Constipation का सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं।

A decrease in the frequency, size, consistency and care of bowel movements and the complaints depend upon the individuals perception. Medically diagnosis may be made if the patient has less than 3 bowel movements in a week or has to strain excessively at defecation.

Causes

1. Poor life style (Low dietary fibre, inadequate water intake, inadequate exercise, poor bowel habit)

2. Hypothyroidism & chronic renal failure.
3. Structural abnormalities, neurologic lesions.
4. Adverse effects of some drugs.

Management : Principles

1. To treat the cause.
2. Bulk forming laxatives.
3. Saline enema.
4. Ensure to the patient adequate fibre intake in diet, ensuring adequate hydration.
5. Patient should chew the food properly.
6. Direct to the patient for regular exercises.
7. Avoid white bread, rusks, banana, grated apple, white rice, hard boiled eggs.

II. आध्मान (TYMPANITIS OR FLATULENCE)

आध्मान एक अवस्था विशेष है जो कि उदावर्त एवं आनाह से समानता रखती है। आचार्य भाव मिश्र ने 80 प्रकार की वात व्याधियों में आनाह, आध्मान का उल्लेख किया है। आचार्य वाग्भट्ट ने वेगावरोध जन्य रोगों में आध्मान का वर्णन किया है। प्राचीन संहिताओं में आटोप एवं आध्मान का स्वतंत्र अध्याय में वर्णन नहीं है। इसका वर्णन अनेक व्याधियों के लक्षण के रुप में मिलता है, रोग के रुप में नहीं।

आनाह, आध्मान एवं उर्ध्ववात में लक्षणों की दृष्टि से भेद है। आनाह में उदर स्तब्ध रहता है एवं मल का संचय रहता है। जबकि आध्मान में आटोप (गुड़गुड़ाहट) के साथ उदर में वायु का संचय होने से उदर का फुलाव होता है। ऊर्ध्ववात में वायु की गति ऊर्ध्व होती है।

आध्मान में मल संचय नहीं होता। मल मूत्र की प्रवृत्ति होते रहने के साथ उदर में वायु की वृद्धि होने से आटोप, फुलाव एवं गुड़गुड़ाहट की ध्वनि होती है। आध्मान शुद्ध वातज रोग है। जब उदर में आटोप तथा फुलाव उदर के ऊपरी भाग में सीमित हो तो उसे **प्रत्याध्मान** कहते हैं।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान : अध्याय-28
2. सुश्रुत संहिता, निदान स्थान : अध्याय-1
3. सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थान : अध्याय-5
4. अष्टाङ्ग संग्रह, सूत्र स्थान : अध्याय-4-5
5. माधव निदान : अध्याय-22

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

1. ''वायुना कुपितेन नाभेरधः सशूलमापूर आध्मानः।''

(अ.हृ.सू. 5/8 पर इन्दु)

अर्थात्, वायु प्रकुपित होने के कारण नाभि के नीचे होने वाला शूल आध्मान कहलाता है।

2. ''साटोपमत्युग्रहरुजमाध्मातमुदरं भृशम्।
आध्मानमिति जानीयाद्घोरं वातनिरोधजम्॥'' (सु.नि. 1/88)

अर्थात् उदर में आटोप के साथ तीव्र शूल उत्पन्न होने की स्थिति को आध्मान कहा जाता है। यह वायु के वेगधारण से होता है।

निदान

आनाह के समस्त निदान आध्मान के भी निदान हैं जो निम्न प्रकार हैं—

1. वेग विधारण।
2. रुक्षा अन्नपान सेवन।
3. आहार का ठीक से न पचना।
4. पित्त क्षय।

सम्प्राप्ति

उपरोक्त निदानों के कारण पित्त का क्षय एवं वात की वृद्धि होती है। पित्त क्षय होने से आहार का अविपाक होता है तथा प्रकुपित वात के निरोध से वायु विगुणित होकर उदर में आटोप युक्त तीव्र शूल उत्पन्न करती है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन
↓
पित्तक्षय
↓
आहार का ठीक से न पचना
↓
वात वृद्धि व मार्गावरोध
↓
विगुणित वायु का उदर में संचय
↓
आटोप एवं उदर में फुलाव
↓
आध्मान

सामान्य लक्षण[1]

आध्मान के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार हैं—

1. आटोप (Tympanitis)
2. उदर शूल (Pain in abdomen)
3. उदर उत्सेध (Distention of abdomen)
4. पक्वाशय शोथ (Inflamation in large intestine)
5. बैचेनी (Restlessness)

भेद

आध्मान के दो भेद बताए गए हैं—

1. आध्मान (Generalised Tympanitis)
2. प्रत्याध्मान (Gastric Tympanitis)

आध्मान—पक्वाशय में वायु का संचय होना

प्रत्याध्मान—कफ एवं वात की वृद्धि के कारण उदर के ऊपरी भाग (आमाशय) में वायु का संचय होने से आटोप एवं फुलाव होना। इसमें पार्श्व पीड़ा एवं हृदय पीड़ा का अभाव होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

आध्मान एवं प्रत्याध्मान के चिकित्सा सिद्धान्त आनाह के समान ही होते हैं।

(1) पुरीषज आनाह के समान आध्मान की चिकित्सा तथा आमज आनाह के समान प्रत्याध्मान की चिकित्सा करनी चाहिये।

(2) आध्मान में वातशामक पदार्थों का लेप व गुदवर्ति का प्रयोग करना चाहिये[1]।

(3) आध्मान में अपतर्पण, फलवर्ति, दीपन-पाचन वातानुलोमन औषधियों का प्रयोग तथा बस्तियों का प्रयोग करना चाहिये[2]।

(4) लंघन के बाद भोजन काल में धान्यक-जीरक आदि दीपनीय औषधियों से सिद्ध अन्न देना चाहिये[3]।

(5) प्रत्याध्मान में वमन, अपतर्पण एवं दीपन क्रिया करनी चाहिये[4]।

---

1. "आधमाने लेपनं पाणितापश्च फलवर्तयः।" (चक्रदत्त)
2. "आध्माने त्वपतर्पणपाणितापदीपनचूर्णफलवर्तिक्रियापाचनीयदीपनीयबस्तिभिरुपाचरेत्।" (सु.चि. 5/26)
3. "लंघनान्तरं चात्रकाले धान्यकजीरकादिदीपनसिद्धान्यन्नानि।" (सु.चि. 5/26)
4. "प्रत्याध्माने छर्दनापतर्पणदीपनान्यपि कर्यात्।" (सु.चि. 5/26)

चिकित्सा

आध्मान की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्नानुसार वर्णित है—

1. **संशोधन चिकित्सा**

(i) स्नेहन-स्वेदन (ii) वमन (प्रत्याध्मान में)
(iii) विरेचन (आध्मान में)

2. **संशमन चिकित्सा**

आध्मान में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योग निम्न अनुसार वर्णित हैं—

1. **रस/भस्म/पिष्टी/वटी/चूर्ण/आसव-अरिष्ट/क्वाथ/घृततैल**—आनाह में प्रयुक्त समस्त औषधियां आध्मान में भी सफलता पूर्वक प्रयोज्य हैं।

2. **चूर्ण**

मात्रा : 3-6 ग्राम
अनुपान : ऊष्ण जल

(i) हिंगुगन्धादि चूर्ण : हिंगु, वचा, काला नमक, शुण्ठी, हरीतकी, कुष्ठ।

3. **लेप**

उदर पर लेपनार्थ (स्थानिक प्रयोग)

(i) दारुषट्क लेप : देवदारु, वचा, कुष्ठ, हिंगु, सैंधव लवण को कांजी में पीसकर उदर पर लेप करना चाहिये।

आदर्श व्यवस्था पत्र

1. प्रात : सायं

अजीर्ण कण्टक रस	: 250 मि.ग्रा.
अग्नितुण्डी वटी	: 250 मि.ग्रा.
हरीतकी चूर्ण	: 3 ग्राम
ऊष्ण जल से	1×2 मात्रा

2. भोजनोत्तर

(i) हिंगुगंधादि चूर्ण	: 3 ग्राम
ऊष्ण जल से	1×2 मात्रा
(ii) अर्क वटी	: 2 वटी × 2 बार

3. रात्रि में
   तरुणीकुसुमाकर चूर्ण : 3 ग्राम
   गर्म जल से : 1 मात्रा
4. योग चिकित्सा
   भोजनोत्तर वज्रासन (5-5 मिनट)

पथ्य एवं अपथ्य

आनाह में कहे गये समस्त पथ्य एवं अपथ्य आध्मान में भी ग्राह्य हैं।

योग/प्राकृतिक उपाय—आनाहोक्त।

Latest Developments

FLATULENCE / TYMPANITIS

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में आध्मान को Flatulence or Tympanitis कह सकते हैं।

Common complaints arising from objective presence of excess amounts of gas in the G.I.T. is called flatulence.

Causes

1. Irritable bowel syndrome.
2. Hyperacidity.
3. Non-Ulcer dyspepsia.
4. Psychological Problems.

Management : Principles

1. Activated charcoal, various enzymes.
2. Avoidance of foods known to increase intestinal gas production like fibre, corn, beans, potatoes, wheat, cauliflower, cabbage, onions, beer & eggs.
3. Avoidance of excess water ingestion during meals. Not to lie down for an hour after meals.
4. Eating food slowly with proper mastication.
5. Avoid carbonated drinks.
6. Suggest exercises, daily walk or cycling.

III. आटोप

आटोप एक स्वतंत्र व्याधि नहीं है इसका वर्णन 'आध्मान' के लक्षण के रूप में आया है। वातकारक समस्त आहार-विहार का अति प्रयोग करने से कपित वायु उदर में संच करते हुये गड़गड़ाहट की विशिष्ट ध्वनि उत्पन्न करती है जिसे 'आटोप' कहते हैं।

कभी-कभी बहुत तेज भूख लगने पर आमाशय खाली होने पर वात वृद्धि होकर भी उदर में विशिष्ट ध्वनि होती है जिसे 'आटोप' कह सकते हैं।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

(1) आचार्य सुश्रुत ने "आटोपं सञ्चलनं तेन सहवर्तते, इति आटोपम्।" अर्थात उदर में आवाज होना से आटोप की व्युत्पत्ति मानी है।

(2) "आटोपः गुड़गड़ शब्दः।" (कार्तिक)

अर्थात् उदर में गुड़गुड़ ध्वनि उत्पन्न होना आटोप है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

ग्रंथों में आटोप से सम्बन्धित पृथक् अध्याय वर्णित नहीं है। आध्मान के लक्षणों के रूप में आटोप का वर्णन है। अतः आध्मान के संदर्भ ग्रंथ ही आटोप के भी हैं।

निदान

आटोप के निदान आध्मान के निदानों के समान हैं। विशेषतः कद्दू, कटहल, बड़हल, उड़द का बड़ा तथा मटर का सत्तू आदि आटोप जनक हैं।

सम्प्राप्ति

वातवर्धक आहार-विहार सेवन
↓
उदर में वात वृद्धि
↓
वृद्ध वात का उदर में संचरण
↓
गुड़गुड़ाहट की ध्वनि
↓
आटोप

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	वात
दूष्य	:	रस
स्रोतस	:	अन्नवह
अधिष्ठान	:	उदर
स्रोतो दुष्टि	:	विमार्गगमन
स्वभाव	:	मृदु
साध्यासाध्यता	:	साध्य

लक्षण

आटोप के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार हैं—

1. उदर में फुलाव (Distention of abdomen)
2. गुड़गुड़ाहट की ध्वनि (Gurgling sound in Abdomen)
3. उत्क्लेश (Nausea)

चिकित्सा सिद्धान्त

आटोप के चिकित्सा सिद्धान्त आध्मान के समान हैं।

1. मुख्यत: वातानुलोमन चिकित्सा करनी चाहिये।
2. स्नेहन, स्वेदन, दीपन, पाचन, मद्य, आसव-अरिष्ट आदि का प्रयोग हितकर है।
3. मुख्यत: अजीर्ण के समान चिकित्सा करना श्रेष्ठ है।

चिकित्सा

आटोप की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा आध्मान/अजीर्ण के समान है। इसे वहीं देखें।

आदर्श व्यवस्था पत्र

		प्रात :	सायं
1.	लवण भास्कर चूर्ण	: 3 ग्राम	
	भृष्ट अजवाइन चूर्ण	: 2 ग्राम	
	ऊष्ण जल से	1×2 मात्रा	
2.	भोजनोत्तर		
	(i) हिंग्वादि वटी	: 2 बटी × 3 बार	
	(ii) अभयारिष्ट	: 20 मि.ली.	
	समान भाग जल से	1×2 मात्रा	
4.	रात्रि		
	एरण्ड स्नेह	: 20 मि.ली.	
	दूध से	एक मात्रा	

पथ्य एवं अपथ्य

अजीर्ण के समस्त पथ्य एवं अपथ्य आटोप में भी पथ्य-अपथ्य हैं।

योग/प्राकृतिक उपाय

1. लघु सुपाच्य आहार लें।
2. ज्यादा देर तक खाली पेट न रहें।
3. आध्मानोक्त (आनाहोक्त) योग क्रियाओं का अभ्यास करें।
4. 30 मिनट तक प्रतिदिन चंक्रमण करें।

अध्याय–21

ग्रहणी दोष

(SPRUE SYNDROME OR MALABSORPTION SYNDOME)

व्याधि परिचय

आचार्य सुश्रुत ने पक्वाशय एवं आमाशय के मध्य स्थित षष्ठी पित्तधरा कला को 'ग्रहणी' कहा है[1] तथा इसी ग्रहणी को अधिष्ठान बनाकर उत्पन्न होने वाले रोग को 'ग्रहणी' कहते हैं। ग्रहणी को अग्नि का अधिष्ठान कहा है। आचार्य चक्रपाणि ने ग्रहणी स्थित अग्नि दोष को ही ग्रहणी कहा है[2]। क्योंकि चतुर्विध अन्न के सेवन के पश्चात् उसका धारण, पाचन, शोषण एवं अवशिष्ट पदार्थ का त्याग आदि कार्य ग्रहणी के अधीन ही हैं[3]।

मंदाग्नि की स्थिति होने पर ग्रहणी आम अन्न को भी शरीर से बाहर निकाल देती है[4]। ग्रहणी रोग एक कष्टकारी व्याधि है। आचार्य वाग्भट् ने इसे अष्ट महारोगों में वर्णित किया है[5]। ग्रहणी रोग स्वतंत्र एवं परंतत्र भेद से दो प्रकार का होता है। जब अग्नि की विकृति के फलस्वरूप ग्रहणी दोष होता है तब उसे स्वतंत्र व्याधि कहते हैं तथा अतिसार, अर्श आदि के बाद अग्निमांद्य होने से उत्पन्न ग्रहणी दोष परतंत्र व्याधि के रूप में जाना जाता है।

---

1. "षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता। पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता॥" (सु.उ.त. 40/169)
2. "ग्रहणीमाश्रितोऽग्निदोषो ग्रहणी दोषो।" (च.चि. 15/1-2 पर चक्रपाणि)
3. "आमाशयात्पक्वाशयोन्मुखमन्नं बलेन विधार्य पित्ततेजसा शोषयति पचति पक्वं च विमुञ्चति।" (अ.स.शा. 5/23)
4. "दुर्बलाग्निबला दुष्टा त्वाममेव विमुञ्चति।" (च.चि. 15/57)
5. "वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः। अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः सुदुस्तराः॥" (अ.ह.नि. 8/30)

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

(1) "ग्रह+अनि" में "ङीष्" प्रत्यय लगाने पर "ग्रहणी" शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है ग्रहण करना।

(2) "अन्नस्य ग्रहणात् ग्रहणी मता:।" (च.चि.15/56)

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 15
2. सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र-अध्याय 40
3. अष्टांङ्ग हृदय, निदान स्थान-अध्याय 8
4. अष्टांङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान-अध्याय 10
5. माधव निदान-अध्याय 4

निदान

आचार्य सुश्रुत ने ग्रहणी के निम्न निदान वर्णित किऐ हैं[1]—

1. अतिसार से ग्रसित होना।
2. अतिसार से निवृत्त होने के पश्चात् अहित आहार-विहार का सेवन करना।
3. ज.ठराग्नि का मंद होना।

जठराग्नि के मंद होने पर वातादि दोष प्रकोप होने से विकृत हुई ग्रहणी अन्न का पाक ठीक से नहीं कर पाती है, फलतः आहार को पक्व या अपक्व रूप में ही शरीर से बाहर निकाल देती है।

आचार्य चरक ने ग्रहणी के सामान्य निदान निम्न बताये हैं[2]—

1. भोजन नहीं करना।
2. अजीर्ण होने पर भोजन करना।
3. विषमाशन।
4. असात्म्य अन्न सेवन।
5. गुरु, शीत, दुष्ट, रुक्ष एवं बासी भोजन सेवन।
6. वमन, विरेचन, स्नेह पान का विभ्रम।
7. देश, काल, ऋतु का वैषम्य।

1. "अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः। भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत्॥" (सु.उ.त. 40/167)
2. "अभोजनादजीर्णातिभोजनात् विषमाशनात्। असात्म्यगुरुशीतादिरुक्षसंदुष्टभोजनात्॥ विरेकवमनस्नेहविभ्रमात्व्याधिकर्षणात्। देशकालर्तुवैषम्यात् वेगानां च विधारणात्॥" (च.चि. 15/42-43)

8. वेग धारण।
9. अति मात्रा में भोजन करना।

ग्रहणी के दोषानुसार विशिष्ट निदान

दोषानुसार ग्रहणी के विभिन्न भेदों के पृथक्-पृथक निदानों का उल्लेख संहिता ग्रंथों में उपलब्ध है जो निम्न प्रकार है—

1. वातिक ग्रहणी के निदान[1]

(i) कटु-तिक्त-कषाय रस युक्त आहार।
(ii) रुक्ष एवं शीतल भोजन।
(iii) अध्यशन या अनशन।
(iv) अधिक मार्ग चलना।
(v) वेगधारण करना।
(vi) अतिमैथुन करने से कुपित वायु अग्नि को आवृत्त कर उसे मंद कर ग्रहणी रोग उत्पन्न करती है।

2. पैत्तिक ग्रहणी के निदान[2]

(i) कटु-अम्ल-क्षार अति सेवन।
(ii) विदाही मिर्च मसालेदार भोजन का सेवन।
(iii) अजीर्ण।
(iv) अजीर्ण होने पर भी भोजन करना।
(v) पित्तकवर्धक पदार्थों का अतिसेवन से बढ़ा हुआ पित्त द्रव रूप में बढ़कर अग्नि को मंद कर देता है जैसे गरम जल अग्नि को बुझा देता है।

3. कफज ग्रहणी के निदान[3]

(i) अति गुरु, स्निग्ध, मधुर द्रव्याति सेवन।
(ii) शीतल पदार्थों का अति सेवन।
(iii) पिच्छिल द्रव्यों का अति सेवन।

1. "कटुतिक्तकषायातिरुक्षशीतलभोजनैः। प्रमिताशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः॥ करोति कुपितो मंदाग्निं संछाध मारुतः। तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खराङ्गता॥" (च.चि. 15/59-60)
2. "कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्वणम्। अग्निमाप्लावयद्धन्ति जलं तप्तमिवानिलम्॥" (च.चि. 15/65)
3. "गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात्। भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः॥" (च.चि. 15/67)

(iv) अति भोजन करना।

(v) भोजन के तुरन्त बाद शयन करने से कुपित हुआ कफ अग्नि को मंद कर देता है, अतः खाया हुआ आहार बड़े कष्ट से पचता है।

4. सन्निपातिक ग्रहणी के लक्षण

वातज, पित्तज एवं कफज ग्रहणी के सम्मिलित निदान ही सन्निपातिक ग्रहणी के निदान होते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र

उपरोक्त निदानों का सेवन
↓
मंदाग्नि
↓
आम दोष
↓
षष्ठी पित्तधरा कला में स्थान संश्रय
↓
ग्रहणी दुष्टि
↓
पक्व एवं अपक्व अन्न का अधोभाग से निर्हरण
↓
कभी द्रव व कभी बंधे हुये मल की प्रवृत्ति
↓
ग्रहणी रोग

सम्प्राप्ति

निदानों के सेवन से अग्निमांद्य होकर ग्रहणी में विकृति आ जाती है तथा ग्रहणी दूषित होने पर पक्व एवं अपक्व दोनों प्रकार के अन्न को पक्वाशय में (अधोभाग में) भेज देती है तब कभी द्रव मल व कभी बंधे हुये मल की पुनःपुनः प्रवृत्ति होने लगती है जो कि ग्रहणी रोग कहलाता है[1]। सामान्य अवस्था में ग्रहणी अपक्व अन्न का धारण करती है एवं पक्व अन्न को अपने पार्श्व में नीचे अवशोषण होने के लिये धकेल देती है[2]। परन्तु

1. "दूष्यत्यग्निः स दुष्टोऽन्नं न तत् पचति लध्वपि। अपच्यमानं शुक्तत्वं यात्यन्नं विषरूपताम्॥" (च.चि. 15/44)
2. "अधस्तु पक्वमामं वा प्रवृत्तं ग्रहणी गदः।" (च.चि. 15/52)

ग्रहणी के दूषित होने पर यह अपक्व अन्न को भी धारण नहीं करती है एवं नीचे गुदा की ओर धकेल देती है[1]।

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	त्रिदोष
दूष्य	:	अन्न, रस
स्रोतस्	:	अन्नवह, पुरीषवह
अधिष्ठान	:	पित्तधराकला, ग्रहणी
स्रोतोदुष्टि प्रकार	:	अतिप्रवृत्ति
स्वभाव	:	दारुण
अग्नि	:	मन्दता
साध्यासाध्यता	:	कृच्छसाध्य

भेद

विभिन्न आयुर्वेदीय ग्रंथो में ग्रहणी दोष के निम्न भेद वर्णित हैं—

1. **आचार्य चरक एवं सुश्रुतानुसार**[2]—ग्रहणी दोष के चार प्रमुख भेद वर्णित हैं—
   (i) वातिक ग्रहणी
   (ii) पैत्तिक ग्रहणी
   (iii) कफज ग्रहणी
   (iv) सन्निपातज ग्रहणी
2. **आचार्य माधवकर के अनुसार**—आचार्य माधवकर ने छः प्रकार के ग्रहणी रोग वर्णित किये हैं[3]—
   (i) वातिक ग्रहणी (ii) पैत्तिक ग्रहणी

1. "अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं सृजति पार्श्वतः। दुर्बलाग्निबल दुष्टा त्वाममेव विमुञ्चति॥" (च.चि. 15/57)
2. "वातात् पित्तात् कफाच्च स्यात्तद्रोगस्तिमित एव च।" (च.चि. 15/58)
3. i) "दुर्विज्ञेया दुश्चिकित्स्या चिरकालानुबन्धिनी। सा भवेदामवातेन संग्रहग्रहणी मता॥" (मा.नि. 4/3)
   ii) "स्वपतः पार्श्वयोः शूलं गलज्जलघटी ध्वनि। तं वदन्ति घटीयंत्रमसाध्यं ग्रहणी गदम्॥" (मा.नि. 4/4)

(iii) कफज ग्रहणी (iv) सन्निपातज ग्रहणी
(v) संग्रह ग्रहणी (vi) घटीयन्त्र ग्रहणी

3. **आचार्य गणनाथसेन के अनुसार**—आचार्य गणनाथसेन ने ग्रहणी दोष के निम्न चार भेद वर्णित किऐ हैं—

(i) राज ग्रहणी (ii) क्षतज ग्रहणी
(iii) क्षयज ग्रहणी (iv) निर्मोक ग्रहणी

4. **अन्य भेद**

1. **स्वतंत्र ग्रहणी दोष**—बिना अतिसार के होने वाली ग्रहणी।
2. **परतंत्र ग्रहणी दोष**—अतिसार के उपरान्त अपथ्य सेवन से उत्पन्न ग्रहणी।

5. आचार्य चरक ने एक अन्य ग्रहणी दोष का भी वर्णन किया है—

1. साम ग्रहणी

पूर्वरुप[1]

आचार्य चरक ने ग्रहणी के निम्न पूर्वरुपों का उल्लेख किया है—

1. तृष्णा (Polydypsia)
2. आलस्य (Lassitude)
3. बलक्षय (Loss of Strength)
4. अन्न विदाह (Burning Abdomen)
5. आहार का देर से पचना (Delayed digestion)
6. शरीर में भारीपन (Heaviness of body)

आचार्य सुश्रुत ने उपर्युक्त पूर्वरुपों के अतिरिक्त ग्रहणी के निम्न पूर्वरुपों का भी वर्णन किया हैं[2]—

1. अरुचि (Anorexia) 2. कास (Cough)
3. कर्णक्ष्वेड़ (Tinnitus) 4. आंत्रकूजन (Gurgling sound in Abdomen)

आचार्य वाग्भट् ने ग्रहणी के निम्न पूर्वरुप वर्णित किये हैं[3]—

1. "पूर्वरुपं तु तस्येदं तृष्णाऽऽलस्य बलक्षयः। विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात् कायस्य गौरवम्॥" (च.चि. 15/55)
2. "तस्योत्पत्तौ विदाहोऽन्ने सदनालस्यतृट्क्लमाः। बलक्षयोऽरुचिः कासः कर्णक्ष्वेड़ोऽन्त्रकूजनम्॥" (सु.उ. 40/172)
3. "प्राग्रूपं तस्य सदनं चिरात् पचनमम्लकः। प्रसेको वक्त्रवैरस्यमरुचिस्तृट् क्लमो भ्रमः। आनद्धोदरता छर्दिःकर्णक्ष्वेडान्त्रकूजनम्।" (अ.स.नि. 8/21-22)

1. सदन (Looseness of body)
2. भोजन देर से पचना (Delayed digestion)
3. अम्लोद्गार (Acid eructations)
4. प्रसेक (Salivation)
5. मुखवैरस्य (Diminished taste of month)
6. अरुचि (Anorexia)
7. तृष्णा (Polydypsia)
8. क्लम (Tiredness without exertion)
9. भ्रम (Vertigo)
10. छर्दि (Vomiting)
11. कर्णक्ष्वेड़ (Tinnitus)
12. आंत्रकूजन (Gargling sound of Abdomen)
13. आनाह (Constipation)

सामान्य लक्षण[1]

ग्रहणी दोष के पूर्वरुप जब व्यक्त हो जाते हैं तब रूप या सामान्य लक्षण कहलाते हैं जो निम्न हैं—

1. कभी द्रव व कभी बंधा हुआ मल प्रवृत्ति (Irregular Bowel habits)
2. भोजन के तुरन्त बाद अपक्व मल की प्रवृत्ति (Evacuation after taking meals)
3. कृशता (Weakness)
4. तृष्णा (Polydypsia)
5. अरोचक (Anorexia)
6. वैरस्य (Bitter taste of mouth)
7. तमः प्रवेश (Darkness in front of eyes)
8. हाथ एवं पैरों में शोथ (Oedema over extrimities)
9. अस्थि वेदना (Pain in bones)
10. छर्दि (Vomiting)

1. i) "अतिसृष्टं विबद्धं वा द्रवं तदुपदिश्यते। तृष्णारोचकवैरस्यप्रसेकतमकान्वितः॥ शूनपादकरः सास्थिपर्वरुक छर्दनं ज्वरः। लोहामगंधिसितक्काम्लोदगारश्य जायते॥" (च.चि. 15/53)

ii) "सा दुष्टो बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति। पक्वं वा सरुजं पूति मुर्हुबद्धं मुर्हुद्रवम्। ग्रहणीरोगमाहुस्तं आयुर्वेदविदो जनाः॥" (सु.उ. 40/171-172)

11. ज्वर (Fever)
12. तिक्ताम्लोद्गार (Acid eructations)

ग्रहणी दोष के भेदानुसार विशिष्ट लक्षण

1. वातिक ग्रहणी के लक्षण[1]

वातिक ग्रहणी के निम्न लक्षण वर्णित हैं—

(i) अन्न कष्ट से पचता है (Difficult digestion)
(ii) अन्न विदाह (Burning Abdomen)
(iii) मुख एवं कण्ठ शोष (Dryness of mouth & throat)
(iv) क्षुधा एवं तृषाधिक्य (Polydypsia & Polyphasia)
(v) अपक्व अन्न की प्रवृत्ति (Evacuation of undigested food)
(vi) छर्दि एवं अतिसार एक साथ होते हैं (Diarrhoea with vomiting)
(vii) हृद पीड़ा (Pain in chest)
(viii) कार्श्य एवं दौर्बल्य (Weakness)
(ix) मुख वैरस्य (Bitter taste of mouth)
(x) परिकर्तिका (Pain in Anus)
(xi) मानसिक अवसाद (Depression)
(xii) कर्णनाद (Tinnitus)
(xiii) भोजन पचने पर आध्मान (Tympanitis)
(ix) गुल्म, हृदय व प्लीहा रोग बढ़ने की आंशका
(xv) ग्रीवा, पार्श्व, उरू एवं मस्तिष्क में निरन्तर पीड़ा (Pain in neck, chest, thighs & head)

2. पैत्तिक ग्रहणी के लक्षण[2]

संहिता ग्रंथो में पैत्तिक ग्रहणी के निम्न लक्षणों का वर्णन है—

(i) अपक्वमल का वर्ण नील या पीत होना (Bluish/Yellowish undigested stool)

1. i) "कण्ठास्यशोफः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः। पार्श्वोरूवंक्षणग्रीवारुजोऽभीक्ष्णं विसूचिका॥ हृत्पीडा कार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकीर्तिका। गृद्धिः सर्वरसानां च मनसः सदनं तथा॥" (च.चि. 15/61-62)
   ii) "वाताच्छूलाधिकैः पायुहृत्पार्श्वोदरमस्तकैः। दोषवर्णैर्नखैस्तद्विण्मूत्र मूत्रनयनाननैः॥ हृत्पाण्डूदरगुल्मार्शः प्लीहाशंकी च मानवः॥" (सु.उ. 40/175-176)
2. i) "सोऽजीर्णं नीलपीताभं पीताभः सार्यते द्रवम्। पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः॥" (च.चि. 15/66)
   ii) "पित्तेन नीलपीताभं पीताभः सृजति द्रवम्। पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः॥" (अ. नि. 8/25)

(ii) रोगी का वर्ण पीत होना (Yellowish colour of patient)
(iii) दुर्गन्ध युक्त अम्लोदगार (Acid eructations with bad smell)
(iv) हृद्कण्ठ दाह (Burning in chest & throat)
(v) अरुचि (Anorexia)
(vi) तृष्णा (Polydypsia)

3. कफज ग्रहणी के लक्षण[1]

कफज ग्रहणी के निम्न लक्षण वर्णित हैं

(i) आहार का सशूल व विलम्ब से पाचन (Painful & delayed digestion)
(ii) उत्क्लेश एवं वमन (Nausea & Vomiting)
(iii) मुख का स्वाद मधुर (Sweet taste of mouth)
(iv) अरुचि (Anorexia)
(v) मुख का कफ से लिप्त रहना (Mucoid secretions in mouth)
(vi) कास एवं प्रतिश्याय (Cough & Rhinitis)
(vii) उदर प्रदेश पर भारीपन (Heaviness of abdomen)
(viii) मैथुन में अनिच्छा (Loss of Libido)
(ix) दुर्बलता (Weakness)
(x) अपक्व, गुरु एवं कफ युक्त मल (Undigested & mucous mixed stool)
(xi) आलस्य (Lassitude)
(xii) रोगी को कृशता नहीं होती पर दुर्बलता रहती है (No cachexia, but patient is weak)

4. सन्निपातिक ग्रहणी के लक्षण[2]

सन्निपातिक ग्रहणी में तीनों दोषों के मिश्रित लक्षण मिलते हैं। इसमें तीनों प्रकार के दोषों के लक्षण तीव्रावस्था में मिलते हैं।

5. संग्रह ग्रहणी के लक्षण[1]

इसे सन्निपातिक ग्रहणी का परिवर्धित रुप कह सकते हैं। इसमें प्रथम मल का संग्रह होता है पश्चात् प्रवृत्ति होती है। इस स्थिति में आंत अत्यंत दुर्बल हो जाती है अतः मल का यथा समय स्वाभाविक निर्हरण नहीं हो पाता। अतः मल धीरे-धीरे संचित होता रहता है एवं मल संचय हो जाने पर दबाव पड़ने से मल प्रवृत्ति होती है।

1. "आस्योपदेहमाधुर्यकासष्ठीवनपीनसाः। हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु॥ दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम्। भिन्नामश्लेष्म संसृष्टगुरुवर्चः प्रवर्तनम्॥ अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्मके॥" (च.चि. 15/60-70)
2. "पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे।" (च.चि. 15/72)

इसमें मल त्याग के समय कष्ट होता है एवं मल त्याग की प्रवृत्ति भी बढ़ जाती है। इसका आक्रमण एक माह, पंद्रह दिन, दस दिन के पश्चात् या प्रतिदिन भी हो सकता है। इसे दुश्चिकित्स्य व चिरकारी रोग कहा गया है। इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(i) आंत्र कूजन (Gargling sound in abdomen)
(ii) दिन में प्रकोप, रात्रि में शमन (Aggravation of symptoms during day time and remisoion during night)
(iii) द्रव, स्निग्ध, पिच्छिल अपक्व मल प्रवृत्ति (Liquid undigested stool mixed with mucous)
(iv) पुरीष प्रवृत्ति के समय वेदना (Painful defecation)
(v) मल प्रवृत्ति सशब्द होना (Noisy defecation)
(vi) मल की मात्रा अधिक होना (Increased quantity of stool)
(vii) आलस्य (Lassitude)
(viii) अग्निमांद्य (Indigestion)
(ix) दुर्बलता (Weakness)
(x) कटि वेदना (Pain in back)

6. घटी यंत्र ग्रहणी के लक्षण[2]

लेटने पर पार्श्व में शूल तथा जल में डूबते हुए घड़े के समान ध्वनि से युक्त ग्रहणी रोग को घटी यंत्र ग्रहणी कहते हैं। इस रोग में सम्भवत: आंत इतनी दुर्बल हो जाती है कि जिधर लेटें आंतों में पड़ा आहार-उदक उसी ओर चला जाता है। इसे असाध्य माना है। इस प्रकार के लक्षण आंत्रक्षय (Intestinal tuberculosis) के रोगियों में मिलते हैं। इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(i) अति दुर्बलता (Excessive weakness)
(ii) अति निद्रा (Excessive sleep)
(iii) सोते समय पार्श्वशूल होना (Pain in costal region during sleep)
(iv) मल प्रवृत्ति के समय आवाज आना (Noisy defaecation)

1. "अंत्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं तथा। द्रवं शीतं घनुं स्निग्धं सकटीवेदनं शकृत्॥
आमं बहु सपैच्छिल्यं सशब्दं मन्दवेदनम्। पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं वाऽप्यथ मुञ्चति॥
दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शांतिं व्रजेच्च या। दुर्विज्ञेया दुश्चिकित्सया चिरकालानुबन्धिनी॥
सा भवेदामवातेन संग्रहग्रहणी मता॥" (मा.नि. 4/1-3)
2. "स्वपत: पार्श्वयो: शूलं गलज्जलघटी ध्वनि:। तं वदन्ति घटीयंत्रमसाध्यं ग्रहणी गदम्॥"
(मा.नि. 4/4)

7. राज ग्रहणी के लक्षण[1]

यह रोग सम्पन्न वर्ग के लोगों में पाया जाता है अत: इसे राज ग्रहणी कहते हैं। इसके निदान अन्य ग्रहणी रोग के समान ही हैं। इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(i) द्रव मल (Watery stools)
(ii) गाढ़ा, पीला एवं श्वेत वर्ण की मल प्रवृत्ति (Thick, yellowish & white stool)
(iii) स्नेह युक्त मल प्रवृत्ति (Steatorrhoea)
(iv) रक्ताल्पता (Anaemia)
(v) जिह्वा एवं शरीर का पाण्डु वर्ण (Whitish body & tongue)
(vi) मुखपाक (Stomatitis)
(vii) गुदपाक (Inflammation of anus)
(viii) बल क्षय (Loss of Strength)
(xi) पाण्डुता (Pallor)
(x) वसा, शर्करा, धान्य अपथ्य होते हैं।
(xi) फल, दुग्धादि पथ्य हैं।

8. क्षतज ग्रहणी के लक्षण[2]

अतिसार तथा प्रवाहिका के शान्त होने पर ग्रहणी में क्षत हो जाने के फलस्वरूप यह विकार उत्पन्न होता है। इसमें रक्तमिश्रित द्रवमल का सरण होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार इसे Chronic dysenteric diarrhoea या Ulcerative colitis कह सकते हैं। इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं

(i) बार-बार द्रवमल प्रवृत्ति (Frequently passing of liquid stools)
(ii) आमयुक्त द्रवमल (Mucoid liquid stool)
(iii) रक्तमिश्रित मल प्रवृत्ति Malena (Blood mixed stools)

9. क्षयज ग्रहणी के लक्षण[3]

उदर में आंतो की दीवारों (Intestinal walls), आंतो की सूक्ष्म कोशिकाओं या पित्तधरा कला में जब क्षयकारक जीवाणुओं की उपस्थिति के कारण ग्रहणी विकृत हो जाती है तब उस रोग को क्षयज ग्रहणी कहते हैं। इसके निम्न लक्षण होते हैं—

1. "स्निग्धं स्फीतंभूरि शुक्लं, पाण्डुवर्णं लिङ्गानि स्यु राजपूर्वग्रहण्याम्।
जिह्वा शूक्ष्णा सक्षता, पुरीषं प्रात: प्रातर्वारिषद्वा कदाचित्॥" (सिद्धांत निदान)
2. "प्रवाहिकायां शान्तायां प्रच्छनैरन्त्रज क्षतै:। ग्रहणीसदृशैर्लिङ्गै क्षतजा ग्रहणी भवत् ॥
काले काले प्रवर्त्तते संग्रह ग्रहणीन रा । सहामशोणितं वर्च: स मुञ्चेत् प्रत्यहं क्वचित्॥"
(सिद्धान्त निदान)

आंतो की सूक्ष्म कोशिकाओं या पित्तधरा कला में जब क्षयकारक जीवाणुओं की उपस्थिति के कारण ग्रहणी विकृत हो जाती है तब उस रोग को क्षयज ग्रहणी कहते हैं। इसके निम्न लक्षण होते हैं

(i) पिच्छल मल प्रवृत्ति (Mucous Mixed Stools)
(ii) रक्त मिश्रित मल प्रवृत्ति (Malena)
(iii) अतिसार (Diarrhoea)

10. निर्मोक ग्रहणी के लक्षण[1]

जब सांप की केंचुली के समान आंत्र की झिल्ली (Muscous Membrane) के साथ रक्त मिश्रित मल का शूल सहित निर्हरण हो तो उसे निर्मोक ग्रहणी कहते हैं। यह दीर्घकालानुबन्धी (Chronic) रोग है। यह विकृति वात प्रकृति वाली स्त्रियों के बच्चो में अधिक पाई जाती है इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(i) पिच्छिल मल प्रवृत्ति (Mucous Mixed Stool)
(ii) आंत्र की झिल्ली युक्त मल प्रवृत्ति (Passage of Stools with Intestinal Mucous Membrane)
(iii) मल प्रवृत्ति के समय शूल (Pain during Defaecation)
(iv) बिवन्ध (Constipation)

10. आमज ग्रहणी या साम ग्रहणी के लक्षण[2]

आचार्य चरक ने साम ग्रहणी का उल्लेख किया है। विदग्ध आहार से मूर्च्छित कुपित वातादि दोष जब ग्रहणी में आश्रित होते हैं तब आमज ग्रहणी रोग को उत्पन्न करते हैं। इसके निम्न लक्षण होते हैं-

(i) विष्टम्भ(Constipation) (ii) प्रसेक (Salivation)
(iii) उदर शूल (Pain in abdomen)
(iv) विदाह (Burning Sensation in abdomen)
(v) अरूचि(Anorexia)
(vi) गौरव (Heaviness in body)
(vii) आम/अपक्व अन्न (Undigested food)

साध्यासाध्यता

शास्त्रों में आचार्यों द्वारा ग्रहणी दोष की साध्यता व असाध्यता निम्न प्रकार वर्णित की गई है-

1. "सशूलं चामभूयिष्ठं पिच्छाशोणितसंयुतम्। सर्पनिर्मोक सदृशैरन्त्रान्तर कलामयैः ॥
पुरीषं सह निर्मोकैः सान्द्रं द्रवमथापि वा । मुहुर्यजातिसार्येत विबन्धश्चान्तरान्तरा॥
चिरानुबन्धिनी कृच्छ्रा निर्मोक ग्रहणी तु सा ।" (सिद्धान्त निदान)
2. "ग्रहणीमाश्रितं दोषं विदग्धाहारमूर्च्छितम्। सविष्टम्भप्रसेकार्तिविदाहारूचिगौरवैः ॥
आमलिङ्गान्वितं दृष्टवा दुखोष्णेनाबुनोद्धरेत्॥" (च.चि. 15/73-74)

1. ग्रहणी दुष्टि बालकों में साध्य, युवाओं में कृच्छसाध्य व वृद्ध में असाध्य होती है[1]।
2. वातिक, पैत्तिक, कफज ग्रहणी सुख साध्य हैं। सन्निपातिक ग्रहणी कृच्छ्रसाध्य व घटी यंत्र ग्रहणी असाध्य है। संग्रह ग्रहणी दुश्चिकित्स्य है।
3. जिन लक्षणों से युक्त अतिसार असाध्य है उन्हीं लक्षणों से युक्त ग्रहणी भी असाध्य होती है[2]।

ग्रहणी दोष के उपद्रव[3]

आचार्य गणनाथ सेन ने ग्रहणी दोष के निम्न उपद्रवों का उल्लेख किया है। ये उपद्रव कृच्छ्रसाध्य होते हैं-

1. ज्वर (Fever) 2. शोथ (Oedema)
3. शूल (Pain) 4. हिक्का (Hiccough)
5. वमन (Vomiting) 6. आध्मान (Flatulence)
7. प्रलाप (Delirium) 8. तीव्र अरोचक (Anorexia)
9. श्वास (Dyspnoea) 10. पाण्डु (Anaemia)

सापेक्ष निदान—ग्रहणी दुष्टि का सापेक्ष निदान निम्न व्याधियों से करना चाहिए-

1. अतिसार 2. आमातिसार
3. प्रवाहिका 4. अधोग अम्लपित्त
5. अग्निमांद्य जन्य अन्य उदर रोग।

सापेक्ष निदान प्रदर्शक तालिका

क्र.सं.	ग्रहणी दोष	अतिसार	प्रवाहिका
1.	चिरकारी व्याधि	आशुकारी व्याधि	आशुकारी व्याधि
2.	प्रवाहण नहीं	प्रवाहण नहीं	प्रवाहण अवश्य होता है
3.	मल कभी-कभी सकफ	मल कभी सकफ	मल सदा सकफ होता है
4.	द्रव मल बार-बार अपक्व अन्न युक्त	मल अधिक	मल अधिक नहीं
5.	कार्श्य विशेष	कार्श्य विशेष नहीं	कार्श्य विशेष नहीं

1. "बालके ग्रहणी साध्या यूनि कृच्छ्रा समीरिता। वृद्धे त्वसाध्या विज्ञेया मतं धन्वन्तरेरिदम् ॥" (मा.नि. 4/5)
2. "लिङ्गैरसाध्यो ग्रहणीविकारो यैस्तैरतीसारगदो न सिध्येत्।
वृद्धस्य नूनं ग्रहणीविकारो हत्वा तनुं नैव निवर्तते च॥" (मा.नि 4)
3. "अतिसारग्रहण्याश्च दश द्रष्टा उपद्रवाः। ज्वरः शोथश्च शूलश्च भृशं हिक्का तथा वमि ।
आध्मानं च प्रलापश्च तीवारोचक एव च । श्वासश्च पाण्डुता चेति सम्भवन्ति तु नैकधा॥" (सिद्धान्त नि.

6.	जिह्वा पाक	जिह्वा पाक नहीं	जिह्वा पाक नहीं
7.	आमाशय समुत्थ व्याधि है	पक्वाशय समुत्थ व्याधि है	पक्वाशय समुत्थ व्याधि है
8.	मल के साथ प्रायः रक्त नहीं आता	रक्त आ सकता है	मल के साथ रक्त आ सकता है

चिकित्सा सिद्धान्त[1]

ग्रहणी की चिकित्सा निम्न सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिये।

1. सर्वप्रथम निदान परिवर्जन करें।
2. ग्रहणी आश्रित दोषों की चिकित्सा अजीर्ण रोग के समान करना चाहिये। सर्वप्रथम लंघन व दीपन औषधियों का प्रयोग करना चाहिये[2]।
3. आचार्य चरक ने पक्वाशयस्थ लीन साम दोषों के लिये दीपन औषध व विरेचन कराने का निर्देश दिया है तथा सर्वशरीरगत साम रस होने पर उन्हें लघंन एवं पाचन औषधियां देकर जीतना चाहिये[3]।
4. ग्रहणीगत साम दोष की स्थिति में सुखोष्ण जल या मदनफल, पिप्पली व सर्षप का कषाय देकर वमन कराना चाहिये[4]।
5. आचार्य सुश्रुत ने ग्रहणी दोष में दीपन चिकित्सा को हितकर बताया है[5]।
6. आचार्य वाग्भट् ने ग्रहणी दोष की चिकित्सा अजीर्ण के समान करने का उपदेश किया है[6]।
7. आचार्य चरक ने ग्रहणी रोग में तक्र का प्रयोग उत्तम बताया है[7]।
8. अर्श-अतिसार-ग्रहणी ये तीनों रोग परस्पर एक दूसरे के हेतु होते हैं तथा अग्नि के मंद होने पर उत्पन्न होते हैं, अतः इनकी अग्नि वर्धक (दीपन) चिकित्सा करनी चाहिये[8]।

9. वातज-ग्रहणी का चिकित्सा सूत्र

(i) आम दोष का पाचन करने के पश्चात् वातिक ग्रहणी में दीपनीय द्रव्यों से सिद्ध घृत का सेवन कराना चाहिये[9]।

1. "ग्रहणीमाश्रितं रोगमजीर्णवदुपाचरेत । लंघनैर्दीपनीयैश्च सदाऽतीसार भैषजै॥
2. अतिसरोक्त विधिना तस्यामञ्च विपाचयेत्॥" (भा.प्र.चि. 4/25-26)
3. "लीनं पक्वाशयस्थं वाऽऽप्यामं स्त्राव्यं सदीपनैः। शरीरानुगते सामे रसे लंघनपाचनम् ॥" (च.चि. 15/75)
4. "आमलिङ्गान्वितं दृष्टवा दुखोष्णेनाम्बुनोद्धरेत्। फलानां वा कषायेण पिप्पलीसर्षपंस्तथा ॥" (च.चि. 15/74)
5. "सर्वथा दीपनं सर्वं ग्रहणीरोगिणां हितम्।" (सु.उ. 40/181)
6. "ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत्।"(अ.हृ.चि. 10/1)
7. "तक्रं तु ग्रहणीदोषे दीपनग्राहिलाघवात्। विहिता ग्रहणी दोषे सर्वशस्तान् प्रयोजयेत्॥" (चा.चि. 15/119)
8. "त्रयो विकाराः प्रायेण ये परस्परहेतवः। अंशांसि चातिसारश्च ग्रहणीदोष एव च॥ तस्मादग्निबलं रक्ष्यमेषु त्रिषु विशेषतः॥" (च.चि. 14/244-245)
"ज्ञात्वा तु परिपक्वामं मारूतग्रहणीगदम्। दीपनीययुतं सर्पिः पाययेतात्पशो भिषक्॥" (च.चि. 15/77)

(ii) अग्नि दीप्त होने पर वातानुलोमनार्थ स्नेहन, स्वेदन पश्चात् वातघ्न औषधियों के क्वाथ से निरूह बस्ति देना चाहिये[1]।

(iii) वात शमन होने के बाद शिथिल दोष के निर्हरणार्थ विरेचन देना चाहिये[2]।

(iv) उचित शोधन होने के पश्चात् अनुवासन देना चाहिये[3]।

(v) उपरोक्त क्रियाओं के पश्चात् लघु पेया एवं लघु भोजन का निर्देश देना चाहिये[4]।

10. पित्तज ग्रहणी का चिकित्सा सूत्र

(i) पित्तज ग्रहणी में दोषों का उत्क्लेश होने पर बढ़े हुये पित्त को वमन व विरेचन द्वारा निकाल देना चाहिये[5]।

(ii) दीपन-ग्राही औषध व घृत मिलाकर खट्टे अनार रस से भोजन कराना चाहिये[6]।

(iii) तिक्तक घृत व दीपनीय द्रव्यों के चूर्ण के प्रयोग से जठराग्नि दीप्त करना चाहिये[7]।

11. कफज ग्रहणी का चिकित्सा सिद्धान्त[8]

(i) सर्वप्रथम वमन करायें।

(ii) कटु-अम्ल-क्षार-लवण-एवं तिक्त द्रव्यों का प्रयोग कर अग्नि प्रदीप्त करनी चाहिये।

(iii) अन्न खाने के बाद खट्टा मठ्ठा, तक्रारिष्ट, मदिरा मध्वरिष्ट या स्वच्छ सीधु (निगद मद्य) देनी चाहिये।

1. "किंचित्सन्धुक्षिते त्वग्नौ सक्तविण्मूत्रमारुतम्। द्वयहं त्र्यहं वा संस्नेह्य स्विनाभ्यक्तं निरूहयेत्॥" (च.चि. 15/78)
2. "तत् एरण्डतैलेन सर्पिषा तैल्वकेन वा। सक्षारेणानिले शान्ते स्रस्तदोषं विरेचयेत्॥" (च.चि. 15/79)
3. "शुद्धं रुक्षाशयं वद्धवर्चसं चानुवासयेत्। दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतैलेन मात्राया॥" (च.चि. 15/80)
4. "निरूढं च विरिक्तं च सम्यक् चैवानुवासितम्। लघ्वन्नं प्रतिसंभुक्तं सर्पिरभ्यासयेत पुनः॥" (च.चि. 15/81)
5. "पित्तं ज्ञात्वा विरेकेण निहरेद्वमनेन वा।" (च.चि. 15/122)
6. "दाड़िमाम्लैः ससर्पिष्कैर्दीपनग्राहिसंयुक्तैः॥" (च.चि. 15/124)
7. "तस्याग्नि दीपयेच्चूर्णैः सर्पिभिश्चापि तिक्तकैः॥" (च.चि. 15/124)
8. i) "ग्रहण्यां श्लेष्मदुष्टायां वमितस्य यथाविधि। कट्वम्ललवणक्षारैस्तिक्तैश्चाग्निं विवर्धयेत्॥" (च.चि. 15/141)
ii) "अम्लं चानुपिवेत्तक्रं तक्रारिष्टमथापि वा। मदिरां मध्वरिष्टं वा निगदं सीधुमेव वा॥" (च.चि. 15/145)

12. सन्निपातिक ग्रहणी का चिकित्सा सिद्धान्त[1]

(i) विधिपूर्वक पंचकर्म करायें।

(ii) तत्पश्चात् अग्निवर्धक घृत, क्षार, आसव-अरिष्ट प्रयोग करें।

(iii) सन्निपातिक ग्रहणी में वातिक, पैत्तिक एवं कफज ग्रहणी में प्रयुक्त चिकित्सा को क्रमशः एक के बाद एक करना चाहिये या सभी चिकित्साओं को एक साथ मिलाकर करना चाहिये[2]।

13. दुर्बल अग्नि को तीव्र करने के लिय घृत श्रेष्ठ अग्नि दीपक औषधि है[3]।

14. अपक्व मल का निर्हरण होने पर दीपनीय औषधियों से सिद्ध घृत का प्रयोग करना चाहिये[4]।

15. ग्रहणी दृष्टि से पीड़ित रोगी में कठिनता से सशूल मल प्रवत्ति होने पर नमक एवं घृत एक में मिलाकर उसका प्रयोग भोजन के मध्य करना चाहिये[5]।

चिकित्सा

ग्रहणी रोग की चिकित्सार्थ प्रयुक्त संशोधन व संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार है-

1. संशोधन चिकित्सा

(i) स्नेहन, स्वेदन (ii) वमन
(iii) विरेचन (iv) निरूह बस्ति
(v) अनुवासन बस्ति

2. संशमन चिकित्सा

ग्रहणी चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योग निम्न प्रकार वर्णित हैं-

1. रस/भस्म/पिष्टी-मात्रा-125-250 मि.ग्रा.
अनुपान-जल

(i) अग्नि कुमार रस-पारद, गंधक, वत्सनाभ, त्रिकटु।

1. "त्रिदोषे विधिविद्वैद्यः पञ्चकर्माणि कारयेत्। घृतक्षारासवारिष्टान् दद्याच्चाग्निविवर्धनान्॥" (च.चि. 15/194)
2. "क्रिया या चानिलादीनां निर्दिष्टा ग्रहणीं प्रति। व्यत्यासात्तां समस्तां वा कुर्याद्दोषविशेषवित॥" (च.चि. 15/195)
3. "स्नेहमेव परं विद्यात् दुर्बलानलदीपनम्।" (च.चि. 15/201)
4. "मंदाग्निरविपक्वं तु पुरीषं योऽतिसार्यते। दीपनीयौषधैर्युक्तां घृतमात्रां पिबेत्तु सः॥" (च.चि. 15/202)
5. "काठिन्याद्य पुरीषं तु कृच्छ्रान्मुञ्चति मानवः। सघृतं लवणैर्युक्तं नरोऽन्नावग्रहं पिबेत्॥" (च.चि. 15/204)

(ii) ग्रहणी कपाट रस-हिंगुल, गंधक, वंशलोचन, अफीम, कपर्द भस्म।
(iii) ग्रहणी शार्दूल रस-पारद, गंधक, स्वर्णभस्म, लवंग, निम्बपत्र, जावित्री, जायफल।
(iv) पीयूष बल्ली रस-पारद, गंधक, अभ्रकभस्म, रजत भस्म, लौहभस्म, टंकण, रसांजन, माक्षिक।
(v) नृपति बल्लभ रस- जायफल, लवंग, मुस्तक, दालचीनी, एला, हींग, लौह, अभ्रक, ताम्रभस्म।
(vi) रस पर्पटी- पारद, गंधक।
(vii) लौह पर्पटी- पारद, गंधक, लौह।
(viii) स्वर्ण पर्पटी- पारद, गंधक, स्वर्ण।
(ix) पंचामृत पर्पटी- पारद, गंधक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म एवं ताम्रभस्म।
(x) विजय पर्पटी- पारद, गंधक, रजतभस्म, स्वर्णभस्म, वैक्रान्त, हीरक भस्म, मुक्ताभस्म।
(xi) हिरण्यगर्भ पोट्टली रस- पारद, गंधक, स्वर्णभस्म, मुक्ताभस्म, शंखभस्म, कर्पद भस्म।
(xii) रामबाण रस-पारद, वत्सनाभ, लवंग, गंधक, मरिच, जातीफल।
(xiii) सूतशेखर रस-पारद, गंधक, टंकण, वत्सनाभ, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, बेलगिरी, कचूर।
(xiv) हेमगर्भ पोट्टली रस- पारद, गंधक, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म।
(xv) आनन्दभैरव रस-हिंगुल, वत्सनाभ, त्रिकटु, टंकण, गंधक।

2. वटी- मात्रा- 250-500 मि.ग्रा.।
अनुपान-कोष्ण जल।

अजीर्णोक्त समस्त वटी औषधि का प्रयोग ग्रहणी में भी किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य वटी निम्न प्रकार हैं-

(i) दुग्ध वटी- हिंगुल, लौंग, अफीम, वत्सनाभ।
(ii) शम्बूकादि वटी- शम्बूक भस्म व सैंधव लवण।
(iii) पानीयभक्त वटी-अभ्रकभस्म, लौह किट्ट, बिडंग, त्रिफला, त्रिकटु, दन्ती।
(iv) जातीफलादि वटी-जायफल, टंकण, अभ्रकभस्म, धत्तूर बीज, अफीम।
(v) रसाभ्रवटी-पारद, गंधक, अभ्रक भस्म व काष्ठौषधियां।
(vi) जीरकादिमोदक- जीरा, भांग, लौह, वंग एवं अभ्रक भस्म, तालीसपत्र, जावित्री, जायफल।
(vii) अग्नितुण्डी वटी-पारद, गंधक, विष, अजमोद, कुचला।

(viii) चित्रकादि वटी-द्विक्षार, षडूषण हींग, अजमोद, त्रिलवण।

3. चूर्ण-मात्रा 3-6 ग्राम

अनुपान- उष्ण जल, तक्र।

(i) बिल्व मज्जा चूर्ण-बिल्व मज्जा।
(ii) ईसबगोल चूर्ण-ईसबगोल।
(iii) जातीफलादि चूर्ण-जायफल, बिडंग, चित्रक, तगर, तालीशपत्र, चतुर्जात।
(iv) जीरकाद्य चूर्ण-जीरक, नेत्रवाला, टंकण, मोचरस, बिल्वफल, पाठा, दाड्मित्वक्, मंजीठ।
(v) लवंगाद्य चूर्ण-लवंग, जीरक, सैंधव, अजमोद, भूनिम्ब, गोक्षुर।
(vi) गंगाधर चूर्ण-मुस्ता, पाठा, सोंठ, धाय पुष्प, नेत्रवाला, मोचरस, आम की गुठली।
(vii) दाड़िमाष्टक चूर्ण-दाड़िम, वंशलोचन, दालचीनी, चतुर्जात, अजवाइन, धनिया, जीरा, त्रिकटु।
(viii) पाठाद्य चूर्ण-पाठा, बिल्व, चित्रक, त्रिकटु।
(ix) भूनिम्बादि चूर्ण-चिरायता, सोंठ, कुटकी, मुस्तक।
(x) नागराद्य चूर्ण-सोंठ, अतीस, धातकी, रसोंत, कुटज छाल, पाठा, इन्द्रयव।

4. क्वाथ /आसव-अरिष्ट-मात्रा-20-30 मि.ली.

अनुपान-जल

(i) धान्यकादि क्वाथ-धनिया, अतीस, सुगन्धबाला, मुस्तक, सोंठ।
(ii) धान्यपंचक क्वाथ-धनिया, नागर, मुस्तक, नेत्रबाला, बिल्वमज्जा चूर्ण।
(iii) नागरादि क्वाथ-सोंठ, अतीस एवं मुस्तक।
(iv) चार्तुभद्र क्वाथ-गुडुची, अतीस, सोंठ एवं मोथा।
(v) तिक्तादि क्वाथ-हरड़, रसौंत, शुण्ठी, धातकी, कुटकी।
(vi) मरिचाद्य क्वाथ-मरिच, सोंठ, कुटज छाल।
(vii) मधूकासव-महुआ, बिडंग, चित्रक, भल्लातक।
(viii) दुरालभासव-दुरालभा, दन्ती, आमलकी, चित्रकमूल, हरड़।
(ix) मूलासव- हल्दी, दशमूल, जीवक, ऋषभक।
(x) पिण्डासव-पीपर, गुड़, विभीतक।
(xi) मध्वरिष्ट-पीपर, मधु, बिडंग, वंशलोचन।
(xii) तक्रारिष्ट-अजवाइन, आंवला, हरड, मरिच सैंधव, तक्र।

5. घृत/तैल- मात्रा-10-20 मि.ली.

अनुपान-दुग्ध, कोष्ण जल।

(i) चन्दनाद्य घृत-रक्तचन्दन, खस, पदमकाष्ट,पाठा, गूलर, पीपल, घृत।
(ii) दशमूलाद्य घृत-दशमूल, सरल, देवदारु,त्रिकटु, घृत।
(iii) त्र्यूषणाद्य घृत-त्रिकटु, त्रिफला, गुड़, गोघृत।
(iv) पंचमूलाद्य घृत-बृहत् पंचमूल, एला, त्रिकटु, नमक, यवक्षार, सज्जीक्षार।
(v) बिल्वाद्य घृत-बिल्वमज्जा, त्रिकटु, चव्य, चित्रक, अदरक।
(vi) अष्टपल घृत-त्रिकटु, त्रिफला, बिल्व, गुड़।
(vii) शुण्ठी घृत-शुण्ठी, दशमूल, घृत।
(viii) चित्रक घृत-चित्रक क्वाथ, घृत।
(ix) मरिचाद्य घृत-त्रिकटु, भल्लातक, अजवाइन, बिडंग।
(x) महाषटपल घृत-पंचकोल, सौवर्चल लवण, यवक्षार, दूध, दही, काञ्जी, दशमूलक्वाथ, घृत।

6. पाक/अवलेह- मात्रा-10-20 ग्राम

अनुपान-जल/दूध।

(i) बिल्वावलेह-बिल्वमज्जा, त्रिफला, त्रिकटु, जीरक, मुस्तक, चीनी।
(ii)कल्याण गुड़-आंवला, गुड़, त्रिकटु, गजपीपर, अजवाइन, निशोथ, तैल।
(iii) तक्र हरीतकी-हरड़, तक्र, त्रिफला, पिप्पलीमूल।

7. क्षार प्रयोग-मात्रा- 125 मि.ग्रा.-250 मि.ग्रा.

अनुपान-तक्र, कोष्ण जल

(i) भल्लातक क्षार-भल्लातक, त्रिफला, त्रिकटु, सैंधव, सौचर्वल।
(ii) दुरालभाद्य क्षार-दुरालभा, कंरजद्वय, कुटज, वच, मदनफल।
(iii) भूनिम्बादि क्षार-चिरायता, कुटकी, पटोलपत्र, निम्बछाल, पर्पट, महिषीमूत्र।
(iv) पिप्पली मूलाद्य क्षार- पिप्पलीमूल, पाठा, इन्द्रयव, सोंठ, चित्रक मूल, अतीस, हींग, गोक्षुर।
(v) क्षार गुटिका-स्नुही, सैंधव, विड्नमक, सौवर्चल नमक, कण्टकारी।
(vi) हरिद्राद्य क्षार-हल्दी, दारुहरिद्रा, वच, कूठ, चित्रक, कुटकी।

7. कल्प प्रयोग-ग्रहणी रोग की चिकित्सा में पर्पटी कल्प प्रयोग का उल्लेख सर्वप्रथम चक्रदत्त में मिलता है।

पूर्व में वर्णित पर्पटी (रस पर्पटी, लौह पर्पटी, ताम्र पर्पटी, विजय पर्पटी, पंचामृत पर्पटी) में से किसी एक पर्पटी का चयन पर्पटी कल्प हेतु करते हैं।

(i) वृद्धि क्रम (Increasing Phase)

प्रथम दिन – 100 mg

दूसरे दिन	–	200 mg
तीसरे दिन	–	300 mg
चौथे दिन	–	400 mg
पांचवे दिन	–	500 mg
छठे दिन	–	600 mg
सातवें दिन	–	700 mg
आठवें दिन	–	800 mg
नवें दिन	–	900 mg
दसवें दिन	–	1000 mg या 1gm.

(ii) सम मात्रा क्रम (Stationary Phase)

ग्यारहवें दिन से 20 वें दिन तक – 1 - 1 gm. मात्रा

(iii) ह्रास क्रम (Decreasing Phase)

21 वें दिन	–	900 mg
22 वें दिन	–	800 mg
23 वें दिन	–	700 mg
24 वें दिन	–	600 mg
25 वें दिन	–	500 mg
26 वें दिन	–	400 mg
27 वें दिन	–	300 mg
28 वें दिन	–	200 mg
29 वें दिन	–	100 mg
30 वें दिन	–	100 mg

इस प्रकार एक माह तक $\frac{100mg-1gm}{10दिन}, \frac{1gm}{10दिन}, \frac{1gm-100mg}{10दिन}$

पर्पटी का सेवन कराना चाहिये। पर्पटी कल्प दो प्रकार से कराते हैं-

1. सान्न कल्प-रोगी को पथ्य अन्नादि का सेवन भी साथ में कराते रहते हैं।

2. निरन्न कल्प-रोगी को अन्न न देकर दुग्ध, फल या तक्र सेवन कराते हैं। जिसमें अतिसार हो उन्हें तक्र तथा जिन्हें विबंध हो उन्हें दुग्ध से पर्पटी कल्प कराते हैं।

निषेध-पर्पटी सेवन काल में ककाराष्टक केला, करेला, कूष्माण्ड, खटाई, निम्ब, खांड, शर्करा एवं इक्षु विकार तथा स्त्री सेवन निषेध हैं।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रात : सायं

शंख भस्म	–	250 मि.ग्रा.
पंचामृत पर्पटी	–	250 मि.ग्रा.
भृष्ट जीरक चूर्ण	–	3 x ग्राम
तक्र से		1 x 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर

चित्रकादिवटी	–	2 वटी x 2 मात्रा
तक्रारिष्ट	–	20 मि.ली.
सम जल से		1 x 2 मात्रा

3. बिल्वावलेह – 15 ग्राम
दुग्ध से 1 x 2 मात्रा

4. रात्रि एरण्ड तैल – 20 मि.ली.
दुग्ध से एक मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
पुराण शालि चावल, लाजमण्ड, लाजपेया, मुद्ग यूष, कच्चा केला,जांगल जीवों का मांस रस, तक्र, मसूर, अरहर, बिना मक्खन का दही, बकरी का दूध, दही, घी, तिल तैल, मदिरा, शहद, कमलकन्द, सिंघाड़ा, कैंथ, चांगेरी, जीरा, जामुन, धनिया, बिल्व, कुटज छाल, अदि।	दिवास्वाप, वमन, उपवास, लंघन, अग्नि कर्म, बस्ति आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
गेहूँ, मटर, उड़द, जौ, आर्द्रक, पोई का साग, आलू, कन्द फल, कद्दू, तुम्बी, मीठा सहजन, सुपारी, लहसुन, कांञ्जी, सौवीर, तुषोदक, दूध, गुड़, नारियल की गरी, पत्रशाक, गोमूत्र, यवाक्षार, विरेचक द्रव्य, गुरु द्रव्य, खटाई, नमक, पुआ, पूरी आदि।	विरेचन, रात्रि जागरण, अति जलपान, स्नान, स्त्रीसंसर्ग, वेगधारण, नस्य, अंजन, धूमपान, परिश्रम, विरुद्ध भोजन, आतप सेवन आदि।

Latest Developments

Sprue or Malabsorption Syndrome

आधुनिक मत से ग्रहणी रोग का सामंजस्य Sprue या Malabsorption Syndrome से कर सकते हैं। जब Small lutestines में Fat, Glucose & Vitamins का Absorption किसी कारण वश ठीक से नहीं हो पाता है तब रोगी को सुबह एक या दो बार Froathy एवं Liquid Stool अधिक मात्रा में निकलता है, इसे Sprue कहते हैं।

Causes

1. Inflammation of Small Intestine.
2. Improper & deficient diet.
3. Deficiency of Intrinsic Haematinic Enzymes.
4. Deficiency of Folic acid, Riboflavin, Nicotinic acid or Pyridoxin.

Symptoms

1. Flatulance, dyspepsia.
2. Motions 3-4 times in the morning.
3. Evacuation of Undigested food/stool.
4. Steatorrhoea [Fatty Stool]
5. Weakness.
6. Pallor & Anaemia.
7. Dryness of Skin.
8. Weight loss.

Management : Principles

1. Advise the patient to take skimmed milk 1-2 liters/day.
2. Vit B. Complex, Folic acid.
3. Appropriate Antibiotics.
4. Calcium suppliments to treat Calcium deficiency.
5. Liver tonics & Hepato-protective drugs.

अध्याय-22

भस्मक रोग
(HYPER THYROIDISM)

व्याधि परिचय

पूर्व में मंदाग्नि जन्य विकारों का वर्णन किया गया है। अग्नि की विषमता जन्य विकारों में मंदाग्नि के साथ तीक्ष्णाग्नि जनित विकारों का वर्णन करना भी उचित होगा। इसी क्रम में "भस्मक रोग" का वर्णन किया गया है। यह अग्नि की तीक्ष्णता (वृद्धि) जन्य रोग है जिसमें रोगी द्वारा ग्रहण किया गया आहार अग्नि की तीक्ष्णता के कारण शीघ्र पच जाता है तथा रोगी को बार-बार भूख लगती है और वह अधिक खाता है। इसमें रोगी बराबर भूख से व्याकुल रहता है एवं भोजन न मिलने पर बेचैन हो जाता है तथा अधिक मात्रा में भोजन करने पर भी दिन प्रतिदिन क्षीण होता जाता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसकी तुलना Hyper Thyroidism से कर सकते हैं। आयुर्वेदीय संहिताओं में इसका पृथक् वर्णन उपलब्ध नहीं है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सास्थान अध्याय-15

निदान

1. ऊष्ण, तीक्ष्ण, विदाही पदार्थों का सेवन
2. रुक्षान्न सेवन
3. रात्रि जागरण
4. अतिश्रम
5. वात वर्धक एवं पित्तवर्धक समस्त निदान
6. कफक्षय (कफनाशक) पदार्थों का सेवन

सम्प्राप्ति[1]–उपर्युक्त निदानों के अति सेवन से कफ का क्षय होता है, तथा पित्त प्रकुपित होकर वात के साथ मिलकर अग्नि के स्थान (ग्रहणी) में जाकर अग्नि को बल प्रदान करता है। फलतः जठराग्नि की वृद्धि हो जाती है। बढ़ी हुई अग्नि एवं वायु रुक्ष शरीर में अन्न के गुणों को दबाकर शीघ्र ही पचा देती है। यदि शीघ्र ही और आहार न मिले तो अग्नि अन्नादि को पका कर रक्तादि धातुओं को पचाने लगती है। धातु पाक होने पर दुर्बलता, अनेक रोग एवं मृत्यु भी हो सकती है।

सम्प्राप्ति चक्र

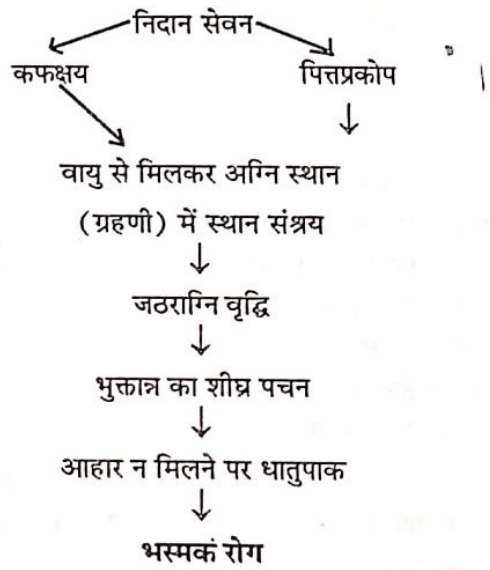

सम्प्राप्ति घटक

दोष	-	वात, पित्त
दूष्य	-	अग्नि, रसादि धातुयें
स्त्रोतस्	-	अन्नवह
अधिष्ठान	-	ग्रहणी
स्त्रोतोदुष्टि	-	अति प्रवृत्ति
अग्नि	-	तीक्ष्णाग्नि

1. "नरे क्षीणे कफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम्। स्वोष्मणां पावकस्थाने बलमग्रेः प्रयच्छति॥ तदा लब्धबलो देहे विरुक्षे सानिलोऽनलः। परिभूय पचत्यन्नं तैक्ष्ण्यादाशु मुहुर्मुहुः॥ पक्त्वाऽन्नं स ततो धातूञ्छोणितादीन पचत्यपि । ततौ दौर्बल्यमातङ्कान्मृत्युं चोपनयेन्नरम्॥" (च.चि. 15/219-220)

स्वभाव - दारुण
साध्यासाध्यता - साध्य

लक्षण[1]

भस्मक रोग के लक्षण निम्न प्रकार हैं-

1. तृष्णा (Polydypsia)
2. श्वास (Dyspnoea)
3. दाह (Burning Sensation)
4. मूर्च्छा (Fainting)
5. क्षुधा वृद्धि (Excessive hunger)
6. बलहानि (Loss of Strength)
7. भार हानि (Weight loss)

चिकित्सा सिद्धान्त—

आचार्य चरक ने ग्रहणी रोग के साथ ही भस्मक रोग का वर्णन किया है। इसके चिकित्सा सिद्धान्त निम्न प्रकार वर्णित हैं-

1. जिस प्रकार बढ़ी हुई अग्नि की शान्ति जल के द्वारा शीघ्र की जाती है उसी प्रकार अग्नि के अत्यन्त तीव्र हो जाने पर गुरु, स्निग्ध, शीतल, मधुर, पिच्छिल अन्नपान के द्वारा इसकी शीघ्र ही शांति करना चाहिये[2]।

2. गुरु-स्निग्ध अन्न से अजीर्ण होने पर भी बार-बार भोजन देना चाहिये[3]।

3. केवल घृत का पान भूख लगने पर कराना चाहिये[4]।

4. स्थिर जल में रहने वाले जलीय जीवों के मांस का सेवन कराना चाहिये[5]।

5. मोम एवं घृत शीतल जल में मिलाकर पिलावे[6]।

6. गेहूँ के आटे को दूध में पकाकर जब वह गाढ़ा हो जावे तो घृत, वसा, मज्जा मिलाकर पिलायें[7]।

1. "तृट्श्वासदाहमूर्च्छाद्या व्याधयोऽत्यग्निसंभवा।" (च.चि. 15/221)
2. "तमत्यग्निं गुरुस्निग्धशीतैमर्धुरविज्जलैः। अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं दीप्तमग्निमिवाम्बुभिः॥" (च.चि. 15/221)
3. "मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यान्यस्योपहारयेत्।" (च.चि. 15/222)
4. "यवागूं समधूच्छिष्टां घृतं वा क्षुधितः पिबेत्।" (च.चि. 15/225)
5. "मत्स्यान्विशेषतः श्लक्ष्णान्स्थिर तोयचरांस्तथा।" (च.चि. 15/224)
6. "पिबेच्छीताम्बुना सर्पिर्मधुच्छिष्टेन संयुतम्।" (च.चि. 15/228)
7. "पयसा संमितं चापि धनं त्रिस्नेहसंयुतम्।" (च.चि. 15/229)

7. जो आहार द्रव्य मधुर, मेदोवर्धक, कफवर्धक, गुरु, हों उनका सेवन कर दिन में शयन करना भस्मक रोग में हितकर है[1]।

चिकित्सा—

भस्मक रोग की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्नानुसार है-

1. संशोधन चिकित्सा

(i) विरेचन कर्म

2. संशमन चिकित्सा-भस्मकरोग की चिकित्सा हेतु किसी विशिष्ट संशमन योग का वर्णन नहीं मिलता है। इस सन्दर्भ में योगरत्नाकर में वर्णित कुछ योग निम्न प्रकार हैं-

(i) अपामार्ग चूर्ण-अपामार्ग
मात्रा - 3 ग्राम
अनुपान - दुग्ध

(ii) अपामार्ग तण्डुल पायस-अपामार्ग के बीजों से निर्मित खीर

(iii) लाक्षा चूर्ण-लाक्षा
मात्रा - 3 ग्राम
अनुपान - दुग्ध

(iv) स्त्री दुग्ध में सिद्ध गूलर छाल की खीर का प्रयोग

(v) विदारीकन्दादि घृत-विदारीकन्द, जीवनीयगण की औषधियां, घृत एवं दूध
मात्रा - 20 मि.ली.
अनुपान - ऊष्ण जल

पथ्यापथ्य- आवश्यकतानुसार

Latest Developments

Hyper Thyroidism

Hyper Thyroidism is the state of Thyriod hormone excess. Autoimmune Grave's disease is the cause in the majority of patients, especially in the young.

Symptoms

1. Weight loss inspite of increased appetite

1. "यत्किञ्चिन्मधुरं मेद्यं श्लेष्मलं गुरुभोजनम्।
सर्वं तदत्यशितं भुक्त्वा प्रस्वप्नं दिवा॥" (च.चि. 15/2)

2. Nervousness
3. Sweating & fatigue
4. Palpitations
5. Tremors
6. Loose stools
7. Warm, moist skin.

Management : Principles

1. To date there is no treatment to correct the immune system dysfunction. Therefore the treatment is directed to correcting the clinical & biochemical abnormalities.
2. In chronic cases sub-total Thyroidectomy is indicated.
3. Treatment could be with drugs, radioactive lodine admininstration.
4. Ensure sufficient calories to prevent weight loss.
5. Repeat Thyroid tests twice a year.

अध्याय-23

छर्दि

(VOMITING)

व्याधि परिचय

मुख से कफ व पित्त मिश्रित अन्न का बाहर निकलना 'छर्दि' कहलाता है। छर्दि अनेक रोगों के लक्षण या उपद्रव के रुप में मिलती है। जब बिना किसी रोग के लक्षण या उपद्रव के छर्दि उत्पन्न होती है तब उसे छर्दि रोग कहते हैं।

निदान सेवन से अकस्मात् उत्क्लेशित दोष मुख को आच्छादित कर अंग प्रत्यंङ्ग को तोड़ते हुये मुखमार्ग से जब बाहर निकलते हैं तो उसे छर्दि रोग कहा जाता है। आचार्य चरक व सुश्रुत ने छर्दि का स्वतंत्र अध्याय के रुप में वर्णन किया है।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

छर्द वमने "धातु में णिच् प्रत्यय लगाने से 'छर्दि' शब्द बनता है।

1. "छादयति मुखम् अर्दयति चाङ्गानीति छर्दिः।" (विजय रक्षित)

अर्थात्-मुख का आच्छादन एवं अंङ्गो का अर्दन एक साथ होना छर्दि है।

2. "उर्ध्वातिदोषप्रवृत्त रुपा छर्दिरुच्यते।" (च.चि. 20/1 पर चक्रपाणि)

उर्ध्वमार्ग से अतिप्रवृत्त दोष का निकलना छर्दि है।

3. "छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभङ्गनैः निरुच्यते छर्दिरिति।" (सु.उ. 49/6)

अर्थात्-दोषों का मुख को आच्छादित करके अंङ्गों को पीड़ित करते हुये बाहर निकलना छर्दि है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरकसंहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 20
2. सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र-अध्याय 49
3. अष्टाङ्ग हृदय, निदान स्थान-अध्याय 5

4. अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान-अध्याय 6
5. माधव निदान-अध्याय 15
6. भाव प्रकाश-अध्याय 17

सामान्य निदान [1]

संहिता ग्रंथों में छर्दि के निम्न सामान्य निदान वर्णित किये गये हैं-

1. अतिद्रव, स्निग्ध भोजन का सेवन।
2. असात्म्य, अप्रिय, अतिमात्रा में अकाल में भोजन।
3. आम दोष।
4. भय एवं उद्वेग।
5. अजीर्ण एवं कृमि दोष।
6. अध्यशन
7. सगर्भावस्था (First trimester of Pregnancy)

छर्दि के दोषानुसार विशिष्ट निदान

दोषानुसार छर्दि के विशिष्ट निदान निम्न प्रकार हैं-

1. वातज छर्दि के निदान[2]

(i) व्यायाम। (ii) तीक्ष्ण औषध।
(iii) शोक एवं भय। (iv) किसी रोग के कारण।
(v) उपवास जनित।

2. पैत्तिक छर्दि के निदान[3]

(i) कटु-अम्ल-विदाही ऊष्ण पदार्थों का अति सेवन। (ii) अजीर्ण होने पर।

3. कफज छर्दि के निदान[4]

(i) स्निग्ध एवं गुरु भोजन। (ii) दिवास्वप्न।
(iii) आम एवं विदाही आहार सेवन।

4. सन्निपातिक छर्दि के निदान[5]

(i) सभी रसों का अनुचित रुप से सेवन।
(ii) ऋतु विपर्यय।
(iii) आमदोष के कुपित होने से।

---

1. "अतिद्रवैरतिस्निग्धैः हृद्यैर्लवणैरति। अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः॥ श्रमात् क्षयात्तथोच्चैर्गादजीर्णात् कृमिदोषतः। नार्य्याश्चिापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः॥ वीभत्सैर्हैतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात्।" (सु.उ. 49/3-5)
2. "व्यायामतीक्ष्णौषधशोकरोगभयोपवासाद्यतिकर्शितस्य।" (च.चि. 20/7)
3. "अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैरामाशये पित्तमुदीर्णवेगम्।" (च.चि. 20/10)
4. "स्निग्धातिगुर्वामविदाहीभोज्यैः स्वप्नादिभिश्चैव कफोऽतिवृद्धः।" (च.चि. 20/12)
5. "समश्नतः सर्वरसान् प्रसक्तमामप्रदोषर्तुविपर्ययैश्च।" (च.चि. 20/14)

5. द्विष्टार्थ संयोगज या आगन्तुज छर्दि के निदान[1]

(i) मन को अप्रिय एवं अहित कर गंध व भोजन का सेवन।
(ii) भोजन में मक्खी या कीड़े पड़ना।

सम्प्राप्ति[2]

निदान सेवन से कुपित दोष (कफ एवं वायु) आम एवं अग्निमांद्य उत्पन्न करते हैं जिससे आमाशय में उत्क्लेश होता है। उत्क्लेश होने पर वायु इन उत्क्लिष्ट दोषों को वेगपूर्वक मुख मार्ग से बाहर निकाल कर छर्दि रोग उत्पन्न करती है।

सम्प्राप्ति चक्र

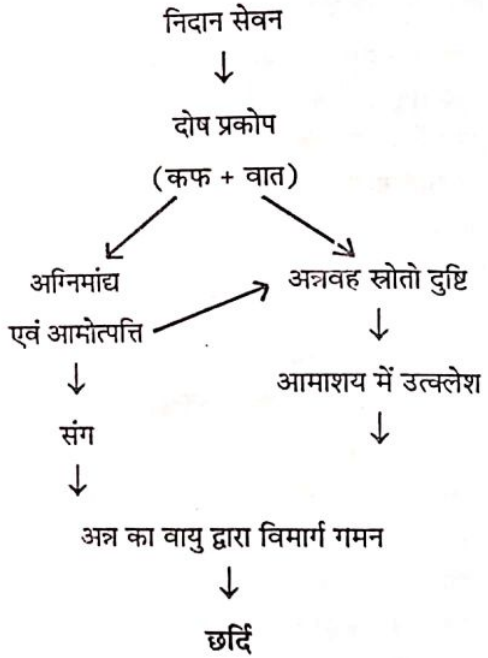

सम्प्राप्ति घटक

दोष	-	वात, कफ
दूष्य	-	अन्न या आहाररस
स्त्रोतस्	-	अन्नवह स्त्रोतस्

1. "द्विष्टप्रतीपाशुचिपूत्यमेध्यवीभत्सगन्धाशनदर्शनैश्च।" (च.चि. 20/18)
2. "वायुर्महास्त्रोतसि संप्रवृद्ध उत्क्लेश्य दोषास्तंत उर्ध्वमस्यन्।
आमाशयोत्क्लेशकृतां च मर्म प्रपीडयंश्छर्दिमुदीरयेत्॥" (च.चि. 20/7)

अधिष्ठान	-	आमाशय
स्त्रोतो दुष्टि	-	संग, विमार्गगमन
स्वभाव	-	आशुकारी
अग्नि	-	मन्दता
साध्यासाध्यता	-	साध्य

भेद—

आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने छर्दि के पांच भेद वर्णित किए हैं-

1. वातिक छर्दि
2. पैत्तिक छर्दि
3. कफज छर्दि
4. सन्निपातज छर्दि
5. द्विष्टार्थ संयोगज[1] या आगन्तुज छर्दि[2]

आचार्य सुश्रुत ने द्विष्टार्थ संयोगज छर्दि न कहकर आगन्तुज छर्दि कहा है तथा इसके निम्न पांच भेद कहे हैं-

(i) वीभत्सजा-वीभत्स पदार्थ की गंध व दर्शन से।
(ii) दौहृदजा-गर्भिणी को होने वाली छर्दि।
(iii) आमजा-आमरस के कारण उत्पन्न छर्दि।
(iv) असात्म्यजा-असात्म्य पदार्थों के सेवन जनित छर्दि।
(v) क्रिमिजा-उदर में कृमि होने से उत्पन्न छर्दि।

पूर्वरूप[3]

छर्दि के पूर्वरूप निम्न प्रकार प्रकट होते हैं-

1. प्रसेक (Salivation)
2. उत्क्लेश (Vomiting Sensation)
3. हल्लास (Nausca)
4. अरुचि (Anorexia)
5. उद्गार रोध (No belching)
6. अन्नद्वेष (No desire for food)
7. लालास्राव का पतला होना (Thin watery salivary secretions)
8. अम्लोद्गार (Acid eructations) मुख का स्वाद नमकीन होना (Salty taste of mouth)

1. "दोषैः पृथक्त्रिप्रभवाश्चतस्रो द्विष्टार्थयोगादपि पंचमी स्यात्।" (च.चि. 20/6)
2. "वीभत्सजा दौहृर्दजाऽऽमजा च ह्यसात्म्यजा च क्रिमिजा च यो हि।
सा पञ्चमी ताञ्च विभावयेच्च दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ॥" (सु.उ. 49/13)
3. i) "तासां हृदउत्क्लेशकफप्रसेको द्वेषोऽशने चैव हि पूर्वरूपम्।" (च.चि. 20/6)
ii) "हल्लासोद्गाररोधौ च प्रसेको लवणस्तनुः। द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम्॥" (मा.नि. 15/5)

सामान्य लक्षण[1]

छर्दि के सामान्य लक्षण निम्न रूप में प्रकट हो सकते हैं-

1. वेग पूर्वक मुख से अन्न की प्रवृत्ति
2. अंगों में पीड़ा
3. मुख वैरस्य

भेदानुसार विशिष्ट लक्षण

छर्दि के विभिन्न भेदों के विशिष्ट लक्षण निम्नानुसार वर्णित हैं-

1. वातिक छर्दि के लक्षण[2]

(i) हृदय व पार्श्व में पीड़ा (Pain in chest & costal region)
(ii) मुख, मस्तक व नाभि में पीड़ा (Pain in mouth, head & umblicus)
(iii) शरीर में सुई चुभने सी पीड़ा (Pricking pain in body)
(iv) प्रबल शब्द युक्त डकार (Noisy belching)
(v) वमन में झाग एवं वमन द्रव्य काला एवं पतला (Thin, froathy & blackish vomitus)
(vi) कष्टदायक वमन (Painful vomiting)

2. पैत्तिक छर्दि के लक्षण[3]

(i) मूर्च्छा (Fainting)
(ii) पिपासा (Polydypsia)
(iii) शिर व नेत्रों में जलन (Burning in head & eyes)
(iv) तमः प्रवेश (Darkness in front of eyes)
(v) भ्रम (Vertigo)
(vi) तृषा (Poly dypsia)
(vii) तालुशोष (Dryness of palate)
(viii) मुखशुष्कता (Dryness of mouth)
(ix) ऊष्ण, पीत, धूम एवं जलन युक्त वमन (Hot, Yellowish, Smoky vomiting with burning)

1. "छादयत्रावनं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः। निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावति॥" (भा.प्र.चि. 17/5)
2. "हृत्पार्श्वपीड़ामुखशोषमूर्धनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः।
उद्गारशब्द प्रबलं सफेनं विच्छिन्न कृष्णं तनुकं कषायम्॥
कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुखम्।" (च.चि. 20/8-9)
3. "मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्धतालवक्षिसंतापतमोभ्रमार्तः।
पीतंभृशोष्णं हरितं सतिक्तं धूम्रं च पित्तेन वमेत् सदाहम्॥" (च.चि. 20/11)

3. कफज छर्दि के लक्षण[1]

(i) तन्द्रा (Drowriness)
(ii) मधुरास्यता (Sweet taste of mouth)
(iii) प्रसेक (Excessive & continuous salivation)
(iv) निद्राप्रवृति (Excessive sleep)
(v) तृप्ति (Feeling of fullness)
(vi) अरूचि (Anorexia)
(vii) शरीर में गुरूता (Heaviness in body)

4. सन्निपातज छर्दि के लक्षण[2]

(i) उदरशूल (Pain in aldomen)
(ii) भोजन का यथासमय पाक न होना (Delayed digestion)
(iii) अरुचि (Anorexia)
(iv) दाह (Burning)
(v) तृष्णा (Polydypsia)
(vi) श्वास (Dyspnoea)
(vii) प्रमोह (Stupor)
(viii) लवण, अम्ल, ऊष्ण, गाढ़ा नीले रंग का रक्त युक्त वमन (Acidic, salty, thick, bluish vomitus mixed with Blood)

5. द्विष्टार्थ संयोगज छर्दि के लक्षण

यह सामान्य छर्दि है तथा गम्भीर नहीं होती। द्वेष युक्त गंध के सूंघने या द्वेष युक्त पदार्थ के दर्शन से रोगी को वमन हो जाता है।

आचार्य सुश्रुत ने आगन्तुज छर्दि के अन्तर्गत वीभत्सजा छर्दि में इसका अन्तभवि किया है। कृमिजन्य आगन्तुज छर्दि के लक्षण निम्न प्रकार हैं[3]-

(i) उदर शूल (Pain in abdomen)
(ii) हल्लास बहुलता (Excessive nausea)
(iii) क्रिमिज हृद्रोग सम लक्षण होते हैं।

1. "तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्रारुचिगौरवार्तः।
स्निग्धं घनं स्वादु कफाद् विशुद्धं सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत् तु॥" (च.चि. 20/12-13)
2. "शूलाविपाकारुचि दाह तृष्णा श्वास प्रमोहप्रबला प्रसक्तम्।
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्ल नील सान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात्॥" (च.चि. 20/14-15)
3. "शूलहल्लासबहुला क्रिमिजा च विशेषतः। क्रिमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता॥" (सु.उ. 49/14)

साध्यासाध्यता[1]

1. दुर्बल एवं क्षीण व्यक्ति में वमन का वेग अधिक रूप में हो।
2. छर्दि के साथ श्वास व कास अधिक हो।
3. रक्त एवं पूय युक्त छर्दि हो।
4. छर्दि लगातार होती रहे।
5. वमन से निकले पदार्थ में चन्द्रिकायें दिखलाई दें।
6. वमन से निकले पदार्थ में मल मूत्र की गंध व वर्ण हो।

इन लक्षणें से युक्त छर्दि असाध्य होती है। उपर्युक्त लक्षणों से रहित छर्दि साध्य होती है[2]।

उपद्रव[3]

छर्दि के उपद्रव आचार्य माधवकर ने वर्णित किये हैं जो निम्न हैं-

1. कास (Cough)
2. श्वास (Dyspnoea)
3. ज्वर (Fever)
4. हिक्का (Hiccough)
5. तृष्णा (Polydypsia)
6. वैचित्य (Restlessness)
7. हृद् रोग (Cardiac Disordess)
8. तम (Darkness infront of eyes)

उपर्युक्त उपद्रव युक्त छर्दि भी असाध्य होती है।

चिकित्सा सिद्धान्त

छर्दि की चिकित्सा के मुख्य सिद्धान्त निम्न प्रकार वर्णित हैं-

1. सभी छर्दि आमाशयोत्लेश से उत्पन्न होती हैं अतः संशोधन चिकित्सा महत्वपूर्ण है[4]।
2. छर्दि में लंघन, आमपाचन व आमाशय शुद्धि कराना चाहिये।
3. वातज छर्दि में लंघन तथा संशोधन नहीं कराना चहिये[5]।
4. वातज छर्दि में घृतपान व मांसरस का प्रयोग हित कर होता है[6]।

1. "क्षीणस्योपद्रवैर्युक्तां सासृक्पूयां सचन्द्रिकाम्। छर्दिं प्रसक्तां कुशलो नारभेतचिकित्सितुम्॥" (सु.उ.त. 49/15)
2. "क्षीणस्यया छर्दिरतिप्रवृद्धा सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता।
सचन्द्रिकां तां प्रवदन्त्यसाध्यां साध्यां चिकित्सेदनुपद्रवां च॥" (च.चि. 20/19)
3. "कासः श्वासो ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्यमेव च। हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः॥" (मा.नि. 15/15)
4. "आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मता लंघनमेव तस्मात्।" (च.चि. 20/20)
5. "प्राक्कारयेन्मारुतजां विमुच्य संशोधनं वा कपुपित्तहारि।" (च.चि. 20/20)
6. "वातात्मिकयां हृदयद्रवार्तो नरः पिबेत् सैन्धववद् घृतं तु।" (च.चि. 20/24)

5. पित्तज छर्दि में वमन द्वारा दोषानुलोमन करना चाहिये। संशोधन पश्चात् पेया, यूष व मांस रस का सेवन करायें[1]।
6. कफज छर्दि में भी वमन कर्म श्रेष्ठ चिकित्सा है[2]।
7. अति प्रवृत्त वमन वेग में शुद्ध मनःशिला को नींबू के रस तथा मधु से या पिप्पली चूर्ण में मरिच मिलाकर पिलाना चाहिये[3]।
8. सन्निपातिक छर्दि में दोष, ऋतु, रोग एवं अग्निबल का विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये। वमन कर्म श्रेष्ठ है[4]।
9. द्विष्टार्थ संयोगज छर्दि में मनोऽनुकूल वचन, आश्वासन अनुकूल आहार-विहार आदि का सेवन कराना चाहिये[5]।
10. वमन के उपद्रवों की चिकित्सा उनके चिकित्सा विकारों में वर्णित औषधियों द्वारा करनी चाहिये[6]।
11. लगातार छर्दि होने पर धातुक्षय होने से वात की वृद्धि हो जाती है। अतः वात नाशक, स्तम्भन एवं बृंहण चिकित्सा करनी चाहिये[7]।

चिकित्सा

छर्दि की चिकित्सा में प्रयुक्त संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्न प्रकार वर्णित है-

1. संशोधन चिकित्सा

(i) वमन (मदनफल या अन्य वामक द्रव्य से)
(ii) विरेचन (हरीतकी + मधु चूर्ण से)

2. संशमन चिकित्सा-छर्दि की चिकित्सा में शास्त्रों में वर्णित विभिन्न संशमन योग निम्नानुसार हैं-

1. रस /भस्म /पिष्टी मात्रा-125-250 मि.ग्रा.
अनुपान - मधु/जल

1. "पित्तात्मिकायामनुलामनार्थं द्राक्षाविदारीक्षुरसेस्त्रिवृत् स्यात्।" (च.चि. 20/26)
2. "कफाशयस्थं त्वतिमात्रवृद्धं पित्तं हरेत् स्वादुभिरूर्ध्वमेव।" (च.चि. 20/26)
3. "मनःशिलायाःफलपूरकस्य रसैः कपित्थस्य च पिप्पलीनाम्।
क्षौद्रेण चूर्णं मरिचैश्च युक्तं लिहञ्जयेच्छर्दिमुदीर्णवेगाम्॥" (च.चि. 20/39)
4. "दोषर्तुरोगाग्निबलान्यवेक्ष्य प्रयोज्येच्छस्त्रविदप्रमत्तः।" (च.चि. 20/40)
5. "मनोभिघाते तु मनोनुकूला वाचः समाश्वासनहर्षणानि॥" (च.चि. 20/41)
6. "छर्द्युत्थितानां च चिकित्सतात् स्यात् चिकित्सितं कार्यमुपद्रवाणाम्।" (च.चि. 20/45)
7. "वमिप्रसंङ्गात् पवनोऽप्यवश्यं धातुक्षयाद् वृद्धिमुपैति तस्मात्।
चिरप्रवृत्तास्वनिलापहानि कार्याण्युपस्तम्भनवृंहणानि॥" (च.चि. 20/46)

(i) छर्दि रिपु रस-पारद, गंधक, नाग, वंग, लौह, अभ्रक भस्म।
(ii) सूतशेखर रस-धत्तूर, त्रिकटु, स्वर्ण, टंकण, वत्सनाभ, चतुर्जात, शंखभस्म।
(iii) वमन कुठार रस-गंधक, शिलाजीत, टंकण, श्रृंगभस्म।
(iv) मयूरपिच्छभस्म-मोर पंख।
(v) मनः शिलादियोग-मनः शिला, पिप्पली, मरिच।
(vi) रसेन्द्रयोग-स्याह जीरा, धनिया, छोटी पिप्पली, पारद, गंधक, त्रिकटु।
(vii) वृषध्वज रस-पारद, गंधक, लौहभस्म, मुलैठी, श्वेतचन्दन, टंकण।

2. वटी मात्रा-250-500 मि.ग्रा.
अनुपान- जल

(i) एलादि वटी-एला, त्वक्, द्राक्षा, पिप्पली।
(ii) लवंगादि वटी-लवंग, मरिच, विभीतक, खदिर।

3. चूर्ण मात्रा- 3-6 ग्राम
अनुपान - जल

(i) एलादि चूर्ण- एला, लवंग, नागकेशर, धान का लावा, बिल्वमज्जा।
(ii) विडंगादि चूर्ण-विडंग, त्रिफला, सौंठ।
(iii) लाजादि चूर्ण-धान का लावा, कैंथ, पीपर, मरिच।
(iv) अविपत्तिकर चूर्ण- त्रिफला, त्रिकटु, लवंग, निशोथ, त्रिजात, मिश्री।

4. क्वाथ मात्रा- 20-30 मि.ली.
अनुपान -जल

(i) जम्बवादि क्वाथ-जामुन, आम्रपल्लव, खस, हाऊबेर।
(ii) गुडुच्यादि क्वाथ-गुडुची, त्रिफला, निम्बछाल, पटोलपत्र।
(iii) पर्पटक क्वाथ-पित्तपापड़ा, शहद।
(iv) चन्दनादि क्वाथ-श्वेत चन्दन, खस, गन्धबाला शुंठी, वासा, आंवला, धान का लावा।
(v) धात्र्यादि पानकः-धात्री, द्राक्षा, मिश्री।

5. घृत मात्रा-10-30 मि.ली.
अनुपान-ऊष्ण जल/दुग्ध

(i) पद्मकाद्य घृत-पद्मकाठ, गुडुची, नीम, धनिया, चन्दन, घृत।
(ii) त्र्यूषण घृत-त्रिफला, त्रिकटु, घृत।
(iii) कल्याण घृत-त्रिफला, दारुहरिद्रा, देवदारु, अनन्तमूल, सारिवा।
(iv) सर्पिगुड़-क्षतक्षीणोक्त।
(v) जीवनीय घृत-दशमूल, आमलकी, इक्षुरस, दुग्ध, मेदा, महामेदा, गंभारी।

6. पाक/अवलोह मात्रा - 10-20 ग्राम
अनुपान- दूध

(i) जात्यादि लेह-आंवला, कपित्थ, पिप्पली, मरिच।
(ii) कोलमज्जादि लेह-बेर, आंवला, मक्खी की विट्, मधु, पीपर।
(iii) हरीतकी चूर्ण लेह-हरीतकी चूर्ण + शहद।
(iv) चन्दन कल्क लेह-चन्दन, आमलकी, खस, सौंठ।

आदर्श व्यवस्था पत्र

प्रातः सायंम्

1. वमन कुठार रस - 250 मि.ग्रा.
   शंख भस्म - 250 मि.ग्रा.
   मयूर पिच्छ भस्म - 500 मि.ग्रा.
   शहद से 1 × 3 मात्रा
2. भोजनोत्तर चूषणार्थ
   एलादि वटी - 6 वटी, दिनभर में
3. जात्यादि लेह 15 ग्राम
   दूध से 1 × 3 मात्रा
4. सैंधव लवण + घृत मिलाकर पिलायें।
5. पथ्य आहार-विहार

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
पुराण यव, गोधूम, शालि चावल, मूंग, चना, हरित शाक, गोदुग्ध, धान का लावा, तीतर, लावा, बटेर का मांस रस, नींबू, अनार, एला, लवंग, जीरक, सौंफ आदि।	वमन, विरेचन, स्नान, शरीर शुद्धि सुगंधित लेप का प्रयोग, नाभि से ऊपर अग्निकर्म आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
विरोधी अन्न, सेम, बिम्बीफल, कटुतोरई, महुआ, चित्रक मूल, सरसों, कुन्दुरु, द्रव पदार्थ आदि।	व्यायाम, नस्य, बस्तिकर्म, स्वेदन, स्नेह पान, वीभत्स दृश्य, दूषित जल, रक्त मोक्षण, डर, उद्वेग, आदि।

Latest Developments

Vomiting

आधुनिक मत से लक्षणें के आधार पर छर्दि को Vomiting कहा जाता है। इसके निम्न तीन कारण हो सकते हैं-

1. Brain के Vomiting centre के उत्तेजित होने से

(i) Brain tumor (ii) Meningitis

(iii) Increased intra cranial pressure due to any reason.

2. Reflex क्रिया जन्य

(i) Flatulance (ii) Indigestion (iii) Gastritis

3. **Toxic Vomiting**-Due to intake of any toxic agents like poison, chemicals etc.

Management : Principles

1. To treat the main-cause first like Gastritis, Hyperacidity, Poisoning etc.
2. Antacids
3. Anti emetic drugs
4. Patient should be advised to take light food.
5. Avoid Tea, Coffee, Alcohol & Cigarrete smoking.
6. Avoid overeating & lying down for 3 hour's after eating.
7. Maintain Fluid / Electrolyte balance of body.

अध्याय-24

गुल्म रोग

(PAINFUL LUMP)

व्याधि परिचय

'गुल्म' का अर्थ है संघात। प्रतान रहित लताओं के लिये गुल्म शब्द का प्रयोग हुआ है। संहिताओं में स्पष्ट कहा गया है कि जिस प्रकार एक मूल से अनेक शाखायें निकलती हैं उसी प्रकार एक मूल कारण वायु के द्वारा अनेक प्रकार के गुल्म की उत्पत्ति होती है। साथ ही इसकी आकृति भी संघातमय लताओं तथा वृक्षों की तरह होती है[1]।

आचार्यों ने गुल्म को चयापचयवान् तथा "संचारी यदि वाऽचलः" कहा है एवं यह घटता बढ़ता रहता है[2]। गुल्म में वात दोष मुख्य रूप से प्रभावी होता है परन्तु इसके साथ अन्य दोष पित्त एवं कफ का भी अनुबन्ध रहता है। उसे आचार्यों ने "स्वतंत्र परसंश्रयो वा" कहा है[3] अर्थात् पक्वाशय वात का स्थान है अतः पक्वाशयस्थ गुल्म (वातिक गुल्म) स्वतंत्र होता है। किन्तु आमाशय एवं पित्ताशय में वायु परतन्त्र होती है, अतः पित्तज व कफज गुल्म परतन्त्र होता है। आचार्य सुश्रुत गुल्म को अपाकी मानते हैं, परन्तु आचार्य चरक पित्तज एवं रक्तज गुल्म को मन्दपाकी मानते हैं[4]। रक्तज गुल्म केवल स्त्रियों में होता है एवं इसकी चिकित्सा दस मास बीत जाने पर करने का विधान है[5]।

---

1. "कुपितानिलमूलत्वाद् गूढमूलोदयादपि। गुल्मवद्वा विशालत्वाद् गुल्म इत्यवधीयते॥" (सु.उ. 42/6)
2. "हृद्वस्त्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः। चयापयवान् वृत्तः स गुल्म इति कीर्तितः॥" (सु.उ. 42/4)
3. "पक्वाशये पित्तकफाशये वा स्थितः स्वतंत्रः परसंश्रयो वा।
स्पर्शोपलभ्यः परिपिण्डितत्वाद् गुल्मो यथादोषमुपैति नाम॥" (च.चि. 5/7)
4. i) "अन्तः सरति यस्माच्च न पाकमुपयात्यतः।" (सु.उ. 42/7)
ii) "रक्तपित्तातिवृद्धत्वात् क्रियामनुपलभ्य च।
यदि गुल्मो विदह्येत शस्त्रं तत्र भिषग्जितम्॥" (च.चि. 5/39)
5. "मासे व्ययतीते दशमे चिकित्स्यः॥" (च.चि. 5/19)

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

गुड-रक्षणे, 'वेष्टने' धातु से गुल्म शब्द बनाता है, इसका अर्थ है संघात।

"कुपितानिलमूलत्वाद गूढ़मूलोदयादपि।
गुल्मवद्वा विशालत्वाद् गुल्म इत्यभिधीयते॥" (सु.उ.42/5)

अर्थात् विगुणित वायु होने से अथवा गूढ़ मूलकन्दादि के सदृश इसकी उत्पत्ति होने से या गुल्म के समान अथवा गांठ जैसी प्रतीत होने के कारण इस रोग को गुल्म कहते हैं।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, निदान स्थान - अध्याय 3
2. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान - अध्याय 5
3. सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र - अध्याय 42
4. अष्टांङ्ग संग्रह, निदान - अध्याय 11
5. अष्टाङ्ग संग्रह, चिकित्सा स्थान - अध्याय 13
6. अष्टाङ्ग हृदय, निदान स्थान - अध्याय 13
7. अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान - अध्याय 14
8. माधव निदान - अध्याय 28

गुल्म के स्थान

आचार्यों ने हृदय प्रदेश, नाभि प्रदेश, दोनों पार्श्व व बस्ति ये पांच गुल्म के स्थान माने हैं[1]।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार Abdomen के 9 भागों से इसका साम्य कर सकते हैं-

	हृदय प्रदेश		
दक्षिण पार्श्व	Rt. Hypochondrium	Epigastrium	Lt. Hypochondrium
	Rt. Lumbar region	Umblicus नाभि प्रदेश	Lt. Lumbar region
	Rt illiac region	Hypogastrium वस्ति प्रदेश	Lt. illiac region

वाम पार्श्व

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र मे वर्णित Lumps से इसका साम्य कर सकते हैं। उदरगुहा Abdomen में स्थित Painful Lumps को गुल्म कहते हैं।

1. i) "गुल्मस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः।" (मा.नि. 28/1)
   ii) "बस्तौ च नाभ्यां हृदि पार्श्वयोर्वा स्थानानि गुल्मस्य भवन्ति पञ्च॥" (च.चि. 5/8)

गुल्म के निदान[1]

गुल्म के निदान संहिता ग्रंथों में निम्न प्रकार बतलाये गये हैं-

1. पुरीष, कफ तथा पित्त का अधिक निकल जाना।
2. वेगधारण।
3. बाह्य अभिघात।
4. रुक्ष अन्नपान का अधिक सेवन।
5. शोक।
6. पंचकर्म का ठीक से न हो पाना।
7. कठिन रास्तों पर चलना।
8. शारीरिक कुचेष्टाओं से।
9. अधिक दबाव पड़ना।
10. किसी रोग के कारण दुर्बल होने पर।

सम्प्राप्ति[2]

उपर्युक्त निदानों के सेवन से कुपित वायु कफ एवं पित्त को उभार कर अपने स्थान से निकालकर एवं कफ-पित्त द्वारा अपने मार्गों को रोककर तथा मार्गों के बंद हो जाने से स्वयं अधः प्रदेश में नहीं जाती है। अतः वह वायु हृदय, नाभि, पार्श्व, उदर एवं बस्ति में शूल उत्पन्न करती है। यह वायु पक्वाशय, पित्ताशय व आमाशय में स्वतंत्र या परतंत्र रुप में पिण्डरुप में हो जाने के कारण स्पर्श द्वारा जानी जा सकती है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन
↓
वात प्रकोप
↓
कफ-पित्त दुष्टि
↓
कफ-पित्त द्वारा वायु का मार्गावरोध
↓
कुपित वायु का ऊर्ध्व गमन

1. "विट्श्लेष्मपित्तातिपरिस्रवाद्वा तैरेव वृद्धैः परिपीडनाद्वा।
   वेगैरुदीर्णैर्विततैरधो वा बाह्याभिघातैरतिपीडनैर्वा॥
   रुक्षान्नपानैरतिसेवितैर्वा शोकेन मिथ्याप्रतिकर्मणा वा।
   विचेष्टितैर्वा विषमातिमात्रैः कोष्ठे प्रकोपं समुपैति वायुः॥" (च.चि. 5/4-5)
2. "कफं च पित्तं च स दुष्टवायुरुद्धूयमार्गान् विनिबद्धयताभ्याम्।
   हृन्नाभिपार्श्वोदरवस्तिशूलं करोत्येधो याति न बद्धमार्गात्॥
   पक्वाशये पित्तकफाशये वा स्थितः स्वतंत्रः परसंश्रयो वा।
   स्पर्शोपलभ्यः परिपिण्डितत्वाद् गुल्मो यथादोषमुपैति नाम॥" (च.चि. 5/6-7)

↓

पार्श्व-हृदय-बस्ति-उदर-नाभि
में शूल उत्पत्ति

↓

परिपिण्डित वायु का गुल्मवत् होना

↓

गुल्म रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष - वात-पित्त-कफ
स्रोतस् - अन्नवह व महास्रोतस्
स्रोतो दुष्टि - संग, विमार्गगमन
साध्यासाध्यता - साध्य

दूष्य - निराश्रय
अधिष्ठान - पार्श्व, हृदय, नाभि, बस्ति
स्वभाव - चिरकारी

भेद

आचार्यों ने गुल्म के निम्न पांच भेद किये हैं-

1. आचार्य चरक, सुश्रुत, मधुकोशकार के मत से पांच प्रकार के गुल्म वर्णित किये गये हैं[1]-

(i) वातिक गुल्म
(ii) पैत्तिक गुल्म
(iii) कफज गुल्म
(iv)सन्निपातज गुल्म (निचय गुल्म)
(v) रक्तज गुल्म

2. आचार्य वागभट्ट ने दो गुल्म और माने हैं-

(i) अन्तर्गुल्म
(ii) बाह्य गुल्म

3. अष्टाङ्ग संग्रह व अष्टांङ्ग-हृदयकार ने 8 प्रकार के गुल्म वर्णित किये हैं[2]-

(i) वातज
(ii) पित्तज
(iii) कफज
(iv) सन्निपातज
(v) वात-पित्तज
(vi) वात-कफज
(vii) कफ-पित्तज
(viii) रक्तगुल्म

पूर्व रूप[3]

गुल्म के पूर्व रूप निम्न प्रकार प्रकट होते हैं-

1. "इह खलु पञ्च गुल्माः भवन्ति तद्यथा वातगुल्मः, पित्तगुल्मः, श्लेष्मगुल्मो, निचयगुल्मः, शोणितगुल्म इति॥" (च.नि. 3/3)
2. गुल्मोऽष्टधा पृथग्दोषैः संसृष्टैर्निचयं गतैः।
आर्तवस्य च दोसेण नारीणां जायतेऽष्टमः॥ (अ.स.नि. 11/34)
3. "उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्ध तृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि।
आटोपमाध्मानमपक्तिंशक्तिमासन्नगुलमस्य वदन्ति चिन्हम्॥" (अ.ह.नि. 11/63)

1. उद्गार बाहुल्य (Excessive belching)
2. मलबद्धता (Constipation)
3. तृप्ति (Fullness of abdomen)
4. असामर्थ्य (Inability to work)
5. आंत्र कूजन (Gargling sound of Abdomen)
6. आटोप (Flatulence)
7. आध्मान (Tympanitis)
8. अपक्ति (Indigestion)
9. दौर्बल्य (Weakness)

पूर्वरूप में अविपाक (अपक्ति Indigestion) एवं आटोप (Flatulence) प्रधान हैं।

सामान्यलक्षण[1]

गुल्म के सामान्य लक्षण शास्त्रों में निम्न प्रकार वर्णित हैं-

1. हृदय व नाभि के बीच उत्पन्न, कभी घटने व कभी बढ़ने वाली ग्रंथि (Variable Abdominal Lump)
2. अरुचि (Anorexia)
3. मल मूत्र व अपान वायु अवरोध (Obstruction of urine, faeces & flatus)
4. आनाह (Flatulence)
5. उद्गार बाहुल्य (Excessive belching)

विशिष्ट निदान एवं लक्षण

गुल्म के भेदानुसार विशिष्ट निदान एवं लक्षण निम्नानुसार वर्णित हैं-

1. वातिक गुल्म के निदान[2]

(i) रुक्षान्न अति सेवन
(ii) विषमाशन या अध्यशन
(iii) आलस्य
(iv) वेगधारण
(v) शोक
(vi) अभिघात
(vii) अति मल क्षय
(viii) उपवास

1. "अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रवातताऽन्त्रविकूजनम्।
आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत्॥" (मा.नि. 28/5)
2. "रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टितं वेगविनिग्रहश्च।
शोकोऽभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगूल्म हेतु॥" (च.चि. 5/9)

उपरोक्त कारणों से कुपित हुई वायु वातिक गुल्म को उत्पन्न करती है और इसके लक्षण निम्न हैं-

वातिक गुल्म के लक्षण[1]

(i) हृदय एवं कुक्षि में शूल (Pain in chest & abdomen)
(ii) मुख व गले में शोष (Dryness of throat & mouth)
(iii) चल गुल्म (Mobile Lump)
(iv) शीतपूर्वक ज्वर (Fever with chills)
(v) अन्नपाक देर से होता है (Delayed digestion of food)
(vi) खाली पेट दर्द बढ़ता है (Pain increases on empty stomach)
(vii) भोजन लेने पर गुल्म शमन (Regresion of lump after meals)
(viii) पुरीष अप्रवृत्ति (Constipation)
(ix) अपान वायु अप्रवृत्ति (Flatus obstruction)
(x) शैथिल्य (Looseness of body)

2. पित्तज गुल्म के निदान[2]

(i) अम्ल-ऊष्ण-तीक्ष्ण कटु आहार सेवन (ii) क्रोध
(iii) अति मद्यपान (iv) सूर्य तथा आतप सेवन
(v) आम रस (vi) रक्त दुष्टि

उपरोक्त समस्त कारणों से पित्त व रक्त की दुष्टि होकर पैत्तिक गुल्म उत्पन्न होता है इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं-

पित्तज गुल्म के लक्षण[3]

(i) ज्वर (Fever)
(ii) पिपासा (Polydypsia)
(iii) शरीर का वर्ण लाल होना (Reddish texture of body)
(iv) भोजन के पाक होने पर बढ़ता है (Lump increases after digestion)
(v) स्वेदाधिक्य (Excessive perspiration)

1. "यः स्थानसंस्थान रूजां विकल्पं विड्वातसङ्गः गलवक्त्रशोषम्।
श्यावारूणत्वं शिशिरंज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजं च॥
करोति जीर्णेऽभ्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च।
वातात् स गुल्मो न च तत्र रुक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते॥" (च.चि. 5/10-11)
2. "कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरुक्षक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा।
आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तभुक्तम्॥" (च.चि. 5/12)
3. "ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यते भोजने च।
स्वेदो विदाहो व्रणवक्त्र गुल्म स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरुपम्॥" (च.चि. 5/

(vi) उदर प्रदेश में दाह (Burning in abdomen)
(vii) गुल्म प्रदेश पर स्पर्शासह्यता (Tenderness over affected part)

3. कफज गुल्म के निदान[1]

(i) शीत, गुरु, स्निग्ध आहार का अति सेवन। (ii) बैठे रहना, परिश्रम न करना।
(iii)अतिभोजन। (iv) दिवास्वप्न।

इन निदानों के सेवन से कुपित कफ कफज गुल्म को उत्पन्न करता है। इसके निम्न लक्षण हैं-

कफज गुल्म केलक्षण[2]

(i) शीतपूर्वक ज्वर (Fever with chills)
(ii) स्तैमित्य (Feeling of being covered by wet cloth)
(iii) गुल्म स्थान में जकड़ाहट (Stiffness over Lump)
(iv)गात्रसाद एवं शैथिल्य (Looseness of body)
(v) हृल्लास (Nausea)
(vi) कास (Cough)
(vii)अरुचि (Anorexia)
(viii) शरीर गौरव (Heaviness in body)
(ix) शीत अनुभूति (Feeling of cold)
(x) गुल्म में अल्पवेदना (Mild Pain in Lump)
(xi) गुल्म कठिन व उत्सेध युक्त (Hard & Prominent lump)

4. सान्निपातिक गुल्म के निदान[3]

उपरोक्त तीनों प्रकार के गुल्मों के सम्मिलित निदान सान्निपातिक गुल्म के निदान हैं। इसे 'निचय गुल्म' भी कहा है।

सन्निपातज गुल्म के लक्षण-इसे असाध्य कहा है, इसके निम्न लक्षण होते हैं-

(i) अतिकष्टदायक गुल्म (Very Painful Lump)
(ii) दाह (Burning)
(iii) कठोर एवं उन्नत गुल्म (Prominent & Hard lump)

1. "शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च सम्पूरणं प्रस्वप्नं दिवा च।
गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वस्तु दिष्टो निचयात्मकस्य॥" (च.चि. 5/14)
2. "स्तैमित्य शीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि।
शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रुपाणि कफात्मकस्य॥" (च.चि. 5/15)
3. i) "सर्वात्मकः सर्वविकारयुक्तः सोऽसाध्य उक्तं क्षतजं प्रवक्ष्ये।" (सु.उ. 42/13)
ii) "सर्वस्तु दिष्टो निचयात्मकस्य॥" (च.चि. 5/14)

(iv) शीघ्र पाकी (Tendency for early inflammation)
(v) दारुण (Severe manifestations)
(vi) मन, शरीर एवं अग्निबल का नाश (Loss of Strength & digestive power)

5. रक्तज गुल्म के निदान[1]

यह गुल्म केवल स्त्रियों में पाया जाता है। इसके निदान निम्न हैं—

(i) ऋतुकाल में अनियमित भोजन (Improper diet during menstruation)
(ii) आम गर्भ का गिरना (Abortion) (iii) भय (Fear)
(iv) रूक्ष आहार-विहार का सेवन (v) वेग धारण
(vi) रक्तस्तम्भक औषध प्रयोग (vii) वमन
(viii) योनि व्यापद् होने से।

उपर्युक्त निदानों से कुपित वायु स्त्री के गर्भाशय में रक्त को रोक लेती है जिससे स्त्री को मासिक स्राव नहीं होता। रक्त प्रतिमास एकत्रित् होकर ग्रंथिवत् एवं कठिन हो जाता है, और धीरे-धीरे आकार में वृद्धि को प्राप्त होता है।

रक्तज गुल्म के लक्षण गर्भ के समान भी मिलते हैं। आचार्य सुश्रुत ने रक्तज गुल्म के लक्षण पैत्तिक गुल्म के समान बताये हैं[1]। आचार्य चरक ने रक्त गुल्म के निम्न लक्षण बताये हैं[2]

1. कभी-कभी स्पन्दन होना (Occasional Pulsations)
2. कभी शूल होना (Occasional Pain)
3. धीरे-धीरे बढ़ता है (Gradual increase in size)
4. वृद्धि की गति अनिश्चित होती है (Irregular Growth rate)
5. दश माह के बाद भी गुल्म बना रहता है। अत: गुल्म की चिकित्सा दस माह के बाद करनी चाहिये।

1. i) "ऋतावनाहारतया भयेन विरुक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च।
संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रियं रक्तभवोऽभ्युपैति॥" (च.चि. 5/18)
ii) "नवप्रसूताहितभोजना या या चार्मगर्भ विस्रजेदृतौ वा।
वायुर्हि तस्या परिग्रह्य रक्तं करोति गुल्मं सरूजं सदाहम्॥" (मा.नि. 28/15)

रक्त गुल्म एवं गर्भ में अन्तर

क्र.सं.	रक्त गुल्म	गर्भ
1.	अंग रहित पिण्डित स्वरूप	1. अंग प्रत्यंग युक्त पिण्ड स्वरूप
2.	विलम्ब से स्पन्दन होता है	2. प्रारंभ से ही स्पंदन युक्त
3.	सशूल स्पन्दन	3. शूलरहित स्पदंन
4.	बृद्धि गति अनिश्चित	4. सुनिश्चित मासानुमासिक वृद्धि
5.	दश माह बीतने पर भी बना रहता है	5. प्राय: नौ माह बाद प्रसव के बाद गर्भ (गुल्म) की समाप्ति हो जाती है

उपर्युक्त वर्णित गुल्मों के अतिरिक्त आचार्य वाग्भट् ने अन्तर्गुल्म एवं बाह्य गुल्म का भी वर्णन किया है। इनके लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं-

1. अन्तर्गुल्म के लक्षण[3]

जब गुल्म आभ्यान्तर कोष अवयवों में आश्रित हो अर्थात् गहराई में प्रवेश कर चुका हो अर्थात् कोष्ठाश्रित गुल्म को अन्तर्गुल्म कहते हैं। इसके निम्न लक्षण होते हैं-

(i) जठराग्नि हानि (Loss of digestive Power)
(ii) वर्ण एवं बल का नाश (Loss of complexion & Strength)
(iii) मलमूत्रादि की प्रवृत्ति कम हो जाती है (Decreased Frequency of Urine & Stool)
(iv) उदरांगों में वेदना (Pain in abdominal organs)

2. बाह्य गुल्म के लक्षण[4]

जब गुल्म बाह्य अंङ्गों में अवस्थित होता है तब इसे बाह्य गुल्म कहा जाता है, इसके निम्न लक्षण होते हैं-

1. कोष्ठाङ्गों में पीड़ा कम होना (Mild Pain in Abdominal Organs)
2. गुल्म में विवर्णता (Discoloration of lump)
3. बाह्य उत्सेध (Externally protruded lump)

1. "पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गम्।" (सु.उ. 42/14)
2. "यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात् सशूल समगर्भलिङ्गम्।
स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः॥" (च.चि. 5/19)
3. "गुल्मेऽन्तराश्रये बस्तिकुक्षिहृत्प्लीह वेदना। अग्निवर्णबलभ्रंशो वेगानां चाप्रवर्तनम्॥" (अ.हृ.नि. 11/58)
4. "अतो विपर्ययो बाह्ये कोष्ठाङ्गेषु तु नातिरूक्। वैवर्ण्यमवकाशास्य बहिरून्नतताऽधिकम्॥" (अ.हृ.नि. 11/59)

सापेक्ष निदान

शास्त्रीय आधार पर गुल्म को उदरगुहा स्थित कोष्ठाङ्गों (Hollow organs) मुख्यत:अन्नवह व पुरीषवह स्रोतस् के Lumps मान सकते हैं। गुल्म का सापेक्ष निदान निम्न व्याधियों से कर सकते हैं—

1. उदर रोग 2. शूल रोग 3. विद्रधि 4. अर्बुद 5. गर्भ

1. गुल्म व उदर रोग

गुल्म में स्थानीय उत्सेध होता है तथा उदररोग में सामान्य उदर उत्सेध होता है जो सम्पूर्ण उदर में रहता है।

2. गुल्म व शूल रोग

गुल्म व शूल दोनों रोगों में Pain रहता है परन्तु गुल्म में उत्सेध युक्त शूल (Pain with Lump) होता है, परन्तु शूल में सिर्फ शूल होता है, उत्सेध नहीं (Pain without lump)।

3. गुल्म एवं विद्रधि[1]

क्र.	गुल्म (Lump)	विद्रधि (Abscess)
1.	गुल्म का मूल नहीं होता है	1. विद्रधि का रस, रक्तादि मूल होते हैं
2.	गुल्म में दोष स्वयं ही गुल्मवत् होकर रोग उत्पन्न करते हैं	2. विद्रधि रक्त व मांस को आश्रित कर उत्पन्न होती है
3.	गुल्म का पाक कभी नहीं होता	3. विद्रधि का पाक अवश्य ही होता है

4. गुल्म एवं अर्बुद (Tumour)

क्र.	गुल्म (Lump)	अर्बुद (Tumour)
1.	मुख्यत: वात का प्रकोप	1. मुख्यत: कफ का प्रकोप
2.	अधिष्ठान उदर, नाभि, पार्श्व, बस्ति व हृदय प्रदेश है	2. अर्बुद का अधिष्ठान कोई भी गात्र प्रदेश हो सकता है
3.	पीड़ा युक्त, अपाकी, चल, आकार में घटने बढ़ने वाला होता है	3. अल्पपीड़ा युक्त, अपाकी, स्थिर, गंभीर, विशाल होता है
4.	गुल्म का मूल नहीं होता	4. अर्बुद मूलवान् होता है

1. "न निबन्धोऽस्ति गुल्मानां विद्रधि सनिबन्धन:।
गुल्माकारा: स्वयं दोषा स्व विद्रधिर्मांस शोणिते॥
विद्रधि: पच्यते तस्माद् गुल्मश्चापि न पच्यते॥" (सु.नि. 9/31)

साध्यासाध्यता[1]

शास्त्रों में वर्णित गुल्म की साध्यासाध्यता निम्न अनुसार है-

1. त्रिदोषज गुल्म जिसमें तीव्र वेदना हो, पत्थर के समान कठिन एवं उन्नत हो, शीघ्र ही विदाह को प्राप्त होने वाला, भयंकर, मन, शरीर, अग्नि के बल को नष्ट करने वाला हो, असाध्य होता है।

2. गुल्म में दौर्बल्य, अरूचि, हृल्लास, कास, छर्दि, अरति एवं ज्वर तीव्र हो वह असाध्य है[2]।

3. यदि गुल्म क्रमशः वृद्धि को प्राप्त हो रहा हो एवं अतिविस्तृत हो तब उसे असाध्य मानना चाहिये[3]।

4. जो सिराओं से जुड़ गया हो व कच्छप के सदृश उन्नत हो उसे असाध्य समझना चाहिये[4]।

5. यदि गुल्म के साथ तृष्णा, तन्द्रा एवं प्रतिश्याय भी साथ हो तब गुल्म असाध्य होता है[5]।

उपद्रव

गुल्म के उपद्रवों का वर्णन संहिता ग्रंथों मे उपलब्ध नहीं है।

चिकित्सा सिद्धान्त

विभिन्न आचार्यों ने गुल्म की चिकित्सा के सामान्य सिद्धान्त निम्न अनुसार वर्णित किए हैं-

1. आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने समस्त गुल्म चिकित्सा के सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार गुल्म वात प्रधान व्याधि है, अत: उसमें सब प्रकार के वात दोष की चिकित्सा करना चाहिये। समस्त गुल्मों में स्नेहन एवं स्वेदन के पश्चात् जो भी चिकित्सा की जाती है वह सफल होती है[6]।

2. बार-बार निरूह एवं अनुवासन बस्तियों के प्रयोग से समस्त गुल्म शांत होते हैं[7]।

3. सेक, अवगाहन, प्रदेह, अभ्यंग, वमन, मर्दन, स्वेदन, लंघन, क्षपण तथा स्नेहन

1. "महारूजं दाहपरीतमश्मबद्धनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम्।
मन: शरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्मंसाध्यमादिशेत्॥" (च.चि. 5/17)
2. "दौर्बल्यारुचिहृल्लास कासवम्यरतिज्वरै:।" (च.चि. 5/170)
3. "सञ्चित: क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रह:।" (च.चि. 5/169)
4. "कृतमूल: सिरानद्धो यदा कूर्म इवोत्थित:।" (च.चि. 5/169)
5. "तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते स न सिध्यति।" (च.चि. 5/170)
6. "सर्वत्र गुल्मे प्रथमं स्नेहस्वेदोपपादिते। या क्रिया क्रियते सिद्धिं सा याति न विरुक्षिते॥" (च.चि. 5/113)
7. (i) "बस्तिकर्म परं विद्याद् गुल्मघ्नं तद्धि मारुतम्। स्वस्थाने प्रथमं जित्वा सद्यो गुल्ममपोहति॥" (च.चि. 5/100)
(ii) "तस्मादभीक्ष्णशो गुल्म निरूहै: सानुवासनै:। प्रयुज्यमानै: शाम्यन्ति वातपित्तकफात्मका:॥" (च.चि. 5/101)

आदि कर्म समस्त गुल्म की चिकित्सा में लाभप्रद हैं[1]।

4. अग्निमांद्य से गुल्म बढ़ता है तथा अग्नि के तीव्र होने पर शांत होता है अत: गुल्म के रोगी को यथोचित मात्रा में भोजन कराकर अग्निबल की रक्षा करना चाहिये[2]।

5. आचार्य चक्रदत्तानुसार गुल्म प्रदेश में रक्तमोक्षण एवं जिस ओर गुल्म हो उस ओर की बाहु में शिराव्यधन करना श्रेष्ठ है[3]।

6. वातिक गुल्म का चिकित्सा सूत्र

(i) रूक्ष आहार विहार एवं अतिव्यायाम से उत्पन्न वातिक गुल्म में तीव्र वेदना होने पर सर्वप्रथम स्नेहपान कराना चाहिए[4]।

(ii)स्निग्धभोजन, स्नेह, अभ्यङ्ग, स्नेहपान, निरूह एवं अनुवासन द्वारा स्नेहन पश्चात् स्वेदन करना चाहिये[5]।

(iii) नाभि के ऊपर स्थित गुल्म में स्नेहपान हितकर है। पक्वाशयस्थ गुल्म में बस्ति का प्रयोग, सम्पूर्ण उदर आश्रित गुल्म में स्नेहपान एवं बस्ति हितकर है[6]।

(iv) वातिक गुल्म में स्नेहन करके स्नेह विरेचन देकर यथा शीघ्र निरूह एवं अनुवासन बस्ति से चिकित्सा करें[7]।

(v) वातिक गुल्म में स्नेहन, स्वेदन, घृतपान, चूर्ण, बृहंण गुटिकाएं, वमन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण करें[8]।

(vi)वातिक गुल्म में कफ एवं वात शांत हो जाने पर यदि पित्त एवं रक्त प्रकुपित हो गये हों तो उनकी चिकित्सा प्रथम करनी चाहिये।[9]

---

1. "तथैव सेकावगाहप्रदेहाभ्यंगभोजनम्। शिशिरोदकपूर्णानां भाजनानाञ्च धारणम्।।
वमनोन्मर्दनस्वेदनलघंन क्षपणं क्रिया:। स्नेहादिश्च क्रम: सर्वो विशेषणोपदिश्यते॥" (सु.उ. 42/74-75)
2. "मन्देऽग्नौ वर्धते गुल्मा दीप्ते चाग्नौ प्रशाम्यति। तस्मान्ना नातिसौहित्यं कुर्यान्नातिविलंघनम्॥" (च.चि. 5/112)
3. "स्थानावसेको रक्तस्य वहुमध्ये सिराव्यध:। स्वेदोऽनुलोमनश्चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम।" (चक्रदत्त 30/4)
4. "रूक्षव्यायामजं गुल्मं वातिकं तीव्रवेदनम्। बद्धविण्यमूत्रमारूतं स्नेहैरादित: समुपाचरेत्॥" (च.चि. 5/21)
5. "भोजनाभ्यञ्जनै: पानैनिरूहै: सानुवासनै:। स्निग्धस्य भिषजा स्वेद: कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये॥" (च.चि. 5/22)
6. "स्नेहपानं हितं गुल्मे विशेषेणोर्ध्वनाभिजे। पक्वाशयगते बस्तिरूभयं जठराश्रये।" (च.चि. 5/24)
7. "वातगुल्मार्तितं स्निग्धं युक्तं स्नेहविरेचनै:। उपाचरेद्यथाकालं निरूहै: सानुवासने:॥" (सु.उ. 42/16)
8. "स्नेह: स्वेद: सर्पिर्बस्तिश्चूर्णानि बृंहणं गुटिका। वमनविरेकौ मोक्ष: क्षतजस्य च वातगुल्मवताम्।" (च.चि. 5/183)
9. "कफो वाते जितेप्राये पित्तं शोणितमेव च। यदि कुप्यति वा तस्य क्रियमाणे चिकित्सिते।" (च.चि. 5/27)

(vii) वातिक गुल्म में कफ बढ़ने पर वमन कराना चाहिये।

(viii) यदि पित्त बढ़कर संताप उत्पन्न करता है तब बढ़े हुए पित्त को विरेचन से निकालें[1]।

7. पैत्तिक गुल्म का चिकित्सा सूत्र

(i) स्निग्ध एवं ऊष्ण वस्तु सेवन से उत्पन्न पैत्तिक गुल्म में संस्त्रन तथा रुक्ष एवं ऊष्ण वस्तु सेवन से उत्पन्न पैत्तिक गुल्म में पित्तनाशक सिद्ध घृतपान कराकर शांत करना चाहिये[2]।

(ii) पक्वाशयस्थ पैत्तिक गुल्म में क्षीरवस्ति देकर पित्त का निर्हरण करें[3]।

(iii) अग्निबल को ध्यान रखकर तिक्तद्रव्यों से सिद्ध घृत द्वारा विरेचन करायें[4]।

(iv)गुल्म में रक्तमोक्षण करने से गुल्म का मूल छिन्न हो जाता है[5]।

(v) ज्वर,तृष्णा, दाह, शूल, स्वेदाधिक्य, अग्निमांद्य व अरुचि होने पर रक्तावसेचन कराने के पश्चात् रोगी को जांगल पशु पक्षियों का मांसरस एवं घृत पान करायें[6]।

8. कफजगुल्म का चिकित्सा सिद्धान्त

(i) शीतल, गुरु एवं स्निग्ध आहार-विहार का सेवन करने से उत्पन्न कफज गुल्म में मंदाग्नि हो तो उसे लंघन कराना चाहिये[7]।

(ii)अग्निमांद्य, वेदना, उत्क्लेश एवं अरूचि हो तो उसे वमन कराना चाहिये[8]।

(iii) वमन एवं लंघन के बाद ऊष्ण द्रव्यों का सेवन कराना चाहिये।

(iv) कफज गुल्म को क्षार, अग्निकर्म, अरिष्टपान द्वारा जीतना चाहिये[9]।

---

1. "पित्तं वा यदि संवृद्धं संतापं वातगुल्मिन:।
कुर्याद्विरेच्य: स भवेत् सस्नेहैरानुलोमिक:॥" (च.चि. 5/31)
2. "स्निग्धोष्णेनोदितं गुल्मे पैत्तिके संस्त्रनं हितम्।
रुक्षोष्णेन तु संभूते सर्पि: प्रशमनं परम्॥" (च.चि. 5/33)
3. "पित्तं वा पित्तगुल्मं वा ज्ञात्वा पंक्वाशयस्थितम्।
काल विन्निर्हरत सद्य: सतिक्तै: क्षीरबस्तिभि:॥" (च.चि. 5/34)
4. "पयसा वा सुखोष्णेन सतिक्तेन विरेचयेत्।" (च.चि. 5/35)
5. "छिन्नमूला विदह्यन्ते न गुल्मा यान्ति च क्षयम्।" (च.चि. 5/37)
6. "गुल्मिनामरुचौ चापि रक्तमेवावसेचयेत्।
हृद्दोषं परिम्लानं जाङ्गलैस्तर्पितं रसै:॥" (च.चि. 5/38)
7. "शीतलैर्गुरुभि: स्निग्धैर्गुल्मे जाते कफात्मके।
अवम्यस्याल्पकायाग्ने: कुर्याल्लघंनमादित:॥" (च.चि. 5/48)
8. "सोत्क्लेशाचारुचिर्यस्य स गुल्मी वमनोपग:।" (च.चि. 5/49)
9. "जयेत्कफकृतं गुल्मं क्षारारिष्टाग्निकर्मभि:।" (च.चि. 5/55)

(v) कफज गुल्म में स्नेहन, स्वेदन, भेदन, लंघन, वमन, विरेचन, घृतपान, बस्ति, वटी, चूर्ण, अरिष्ट, क्षार, रक्तमोक्षण एवं अग्निकर्म श्रेष्ठ है[1]।

9. सान्निपातिक गुल्म का चिकित्सा सूत्र

(i) सन्निपातिक गुल्म की चिकित्सा में उपर्युक्त वर्णित वातिक, पैत्तिक, कफज गुल्म की सम्मिलित चिकित्सा करना चाहिये[2]।

10. रक्तज गुल्म का चिकित्सा सिद्धान्त

(i) गर्भकाल अर्थात् दश माह बीत जाने पर स्नेहन स्वेदन कराकर स्नेह विरेचन देना चाहिये[3]।

(ii) आचार्य चरक ने पलाश क्षार[3] (512 तोला) एवं तिल तैल (512 तोला) एवं गोघृत मिलाकर पाक करके स्नेह मात्र शेष रह जाय तब गुल्म को शिथिल करने हेतु प्रयोग करने का निर्देश किया है।

(iii) रक्त गुल्म के योनि विशोधक औषधियों से भावित पिचु योनि में धारण कराना चाहिये[4]।

(iv) दुग्ध, गोमूत्र तथा यवक्षार से युक्त दशमूल क्वाथ की उत्तर वस्ति देना चाहिये[5]।

(v) उपरोक्त क्रियाओं से लाभ न होने पर भेदन कर्म करना चाहिये[6]।

(vi) भेदन पश्चात् रक्तातिप्रवृत्ति होने से रक्तपित्त की तरह चिकित्सा करनी चाहिये[7]।

---

1. "लंघनोल्लेखनैः स्वेदैः सर्पिषपानैर्विरेचनैः। बस्तिभिर्गुटिकाचूर्णक्षारारिष्ट गणैरपि॥
श्लैष्मिकः कृतमूलस्यादस्य गुल्मो न शाम्यति। तस्य दाहो हृते रक्ते शरलोहादिभिर्हितः॥" (च.चि. 5/60-61)
2. "व्यामिश्रदोषेव्यामिश्र एष एव क्रियाक्रमः।" (च.चि. 5/64)
3. "रौधिस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे। स्निग्धस्विन्नशरीराय दद्यात् स्नेहविरेचनम्॥" (च.चि. 5/172)
4. "पलाशक्षारपात्रे द्वे द्वे पात्रे तैलसर्पिषोः। गुल्मशैथिल्यजननी पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत्॥" (च.चि. 5/173)
5. "प्रभिद्येतं न यद्येवं दद्याद् योनिविशोधनम्। क्षारेण युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा पुनः॥" (च.चि. 5/174)
6. "बस्तिं सक्षीरगोमूत्रं सक्षारं दाशमूलिकम्।" (च.चि. 5/178)
7. "अदृश्यमाने रुधिरे दद्यात् गुल्मप्रभेदनम्।" (च.चि. 5/178)
8. "रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरीः क्रियाः। कार्या वातरुगार्तायाः सर्वा वातहरी पुनः॥" (च.चि. 5/180)

चिकित्सा

गुल्म की संशोधन व संशमन चिकित्सा निम्नानुसार वर्णित है-

1. संशोधन चिकित्सा

(i) स्नेहन, स्वेदन (ii) वमन
(iii) स्नेह विरेचन (iv) निरूह एवं अनुवासन वस्ति।

2. संशमन चिकित्सा

गुल्म की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न शास्त्रीय संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार निर्दिष्ट है-

1. रस/भस्म/पिष्टी-मात्रा 125 -250 मि.ग्रा.

अनुपान - शहद/जल

(i) गुल्म कालानल रस-पारद, गंधक, हरताल, ताम्रभस्म, टंकण, यवक्षार, त्रिकटु।
(ii) गुल्मकुठार रस-नागभस्म, वंङ्गभस्म, अभ्रक भस्म, कान्तलौह भस्म, ताम्रभस्म।
(iii) बड़वानल रस-पारद, गंधक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, टंकण, यवक्षार, पलाशक्षार, अपामार्गक्षार।
(iv) अग्निकुमार रस-अजीर्णोक्त।
(v) क्रव्याद रस-अजीर्णोक्त।
(vi) रसायानामृत लौह-त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद, त्रिवृत, दन्ती, सेंधव, अभ्रकभस्म।
(vii) प्रवाल पंचामृत-प्रवाल, मुक्ता, शंख , शुक्ति एवं वराटिका भस्म।
(viii) पंचानन रस-(रक्तज गुल्म में) पारद, गंधक, तुत्थ, जयपाल, पिप्पली, अमलतास।
(ix) प्राणबल्लभ रस-लौह, ताम्र, वराटभस्म, तुत्थ, हिंगु, त्रिफला।
(x) सर्वेश्वर रस-स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, त्रिफला, त्रिकटु, लौह भस्म।

2. वटी-मात्रा 250 - 500 मि.ग्रा.

अनुपान - कोष्ण जल

(i) हिंग्वादि वटी-हींग, त्रिकटु, पाठा, अजमोद, अम्लवेत।
(ii) कांकायन गुटिका-कचूर, पुष्करमूल, दन्तीमूल, चित्रक, सोंठ, वचा, निशोथ, हींग।

3. चूर्ण-मात्रा 3-6 ग्राम

अनुपान - कोष्ण जल

(i) हिंग्वादि चूर्ण-हींग, त्रिकटु, पाठा, हाऊबेर, हरड़, अजमोद।
(ii) शट्यादि चूर्ण-कचूर, पुष्करमूल, हींग, अम्लवेत, यवक्षार, धनिया।
(iii) नागरादि चूर्ण-सोंठ, कृष्ण तिल, गुड़।
(iv) वचादि चूर्ण-वचा, हरड़, हींग, सैंधव, यवक्षार, अजवाइन।
(v) यमान्यादि चूर्ण-अजवाइन, हींग, सैंधव, यवक्षार, सोर्वचल, हरड़।
(vi) लवंगादि चूर्ण-लवंग, दन्ती, त्रिवृत्, यमानी, शुण्ठी, कुटज बीज।

4. क्षार-मात्रा 125 - 250 मि.ग्राम
अनुपान - जल

(i) पलाश क्षार-पलाश।
(ii) वज्र क्षार-सामुद्र लवण, सैंधव लवण, यवक्षार, टंकण, सज्जीक्षार।
(iii) सर्जिका क्षार-सज्जीक्षार।
(iv) कुष्ठक्षार- कुष्ठ।

5. क्वाथ/आसव-अरिष्ट-मात्रा - 20-30 मि.ली.
अनुपान - जल/तक्र

(i) तिल क्वाथ-सौंफ, करंजछाल, देवदारु, भांर्ङ्गी।
(ii) पंचमूल क्वाथ-पंचमूल, वारूणी।
(iii) द्राक्षा-त्रिफला क्वाथ-द्राक्षा, त्रिफला, गुड़।
(iv) लहसुन क्षीर-लहसुन, दूध।
(v) वरूणादि क्वाथ-वरुण, अगस्त्य, बिल्वछाल, अपामार्ग, चित्रक।
(vi) कुमार्यासव-घृतकुमारी, चित्रक, त्रिफला।
(vii) वृश्चीराद्यरिष्ट-श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, कण्टकारी, चित्रक, पिप्पली।

6. घृत/तैल-मात्रा - 10 - 30 मि.ली.
अनुपान-ऊष्ण जल

(i) त्र्यूषणदि घृत-त्रिकटु, त्रिफला, विडंग, चित्रक।
(ii) हिंगुसौवर्चलाद्य घृत-हींग, सोंचर नमक, जीरा, अनारदाना, अजवाइन।
(iii) हपुषाद्य घृत-हपुषा, त्रिकटु, चित्रक, सैंधव।
(iv) पिप्पल्याद्य घृत-पिप्पली, अनारदाना, धनिया।
(v) तैल पञ्चक घृत-एरण्ड तैल, प्रसन्ना, गोमूत्र, कांजी, यवक्षार।
(vi) त्रायमाणाद्य घृत- आँवला, इक्षु, गोघृत, हरड़।
(vii) द्राक्षाद्य घृत-मुनक्का, महुआ, खजूर।
(viii) वासा घृत-वासा, घृत।
(ix) दशमूली घृत-दशमूल, त्रिकटु, यवक्षार, हींग, अनारदाना।

(x) भल्लातकाद्य घृत-भल्लातक, विदारीगंधा, पंचमूल, गोक्षुर।
(xi) क्षीर षटपलक घृत-षट्पण, यवक्षार, घृत।
(xii) मिश्रक स्नेह-श्वेत निशोथ, त्रिफला, दन्ती, दशमूल, एरण्ड तैल।
(xiii) एरण्ड तैल-एरण्ड तैल।
(xiv) पलाश क्षार घृत-पलाश क्षार, गोघृत।

7. पाक/अवलेह- मात्रा - 10 - 20 ग्राम
अनुपान - दुग्ध

(i) दन्तीहरीतकी-दन्ती, चित्रकमूल, निशोथ, पीपर, सोंठ, हरड़।

आदर्श व्यवस्था पत्र

1. प्रातः सायं

गुल्मकुठार रस	- 250 मि.ग्रा.
वज्रक्षार	- 250 मि.ग्रा.
शिवाक्षार पाचन चूर्ण	- 3 ग्राम
ऊष्ण जल से	1 × 2 मात्रा

2.

क्षीर षट्पल घृत	- 20 मि. ली.
ऊष्ण जल से	1 × 2 मात्रा

3. भोजनोत्तर

हिंग्वादि वटी	- 2 वटी × तीन मात्रा
कुमार्यासव	- 20 मि.लि.
समजल	1 × 2 मात्रा

4. रात्रि

एरण्ड तैल	- 20 मि.लि.
दूध से	एक मात्रा

रक्तज गुल्म

1. प्रात : सायं

रजः प्रवर्तनी वटी	- 500 मि.ग्रा.
गुल्मकालानलरस	- 250 मि.ग्रा.
पलाशक्षार	- 250 मि.ग्रा.
कोष्ण जल से	1 × 2 मात्रा

2.	भोजनोत्तर कांकायन वटी - दशमूल क्वाथ - समजल से	2 वटी × तीन मात्रा 20 मि.लि. 1 × 2 मात्रा
3.	रात्रि एरण्ड तैल - दूध से	20 मि.लि. एक मात्रा

पथ्य

आहार

1. पुराण शालि, गेहूँ, जौ, मांस रस, पिप्पली, अजवाइन, चित्रक, हिंगु, घृत, गुड़, मुद्ग, परवल, अंगूर, मुनक्का, द्राक्षा, खजूर, अनार, इक्षुरस, आंवले का मुरब्बा, सुरा, तिल, क्षार, मद्य, मछली आदि।

विहार

1. स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, वस्ति, रक्तमोक्षण, लंघन, अभ्यंग, स्नेहपान आदि।

अपथ्य

आहार

1. विरुद्धान्न, शुष्कमांस, मूली, मधुर फल, शाक, शमीधान्य, विष्टम्भी, गुरु पदार्थ, आलू, अरवी, कन्द, शाक, शीतल जल, मटर, सेम, रुक्षान्न आदि।

विहार

1. वेगधारण, रात्रि जागरण, अतिश्रम, अतिमैथुन, अधोवायु का वेग रोकना, वमन आदि।

Latest Developments

G.I.T. Lumps

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार गुल्म की तुलना G.I.T. के Lumps से कर सकते हैं। गुल्म के विभिन्न भेदों का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में साम्य निम्न प्रकार से बैठा सकते हैं-

1. **वातिक गुल्म**-वातिक गुल्म का साम्य Lumps due to Intestinal Tuberculosis, Chronic Intussusception, Umblical Hernia, Epigastric Hernias & Appendicular Lumps से कर सकते हैं।
2. **पैत्तिक गुल्म**-पैत्तिक गुल्म का साम्य Lumps due to Appendicular Abscess, Empyema of Gall Bladder से कर सकते हैं।

3. **कफज गुल्म**-कफज गुल्म का साम्य Lumps due to Caecal Amoebiasis, Hydatid Cyst of Liver, Pseudo Pancreatic Cyst, Polycystic Kidneys, Ovarian Cyst से कर सकते हैं।
4. **सन्निपातिक गुल्म**- सन्निपातिक गुल्म का साम्य Lumps due to Malignancy of any Abdominal Organ, Caecum, Lymph Gland, Gall Bladder आदि से कर सकते हैं।
5. **रक्तज गुल्म**-रक्तज गुल्म का साम्य Acquird Cryptomenorrhoea & Haematometra से कर सकते हैं।

Management : Principles

1. To treat the main cause of lump.
2. Carminatives, Laxatives may be useful.

अध्याय-25

अम्ल पित्त
(HYPER ACIDITY)

व्याधि परिचय

संहिताओं में अम्लपित्त का पृथक् वर्णन नहीं मिलता है। माधव निदान में अम्लपित्त का वर्णन स्वतंत्र अध्याय में किया गया है। काश्यप संहिता में अम्लपित्त का "शुक्तक" नाम से वर्णन मिलता है। चरक संहिता में ग्रहणी चिकित्सा अध्याय में आम से उत्पन्न विकारों में अम्लपित्त को भी गिना है। गुदमार्ग से प्रवृत्त विदग्ध अन्न को ग्रहणी दोष कहा जाता है तथा ऊर्ध्वभाग से प्रवृत्त पदार्थ का नामकरण यद्यपि आचार्य चरक ने नहीं किया है तथापि इसे 'ऊर्ध्वग अम्लपित्त' कहा जा सकता है। विदग्ध पित्त की वृद्धि अम्लपित्त है। आचार्य माधवकर ने अम्ल पित्त के लिए ऋतु विशेष तथा काश्यप ने देशविशेष को प्रधान कहा है।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

अम् + क्ल् + अच् प्रत्यय से अम्ल शब्द बनाता है जिसका अर्थ है खट्टा या तीता।

1. "अम्लं च पित्तम् अम्लपित्तं।"

अर्थात् पित्त का अम्लीय हो जाना अम्लपित्त है।

2. "अम्लं विदग्धं च तत् पित्तम्, अम्लपित्तम्।" (मधुकोश)

अर्थात् पित्त का विदग्ध होकर अम्लीय हो जाना अम्लपित्त है।

अर्थात् वह रोग जिसमें आमाशय में आहार पहुँचकर पित्त के विदग्ध होने के कारण अम्लीय हो जाता है उसे अम्ल पित्त कहते हैं।

3. "विदाहाद्यम्लगुणोद्रिक्तं पित्तम् अम्लपित्तम्।" (मधुकोश)

मुख मार्ग से अम्लीय एवं विदाही पित्त की प्रवृत्ति अम्लपित्त है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता चिकित्सा स्थान - अध्याय 15
2. माधव निदान - अध्याय 51
3. भाव प्रकाश - अध्याय - 10
4. काश्यप संहिता, अम्लपित्त खिल स्थान - अध्याय 16

निदान[1]

माधव निदान में अम्ल पित्त के निम्न हेतुओं का वर्णन उपलब्ध है-

1. अति अम्ल, एवं ऊष्ण पदार्थों का सेवन।
2. मद्य का अधिक सेवन।
3. अभिष्यन्दि तथा पिष्टान्न का अति सेवन।
4. अध्यशन, विरुद्धाशन, विदाहि अन्नपान, अजीर्ण में भोजन करना।
5. कुलत्थ का अधिक सेवन।
6. आनूप देश में निवास।
7. वेग विधारण ।
8. वर्षा एवं शरद ऋतु।
9. विष प्रयोग।
10. अन्य पित्त प्रकोपक हेतु।

सम्प्राप्ति

उपरोक्त निदानों व वर्षा ऋतु के प्रभाव से पहिले से ही संचित पित्त जब विरुद्ध भोजन के सेवन से विदग्ध हो जाता है तब अम्लपित्त के लक्षणों को उत्पन्न करता है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन
↓
वर्षा ऋतु एवं आनूपदेश
↓
पित्तवर्धक आहार विहार सेवन
↓
पित्त का विदग्ध होना
↓
पित्त का अम्ली भाव होना
↓
अम्लोद्गारादि लक्षणोत्पत्ति
↓
अम्लपित्त

---

1. "विरूद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम्।
पित्तं स्वहेतुपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः॥" (मा.नि. 51/1)

सम्प्राप्ति घटक

दोष	- पित्त
दूष्य	- रस, रक्त
स्रोतस्	- अन्नवह स्रोतस
अधिष्ठान	- आमाशय
स्रोतो दुष्टि	- विमार्गगमन
अग्नि	- मंद
स्वभाव	- आशुकारी
साध्यासाध्यता	- साध्य

भेद

शास्त्रों में अम्लपित्त के भेद निम्न आधार पर किए गए हैं-

I. गति भेद से II. दोष संसर्ग भेद से

I. गति भेद से-गति भेद से अम्ल पित्त के निम्न दो भेद हैं-

(i) ऊर्ध्वग् अम्लपित्त (ii) अधोग् अम्लपित्त

II. दोष संसर्ग भेद से[1]-आचार्य माधवकर ने दोषों के संसर्ग के आधार पर तीन प्रकार के अम्लपित्त बताए हैं-

(i) वाताधिक अम्लपित्त (ii) वात-कफाधिक अम्लपित्त
(iii) कफाधिक अम्लपित्त

सामान्य लक्षण[2]

अम्लपित्त रोग में अम्ल के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार हैं-

1. अविपाक (Indigestion)
2. क्लम (Tiredness without exertion)
3. उत्क्लेश (Nausea)
4. तिक्ताम्लोद्गार (Acid eructations)
5. हृत्कण्ठ दाह (Burning in chest & throat)
6. अरूचि (Anorexia)

1. "सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत्। दोषलिङ्गेन मतिमान् भिषङ्मोहकरं हि तत्॥" (मा.नि. 51/8)
2. "अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोदगारगौरवैः। हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेत्भिषक्॥" (मा.नि. 51/2)

अम्लपित्त के भेदानुसार विशिष्ट लक्षण

अम्लपित्त के विभिन्न भेदों के लक्षण निम्नानुसार हैं-

I. ऊर्ध्वग् अम्लपित्त के लक्षण[1]-ऊर्ध्वग् अम्लपित्त में कफ का अनुबंध होता है। इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं-

(i) हरित-पीत-नील-कृष्ण-अतिपिच्छिल, विविध रस युक्त, अतिअम्ल वमन (Yellowish, greenish, blueish, blackish, viscous & acidic vomitus)
(ii) अम्लोद्गार (Acid eructations)
(iii) भोजन करने पर अथवा बिना किए वमन (Vomiting after or without meals)
(iv) हृद्प्रदेश में दाह (Heart burn)
(v) कण्ठदाह (Burning in throat)
(vi) शिरःशूल (Headache)
(vii) हस्त-पाद दाह एवं ऊष्णता (Feeling of warmth and burning in palms & feet)
(viii) अरुचि (Anorexia)
(ix) ज्वर (Fever)
(x) कण्डू (Itching)
(xi) मण्डलाकार चकत्ते (Rashes)
(xii) पिड़िका की उत्पत्ति (Boils)

II. अधोग् अम्लपित्त के लक्षण[2]-अधोग् अम्लपित्त के लक्षण पैत्तिक ग्रहणी से मिलते हैं। आचार्य माधवकर के अनुसार अधोग् अम्लपित्त कम देखने को मिलता है। इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं-

(i) तृष्णा (Polydypsia) (ii) दाह (Burning Sensation)
(iii) मूर्च्छा (Fainting) (iv) भ्रम (Confusion)

1. "वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम्।
मांसोदकाभं त्वतिपिच्छिलाच्छं श्लेष्मानुगातं विविधं रसेन॥
भुक्ते विदग्धे त्वथवाऽप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्।
उद्गारमेवंविविधोपेत कण्ठहृत्कुक्षिदाहं च रसो रुजं च॥
करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफ पित्तम्।
जनयति कण्डूमण्डलपिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम्॥" (मा.नि. 51/4-6)
2. "तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम्।
हल्लासकोठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीत्वकरं कदाचित्॥" (मा.नि. 51/3)

(v) मोह (Delusion)
(vi) हरे-पीले-रक्त वर्ण का पित्त गुद मार्ग से स्राव (Discharge of green, yellow, red colour liquid substance from Rectum)
(vii) उत्क्लेश (Nausea)
(viii) कोठ (Boils)
(ix) अग्निमांद्य (Indigestion)
(x) रोमहर्ष (Horripilation)
(xi) स्वेद (Sweating)
(xii) अंगों का पीलापन (Yellowish tinge of body)

III. वातानुबंधी अम्लपित्त के लक्षण[1]-वाताधिक अम्लपित्त निम्न लक्षणों के साथ प्रकट होता है-

(i) कम्पन (Tremors) (ii)प्रलाप (Delirium)
(iii) मूर्च्छा (Fainting) (iv) शरीर में चुनचुनाहट (Tingling sensation)
(v) शैथिल्य (Looseness of body)
(vi) शूल (Pain) (vii) तम: प्रवेश (Darkness in front of eyes)
(viii) विपरीत ज्ञान (Altered sense) (ix) रोमहर्ष (Horripilation)

IV. कफाधिक अम्लपित्त के लक्षण[2]-कफानुबंधी अम्लपित्त के निम्न लक्षण होते हैं-

(i) कफष्ठीवन (Mucous expectoration)
(ii) गौरव (Heaviness)
(iii)जड़ता (Stiffness)
(iv) अरूचि (Anorexia)
(v) शीत (Cold sensations)
(vi) वमन (Vomiting)
(vii) मुख का कफ से लिप्त रहना (Mucous coated mouth)
(viii) अग्निमांद्य (Poor Appetite)
(ix) कण्डू (Itching)
(x) अनिद्रा (Insomnia)

1. "कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमचिमगात्रावसाद शूलानि। तमसो दर्शनविभ्रमविमोहहर्षाण्यनिलकोपात्॥" (मा.नि. 51/9)
2. "कफनिष्ठीवनगौरवजड़ताऽरुचिशीतसादवमिलेपा:। दहनबलसादकण्डूनिद्राधिक्यं कफानुगते॥" (मा.नि. 51/10)

V. वात कफानुबंधी अम्लपित्त के लक्षण[1]-वात कफानुबंधी अम्लपित्त के लक्षण उपरोक्त दोनों के मिले-जुले लक्षण होते हैं।

इसी के साथ आचार्य माधवकर ने "श्लेष्मपित्त" के लक्षण भी वर्णित किये हैं जो निम्न प्रकार हैं-

(i) हृत्कण्ठ दाह (Heart burn & Burning in throat)
(ii) तिक्ताम्लोद्गार (Acid eructations)
(iii) भ्रम (Confusion)
(iv) तम (Darkness in front of eyes)
(v) मूर्च्छा (Fainting)
(vi) छर्दि (Vomiting)
(vii) आलस्य (Lassitude)
(viii) शिर: शूल (Headache)
(ix) प्रसेक (Salivation)
(x) मुख माधुर्य (Sweet taste of mouth)

साध्यासाध्यता[2]

1. नवीन अम्लपित्त साध्य होता है।
2. चिरोत्थित अम्लपित्त याप्य होता है।
3. यदि रोगी नियमित आहार-विहार का पालन करे तो कष्टसाध्य अम्लपित्त भी साध्य होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

सामान्यत: किसी भी व्याधि की चिकित्सा के तीन सिद्धान्त निर्धारित किए गए हैं[3]।

(i) निदान परिवर्जन (ii) संशोधन चिकित्सा (iii) संशमन चिकित्सा

1. अम्लपित्त की चिकित्सा में सर्वप्रथम निदान परिवर्जन करना चाहिये। ऊष्ण, तीक्ष्ण, विदाही, विष्टम्भी, पित्तवर्धक आहार-विहार का सर्वथा त्याग करना चाहिये।
2. अम्लपित्त की संशोधन चिकित्सा में, ऊर्ध्वग अम्लपित्त में कफ का संसर्ग होने से वमन तथा अधोग अम्लपित्त में विरेचन कराना चाहिये।

1. "उभयमेव चिन्हं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले॥" (मा.नि. 51/11)
2. "रोगाऽयमम्लपित्तारख्यो यत्नात् संसाध्यते नव:।
चिरोत्थितो भवेद्याप्य: कृच्छसाध्य: स कस्यचित्॥" (मा.नि. 51/7)
3. "संशोधनं संशमनं निदानस्य च वर्जनम्। एतावद् भिषजा कार्यं रोगे-रोगे यथाविधि॥" (च.वि. 7/30)

3. वमन के लिये पटोलपत्र या निम्बपत्र क्वाथ में मदनफल व मधु मिलाकर पिलाना चाहिये। तत् पश्चात् निशोथ चूर्ण को आमलकी स्वरस व मधु के साथ रेचनार्थ प्रयोग कराना चाहिये[1]।

4. नवीन अम्लपित्त में वमन-विरेचन से पर्याप्त शोधन हो जाता है, परन्तु चिरकारी अम्लपित्त में वमन विरेचन के पश्चात् आस्थापन व अनुवासन बस्ति देने का शास्त्रों में विधान है[2]।

5. सम्यक् संशोधन के पश्चात् अम्लपित्त में दोषों के संसर्ग की स्थिति में पुनः दोष प्रकोप न हो इसके लिये तिक्त रस प्रधान औषधियों का प्रयोग कर लघु अन्न पान एवं पथ्य का प्रयोग कराना चाहिये[3]।

चिकित्सा

अम्लपित्त की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा शास्त्रों में निम्न प्रकार वर्णित है-

1. संशोधन चिकित्सा

(i) वमन (ऊर्ध्वग अम्लपित्त में)
(ii) विरेचन (अधोग अम्लपित्त में)
(iii) आस्थापन व अनुवासन बस्ति (जीर्ण अम्लपित्त में)

2. संशमन चिकित्सा-अम्ल पित्त की चिकित्सा में प्रयुक्त शास्त्रोक्त संशमन योग निम्न प्रकार हैं-

1. रस/भस्म/पिष्टी-मात्रा- 125 - 250 मि.ग्रा.

अनुपान - शहद/जल

(i) सूतशेखर रस-धत्तूर बीज, त्रिकटु, स्वर्णभस्म, टंकण, चतुर्जात।
(ii) लीला विलास रस-पारद, गंधक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, आंवला, विभीतक।
(iii) अम्लपित्तान्तक लौह-रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लौहभस्म, हरीतकी चूर्ण।
(iv) कामदुधा रस-पारद, गंधक, ताम्र, काष्ठौषधियां।

1. "ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमानधोगंरेचनैर्हरेत्। अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टपत्रकैः॥
कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तैः कफोल्वणे:। विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः॥"
(भै.र. अम्लपित्त चिकित्सा 3-4)

2. "पूर्वं तु वमनं कार्यं पश्चान्मृदुविरेचनम्। कृतवान्ति विरेकस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम्॥"
(योगरत्नाकर)

3. "क्रिया शुद्धस्य शमनी ह्यनुबन्धव्यपेक्षया। दोषसंसर्गजे कार्या भेषजाहारकल्पना॥
पाचनं तिक्तभूयिष्ठं पथ्यञ्च परिकल्पयेत्।"
(योगरत्नाकर)

(v) सर्वतोभद्र लौह-लौहभस्म, ताम्रभस्म, पारद, गंधक, स्वर्णमाक्षिक, शिलाजतु, गुग्गुल।
(vi) शंख भस्म-शंख।
(vii) प्रवाल पिष्टी-प्रवाल।
(viii) प्रवाल पंचामृत-मुक्ता, प्रवाल, शंख, शुक्ति, कर्पद।

2. वटी-मात्रा - 250 -.500 मि.ग्रा.

अनुपान - जल

(i) पानीय भक्त वटी-त्रिफला, त्रिकटु, मुस्तक, निशोथ, पारद, गंधक, लौह,अभ्रक।
(ii) सौभाग्य शुण्ठी मोदक-त्रिफला, त्रिकटु, लवंग, रक्तचन्दन, मुलेठी, शुण्ठी।

3. चूर्ण-मात्रा - 3 - 6 ग्राम

अनुपान - ऊष्ण जल

(i) अविपत्तिकर चूर्ण-त्रिफला, त्रिकटु, दालचीनी, एला, विडंग, मुस्तक, निशोथ, लवंग, चीनी।
(ii) हरीतकी चूर्ण- हरीतकी।
(iii) त्रिफला चूर्ण- त्रिफला।
(iv) मुलैठी चूर्ण- मुलैठी।
(v) शतावरी चूर्ण-शतावरी।
(vi) आमलकी चूर्ण-आमलकी।
(vii) पंचनिम्बादि पूर्ण-निम्वपंचांग, विधारा, चावल, गेहूँ, जौ का सत्तू, शर्करा।
(viii) द्राक्षादि चूर्ण-द्राक्षा, शतावरी।
(ix) त्रिवृत चूर्ण-त्रिवृत।

4. क्वाथ/आसव/अरिष्ट-मात्रा - 20 - 30 मि.ली.

अनुपान - जल

(i) पटोलादि क्वाथ-पटोल, निम्ब, गुडुची।
(ii) पंचतिक्तक्वाथ-गुडुची, निम्ब, पटोल, पर्पट।
(iii) वासादि दशांङ्गक्वाथ-वासा, गुडुची, पर्पट, निम्ब, चिरायता, पटोल, भृंगराज, त्रिफला।

5. घृत-मात्रा - 10 - 30 मि.ली.

अनुपान - ऊष्ण जल

(i) वासाघृत-वासा।

(ii) शतावरीघृत-शतावरी।
(iii) द्राक्षाद्य घृत-मुनक्का, गिलोय, इन्द्रयव, पटोल, खस, आंवला।
(iv) नारायण घृत-पिप्पली, गुडुची, आमलकी, मुनक्का।
(v) पिप्पली घृत-पिप्पली।
(vi) पटोलशुण्ठी घृत-पटोल, शुण्ठी, गोघृत।
(vii) जीरकाद्य घृत- जीरक, धनिया, गोघृत।

6. अवलेह/पाक-मात्रा - 15 - 20 ग्राम

अनुपान - दुग्ध।

(i) खण्डकूष्माण्डावलेह-कुष्माण्ड, ऑवला, शर्करा।
(ii) नारिकेल खण्ड-नारियल, मिश्री।
(iii) पिप्पली खण्ड- पिप्पली, शतावरी, शर्करा।
(iv) शुण्ठी खण्ड-शुण्ठी, शर्करा, गोघृत।

आदर्श व्यवस्था पत्र

1. प्रात : सायं
   शंखभस्म - 250 मि.ग्रा.
   सूतशेखर रस -125 मि.ग्रा.
   अविपत्तिकर चूर्ण - 3 ग्राम
   शहद से 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   शतावरी चूर्ण - 1 ग्राम
   मधुयष्ठी चूर्ण - 1 ग्राम
   ऊष्णोदक से 1 × 2 मात्रा
3. खण्डकूष्माण्डावलेह - 15 ग्राम
   दूध से 1 × 2 मात्रा
4. रात्रि
   त्रिफला चूर्ण - 3 ग्राम
   गुनगुने जल से एक मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
लाजा, मुद्ग, यव, चने का सत्तू, मधु, दुग्ध, जांगल मांस रस, श्रृतशीत जल, पटोल, करेला, निम्ब, शतावरी, पेठा, हरी सब्जियां, समस्त, तिक्त पदार्थ आदि।	वमन, विरेचन, वस्ति, शीतल जल पान, आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरू, विदाही, विष्टम्भी पदार्थ, कांजी, लवण, मिर्च, मसालेदार भोजन,चाय, मद्य, कॉफी, शीतल पेय पदार्थ, पीजा, वर्गर, समोसा, कचौरी, आलू, बैंगन, चावल, बेसन, व मैदा की चीजें आदि।	वमन वेग धारण, दिवास्वाप आदि।

Latest Developments

Hyperacidity

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मतानुसार अम्लपित्त का सामंजस्य Hyperacidity नामक रोग से किया जाता है। इस अवस्था में आमाशय में उपस्थित Free Hcl की मात्रा बढ़ी हुई होती है। यदि Total acidity अधिक हो तब उसे विदग्धाजीर्ण कह सकते हैं। Free Hcl बढ़कर stomach में Inflammation उत्पन्न करके Gastritis उत्पन्न करता है। Acidity के रोगी के आमाशय में Free Hcl अधिक मात्रा में बनता है। अत: यदि रोगी थोड़ा-थोड़ा भोजन लेता रहे तब Free Hcl का use उसके पाचनार्थ होता रहता है एवं रोगी को Heartburn आदि लक्षण उत्पन्न नहीं हो पाते। अत: Acidity के रोगी को पथ्य खाने पर आराम मिलता है और खाली पेट रहने पर रोग के लक्षण बढ़ जाते हैं।

Symptoms

1. Heart burn 2. Nausea 3. Pain in epigastrium
4. Vomiting 5. Anorexia 6. Hiccough

Management : Principles

1. Avoidance of Alcohol, Smoking, Tea, Coffee & NSAID drugs as soon as Possible.
2. Avoid to remain empty stomach.
3. Cold milk should be taken several times during day.
4. Antacids.
5. Avoid spicy & fried materials.
6. Avoid cold drinks, Pizza, Burgar & other fast foods.

अध्याय-26

अन्नद्रव शूल एवं परिणाम शूल (GASTRIC ULCER AND DUODENAL ULCER)

व्याधि परिचय

अन्नद्रव शूल एवं परिणाम शूल का वर्णन 'शूल रोग' के अन्तर्गत किया गया है। समस्त शूलों में वात की प्रधानता होती है, क्योंकि वात के बिना पीड़ा नहीं हो सकती। भोजन के जीर्ण होने पर होने वाला शूल परिणामशूल कहलाता है तथा भोजन के जीर्ण होते समय या उसके पूर्व किसी भी समय होने वाला शूल अन्नद्रवशूल कहलाता है। लक्षणों में साम्यता के आधार पर अन्नद्रव शूल से Gastric Ulcer एवं परिणामशूल से Duodinal Ulcer समझा जा सकता है। आचार्य माधवकर ने इनका विस्तृत वर्णन किया है।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

1. "भुक्ते जीर्यति यत् शूलं तदैव परिणामजं ।" (मधुकोश)

अर्थात् भोजन के जीर्ण होने पर होने वाला शूल परिणाम शूल कहलाता है।

2. "ग्रहण्यां प्रविशत्यन्ने शूलं प्रादुर्भवेत् यद्।
काले काले त्वहं वाऽपि भुक्ते शान्तिमुपैति॥" (सिद्धान्त निदान)

भोजन के जीर्ण होकर ग्रहणी में प्रवेश करने पर जो शूल होता है वह परिणाम शूल है। यह भोजन करने पर शांत हो जाता है।

3. "जीर्णेजीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते ।" (मधुकोश)

अर्थात् भोजन के जीर्ण होने पर या इसके पूर्व किसी भी समय जो शूल उत्पन्न होता है उसे अन्नद्रव शूल कहा है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान - अध्याय 15

2. माधव निदान - अध्याय 26

निदान

आचार्य माधवकर ने अन्नद्रव व परिणाम शूल के स्पष्ट निदानों का उल्लेख नहीं किया है केवल अपने निदानों से कुपित वायु पित्त को आवृत्त कर शूल उत्पन्न करने का संकेत दिया है। इस प्रकार इनके निदान समस्त वात एवं पित्त प्रकोपक निदान हो सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं-

1. रुक्ष, शीत, ऊष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल, क्षार, लवण, कटु, आहार का सेवन
2. असात्म्य एवं विरुद्धाहार सेवन
3. अति लंघन करना
4. समशन
5. वेगधारण
6. रात्रि जागरण
7. अतिमैथुन
8. अत्यग्नितप
9. अतिभार वहन
10. अति पैदल चलना
11. भय, क्रोध, शोक, मान, उद्वेग आदि मानसिक कारण।
12. वर्षा ऋतु, शीतऋतु, शरद ऋतु, मध्यरात्रि, सूर्योदय काल तथा रात्रि का आरंभ काल।

परिणामशूल की सम्प्राप्ति

स्वनिदान सेवन से प्रकुपित वायु स्थान विशेष में स्थित होने से भोजन के परिपाक काल में प्रबल होकर कफ एवं पित्त को आवृत्त करके शूल को उत्पन्न करती है। यह शूल भोजन के परिणाम काल में होता है अत: इसे परिणाम शूल कहते हैं। यह रसवाही स्रोतों की विकृति के कारण होता है। यह भोजन करने, वमन होने वा अन्न के पूर्ण परिपाक हो जाने पर शांत हो जाता है। परिणाम शूल प्राय: त्रिदोषज होता है।

---

1. (i) "स्वैर्निदानै: प्रकुपितो वायु: संनिहितस्तदा। कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद् बली॥" (मा.नि. 26/15)

(ii) "बलास: प्रच्युत: स्थानात्पित्तेन सहमूर्च्छित:। वायुमादाय कुरुते शूलं जीर्यति भोजने॥
कुक्षौ जठरपार्श्वेषु नाभौ बस्तौ स्तनान्तरे। पृष्ठमूल प्रदेशेषु सर्वेष्वेतेषु वा पुन:॥" (मा.नि. 26/1 पर मधुकोश)

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन
↓
अग्निदुष्टि
↓
अजीर्ण
↓
अम्लपित्त
↓
ग्रहणी व आमाशय में शोथ
↓
आमाशय व ग्रहणी की श्लेष्मिक कला में व्रण
↓
परिणामशूल/अन्नद्रवशूल

सम्प्राप्ति घटक

दोष - त्रिदोष- समानवायु, पाचकपित्त एवं क्लेदक कफ।
दूष्य - अन्न रस
स्त्रोतस् - अन्नवह
अधिष्ठान - आमाशय व ग्रहणी
स्त्रोतोदुष्टि - संग
स्वभाव - आशुकारी
अग्नि - मंद
साध्यासाध्यता - साध्य

भेद

अन्नद्रव शूल का कोई भेद वर्णित नहीं है। परिणाम शूल के दोषों के संसर्ग के आधार पर सात भेद बताये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं-

1. वातिक परिणाम शूल
2. पैत्तिक परिणाम शूल
3. कफज परिणाम शूल
4. वात-पित्तज परिणाम शूल
5. वात-कफज परिणाम शूल
6. कफ-पित्तज परिणाम शूल
7. सन्निपातिक परिणाम शूल

लक्षण

अन्नद्रवशूल के लक्षण[1]

शास्त्रों में अन्नद्रवशूल के लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं-

1. भोजन के जीर्ण होने पर, पूर्व में या किसी भी समय शूल होना (Pain in abdomen before meals or during digestion or any time)
2. पथ्य या अपथ्य के प्रयोग से लाभ न होना।
3. भोजन करने या न करने से भी लाभ न होना।
4. निरन्तर शूल (Continous pain in abdomen)
5. वमन होने से शूल में आराम[2] (Relief in pain after vomiting)

परिणाम शूल के विभिन्न भेदों के लक्षण-पणिाम शूल के विभिन्न भेदों के लक्षण निम्नानुसार हैं-

1. वातिक परिणाम शूल के लक्षण[3]

(i) आध्मान (Tympanitis)
(ii) आटोप (Flatulence)
(iii) मल-मूत्र की अप्रवृत्ति (Caesation of the urge to daefecate or micturete)
(iv) अरति (Restlessness)
(v) कम्प (Tremors)
(vi) स्निग्ध व ऊष्ण सेवन से शांति (Relief by consuming greasy and warm food stuff)

2. पैत्तिक परिणाम शूल के लक्षण[4]

(i) तृष्णा (Polydypsia) (ii) दाह (Burning)
(iii) वेचैनी (Restlessness) (iv) स्वेदाधिक्य (Excessive Sweating)
(v) कटु-अम्ल लवण युक्त पदार्थों के सेवन से शूल में वृद्धि (Pain increased by spicy food)

1. "जीर्णेजीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते। पथ्यापथ्य प्रयोगेण भोजनाभोजनेन च।
न शमंयाति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः॥" (मा.नि. 26/21-22)
2. "वान्तमात्रे जरत्पित्तं शूलमाशु व्यापोहति।" (मा.नि. 26/23)
3. "आध्मानाटोपविण्मूत्रविबंधारतिवेपनैः। स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक्।" (मा.नि. 26/17)
4. "तृष्णादाहारतिस्वेदं कट्वम्ललवणोत्तरम्। शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेत् बुधः॥" (मा.नि. 26/18)

(vi) शीत सेवन से शांति (Relief of pain by consuming cold food stuff)

3. कफज परिणामशूल के लक्षण[1]

(i) छर्दि (Vomiting) (ii) हृल्लास (Nausea) (iii) मूर्च्छा (Fainting)
(iv) चिरकाल तक थोड़ी-थोड़ी पीड़ा होना (Prolonged mild pain in abdomen)
(v) कटु-तिक्त सेवन से शूल शांति (Relief by consuming bitter food stuff)

4. द्वन्दज व सन्निपातज परिणाम शूल के लक्षण[2]

द्वन्दज व सन्निपातज परिणाम शूल में दो दोषों व तीनो दोषों के सम्मिलित लक्षण मिलते हैं।

परिणामशूल व अन्नद्रवशूल की साध्यासाध्यता

1. परिणामशूल की साध्यासाध्यता

(i) त्रिदोषज परिणाम शूल को असाध्य कहा है।
(ii) जिस रोगी में मांस-बल व अग्नि नष्ट हो गई हो उसमें परिणाम शूल असाध्य होता है।
(iii) अधिक उपद्रवों से युक्त परिणाम शूल भी असाध्य होता है[3]।

2. अन्नद्रव शूल की साध्यासाध्यता

(i) त्रिदोषज होने के कारण अन्नद्रव शूल को असाध्य कहा है, परन्तु विद्वान चिकित्सक इसे असाध्य नहीं मानते।

शूल के उपद्रव[4]-आचार्य विजयरक्षित ने शूल के निम्न उपद्रवों का उल्लेख किया है-

1. वेदना (Pain)
2. तृष्णा (Polydypsia)
3. मूर्च्छा (Fainting)
4. आनाह (Constipation)
5. गौरव (Heaviness of body)
6. अरुचि (Anorexia)

1. "छर्दिहृल्लाससंमोह स्वल्परुग्दीर्घसन्तति। कटुतिक्तोपशातं च तच्च ज्ञेयं कफात्मकम्॥" (मा.नि. 26/19)
2. "संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत्। त्रिदोषजमसाध्यं तु क्षीणमांसबलानलम्॥" (मा.नि. 26/20)
3. "असाध्योर्स्युपद्रवः।" (मधुकोश)
4. "वेदना च तृष्णा मूर्च्छा ह्यानाहो गौरवारुची। कासः श्वासश्चहिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः॥" (मधुकोश)

7. कास (Cough) 8. श्वास (Dyspnoea)
9. हिक्का (Hiccough)

अन्नद्रव शूल व परिणाम शूल चिकित्सा सिद्धान्त

1. सर्वप्रथम निदान परिवर्जन करना चाहिये। अन्नद्रव शूल व परिणाम शूल के रोगी को मिथ्या आहार विहार, आहार व्यतिक्रम, कटु-तीक्ष्ण मिर्च मसालेदार भोजन, मानसिक क्षोभ कारक कारणों का त्याग करना चाहिये।

2. परिणाम शूल में सर्वप्रथम लंघन, पश्चात् वमन तथा तिक्त द्रव्यों से विरेचन करायें। उसके बाद बस्ति कर्म के द्वारा शूल को शांत करना चाहिये[1]।

3. दोषानुसार[2]

(i) वातिक में स्नेह का प्रयोग (ii) पैत्तिक में रेचन व शीतोपचार
(iii) कफज में वमन व उष्ण तिक्त पदार्थों का सेवन कराना चाहिये।

अन्नद्रवशूल की चिकित्सा में पित्तान्त वमन व कफान्त विरेचन कराना चाहिये। तत्पश्चात् अम्लपित्त समान चिकित्सा करनी चाहिये। आमाशय व पक्वाशय के शुद्ध हो जाने पर शूल शांत हो जाता है[3]।

परिणामशूल व अन्नद्रवशूल की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा

(i) वमन (ii) विरेचन (iii) बस्ति

2. **संशमन चिकित्सा**-पणिामशूल व अन्नद्रव शूल की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्न अनुसार है-

1. रस/भस्म/पिष्टी-मात्रा - 125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान - शहद/कोष्ण जल

(i) लौह मण्डूर भस्म-लौह।
(ii) शूलगजकेशरी रस- पारद, गंधक, ताम्र, हींग, सोंठ, जीरा।
(iii) त्रिपुरभैरव रस-पारद, स्वर्ण, ताम्रपत्र, घृतकुमारी।

1. "लंघन प्रथमं कुर्याद्वमनं च विरेचनम्। बस्तिकर्म परञ्चात्र पक्तिशूलोपशान्तये॥" (योगरत्नाकर)
2. "वातजं स्नेहयोगेन पित्तजं रेचनादिना। कफजं वमनाद्यैश्च पक्तिशूलमुपाचरेत्॥" (योग रत्नाकर)
3. "पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तं च विरेचनम्। अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्तं यदीरितताम्॥ आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम्॥" (भै.र. 30/268-269)

(iv) त्रिफला लौहम्-त्रिफला, लौह चूर्ण।
(v) सप्तामृत लौह-त्रिफला, मुलैठी, लौहभस्म।
(vi) धात्री लौहम्-आंवला, मुलैठी, लौहभस्म।
(vii) शतावरी मण्डूर-मण्डूर, शतावरी।

2. वटी-मात्रा - 250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान - ऊष्ण जल

(i) शम्बूकादिवटी-शम्बूक, त्रिकटु, सैंधव, विड्लवण।
(ii) शंख वटी-चिंचाक्षार, पांचों लवण, हींग, अजमोद।
(iii) शूलवज्रणी वटी-पारद, गंधक, लौह, टंकण, हींग, त्रिकटु।
(iv) शंखरस गुटिका-चिंचाक्षार, शंखभस्म, हींग, अजमोद, पंचलवण।

3. चूर्ण- मात्रा - 3 - 6 ग्राम
अनुपान - ऊष्ण जल

(i) शतावरी चूर्ण-शतावरी।
(ii) मधुयष्ठी चूर्ण-मुलैठी।
(iii) आमलकी रसायन-आमलकी।
(iv) हिंग्वादि चूर्ण-हींग, अजमोद, त्रिकटु।
(v) पटोलादि चूर्ण-पटोल, चिरायता।
(vi) शंख चूर्ण-शंख, सैंधव, यवक्षार, टंकण।
(vii) कृष्णाऽभयालौह चूर्ण-पिप्पली, हरीतकी, लौहभस्म।
(viii) सामुद्राद्य चूर्ण-समुद्री लवण, सैंधव लवण, लौहभस्म, त्रिवृत चूर्ण।
(ix) नारिकेल लवण- नारियल, सैंधव।

4. घृत- मात्रा - 10 - 30 मि.ली.
अनुपान - ऊष्ण जल

(i) गुड़ पिप्पली घृत-पिप्पली, गुड़, घृत।
(ii) पिप्पली घृतम्-पिप्पली।
(iii) बीजपूराद्य घृतम्-बीजपूर नींम्बू की जड़, एरण्ड, रास्ना, गोक्षुर।
(iv) दाधिक घृत- पिप्पली, नागरमोथा, बिल्वछाल, चव्य, चित्रक, हींग।

5. पाक/अवलेह-मात्रा - 15 - 20 ग्राम
अनुपान - दुग्ध

(i) हरीतकी खण्ड-हरड़, त्रिवृत, लौहभस्म, अभ्रक भस्म, चतुर्जात।
(ii) पूग खण्ड-पूग, आंवला, जीरक, त्रिकटु।
(iii) खण्डामलकी-कूष्माण्ड, आमलकी, मिश्री।

(iv) नारिकेल खण्ड-नारियल, मिश्री।

उपर्युक्त औषधियों के अतिरिक्त अम्लपित्त की चिकित्सा में वर्णित विभिन्न औषधियों एवं योगों का प्रयोग भी अन्नद्रवशूल व परिणाम शूल में हितकर है।

आदर्श व्यवस्था पत्र

1. प्रात : सायं
   कामदुधारस - 250 मि.ग्रा.
   शंखभस्म -125 मि.ग्रा.
   शतावरी चूर्ण - 3 ग्राम
   शहद सं 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   शंखवटी - 2 वटी × तीन मात्रा
3. नारिकेल खण्ड - 20 ग्राम
   दूध से 1 × 2 मात्रा
4. रात्रि
   सामुद्राद्य चूर्ण - 4 ग्राम
   कोष्ण जल से एक मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
लघु आहार, पुराणशालि चावल, सॉवा, कोदों, जौ का सत्तू, मटर की दाल का यूष, धान का लावा, गोदुग्ध, आनूप एवं जांगल प्राणियों का मांस रस, नारियल का जल आदि।	वमन, विरेचन, बस्ति, खाली पेट न रहना आदि।

अन्नद्रव शूल में उड़द दाल की पिट्ठी के बड़े घी में तलकर खाना, खांड के साथ घेवर का सेवन तथा गंहूँ का मांड, घी एवं गुड़ के साथ सेवन पथ्य हैं।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, शुष्क, विदाही पदार्थ, शुष्क शाक, मिर्च, मसालेदार भोजन, सरसों का तैल, राई, कटु-तीक्ष्ण, द्रव्य, अम्लीय पदार्थ मछली, मद्यपान, कुलत्थ, दालें एवं चावल आदि।	रात्रि जागरण, धूप सेवन, लंघन एवं उपवास आदि।

Latest Developments

Duodinal & Gastric Ulcers

(Peptic Ulcer)

A chronic Ulcer in the gastric & duodinal mucosa due to impairment of normal mucosal defences by aggressive luminal factors like acid & pepsin. These are also called Peptic Ulcer disease. The term 'Peptic Ulcer' refers to an ulcer in the lower oesophagus, stomach & duodinum.

Causes

1. Infection of Helicobacter Pylori (H. Pylori)
2. Prolonged use of NSAID's
3. High doses of NSAID's
4. Concomitant use of Corticosteriods.
5. Smoking
6. Heredity

Symptoms

1. Pain in epigastrium
2. Relationship to food
3. Nocturnal awakeing
4. Anorexia
5. Early satiety.

Management : Principles

1. The goal to be achived in the treatment of Peptic Ulcer is relief of symptoms, healing of the Ulcer, prevention of Ulcer related complications & maintenance of symptoms free healed Ulcer state.
2. Antisecretory drugs & Antacids should be used.
3. Well balanced diet at proper intervals.
4. Avoid tropical spicy & fried food, cold drinks, tea & coffee, alcohol & smoking.
5. Reduce stress.
6. Avoid use of Aspirin & NSAID's.
7. Regular Exercises.

अध्याय-27

उदर रोग

(ABDOMINAL SWELLINGS)

व्याधि परिचय

आयुर्वेद में उदर रोग का वर्णन स्वतंत्र रूप से उपलब्ध है। उदर रोग से तात्पर्य उदर अधिष्ठानगत व्याधियों से नहीं है वरन् उन विशिष्ट व्याधियों से है जिनमें उदर उत्सेध मुख्य लक्षण होता है।

अग्नि का मूल स्थान उदर ही है एवं मंदाग्नि को समस्त उदर रोगों की जड़ कहा गया है[1]। आचार्य चरक ने आठ प्रकार के उदर रोगों का वर्णन किया है। इन समस्त उदर रोगों में अन्नवह स्रोतस्, रसवह स्रोतस्, स्वेद एवं पुरीषवह स्रोतस् तथा उदकवह स्रोतस् की विकृति मिलती है। उदर रोगों में उदर उत्सेध सामान्य लक्षण होने से इसे शोथ का ही भेद माना है तथा आचार्य चरक ने कुपित वायु के त्वक मांसाश्रित होकर कुक्षि प्रदेश में शोथ उत्पन्न करने को उदर रोग कहा है।

आधुनिक मतानुसार उदर रोग को Generalised abdominal swellings कह सकते हैं।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान - अध्याय 13
2. सुश्रुत संहिता, निदान स्थान - अध्याय 7
3. सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थान - अध्याय 14
4. अंष्टाङ्ग संग्रह, चिकित्सा स्थान - अध्याय 17
5. अष्टाङ्ग हृदय, निदान स्थान - अध्याय 12
6. अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान - अध्याय 15
7. माधव निदान, अध्याय 35
8. भावप्रकाश - अध्याय 41

1. "उदराण्युपजायन्ते मदाग्निनां विशेषतः।" (च.चि. 13/15)

सामान्य निदान[1]

उदर रोगों के सामान्य निदान निम्न प्रकार हैं-

1. अति अम्ल, लवण, ऊष्ण, क्षार, विदाही अन्नपान एवं गर विष का सेवन।
2. वमन-विरचेन के पश्चात् अनुचित संसर्जन क्रम का प्रयोग।
3. रुक्ष, विरुद्ध एवं अपवित्र आहार का सेवन।
4. रोग के कारण कृश शरीर में संशोधन कर्म करने से।
5. अति रूक्षान्न सेवन।
6. वेगधारण।
7. अग्निमांद्य।
8. मानसिक अंसतोष।
9. [illegible] आदि द्रव पदार्थों का अतिसेवन।
10. आंत्र के फटने से।
11. अर्शांकुर।
12. पूर्वजन्म कृत पापकर्म।

विशिष्ट निदान

उदर रोगों के भेदानुसार विशिष्ट निदान निम्नानुसार हैं-

I. वातोदर के निदान[2]

1. रूक्ष एवं अल्प भोजन। 2. परिश्रम।
3. मल-मूत्र का वेग धारण। 4. उदावर्त।
5. शरीर में कृशता होना।

II. पित्तोदर के निदान[3]

1. कटु, अम्ल, लवण, रसों का अति सेवन।
2. अति ऊष्ण एवं तीक्ष्ण आहार द्रव्यों का सेवन।
3. अग्नि एवं धूप का अति सेवन। 4. विदाही आहार द्रव्यों का सेवन।
5. अजीर्णाशन। 6. अध्यशन।

---

1. "अत्युष्णलवणक्षारविदाह्यम्लगराशनात्। मिथ्या संसर्जनाद्रूक्ष विरुद्धाशुचि भोजनात्॥ प्रतीकार्शोग्रहणादोषकर्शनात् कर्मविभ्रमात्। क्लिष्टानामप्रतीकाराद्रौक्ष्याद्वेगविधारणात्॥ स्रोतसां दूषणादामात् संक्षोभादतिपूरणात्। अतिसंचित हि दोषाणां पापकर्म च कुर्वताम्॥" (च.चि. 13/12-15)
2. "रूक्षाल्पभोजनात्प्रवेगोदावर्त कर्शनैः।" (च.चि. 13/23)
3. "कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णाग्न्यातपसेवनैः। विदाहाध्यशनाज्जीर्णैश्चाशु पित्तं समाचितम्॥" (च.चि. 13/26)

III. कफोदर के निदान[1]

1. व्यायाम न करना। 2. दिन में सोना।
3. मधुर, स्निग्ध एवं पिच्छिल द्रव्यों का अति सेवन।
4. दधि, दुग्ध, जलीयमांस का अति सेवन।

IV. सन्निपातोदर के निदान[2]

1. अग्निमांद्य। 2. आम, विरुद्ध एवं गुरू आहार सेवन। 3. दूषी विष [illegible]
4. रज, रोम, विट्, मूत्र, अस्थि, नख आदि मिश्रित स्त्री द्वारा प्रदत्त आहार [illegible]

V. प्लीहोदर के निदान[3]

1. भोजन के बाद सवारी करना। 2. भोजनोत्तर शारीरिक चेष्टाएं
3. अतिमैथुन। 4. अतिभार वहन।
5. अतिमार्ग गमन। 6. अति वमन।
7. रोग द्वारा शरीर के कृश होने पर।

VI. बद्धगुदोदर के निदान[4]

1. भोजन के साथ पक्ष्म या बाल का सेवन। 2. उदावर्त।
3. अर्शांकुर। 4. आंत्र का एक के ऊपर एक [illegible]

VII. छिद्रोदर के निदान[5]

1. भोजन के साथ पत्थर के टुकड़े, तृण, काष्ठ, अस्थि, मछली के [illegible] सेवन।
2. बार-बार जृम्भा लेना। 3. अति भोजन।

VIII. जलोदर के निदान[6]

1. स्नेहपान के बाद अति जलपान करना।
2. मंदाग्नि युक्त एवं दुर्बल पुरुष के द्वारा अति जल सेवन।

---

1. "अव्यायामदिवास्वप्नस्वाद्वतिस्निग्धपिच्छिलैः। दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्चाप्यति सेवितैः॥" (च.चि. 23/29)
2. "दुर्बलाऽग्नेरपथ्यामविरोधि गुरु भोजनैः। स्त्रीदत्तैश्च रजोरोमविण्मूत्रास्थिनखादिभिः॥" (च.चि. 13/32)
3. "अशित स्याति संक्षोभाद्यनयानातिचेष्टितैः। अतिव्यवायभाराध्ववमन व्याधि कर्शनैः॥" (च.चि. 13/35)
4. "पक्ष्मबालैः सहायेन भुक्तैर्बद्धायने गुदे। उदावर्तेतथाऽर्शोभिरन्त्रसंमूर्च्छनेन वा॥" (च.चि. 13/39)
5. "शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्त्रसंयुतैः। भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तैर्जृम्भणाऽत्यशनेन वा॥" (च.चि. [illegible]/12)
6. "स्नेहपीतस्य मंदाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य वा। अत्यम्बुपानान्नष्टेऽग्नौ मारुतः क्लोम [illegible]॥" ([illegible]/15)

3. शरीर में अति कृशता होने पर।

नोट-जलोदर का विस्तृत वर्णन द्वितीय खण्ड में उदकवह स्रोतस् की व्याधियों के अन्तर्गत किया गया है। इसे वहीं देखें।

सामान्य सम्प्राप्ति[1]—दुर्बल अग्नि वाले व्यक्ति जब मलिन आहार का निरन्तर सेवन करते हैं तब अग्निमांद्य के कारण आहार का उचित पाक नहीं हो पाता है एवं उदर प्रदेश में दोषों का संचय होने लगता है। ये संचित दोष प्राणवायु, जाठराग्नि एवं अपान वायु को दूषित कर ऊर्ध्व एवं अधोमार्ग को अवरुद्ध कर त्वचा एवं मांस के आश्रित होकर कुक्षि प्रदेश में आध्मान उत्पन्न कर उदर रोग उत्पन्न करते हैं।

उदररोग की विशिष्ट सम्प्राप्ति[2]—उदर प्रदेश में संचित वातादि दोष स्वेद वह तथा उदकवह स्रोतस् को अवरुद्ध कर प्राणवायु, अपान वायु एवं जठराग्नि को दूषित कर उदर रोग उत्पन्न करते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र

मंदाग्नि एवं अजीर्ण + निदान सेवन
↓
दोष दुष्टि
↓
स्वेद वह एवं उदक वह स्रोतोवरोध
↓
प्राणवायु, अपान वायु एवं अग्नि दुष्टि
↓
दुष्ट वायु द्वारा उपस्नेह की भांति अन्न रस का उदरगुहा में स्रावण
↓
उदरगुहा में अन्नरस का संचय एवं उदर वृद्धि
↓
उदररोग

1. "अग्निदोषान्मनुष्याणां रोगसंज्ञाः पृथग्विधाः। मलवृद्धया प्रवर्तन्ते विशेषोदराणि च।
मन्देऽग्नौ मलिनैर्भुक्तैरपक्वाद्दोषसंचयः॥ प्राणान्न्यपानान् संदूष्य मार्गान् रुद्ध्वाऽधोत्तरान्।
त्वङ्मांसान्तरमागम्य कुक्षिमाध्मापयन् भृशम्। जनयत्युदरं तस्य हेतुं श्रुणु सलक्षणम्॥"
(च.चि. 15/9-11)

2. "दूष्यः स्वेदवहानि दोषाः स्रोतांसि संचिताः। प्राणान्न्यपानान्सन्दूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम्॥"
(च.चि. 13/20)

सम्प्राप्ति घटक

दोष – त्रिदोष
दूष्य – रस, उदक
स्रोतस् – अन्नवह, उदकवह, पुरीषवह, रसवह, रक्तवह, स्वेदवह
अधिष्ठान – उदर
स्रोतो दुष्टि – संग
अग्नि – मंदता
स्वभाव – दारुण
साध्यासाध्यता – कृच्छ्रसाध्य

भेद[1]—आचार्य चरक ने आठ प्रकार के उदर रोगों का वर्णन किया है जो निम्न प्रकार हैं-

1. वातोदर	2. पित्तोदर	3. कफोदर
4. सन्निपातोदर	5. बद्धगुदोदर	6. प्लीदोदर
7. क्षतोदर	8. दकोदर या जलोदर	

आचार्य सुश्रुत ने भी आठ उदररोग ही माने हैं परन्तु उन्होंने क्षतोदर को आगन्तुज उदर रोग कहा है। तथा वाम पार्श्व में होने पर प्लीहोदर व दक्षिण पार्श्व में यकृत दूषित होने पर यकृद्दाल्युदर कहा है।

पूर्वरुप[2]—आचार्यों ने उदर रोग के निम्न पूर्वरुप वर्णित किये हैं-

1. भूख न लगना (Loss of appetite)
2. स्निग्ध व गुरू पदार्थों का देर से पचना (Indigestion)
3. भुक्तान्न का विदग्ध होना
4. भोजन के जीर्ण व अजीर्ण होने का ज्ञान न होना।
5. पैरों में शोथ (Oedema on feet)
6. शक्ति का ह्रास होना (Loss of strength)
7. अल्पव्यायाम से श्वासाधिक्य (Dyspnoea on exertion)
8. रूक्षता (Dryness of body)

1. "पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः। सम्भवन्त्युदाराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक् श्रुणु॥"
(च.चि. 13/22)

2. "क्षुन्नाशः स्वाद्वतिस्निग्धगुर्वन्नं पच्यते चिरात्। भुक्तं विदह्यते सर्वं जीर्णाजीर्णं न वेत्ति च॥
सहते नाति सौहित्यमीषच्छोफश्च पादयोः। शश्वद्बलक्षयोऽल्पेऽपि व्यायामे श्वासमृच्छति॥
वृद्धिपुरीषनिचयो रूक्षोदावर्तहेतुका। बस्तिसंन्धौ रुगाध्मानं वर्धते पाट्यतेऽपि च॥
आतन्यते च जठरमंपि लध्वल्पभोजनात्। राजीजन्म बलीनाश इति लिङ्गं भविष्यताम्॥"
(च.चि. 13/16-19)

9. उदर वृद्धि (Enlargement of abdomen)
10. यकृत, प्लीहा, गर्भाशय का बढ़ना (Organomegaly)
11. मलावरोध (Faecal Obstruction)
12. आध्मान (Flatulence)
13. सुपाच्य अन्नसेवन करने पर भी अजीर्ण होना
14. उदर पर रेखाओं की उत्पत्ति
15. पेट पर पड़ने वाली बलियों का दिखाई न देना।

आचार्य सुश्रुत ने उदर रोग के निम्न पूर्वरुप वर्णित किये हैं[1]

1. बल, वर्ण, आकांक्षा एवं बली विनाश।
2. जीर्ण-अजीर्ण का ज्ञान न होना।
3. विदाह होना।
4. वस्ति प्रदेश में पीड़ा।
5. पैरों में शोफ होना।

सामान्य लक्षण[2]-उदर रोग के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं-

1. उदर में आध्मान (Tympanitis)
2. हस्तपाद शोथ (Odema in hands & feets)
3. अग्निमांद्य (Indigestion)
4. गंडप्रदेश में चिकनापन
5. शरीर में कृशता (Weakness)
6. चलने में असमर्थता (Difficulty in walking)
7. सदन (Looseness of body)
8. वात एवं पुरीष का अवरोध (Obstruction of flatus & stool)
9. दाह (Burning sensation)
10. तृष्णा (Excessive thirst)

उदर रोगों के भेदानुसार विशिष्ट लक्षण-शास्त्रकारों ने उदररोगों के विभिन्न भेदों के लक्षण निम्न प्रकार वर्णित किए हैं-

1. "तत्पूर्वरूपं बलवर्णकाङ्क्षा बलीविनाशो जठरे हि राज्ये:।
जीर्णाजीर्ण परिज्ञानं विदाहवत्यो बस्तौ रुज: पादगतश्च शोफ॥" (सु.नि. 7/7)
2. i) "कुक्षेराध्मानमाटोप: शोफ: पाद करस्य च।
मंदोऽग्नि: श्लक्ष्णगण्डत्वं कार्श्यं चोदरलक्षणम्॥" (च.चि. 13/21)
ii) "आध्मानं गमनेऽशक्तिदौर्बल्यं दुर्बलाग्निता।
शोथ: सदनमङ्गनां सङ्गो मूत्र पुरीषयो:।
दाहस्तृष्णा च सर्वेषु जठेरषु भवन्ति हि॥" (सु.नि. 7/24)

I. वातोदर के विशिष्ट लक्षण[1]-निदान सेवन से कुपित हुई वायु कुक्षि, हृदय, बस्ति एवं गुद प्रदेश में जाकर जठराग्नि को मंद कर कफ को अपने स्थान से निकालकर एवं कफ द्वारा रुद्ध गति होकर त्वचा एवं मांस के बीच आश्रित होकर उदर की वृद्धि कर वातोदर को उत्पन्न करती है। इसके निम्न लक्षण हैं-

1. कुक्षि, पाणि-पाद, अण्डकोश में शोथ (Oedema over abdomen, palms feet & testis)
2. उदर में चीरने जैसे पीड़ा (Cutting pain in abdomen)
3. अनियत रूप से उदर का बढ़ना एवं घटना (Irregular enlargement/ regression of size of abdomen)
4. कुक्षि एवं पार्श्व में शूल (Pain in ribs & abdomen)
5. उदावर्त (Flatulence)
6. अंगमर्द (Bodyache)
7. पर्वभेद (Pain in Joints)
8. शुष्क कास (Dry cough)
9. दौर्बल्य (Weakness)
10. कार्श्य (Emaciation)
11. अरोचक (Anorexia)
12. अविपाक (Indigestion)
13. उदर के अधोभाग में भारीपन (Heaviness in Lower abdomen)
14. वायु एवं मल-मूत्र की रुकावट (Obstruction of flatus, faeces & urine)
15. नख, नेत्र, त्वचा, मुख, मूत्र एवं पुरीष काले-लाल वर्ण का होना (Blackish nails, eyes, skin, urine & stool)
16. उदर में पतली काली रेखाओं का उद्गम (Appearence of thin, blackish lines over abdomen)
17. उदर में अंगुलि ताड़न से वायु पूर्ण मशक के समान शब्द होना (Tympanitis)
18. उदर प्रदेश में शूल (Pain in abdomen)

1. "तस्यरूपाणि-कुक्षिपाणिपादवृषणश्वयथु:, उदरविपाटनम् अनियतौ च वृद्धिह्रासौ, कुक्षि पार्श्वशूलोदावर्ताङ्गमर्दपर्वभेदशुष्ककासकार्श्य दौर्बल्यारोचकाविपाक:। अधोगुरुत्वं वात वर्चोमूत्रसंङ्ग: श्यावारुणत्वं च नखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसाम्, अपि चोदर तन्वसितराजी सिरासंततम्....एतद्वातोदरमिति विद्यात्॥"
(च.चि. 13/25)

पित्तोदर के विशिष्ट लक्षण[1]-निदान सेवन से कुपित एवं संचित पित्त, वायु एवं कफ से मिलकर उनके मार्गों को अवरुद्ध कर स्वयम् उन्मार्ग गामी होकर आमाशयस्थ अग्नि को नष्ट कर पैत्तिक उदर रोग उत्पन्न करता है। इसके निम्न लक्षण वर्णित हैं-

1. दाह (Burning sensation)
2. ज्वर (Fever)
3. तृष्णा (Excessive thirst)
4. मूर्च्छा (Fainting)
5. अतिसार (Diarrhoea)
6. भ्रम (Vertigo)
7. मुख में कड़वापन (Bitter taste of mouth)
8. नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र, पुरीष का वर्ण हारिद्र एवं हरा होना (Yellowish green colored nails, eyes, mouth, skin, urine & faeces)
9. उदर में नील-पीत ताम्र वर्ण की सिराओं की उत्पत्ति (Engorged veins over abdomen of different colours)
10. उदर में दाह (Burning in abdomen)
11. ऊष्मा वृद्धि (Raised body temperature)
12. उदर का स्वेद युक्त व गीला रहना (Perspiration over abdomen)
13. उदर स्पर्श में कोमल (Soft abdomen on touch)
14. उदर का शीघ्रपाकी होना (Tendency for inflammation of abdomen)

III. कफोदर के विशिष्ट लक्षण[2]-निदान सेवन से कुपित कफ से स्रोतों के अवरुद्ध होने से आवृत्त हुई वायु कफ को पीड़ित करके आंत्र में स्थित होकर कफज उदररोग उत्पन्न करती है इसके निम्न लक्षण वर्णित हैं-

1. शरीर में गुरूता (Heaviness in body)
2. अरूचि (Anorexia)
3. अविपाक (Indigestion)
4. अंगों में ऐंठनवत् पीड़ा (Twisting pain in body)

1. "तस्य रूपाणि - दाहज्वरतृष्णामूर्च्छातिसारभ्रमाः कटुकास्यत्वं हरितहारिद्रत्वं च नखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसाम्, अपि चोदरं नीलपीतहारिद्रहरिततामग्राजीसिरावनद्धं, दह्यते, धूप्यते, उष्मायते, स्विद्यते, क्लिद्यते, मृदुस्पर्शं, क्षिप्रपाकं च भवति, एतद् पित्तोदरमिति विद्यात्॥" (च.चि. 13/28)
2. "तस्यरूपाणि-गौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्दाः सुप्तिः पाणिपादमुष्कोरुशोफः उत्क्लेश निद्राकासश्वासाः शुक्लत्वं च नखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसाम्, अपि चोदरं शुक्लराजी सिरासंततं गुरू स्तिमितं स्थिरं कठिनं च भवति, एतच्छ्लेष्मोदरमिति विद्यात्॥" (च.चि. 13/31)

5. अंगों में शून्यता (Numbness)
6. हाथ-पैर व अण्डकोश में शोथ (Odema over hands, feet & testis)
7. उत्क्लेश (Nausea)
8. निद्राधिक्य (Excessive sleep)
9. कास (Cough)
10. श्वास (Dyspnoea)
11. नेत्र, मुख, त्वचा व पुरीष में श्वेतता (Whitish eyes, mouth, skin & faces)
12. उदरप्रदेश में श्वेत रेखायें व्याप्त होना (Appearence of white lines over abdomen)
13. उदर में गुरूता (Heaviness in abdomen)
14. उदर का गीले कपड़े से ढका हुआ प्रतीत होना (Feeling of being covered with wet cloth)
15. उदर में कठिनता (Hard abdomen)

IV. सन्निपातोदर के विशिष्ट लक्षण[1]-निदान सेवन से कुपित त्रिदोष कोष्ट में संचित होकर धीरे-धीरे सन्निपातिक उदर रोग को उत्पन्न करते हैं। इनके निम्न लक्षण हैं-

1. वात, पित्त, कफ जन्य उदर रोग के मिश्रित लक्षण सन्निपातोदर में मिलते हैं।
2. उदर पर विविध वर्ण की रेखायें व्याप्त होती हैं।

V. प्लीहोदर के विशिष्ट लक्षण[2]-निदान सेवन से उदर के वाम प्रदेश में स्थित प्लीहा अपने स्थान से च्युत होकर बढ़ जाती है तथा रसधातु के बढ़ने से बढ़ा हुआ रक्त प्लीहा को बढ़ा देता है। इसके निम्न लक्षण प्रकट होते हैं-

1. बढ़ी हुई प्लीहा स्पर्श में कठिन, अष्ठीला के समान एवं कच्छप (कछुये) के आकार की होती है (Splenomegaly, hard in touch)
2. दौर्बल्य (Weakness)
3. अरूचि (Anorexia)

1. "तस्य रूपाणि-सर्वेषामेंव दोषाणां समस्तानि लिङ्गान्युपलभ्यन्ते, वर्णाश्च सर्वे नखादिषु उदरमपि नानावर्णराजी सिरासंततं भवति एतद् सन्निपातोदरमिति विद्यात्॥" (च.चि. 13/34)
2. "तस्य रुपाणि-दौर्बल्यारोचकाविपाक वर्चोमूत्रग्रहतमःप्रवेश पिपासाङ्गमर्दच्छर्दि मूर्च्छाङ्गसाद कासश्वास मृदुज्वरानाहाग्निनाशकार्श्यास्यवैरस्य पर्वभेद कोष्ठवातशूलानि, अपि चोदरमरुणवर्ण विवर्ण वा नीलहरित हारिद्राजिमद्भवति, एवमेव यकृदपि दक्षिणपार्श्वस्थं कुर्यात्॥" (च.चि. 13/38)

4. अविपाक (Indigestion)
5. मलमूत्र में रुकावट (Obstruction of faeces & urine)
6. तम: प्रवेश (Darkness infront of eyes)
7. तृषाधिक्य (Excessive thirst)
8. अंगमर्द (Bodyache)
9. वमन (Vomiting)
10. मूर्च्छा (Fainting)
11. अवसाद (Depression)
12. कास (Cough)
13. श्वास (Dyspnoea)
14. मंद ज्वर (Low grade fever)
15. आनाह (Flatulence)
16. मंदाग्नि (Indigestion)
17. कृशता (Emaciation)
18. मुखवैरस्य (Bitter taste of mouth)
19. संधिशूल (Joint pains)
20. उदरशूल (Pain in abdomen)
21. पाण्डु (Anaemia)
22. उदर पर नील, पीत हरित रेखाओं की उत्पत्ति (Appearance of different coloured lines over abdomen)

ये लक्षण यदि दक्षिण पार्श्व में यकृत वृद्धि होने पर हों तब इसे **यकृद्दाल्युदर** कहते हैं।

VI. बद्धगुदोदर के विशिष्ट लक्षण[1]-निदान सेवन से कुपित अपान वायु जठराग्नि का नाश कर मल पित्त व कफ को रोककर उदररोग उत्पन्न करती है। इसके निम्न लक्षण प्रकार होते हैं-

1. तृष्णा (Excessive thirst)
2. दाह (Burning)
3. ज्वर (Fever)

1. "तस्य रूपाणि-तृष्णादाहज्वर मुखतालुशोषोरुसादकासश्वास दौर्बल्यारोचकाविपाक वर्चोमूत्रसङ्गाध्मानच्छर्दि क्षवथुशिरोहृन्नाभि गुदशूलानि, अपि चोदरं मूढवातं स्थिरमरुणं नीलराजि सिरावनद्धमराजिकं वा प्रायो नाभ्युपरि गोपुच्छवदभिनिर्वर्तत्ईति, एतद् बद्धगुदोदरमिति विद्यात्॥"
(च.चि. 13/41)

4. मुख-तालुशोष (Dryness of month & palate)
5. उरु वेदना (Pain in thighs)
6. कास एवं श्वास (Cough & dyspnoea)
7. अरूचि एवं अविपाक (Anorexia & indigestion)
8. आध्मान (Tympanitis)
9. मल-मूत्रावरोध (Retention of urine & faeces)
10. क्षवथु (Sneezing)
11. सिर, हृदय, नाभि एवं गुदा में शूल (Headache, chest pain, & pain in anus & around the umblicus)
12. उदर में वायु का मूढ़ होना (Retention of flatus)
13. सिराजाल से उदर व्याप्त होना (Venous engorgement over abdomen)
14. नाभि के ऊपर गोपुच्छवत प्रतीति (Cow's tail like prominence above the umblicus)

VII. छिद्रोदर/क्षतोदर के विशिष्ट लक्षण[1]-निदान सेवन से आंत के फट जाने से उसका पाक हो जाता है। तब उस छिद्र से अन्न रस आंत से बाहर रिसने लगता है जिससे गुदा व आंत भर जाती है एवं उदर रोग उत्पन्न होता हैं इसके निम्न लक्षण हैं।

1. लाल, पीला, पिच्छिल, मुर्दे की गंध वाले आम पुरीष की प्रवृत्ति (Passage of unripe foul smelling stool)
2. हिक्का (Hiccough)
3. श्वास एवं कास (Dyspnoea & Cough)
4. तृष्णा (Excessive thirst)
5. अरोचक, अविपाक (Anorexia & indigestion)
6. दौर्बल्य (Weakness)
7. नाभि के नीचे शूल (Pain below umblicus)

VIII. जलोदर के विशिष्ट लक्षण-जलोदर का विस्तृत वर्णन द्वितीय अध्याय में उदकवहस्त्रोतस की व्याधियों के अन्तर्गत किया गया है उसे वहीं पर देखें।

साध्यासाध्यता

उदर रोगों की चिकित्सा न करने पर वे जलोदर में परिवर्तित हो जाते हैं। इनकी

1. "तस्य रुपाणि - तदधोनाभ्या: प्रायोऽभिवर्धमानमुदकोपरं भवति, यथाबलं च दोषाणां रुपाणि दर्शयति, अपि चातुर: सलोहितनीलपीतपिच्छिलकुणपगान्ध्यामवर्चउपवेशते, हिक्का श्वास कास तृष्णा प्रमेहारोचकाविपाकदौर्बल्यपरीतश्च भवति, एतच्छिद्रोदरमिति विद्यात्॥"
(च.चि. 13/44)

साध्यता व असाध्यता निम्नानुसार है-

1. वातोदर, पित्तोदर, कफोदर व सन्निपातोदर उत्तरोत्तर कष्टसाध्य हैं।
2. बद्ध गुदोदर पन्द्रह दिन से अधिक रहने पर असाध्य हो जाता है।
3. क्षतोदर कृच्छ्रसाध्य होता है।
4. जलोदर असाध्य है। नवीन जलोदर कृच्छ्रसाध्य है।

असाध्यता के लक्षण[1]

उदररोगों की असाध्यता के निम्न लक्षण हैं-

1. नेत्र में शोथ (Odema over eyes)
2. मूत्रेन्द्रिय कुटिल हो (Hard penis)
3. उदर की त्वचा गीली एवं पतली हो गई हो (Thin, wet skin of abdomen)
4. रोगी का बल, रक्त एवं मांस क्षीण हो गया हो। (Emeciated Patient)
5. मर्मस्थानों में शोथ (Oedema over vital parts)
6. श्वास, कास, हिक्का, अरुचि, तृष्णा की अधिकता (Excessive dyspnoea, cough, hiccough, anorexia & thirst)
7. वमन एवं अतिसार (Diarrhoea & vomiting)
8. उत्पन्न होते ही समस्त उदर रोग कृच्छ्र साध्य ही होते हैं तथा चिकित्सा न करने पर जलोदर में परिवर्तित होकर असाध्य हो जाते हैं।

समस्त उदररोगों के सम्भावित आधुनिक साम्य (Probable modern correlates)

1. वातोदर- Early stages of cardiac ascites or early stage of nutritional hypoproteinaemic ascites.
2. पित्तोदर- Early billiary cirrhosis or malignant obstructive Jaundice.
3. कफोदर- Early stage of ascites due to hypoproteinaemia or nephrotic syndrome.
4. सन्निपातोदर- Early ascites due to portal cirrhosis or malignant disease.
5. प्लीहोदर/यकृदुदर- Splenomegaly/Hepatomegaly.
6. बद्धगुदोदर- Intestinal obstruction

1. "शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम्। बलशोणित मांसाग्नि परिक्षीणं च वर्जयेत्॥ श्वयथु सर्वमर्मोत्थः श्वासो हिक्काऽरुचिः सतृट्। मूर्च्छाछर्दिरतिसारो निहन्त्युदरिणं नरम्। जन्मनैवोदरं सर्वप्रायः कृच्छतमं भतम्॥" (च.चि. 13/52-54)

7. क्षतोदर- Peritonitis due to perforation of intestines.
8. जलोदर- Full grown ascites of any origin.

सापेक्ष निदान

उदर रोगों में प्लीहोदर एवं जलोदर का सापेक्ष निदान क्रमशः वृक्कार्बुद एवं ovarian cyst से निम्न लक्षणों के आधार पर किया जा सकता है।

क्र.	प्लीहोदर	वृक्कार्बुद
1.	प्लीहा वृद्धि स्थिर होती है इसे ऊपर नीचे नहीं धकेला जा सकता है। [Non bellotable lump]	1. अर्बुद के ऊपर नीचे हाथ रखकर ऊपर नीचे धकेला जा सकता है। [Bellotable lump]
2.	स्पर्श करने पर तीक्ष्ण धार (Sharp edge) एवं (Splenic notch) अनुपस्थित होती है	2. ऐसा नहीं होता।
3.	Ribs एवं Spleen के बीच रिक्त स्थान नहीं होता।	3. Ribs एवं अर्बुद के बीच रिक्त स्थान होता है।

क्र.	जलोदर (Ascites)	(Ovarian Cyst)
1.	उदर पार्श्व में अधिक फैलाव एवं तनाव	1. उदर के मध्य भाग में अधिक उभार।
2.	अंगुली ताड़न करने पर पार्श्व में Dullness	2. मध्य में Dullness.
3.	Everted Umblicus	3. नाभि अधिक ऊपर उठी हुई होती है।
4.	नाभि की दरार अनुप्रस्थ (Slit transverse)	4. नाभि दरार लम्बवत् (Slit vertical)

चिकित्सा सिद्धान्त

उदररोगों की चिकित्सा के सामान्य सिद्धान्त निम्नानुसार हैं—

1. उदर रोग त्रिदोषज होते हैं, अतः सर्वप्रथम निदान परिवर्जन करते हुए वातादि दोषों का शमन करने की चिकित्सा करना चाहिये[1]।

2. समस्त उदर रोग अग्निमांद्य से उत्पन्न होते हैं, अतः अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये औषध व सुपाच्य आहार देना चाहिये[2]।

1. "सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं मतम्। तस्मात् त्रिदोष शमनीं क्रिया सर्वेषु कारयेत्॥" (च.चि. 13/95)
2. "दोषैः कुक्षौ हि सम्पूर्णे बहिर्मन्दत्वमृच्छति। तस्माद् भोज्यानि भोज्यानि दीपनानि लघूनि च॥" (च.चि. 13/96)

3. अतिमात्रा में दोष संचित होने से स्रोतोऽवरोध के कारण उदर रोग होते हैं। अत: उदररोगी को नित्य विरेचन देने का विधान है[1]। विरेचन के पश्चात् संसर्जन क्रम देने के बाद दुग्धादि सेवन से रोगी को शक्ति सम्पन्न बनायें[2]।

4. रोगी को उदावर्त होने पर स्नेहन स्वेदन के पश्चात् निरूह बस्ति देनी चाहिये। जठराग्नि तीक्ष्ण हो जाने पर आस्थापन वस्ति देनी चाहिये[3]।

5. अपान वायु अवरुद्ध होने पर एवं संधिशूल होने पर अनुवासन बस्ति (एरण्ड तैल) देना चाहिये[4]।

6. दोषानुबंध रक्षार्थ व बलस्थैर्य के लिये उदर रोगों में औषध प्रयोग के पश्चात् क्षीर का प्रयोग अवश्य करना चाहिये, क्योंकि क्षीण धातुओं के लिये दुग्ध अमृत तुल्य होता है[5]।

वातोदर की चिकित्सा[6]

1. वातोदर में स्नेहन स्वेदन पश्चात् स्नेह विरेचन देना चाहिये। विरेचनोपरांत उदर शोथ कम हो जाने पर उदर को कपड़े से बांध देना चाहिये ताकि आध्मान न होने पाये।

2. दुर्बल, वृद्ध, बालक, सुकुमार, अल्पदोष युक्त, अविरेच्य रोगियों में वात वृद्धि होने पर दोषशमनार्थ घृत, यूष, मांसरस आदि पथ्यों का सेवन कराते हुये वात नाशक बस्ति, अभ्यंग, अनुवासन एवं दुग्ध प्रयोग द्वारा चिकित्सा करना चाहिये[7]।

---

1. "दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गं निरोधनात्। सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेव विरेचयेत्।।" (च.चि. 13/61)
2. "शुद्धं संसृत्य चक्षीरं बलार्थं पाययेत्तु तम्। प्रागुत्क्लेशान्निवर्त्यं च बले लब्धे क्रमात् पय: ॥" (च.चि. 13/62)
3. "सोदावर्त पुन: स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेन्नरम्।" (च.चि. 13/63)
4. "स्फुरणाक्षेपसंध्यस्थिपार्श्व प्रष्ठत्रिकार्तिषु। दीप्ताग्निं वद्धविड्वातं रुक्षमप्यनुवासयेत्॥" (च.चि. 13/64)
5. "प्रयोगाणां च सर्वेषामनुक्षीरं प्रयोजयेत्। दोषानुबंधरक्षार्थं बलस्थैर्यार्थमेव च॥ सर्वधातुक्षयार्तानां देवानाममृतं यथा॥" (च.चि. 13/193-194)
6. "वातोदरं बलवत: पूर्वं स्नेहैरुपाचरेत्। स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात् स्नेहविरेचनम्॥ हृत दोषो परिम्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम्। ततोऽस्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत् पुन: ॥" (च.चि. 13/59-60)
7. "अविरेच्यं तु यं विद्याद् दुर्बलं स्थविरं शिशुम्। सुकुमारं प्रकृत्याऽल्पदोषंवाऽथोल्वणानिलम्॥ तं भिषक् शमनै: सर्पियूंष मांस रसौदनै:। बस्त्यभ्यङ्गानुवासैश्च क्षीरैश्चोपाचरेद् बुध: ॥" (च.चि. 13/66-67)

8. पित्तोदर की चिकित्सा[1]

1. बलवान पित्तज उदर रोगी में सर्वप्रथम विरेचन दें। एवं दुर्बल रोगी में अनुवासन बस्ति के पश्चात् क्षीर प्रधान निरुह बस्ति देकर शोधन कराना चाहिये।

विशेष–पैत्तिक उदर रोगी में बिना स्नेहन स्वेदन के विरेचन कराना चाहिये।

2. शोधन के पश्चात् जठराग्नि एवं बल की वृद्धि होने पर स्नेहन के पश्चात् पुन: विरेचन देना चाहिये[2]।

9. कफोदर की चिकित्सा[3]–1. कफोदरी में स्नेहन-स्वेदन के पश्चात् विरेचन द्वारा शोधन कर कटु एवं क्षार मिश्रित कफनाशक अन्न द्वारा (गोमूत्र, अरिष्ट, चूर्ण, लौहभस्म, क्षार, तैल पानादि) संसर्जन कर्म कराना चाहिये।

10. सन्निपातोदर की चिकित्सा[4]–सन्निपातोदर में वात-पित्त-कफ जन्य उदर रोगों की मिश्रित चिकित्सा करनी चाहिये।

11. प्लीहोदर की चिकित्सा[5]–1. प्लीहोदर में स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूह एवं अनुवासन बस्ति का प्रयोग करना चाहिये।

2. उपरोक्त प्रयोगों से लाभ न होने पर वाम बाहु में सिरावेध करना चाहिये।

3. पिप्पली प्रयोग, गुड़हरीतकी प्रयोग क्षार एवं अरिष्ट का प्रयोग प्रशस्त है।

12. बद्ध गुदोदर की चिकित्सा[6]–1. बद्ध गुदोदर से पीड़ित रोगी में स्वेदन के पश्चात् स्नुहीक्षीर आदि तीक्ष्ण औषधि मिलाकर गोमूत्र में तिल का तैल व नमक मिलाकर निरूह बस्ति तथा अनुवासन बस्ति का प्रयोग करना चाहिये।

2. अन्नकाल उपस्थित होने पर अनुलोमक अन्न का प्रयोग करना चाहिये।

---

1. "पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत्। दुर्बलं त्वनूवास्यादौ शोधयेत् क्षीरवस्तिना॥" (च.चि. 13/68)
2. "संजातबल कायाग्नि पुन: स्निग्धं विरेचयेत्। पुन: क्षीरप्रयोगं च बस्तिकर्म विरेचनम्॥" (च.चि. 13/69)
3. "स्निग्धं स्विन्नं विशुद्धं तु कफोदरिणमातुरम्। संसर्जयेत् कटुक्षारयुक्तैरन्नै: कफावहै: ॥" (च.चि. 13/72)
4. "सन्निपातोदरेसर्वा यथोक्ता: कारयेत् क्रिया:। सोपद्रवं तु निवृत्तं प्रत्याख्येयं विजानता॥" (च.चि. 13/74)
5. "स्नेहं स्वेदं विरेकं च निरुहमनुवासनम्। समीक्ष्य कारयेद्वाहौ वामे वा व्यधयेत् सिराम्॥" (च.चि. 13/77)
6. "स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम्। सतैल लवणं दद्यान्निरुह सानुवासनम्॥ परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णं चैव विरेचनम्। उदावर्तहरं कर्म कार्यं वातघ्नमेव च।" (च.चि. 13/89-90)

3. विरेचन देना आवश्यक हो तो तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये।

13. क्षतोदर की चिकित्सा[1]–1.क्षतोदर की चिकित्सा कफोदर के समान करनी चाहिये।

2. इसमें स्वेदन नहीं करना चाहिये एवं यदि जल संचित हो जाये तो बार-बार जल निकालते हुए चिकित्सा कर समय व्यतीत करना चाहिये।

3. आचार्य सुश्रुत ने ब्रीहिमुख शस्त्र द्वारा जल निष्कासन कर शल्य क्रिया का विधान किया है।

4. आचार्य चरक ने भी बद्ध गुदोदर एवं क्षतोदर में शस्त्र कर्म करने का विधान किया है[2]।

14. आचार्य चरक ने दूष्योदर (सन्निपातोदर) की चिकित्सा में विष प्रयोग का निर्देश दिया है[3]।

उदर रोगों की चिकित्सा–उदर रोगों की संशोधन एवं संशमन चिकित्सा निम्नानुसार वर्णित है–

1. संशोधन चिकित्सा

1. स्नेहन-स्वेदन 2. विरेचन 3. निरूह बस्ति 4. अनुवासन बस्ति

2. संशमन चिकित्सा–उदर रोगों की संशमन चिकित्सा में प्रयुक्त विविध संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार है—

1. रस/भस्म/पिष्टी–मात्रा - 125 - 250 मि.ग्रा.

अनुपान - जल/शहद

(i) इच्छाभेदी रस-शुण्ठी, मरिच, पारद, गंधक, टंकण, जयपाल।
(ii) नाराच रस-पारद, गंधक, टंकण, मरिच, पिप्पली, शुण्ठी, दन्तीबीज।
(iii) जलोदरारि रस-पिप्पली, मरचि, ताम्र, हरिद्रा, स्नुहीक्षीर, जयपाल।
(iv) महाबह्नि रस-पारद, गंधक, हरिद्रा, त्रिफला, निशोथ, जयपाल, मन:शिला।
(v) वारिशोषण वटी-शुद्ध गंधक, वंगभस्म, पारद, अभ्रक भस्म, लौहभस्म, ताम्रभस्म, पारद, स्वर्णभस्म।
(vi) त्रैलोक्य सुन्दर रस-पारद, गंधक, ताम्र, अभ्रक, सैंधव, वत्सनाभ, जीरा, विडंग।

1. "छिद्रोदरमृते स्वेदाच्छलेष्मोदरवादाचरेत्। जातं जातं जलं स्राव्यमेवं ताद्या पायेद्भिषक्॥" (च.चि. 13/91)
2. "इदं तु शल्यहर्तृणां कर्म स्याद् दृष्टकर्मणाम्। वामं कुक्षि मापयित्वा नाभ्यधश्चतुरंगुलम्॥ मात्रायुक्तेन शस्त्रेण पाटयेन्मतिमान् भिषक्॥" (च.चि. 13/184)
3. "पानभोजनसंयुक्तं विषमस्मै प्रयोजयेत्।" (च.चि. 13/177)

(vii) पिप्पल्याद्य लौहम्-पिप्पली मूल, चित्रक, अभ्रक, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिजात, लौहभस्म।
(viii) रसराज रस-पारद, गंधक, ताम्र।
(ix) प्लीहान्तक रस-ताम्र, रजत, अभ्रक, लौह, गंधक, पुष्करमूल, त्रिकटु, जयपाल।
(x) लोकनाथ रस-पारद, गंधक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, वराटिकाभस्म, अभ्रकभस्म।
(xi) प्लीहारि रस-पारद, गंधक, टंकण, त्रिकटु, त्रिफला, जैपाल, वत्सनाभ।
(xii) रोहीतक लौहम्-रोहीतक, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद, लौहभस्म।
(xiii) यकृतप्लीहारि लौहम्-पारद, गंधक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, हरिद्रा, मन:शिला, जयपाल।

2. वटी–मात्रा - 250 - 500 मि.ग्रा.

अनुपान - जल

(i) भेदनी वटी-गोक्षुर, स्नुही क्षीर, पिप्पली चूर्ण।
(ii) आरोग्यवर्धनी वटी-पारद, गंधक, लौह, अभ्रक, ताम्र, शिलाजीत, कुटकी, त्रिफला।
(iii) अभया वटी-हरड़, कालीमिर्च, पिप्पली, टंकण, जयपाल।
(iv) अग्नितुण्डी वटी-अजीर्णोक्त।
(v) क्षारवटिका-बकरी की मींगी, पिप्पली मूल, पंचलवण, पिप्पली, चित्रक मूल, त्रिफला, दन्तीमूल, निशोथ।

3.चूर्ण- मात्रा - 3 - 6 ग्राम

अनुपान - जल

(i) नारायण चूर्ण-अजवाइन, धनिया, त्रिफला, त्रिकटु, जीरा, पंचलवण, द्विक्षार।
(ii) कुष्ठादि चूर्ण-कूठ, दन्ती, यवक्षार, त्रिकटु, सैंधव, सामुद्र लवण, वच।
(iii) पटोलाद्य चूर्ण-पटोल, हरिद्रा, विडंग, त्रिफला, निशोथ, कम्पिलक।
(iv) समुद्राद्य चूर्ण-सामुद्र, सैंधव व सोवर्चल लवण, यवक्षार, अजवाइन, त्रिकटु, हींग।
(v) पुनर्नवादि चूर्ण-पुर्ननवा, देवदारु, हरड़, गुडुची।
(vi) रोहीतकाद्य चूर्ण- रोहीतक, यवक्षार, चिरायता, कुटकी, मोथा।
(vii) अर्क लवण-अर्क, सैंधव लवण।
(viii) पूतिक्षार-पूतिकरंज मूल, कांजी।
(ix) वज्रक्षार-सोंचर लवण, यवक्षार, सामुद्र लवण, सैंधव, टंकण, सज्जीक्षार।
(x) अग्निमुख लवण- चित्रक मूल, निशोथ, दन्तीमूल, त्रिफला, रुचक लवण।

4. क्वाथ/आसव-अरिष्ट-मात्रा - 20 - 30 मि.ली.

अनुपान - जल

(i) पुनर्नवाष्टक क्वाथ-पुर्ननवा, निम्ब, पटोल, सोंठ, कुटकी, गुडुची, देवदारु, हरीतकी।

(ii) पुर्ननवादि क्वाथ-पुर्ननवा, देवदारु, हरिद्रा, कुटकी, पटोल, हरड़, निम्ब, मुस्तक, सोंठ, गुडुची।

(iii) हरीतक्यादि क्वाथ-हरड़, सोंठ, देवदारु, पुनर्नवा, गुडुची।

(iv) दशमूलादि क्वाथ-दशमूल, गुडुची, पुर्ननवा।

(v) रोहितकाभया क्वाथ-रोहीतक छाल, हरड़, यवक्षार।

(vi) शोभाञ्जन क्वाथ-शिग्रु छाल, सैंधव, चित्रक।

(vii) अभयारिष्ट-पूर्वोक्त।

(viii) लोहासव-पूर्वोक्त।

(ix) पुनर्नवारिष्ट-पूर्वोक्त।

(x) पुर्ननवासव-पूर्वोक्त।

(xi) दशमूलारिष्ट-पूर्वोक्त।

5. घृत/तैल-मात्रा - 10 - 30 मि.ली.

अनुपान- दुग्ध/ऊष्ण जल

(i) नाराच घृत-स्नुही दुग्ध, दन्ती, त्रिफला, बिडंग, निशोथ।

(ii) चित्रक घृतम्-चित्रक, गोघृत, गोमूत्र, यवक्षार।

(iii) दशमूल षटपल घृत- दशमूल, षड्षण, यवक्षार, घृत।

(iv) दधिमण्डाद्य घृत-दही, स्नुही, गोघृत।

(v) रसोन तैल-लहसुन, त्रिफला, त्रिकटु।

(vi) रोहीतक घृत- रोहीतक, बेर, पंचकोल, घृत।

(vii) पिप्पली घृत-पिप्पली, घृत, गोदुग्ध।

(viii) चित्रक घृत- चित्रक, पंचकोल, यवक्षार, सैंधव जीरा, घृत।

(ix) ब्रह्म घृत-शिलाजीत, सोंठ, शरपुंखा, पंचलवण, हींग, घृत।

6. पाक/अवलेह-मात्रा - 20 ग्राम

अनुपान - ऊष्ण जल

(i) गुड़ पिप्पली योग- गुड़, पिप्पली, हींग, त्रिकटु।

7. रसायन चिकित्सा

1. वर्धमान पिप्पली रसायन-प्रथम दिन 10 पिप्पली से शुरू कर क्रमशः 10-10 पिप्पली बढ़ाते हुये 100 पिप्पली तक सेवन करना पश्चात् 10-10 पिप्पली घटाते हुये 10

पिप्पली तक आना चाहिये। इसप्रकार 1000 पिप्पली का सेवन करना चाहिये एवं आवश्यकतानुसार प्रतिदिन दुग्ध की मात्रा भी बढ़ानी चाहिये।

आदर्श व्यवस्था पत्र

1. वातोदर

1. प्रातः सायं
   पटोलाद्य चूर्ण - 3 ग्राम
   इच्छाभेदी रस - 125 मि.ग्रा.
   चित्रकादि वटी- 250 मि.ग्रा.
   जल से 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   अभयारिष्ट - 20 मि.लि.
   समभाग जल से 1 × 2 मात्रा
3. रात्रि
   एरण्ड तैल - 20 मि.ली.
   दूध से 1 मात्रा

2. पित्तोदर

1. प्रातः सायं
   रौप्यभस्म - 250 मि.ग्रा.
   त्रिवृत चूर्ण - 3 ग्रा.
   हषुषादि चूर्ण - 3 ग्रा.
   गर्म जल से 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   द्राक्षारिष्ट - 20 मि.ली.
   जल से 1 × 2 मात्रा
3. रात्रि
   नाराच घृत - 20 मि.ली.
   ऊष्ण जल से 1 मात्रा

3. कफोदर

1. प्रातः सायं
   पिप्पल्यादि चूर्ण - 3 ग्रा.
   पुनर्नवा मण्डूर - 250 मि.ग्रा.
   गोमूत्र से 1 × 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर
   अभयारिष्ट – 20 मि.ली.
   लोहासव 1 × 2 मात्रा
   सम जल से
3. रात्रि
   आरोग्य वर्धनी वटी– 2 गोली
   गर्म जल से 1 मात्रा

4. सन्निपातोदर

1. प्रात: सायं
   पिप्पली क्षार – 1 ग्रा.
   नारायण चूर्ण – 2 ग्रा.
   इच्छा भेदी रस – 125 मि.ग्रा.
   शीतल जल से 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   अभयारिष्ट + 20 मि.लि.
   दशमूल क्वाथ 1 × 2 मात्रा
   समजल से
3. रात्रि
   अभयावटी – 2 गोली
   गर्म जल से 1 मात्रा

5. प्लीहोदर

1. प्रात: सायं
   रोहीतक लौह – 250 मि.ग्रा.
   विडगांदि क्षार – 1 ग्रा.
   सैंधवादि चूर्ण – 2 ग्रा.
   दुग्ध से 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   रोहीतकाद्यरिष्ट – 20 मि.ली.
   जल से 1 × 2 मात्रा
3. वर्धमान पिप्पली रसायन सेवन।

6. बद्धगुदोदर

1. प्रात: सायं
   अग्निसंदीपन चूर्ण – 3 ग्राम
   हिग्वंष्टक चूर्ण – 2 ग्राम
   नाराच रस – 125 मि.ग्रा.
   गर्म जल से 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   अग्नितुण्डी वटी –2 वटी × 3 मात्रा
   जल से
3. रात्रि
   नाराच घृत – 20 मि.ली.
   ऊष्ण जल से 1 मात्रा
4. आवश्यक होने पर शस्त्रकर्म करायें।

7. क्षतोदर–कफोदर सम चिकित्सा करें तथा शस्त्र कर्म करें।

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
शलि चावल, जौं, मुद्ग, जांगल मांसरस, दुग्ध, गोमूत्र, माहिष मूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, सीधु, सुरा, दाड़िमरस, घृत, शर्करा, तक्र आदि।	विरेचन, लंघन, शिराव्यध, धूमपान अंजन, अनुवासन वस्ति, अग्निकर्म, उदर पर कपड़े से बांधना आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
औदक एवं आनूप मांसरस, शाक, पिष्टान्न,तिल,ऊष्ण गुरु, विष्टम्भी खाद्य पदार्थ, पत्रशाक, मोंठ, विरुद्धान्न, तीक्ष्ण विदाही एवं लवण युक्त अन्न आदि।	स्नेहन, जलपान, वमन, सवारी करना, दिवा स्विप्न, व्यायाम, परिश्रम अति मैथुन आदि।

चतुर्थ खण्ड

रसवह स्रोतस् के रोग

स्रोतस् परिचय

स्रोतस् शरीर के वे अवयव हैं जो दोष, धातु, मल, अन्न, जल आदि का अभिवहन करते हैं। आचार्य चरक ने 13 प्रकार के स्रोतस् वर्णित किये हैं। रसवह-स्रोतस् का मूल हृदय, दश धमनियाँ तथा रसवाही-धमनियाँ हैं[1]। अर्थात् पक्वाशय या पच्यमानाशय से आरम्भ होकर हृदय तक के वे स्रोतस् जो अन्न रस को धातुओं तक पहुंचाते हैं, रसवह स्रोतस् हैं।

रसवह स्रोतो दुष्टि हेतु[2]

आचार्य चरक ने विमान स्थान में रसवह स्रोतोदुष्टि के निम्न हेतु वर्णित किए हैं–

1. गुरु-शीत अन्न का सेवन
2. अतिस्निग्ध अन्न का सेंवन
3. अतिमात्रा में अन्न का सेवन
4. हितकर व अहितकर अन्न का एक साथ सेवन (समशन)
5. अधिक चिन्ता करना आदि

रसवह स्रोतोदुष्टि लक्षण

आचार्यों ने रसवह स्रोतो दुष्टि के सामान्य व विशिष्ट लक्षण निम्नानुसार वर्णित किए हैं–

(अ) **सामान्य लक्षण**[3]

(i) दोष-धातु-मल का अधिक निकलना (अतिप्रवृत्ति)
(ii) दोष-धातु-मल का रुक जाना (संग)
(iii) सिराओं में ग्रन्थि होना
(iv) दोष-धातु-मल का विमार्गगमन होना।

1. i) "रसवहानां स्रोतसां हृदयं मूलं दश च धमन्यः।" (च.वि. 5/8)
   ii) "रसवहे द्वे, तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यः॥" (सु.शा. 9/12)
2. "गुरुशीतमतिस्निग्धमतिमात्रं समश्नताम्।
   रसवाहीनि दुष्यन्ति चिन्त्यानां चाति चिन्तनात्॥" (च.वि. 5/13)
3. "अतिप्रवृत्तिः सङ्गो वा सिराणां ग्रन्थयोऽपि वा।
   विमार्गगमनं चापि स्रोतसां दुष्टिलक्षणम्॥" (च.वि. 5/24)

(ब) **विशिष्ट लक्षण**[1]

रसवह स्रोतो दुष्टि के विशिष्ट लक्षण निम्न प्रकार हैं–

(i) अन्न में अरुचि
(ii) आस्य वैरस्य
(iii) हल्लास
(iv) गौरव
(v) तन्द्रा
(vi) अंगमर्द
(vii) ज्वर
(viii) तम
(ix) पाण्डु
(x) क्लैब्य
(xi) कृशाङ्गता
(xii) अग्निमांद्य
(xiii) बली-पलित होना आदि।

रसवह स्रोतो दुष्टि की सामान्य चिकित्सा

आचार्य चरक के अनुसार रसवह स्रोतस् के समस्त रोगों में लंघन कराना सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा है[2]।

निम्न रसवह स्रोतोगत व्याधियों का विस्तृत वर्णन यहाँ किया जा रहा है–

1. ज्वर
2. पाण्डु
3. आमवात
4. मद-मदात्यय
5. शोथ

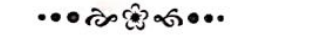

1. "अश्रद्धा चारुचिश्चास्यवैरस्यमरसज्ञता। हल्लासो गौरवं तन्द्रा साङ्गमर्दो ज्वरस्तमः॥
   पाण्डुत्वं स्रोतसां रोधः क्लैब्यं सादः कृशाङ्गता। नाशोऽग्नेरयथाकालं बलयः पलितानि च॥
   रसप्रदोषजा रोगाः—" (च.सू. 28/9-10)
2. "रसजानां विकाराणां सर्वलङ्घनमौषधम्" (च.सू. 28/25)

अध्याय-28

ज्वर रोग
(FEVERS)

व्याधि परिचय

समस्त रोगों में प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण रोग 'ज्वर' है। 'ज्वर' को व्याधि का एक पर्याय भी कहा गया है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सभी प्राणियों में ज्वर कभी न कभी अवश्य ही उत्पन्न होता है। यह एक स्वतंत्र रोग भी है तथा अनेक रोगों में पाया जाने वाला एक लक्षण भी है। अनेक रोगों के लक्षण/उपद्रव के रुप में भी ज्वर मिलता है। अत: ज्वर की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए ही आयुर्वेद में सर्वप्रथम ज्वर का वर्णन किया गया है। प्राचीन आचार्यों ने रुद्र कोप से ज्वर की उत्पत्ति मानी है। ज्वरोत्पत्ति में पाचन संस्थान गत विकृति का विशेष महत्व है। शरीर व मन दोनों को समान रुप से प्रभावित करने वाले ज्वर की विभिन्न अवस्थाएं जीवन को स्थिर रखने या नष्ट करने में समान रुप से उत्तरदाई मानी गई हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे **Fever or Pyrexia** कहा गया है।

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

'ज्वर रोग' धातु में 'अच्' प्रत्यय लगाने से ज्वर की निष्पत्ति होती है। 'ज्वरति ज्वरणं वा।'

पुराणों में मृत्यु के सेनापति प्रज्वार नाम से इसका विवरण मिलता है।

(भा.प्र. 4/27)

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, निदान स्थान-अध्याय 1
2. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 3
3. सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र-अध्याय 39
4. अष्टांङ्ग हृदय, निदान स्थान-अध्याय 2
5. अष्टांङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान-अध्याय 1
6. माधव निदान (प्रथम खण्ड)-अध्याय 2
7. भाव प्रकाश-अध्याय 4

ज्वर की उत्पत्ति

आचार्य चरक ने ज्वरादि रोगों की उत्पत्ति त्रेता युग में मानी है। सतयुग के अवसान

काल में अत्यादान (अति भोजन) से प्राणियों के शरीर में आलस्य, संचय, परिग्रह आदि की क्रम वृद्धि से लोभ उत्पन्न हुआ। उससे त्रेता युग में काम, क्रोध, कलह आदि बढ़ते गये व आहार-विहार-आचार की मलिनता से अग्नि-वायु दोषों से विकृत हुए, पुरुष के शरीर ज्वरादि रोगों से आक्रान्त होने लगे[1]।

अथर्ववेद में भी ज्वर का उत्पादक कारण अग्नि एवं वायु की विकृति माना गया है। आचार्य माधवकर ने ज्वर की उत्पत्ति दक्ष के अपमान से क्रुद्ध रुद्र के नि:श्वास से बताई है[2]। आचार्य गणनाथ सेन जी ने इसे रुपक मानकर दक्षापमान से वात प्रकोप व क्रुद्ध रुद्र से पित्त प्रकोप का ग्रहण किया है।

पर्याय

व्याधि, आतङ्क, ज्वर, विकार, रोग, Fever एवं Pyrexia इन नामों से एक ही ज्वर रुप अर्थ माना जाता है एवं ये ज्वर के पर्यायवाची शब्द हैं[3]।

वेदों में ज्वर के पर्याय[4]

वेदों में ज्वर के लिये 'तक्मा' शब्द प्रयुक्त हुया है जिसका अर्थ होता है कष्ट देने वाला। गुणभेद से ज्वर के निम्नलिखित नाम वेदों में वर्णित हैं-

	नाम	अर्थ	संदर्भ
1.	शीर्ष लोक:	शिर को पकड़ने वाला	अथर्ववेद 19/39/10
2.	सहस्राक्ष:	हजार आंखों वाला	अथर्ववेद 6/26/3
3.	अचि	ज्वाला स्वरुप	अथर्ववेद 1/25/2
4.	तपु:	तपाने वाला	अथर्ववेद 6/20/1
5.	शुष्मी	शोषण करने वाला	अथर्ववेद 6/20/1
6.	तक्मा	कष्टमय जीवनकर्ता	अथर्ववेद 5/22/1
7.	ग्रभीता	पकड़ने वाला	अथर्ववेद 1/12/2
8.	शोचि:	संतापक	अथर्ववेद 1/25/2
9.	ह्रुडु:	मुख से हुडु की ध्वनि निकले	अथर्ववेद 1/25/2
10.	शोक:	शोकातुर करने वाला	अथर्ववेद 1/25/3
11.	अभिशोक:	शोकसंतप्त करने वाला	अथर्ववेद 1/25/3
12.	वरुणस्य पुत्र	जलीय भूमि में होनेवाला	अथर्ववेद 1/25/3

1. "ततस्त्रेतायां लोभादभिद्रोह: .....।
   प्रागव्याधिभिर्ज्वरादिभिराक्रान्तानि॥" (च.वि. 3/24)
2. "दक्षापमान-संक्रुद्ध:रुद्रनि:श्वाससंभव: ज्वर:।" (मा.नि. 2)
3. "ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातङ्क एव च।
   एकोऽर्थो नाम पर्यायै विविधैरभिधीयते॥" (च.चि. 3/11)
4. "वेदों में आयुर्वेद" से साभार उद्धृत।

13.	व्यालः	सर्प की तरह प्राणघातक	अथर्ववेद 5/22/6
14.	विगदः	विशेष प्रकार का रोग	अथर्ववेद 5/22/6
15.	व्यंङ्ग	अंग विकृत करने वाला	अथर्ववेद 5/22/6
16.	अमर्त्यः	बार-बार होने वाला	अथर्ववेद 5/26/3
17.	पाप्मा	क्षय करने वाला	अथर्ववेद 6/26/1
18.	अभिशोचयिष्णु	सब ओर से तपानेवाला	अथर्ववेद 6/20/2
19.	रुद्र	रुलाने वाला	अथर्ववेद 6/20/2
20.	हरितस्य देव	हरित वर्ण का देवता	अथर्ववेद 1/25/2

तक्मा ज्वर के भेद

21.	अभ्रजा	मेघ से उत्पन्न कफज ज्वर	अथर्ववेद 1/12/3
22.	वातजा	वात से उत्पन्न वातज ज्वर	अथर्ववेद 1/12/3
23.	शुष्मः	शोषक ज्वर	अथर्ववेद 1/12/3
24.	परुषः	त्वचा में रुक्षता पैदा करने वाला	अथर्ववेद 5/22/3
25.	अंगज्वर	अंगों में रहने वाला	अथर्ववेद 9/8/5
26.	अंगभेद	अंगमर्द करने वाला	अथर्ववेद 9/8/5
27.	शीत	शीतपूर्वक होने वाला	अथर्ववेद 5/12/10
28.	रूरः	ऊष्ण ज्वर	अथर्ववेद 5/12/10
29.	तृतीयक	तीसरे दिन आने वाला	अथर्ववेद 5/12/10
30.	वितृतीय	चातुर्थिक ज्वर	अथर्ववेद 5/22/13
31.	सदन्दि	सदा रहने वाला ज्वर	अथर्ववेद 5/22/13
32.	शारदः	शरद ऋतु में होने वाला	अथर्ववेद 5/22/13
33.	वार्षिकः	बर्षा ऋतु में होने वाला	अथर्ववेद 5/22/13
34.	ग्रेष्मः	ग्रीष्म ऋतु में होने वाला	अथर्ववेद 5/22/13
35.	विश्वशारद	शरद ऋतु में विशेष होने वाला	अथर्ववेद 5/22/13
36.	अन्येद्युः	अन्येद्युष्क ज्वर	अथर्ववेद 1/25/4
37.	उभयद्युः	चातुर्थिक विपर्यय ज्वर	अथर्ववेद 1/25/4
38.	अरुणः	लाल ज्वर	अथर्ववेद 6/20/3
39.	वभ्रुः	पीतज्वर	अथर्ववेद 6/20/3
40.	वन्यः	वन में रहने वाला	अथर्ववेद 6/20/3
41.	च्यवनः	स्वेद लाने वाला	अथर्ववेद 7/116/1
42.	नोदनः	जो ज्वर इधर-उधर दौड़ता है	अथर्ववेद 7/116/1
43.	अवृतः	विषम ज्वर	अथर्ववेद 7/116/2
44.	घृष्णुः	जो घृष्तापूर्वक बढ़ता है।	अथर्ववेद 7/116/1
45.	हायनः	धान पकने के समय होने वाला ज्वर	अथर्ववेद 19/9/10

ज्वर रोग की उत्पत्ति में अग्नि की ज्वाला के समान जलन, उन्मादी की तरह प्रलाप एवं कम्पन आदि अनेक उपद्रव होने का वर्णन वेद मन्त्रों में मिलता है[1]।

ज्वर की प्रकृति

ज्वर की प्रकृति का अर्थ ज्वर का समवायि कारण है। ज्वर का समवायि कारण शारीर व मानस दोष हैं। वात-पित्त-कफ शारीरिक दोष हैं व रज एवं तम मानस दोष हैं। दोष रहित मनुष्य को ज्वर नहीं होता है[2]।

प्रकृति का एक अर्थ 'स्वभाव' है। ज्वर की स्वभाविक प्रकृति को भी जानना चाहिये।

1. ज्वर में देह व धातुओं का नाश होता हैं अतः इसे 'क्षय' भी कहते हैं।
2. ज्वर से शरीर में ताप व मन व इन्द्रियों में संताप उत्पन्न होता है, अतः इस व्याधि को 'ज्वर' कहते हैं।
3. ज्वर यमराज के समान मारने वाला होता है, अतः इसे 'यमात्मक' भी कहते हैं।

ज्वर की प्रवृत्ति[3]

आचार्य चरक के अनुसार ज्वर की प्रवृत्ति परिग्रह से होती है। चरक संहिता के विमान स्थान में आचार्य चरक ने जनपदोध्वंसीय नामक अध्याय में रोगों की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन किया है। 'परिग्रह' शब्द व्यापकता का द्योतक है अर्थात् कोई भी व्यतिक्रम ज्वर का हेतु हो सकता है। अतः ज्वर की प्रथम उत्पत्ति रुद्र कोप से तथा द्वितीय उत्पत्ति लोभ-परिग्रह या ममता से हुई है। लोभ के वश में व्यक्ति संचयी प्रवृत्ति का हो जाता है तथा आहार विहार का संयम खो बैठता है जिसके फलस्वरुप ज्वर की उत्पत्ति हो सकती है।

ज्वर का प्रभाव[4]

1. संताप (Pyrexia)
2. अरुचि (Anorexia)
3. तृष्णा (Polydypsia)
4. अंगमर्द (Bodyache)
5. हृद् व्यथा (Chest pain/Cardiac distress)

---

1. i) "यस्य भीमः प्रतिकाशा उद्वपयति पुरुषम्।"
   ii) "शतं रोपीश्च तक्मनः।" (अथर्ववेद 9/8/6)
2. "देहिनं नहि निर्दोष ज्वरः समुपसेवते।" (च.चि. 3/113)
3. i) "इत्यस्य प्रकृतिः प्रोक्ता प्रवृत्तिस्तु परिग्रहात्।
   निदाने पूर्वमुद्दिष्टा रुद्रकोपाच्च दारुणात्॥" (च.चि. 3/14)
   ii) "प्रवृत्तिः प्रथमाविर्भावः परिग्रहादिति जनपदोध्वंसनीये भृश्यति-
   तु कृतयुगे इत्यादि परिग्रहाज्ज्वर प्रवृत्तिमुक्तां स्मारयति।" (च.चि. 3/14 चक्रपाणि)
4. "संतापः सारुचि स्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदि व्यथा।
   ज्वरप्रभावो जन्मादौ निधने च महत्तमः॥" (च.चि. 3/26)

उपर्युक्त पांच लक्षण ज्वर के प्रभाव कहे गए हैं। अपथ्य के सेवन से उत्पन्न ज्वर में ये पांच लक्षण अवश्य मिलते हैं। मनुष्य के जन्म एवं मृत्यु के समय मोह पैदा करने वाला ज्वर अवश्य ही होता है।

ये पांचों लक्षण ही ज्वर के सामन्य लक्षण भी हैं जो ज्वर प्रकट होने पर उत्पन्न होते हैं।

सामान्य निदान[1]

आचार्य सुश्रुत ने उत्तर तंत्र में ज्वर के सामान्य निदानों का उल्लेख किया है। चरक संहिता में ज्वर के हेतुओं का उल्लेख नहीं है।

1. पंचकर्म का मिथ्या प्रयोग या अतियोग होना (Injudicious use of Panchakarma therapy)
2. बाह्य आघात (Trauma)
3. व्रण/विद्रधि का पाक होना (Inflammation)
4. अतिश्रम (Tiredness)
5. धातुक्षय (Consumption)
6. अजीर्ण या विषग्रस्त होना (Indigestion & poisoning)
7. ऋतु परिवर्तन (Seasonal influence)
8. विष युक्त औषध पुष्प की गंध लेना (Allergy to drugs & pollens)
9. अभिचार कर्म (Unholy deeds-Incontations)
10. शोकग्रसित होना (Psychic factor)
11. अभिशाप (देवता, गुरु, वृद्धजन द्वारा शाप दिया जाना) (Curse from Gods, teachers & elderly people)
12. काम-क्रोध-भयादि आवेश (Parapsychological factors)
13. प्रसूता द्वारा मिथ्या आहार विहार सेवन (Puerperal fever)
14. स्तन्य का प्रथम बार आविर्भाव (Onset of lactation)

विशिष्ट निदान[2]

आचार्य वागभट्ट ने मिथ्या आहार-विहार आदि को विप्रकृष्ट निदान तथा वातादि दोषों को ज्वर का सन्निकृष्ट निदान कहा है। इसके अतिरिक्त विभिन्न दोषों के प्रकोपक हेतु उस विशिष्ट ज्वर के विशिष्ट निदान होते हैं।

1. "मिथ्याऽतियुक्तैरपि च स्नेहाद्यैः कर्मभिर्नृणाम्। विविधद्भिघाताच्च रोगोत्थानात् प्रपाकतः॥
श्रमात्क्षयादजीर्णाच्च विषात् सात्म्यर्तुपर्य्ययात्। औषधि पुष्पगंधाच्च शोकान्नक्षत्रपीडया॥
अभिचाराभिशापाभ्यां प्रजातानां तथाऽहितैः। स्त्रीदोषप्रजातानां मनोभूताभिशंकया॥
स्तन्यावतरणे चैवं ज्वरो दोषैः प्रवर्त्तते॥" (सु.उ.त. 39/19-22)
2. "वातादिसन्निकृष्टं च तथाहारादि सम्भवम्। अपरं विप्रकृष्टं च रोगाणां कारणद्वयम्॥"
(अ.हृ.नि. 2/8)

सम्प्राप्ति[1]

मिथ्या आहार विहार के सेवन से कुपित हुए दोष (पृथक्-पृथक्, द्वन्दज या सन्निपातज) रस धातु से मिलकर अग्न्याशय से अग्नि को बाहर निकालकर उस अग्नि की गर्मी से सम्पूर्ण शरीर को ऊष्ण कर स्रोतों में अवरोध पैदा कर जब सम्पूर्ण शरीर में फैल जाते हैं तब शरीर में अधिक ताप उत्पन करते हैं जिससे मनुष्य का शरीर अधिक ऊष्ण हो जाता है एवं व्यक्ति ज्वर से पीड़ित हो जाता है।

जब प्रकुपित दोष स्वदोष प्रकोपक काल में ज्वर उत्पन्न करते हैं तब वह प्राकृत ज्वर कहलाता है तथा जब अन्यकाल में दोष ज्वर उत्पन्न करते हैं तब वह वैकृत ज्वर कहा जाता है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन + मिथ्या आहार विहार
↓
त्रिदोष प्रकोप
↓
आमाशय में दोषों का संचय
↓
प्रकुपित दोषों का रसधातु से संयोग
↓
प्रकुपित दोष एवं रस धातु का सर्वशरीर में फैलना
↓
कोष्ठाग्नि का अपने आशय से बर्हिगमन
↓
सामदोषों द्वारा स्वेदवह स्रोतों में अवरोध
↓
सम्पूर्ण शरीर का ऊष्ण होना
↓
ज्वरोत्पत्ति

1. "संसृष्टाः सन्निपतिताः पृथग्वा कुपिता मलाः।
रसाख्यं धातुमन्वेत्य पक्तिं स्थानान्निरस्य च॥
स्वेन तनोष्मणा चैव कृत्वा देहोष्मणो बलम्।
स्रोतांसि रुदध्वा संप्राप्ताः केवलं देहमुल्वणाः॥
संतापमधिकं देहे जनयन्ति नरस्तदा।
भवत्युष्णसर्वाङ्गो ज्वरितस्तेन चोच्यते॥" (च.चि. 3/129-131)

सम्प्राप्ति घटक

दोष - त्रिदोष-पित्तप्रधान
दूष्य - रस धातु एवं कोष्ठाग्नि
अधिष्ठान - आमाशय एवं सर्वशरीर
स्रोतस् - रसवह स्रोतस्
स्रोतो दुष्टि प्रकार - संग
स्वभाव - आशुकारी
अग्निदुष्टि - अग्निमांद्य
साध्यासाध्यता - साध्य

भेद[1]

ज्वर के निम्न भेद संहिताओं में वर्णित हैं-

1. **द्विविध भेद-** (i) शारीरिक ज्वर
   (ii) मानसिक ज्वर
2. **द्विविध भेद-** (i) सौम्य ज्वर
   (ii) आग्नेय ज्वर
3. **द्विविध भेद-** (i) अन्तर्वेग ज्वर
   (ii) बर्हिवेग ज्वर
4. **द्विविध भेद-** (i) प्राकृत ज्वर
   (ii) वैकृत ज्वर
5. **द्विविध भेद-** (i) साध्य ज्वर
   (ii) असाध्य ज्वर
6. **काल भेद-**काल, बल एवं अबल भेद से ज्वर के पांच भेद बताए गए हैं जिन्हें विषम ज्वर कहा जाता है[2], जो निम्न प्रकार हैं-
   (i) संतत ज्वर
   (ii) सतत ज्वर
   (iii) अन्येद्युष्क ज्वर
   (iv) तृतीयक ज्वर
   (v) चतुर्थक ज्वर

1. "द्विविधो विधि भेदेन...." (च.चि. 3/32)
2. "ज्वराः पूर्वमयोक्ताः ये पञ्च संततकादयः।
   चत्वारः सन्ततं हित्वा ज्ञेयास्ते विषमज्वराः॥" (च.चि. 3/74 पर चक्रपाणि)

7. **आश्रय भेद से-**आश्रय भेद से सात प्रकार के धातुगत ज्वर होते हैं-
   (i) रसगत ज्वर
   (ii) रक्तगत ज्वर
   (iii) मांसगत ज्वर
   (iv) मेदोगत ज्वर
   (v) अस्थिगत ज्वर
   (vi) मज्जागत ज्वर
   (vii) शुक्रगत ज्वर
8. **द्विविध भेद**

(i) निज ज्वर-वातादि दोषों के प्रकोप से होने वाले ज्वर को निज ज्वर कहा है इसके पुनः आठ भेद हैं-

I वातज ज्वर
II पित्तज ज्वर
III कफज ज्वर
IV वात-पित्तज ज्वर
V वात-कफज ज्वर
VI पित्तज-कफज ज्वर
VII सन्निपातज ज्वर
VIII आगन्तुज ज्वर

(ii) आगन्तुज ज्वर-बाह्य कारणों से होने वाले ज्वर को आगन्तुज ज्वर कहते हैं। इसके पुनः चार भेद हैं-

I अभिघातज ज्वर
II अभिशापज ज्वर
III अभिचारज ज्वर
IV अभिषङ्गज ज्वर

सामान्य पूर्वरुप[1]

शास्त्रों में ज्वर के निम्न सामान्य पूर्वरुप वर्णित हैं-

1. क्लम या थकावट (Fatigue)

1. i) "श्रमोऽरति विवर्णत्वं वैरस्य नयनप्लवः। इच्छोद्वेषो मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु॥
   जृम्भाऽङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरूचिस्तमः। अप्रहर्षश्चशीतं च भवत्युत्पस्यति ज्वरे॥"
   (सु.उ.त. 39/25-26)
   ii) "आलस्यं नयने साश्रे जृम्भणं गौरवं क्लमः। ज्वलनातप वाय्यम्बु भक्तिद्वेषविनिश्चतौ॥
   अविपाकास्य वैरस्ये हानिश्च बलवर्णयोः। शीलवैकृतमल्पं च ज्वरलक्षण अग्रजम्॥"
   (च.चि. 3/28-29)

2. अरति (Uneasiness)
3. विवर्णता या बलवर्णहानि (Altered complexion)
4. आस्य वैरस्य (Distaste of mouth)
5. अश्रुपूरित नेत्रत्व (Watering from eyes)
6. शीत-वात-आतप से द्वेष (Temprature intolerence)
7. रोमहर्ष (Horripilation)
8. जृम्भा (Yawning)
9. अंगमर्द (Bodyache)
10. गुरुता (Heaviness of body)
11. अरूचि (Anorexia)
12. तम (Darkness infront of eyes)
13. अप्रहर्ष (Loss of libido)
14. शीत (Fever with chills)
15. अविपाक (Indigestion)
16. शील विकृति (Change in behaviour)

विशिष्ट पूर्वरुप[1]

इन सामान्य पूर्वरुपों के अतिरिक्त विभिन्न निज ज्वरों में दोषानुसार कुछ विशिष्ट पूर्वरुप प्रकट होते हैं जिससे उस विशिष्ट दोषज ज्वर का ज्ञान होता है।

1. वातिक ज्वर में जृम्भा (Yawning)
2. पित्तज ज्वर में नयनदाह (Burning in eyes)
3. कफज ज्वर में अरुचि (Anorexia)
4. द्वन्द्वज व सन्निपातज ज्वर में दोषों के मिश्रित लक्षण प्रकट होते हैं।

सामान्य/प्रत्यात्म लक्षण[2]

आचार्य चरक ने ज्वर के पांच सामान्य लक्षण बताए हैं जिन्हें 'ज्वर का प्रभाव' भी कहा है-

1. संताप (Temprature)
2. अरुचि (Anorexia)

1. "सामान्यतो विशेषातु जृम्भाऽत्यर्थ समीरणात्।
पित्तात्रयनोर्दाह: कफादन्नारुचिर्भवेत्॥
रुपैरन्यतराभ्यां तु संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदु:।
सर्वलिङ्गसमवाय: सर्वदोष प्रकोपजे॥" (सु.उ. 39/26)
2. i) "संताप: सारुचिस्तृष्णा साङ्गमर्दो हृदिव्यथा।" (च.चि. 3/26)
ii) "स्वेदावरोध संताप: सर्वाङ्गग्रहणं तथा।
युगपत् यत्र रोधे च स ज्वरो व्यपदिश्यते॥" (सु.उ. 39/13)

3. तृष्णा (Polydypsia)
4. अंगमर्द (Bodyache)
5. हृदयव्यथा (Cardiac distress)

आचार्य सुश्रुत ने ज्वर के तीन प्रत्यात्म लक्षण कहे हैं ये तीनों लक्षण ज्वर में एक साथ अवश्य मिलते हैं। इन लक्षणों का एक साथ नहीं पाया जाना ज्वर का लक्षण नहीं हैं। पृथक्-पृथक् से तीनों लक्षण अन्य रोगों के लक्षण हैं, परन्तु एक साथ इन तीनों लक्षणों की उपस्थिति 'ज्वर का प्रत्यात्म लक्षण' है।

1. स्वेदावरोध (Suppression of perspiration)
2. संताप (Raised body temparature)
3. सर्वाङ्ग वेदना (Bodyache)

संताप भी देह एवं इन्द्रिय संताप व मानसिक संताप के रुप में प्रकट होता है। इन्द्रियों के अपने कार्य में विकृति होना इन्द्रिय संताप तथा वैचित्य, अरति एवं ग्लानि ये मानसिक संताप के लक्षण हैं जो ज्वर होने पर प्रकट होते हैं[1]।

भेदानुसार ज्वर के विशिष्ट लक्षण

शास्त्र में वर्णित बाह्य एवं आभ्यान्तर प्रभाव वाले लक्षणों के आधार पर, साम-निराम आदि अवस्था के आधार पर, ऋतु के आधार पर तथा दोषानुसार ज्वर के भेदों के लक्षणों में भी भिन्नता मिलती है जिन्हें निम्नानुसार वर्णित किया गया है-

1. बाह्य एवं आभ्यांतर प्रभाव के अनुसार ज्वर

बाह्य एवं आभ्यांतर प्रभाव के आधार पर ज्वर दो प्रकार का होता है। जिसके लक्षण निम्न है।

1. अन्तर्वेग ज्वर[2]
2. बर्हिवेग ज्वर[3]

अन्तर्वेग ज्वर के लक्षण

यह ज्वर कृच्छ-साध्य होता है। इसके लक्षण निम्न हैं-

1. अन्तर्दाह की अधिकता (Burning sensation)
2. तृष्णाधिक्य (Polydypsia)

1. "इन्द्रियाणां च वैकृत्यं ज्ञेयं संतापलक्षणम्
वैचित्यमरति ग्लानि मर्नसन्ताप लक्षणम्॥" (च.चि. 3/36)
2. "अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णा प्रलाप: श्वसनं भ्रम:।
संध्यस्थि शूलमस्वेदो दोषवर्चो विनिग्रह:॥" (च.चि. 3/39)
3. "संतापो ह्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मादर्वम्।
बर्हिवेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च॥" (च.चि. 3/41)

3. प्रलाप (Delirium)
4. श्वास (Dyspnoea)
5. भ्रम (Vertigo)
6. सन्धि एवं अस्थिशूल (Joint pains)
7. स्वेदाभाव (Absence of perspiration)
8. दोष व मल का अवरोध (Stasis of Dosha & Stool)

बर्हिवेग ज्वर के लक्षण

यह ज्वर सुख साध्य होता है इसके निम्न लक्षण हैं-

1. त्वचा पर बाह्य ताप की अधिकता (Hyperpyrexia)
2. तृष्णा (Polydypsia)
3. लक्षणों में मृदुता (Mild symptoms)
4. अल्पश्वास (Mild dyspnoea)
5. मल प्रवृत्ति (Urge to pass stool)
6. स्वेद प्रवृत्ति (Perspiration)

अन्तर्वेग ज्वर को गम्भीर धातुओं में प्रविष्ट होने के कारण आचार्य सुश्रुत ने 'गम्भीर ज्वर' कहा है[1]। बर्हिवेग ज्वर सुखसाध्य एवं अन्तर्वेगज्वर कृच्छ्र साध्य कहा गया है।

II. साम-निरामता के आधार पर ज्वर भेद

दोषों की साम, पच्यमान व निराम स्थिति के आधार पर भी ज्वर के निम्न तीन भेद कहे हैं। इनके लक्षण निम्नानुसार हैं-

1. साम ज्वर
2. पच्यमान ज्वर
3. निराम ज्वर

1. साम ज्वर के लक्षण[2]

साम ज्वर के निम्न लक्षण हैं-

1. अरुचि (Anorexia)

1. "गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया। आनद्धत्वेन चात्यर्थश्वासकासोद्गमेन च॥" (सु.उ. 39/52)
2. "अरुचिश्चाविपाकश्च गुरुत्वमुदरस्य च । हृदयस्याविशुद्धिश्च तन्द्रा आलस्यमेव च॥
ज्वरोऽविसर्गी बलवान् दोषाणाम् अप्रवर्तनम्। लाला प्रसेको हृल्लासः क्षुन्नाशो विरसं मुखम्॥
स्तब्धसुप्तगुरुत्वं च गात्राणां बहुमूत्रता। न विड्जीर्णा न च ग्लानिर्ज्वरस्यामस्य लक्षणम्॥" (च.चि. 3/133-135)

2. अविपाक (Indigestion)
3. उदरगौरव (Heaviness in abdomen)
4. निरन्तर ज्वर (Continuous fever)
5. हृदप्रदेश पर भारीपन (Heaviness in chest)
6. तन्द्रा (Drowsiness)
7. आलस्य (Lazyness)
8. लालास्राव (Excessive salivation)
9. हृल्लास (Nausea)
10. क्षुधानाश (Loss of appetite)
11. मुखवैरस्य (Distaste in mouth)
12. गुरुता एवं स्तब्धता (Stiffness in body)
13. बहूमूत्रता (Polyurea)

II. पच्यमान ज्वर के लक्षण[1]

पच्यमान ज्वर के निम्न लक्षण हैं-

1. ज्वर का तीव्र वेग (Hyperpyrexia)
2. तृष्णा (Polydypsia)
3. श्वास (Dyspnoea)
4. भ्रम (Vertigo)
5. मल मूत्र की यथोचित प्रवृत्ति (Adequate urge to pass stools & urine)
6. उत्क्लेश (Nausea)

III. निराम ज्वर का लक्षण[2]

निराम ज्वर के निम्न लक्षण हैं-

1. क्षुधा (Hunger)
2. कृशता (Weakness)
3. शरीर में लघुता (Lightness in body)
4. मलमूत्र की सम्यक् प्रवृत्ति (Normal urge to pass urine & stools)
5. ज्वर के वेग की मृदुता (Mild fever)
6. ज्वर का आठंवा दिन (8th day of fever)

आयुर्वेद में ज्वर रोग की भांति प्रत्येक रोग की साम व निराम अवस्था का विचार आवश्यक है। ज्वर में आमावस्था में औषध प्रयोग निषिद्ध है, क्योंकि यह ज्वर के वेग को

1. "ज्वरवेगोऽधिस्तृष्णा प्रलापः श्वसनंभ्रमः।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेश पच्यमानस्य लक्षणम्॥" (च.चि. 3/136)
2. "क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम्।
दोष-प्रवृत्तिरष्टाहो निराम ज्वर लक्षणम्॥" (च.चि. 3/137)

और अधिक बढ़ा सकता है। अत: ज्वर में सामावस्था में लंघन, पच्यमानावस्था में पाचन व निरामावस्था में औषध प्रयोग निर्दिष्ट है।

III. प्राकृत-वैकृत ज्वर के लक्षण[1]

वर्षाऋतु में वातज ज्वर, बसन्त ऋतु में कफज ज्वर तथा शरद ऋतु में पित्तज ज्वर "प्राकृत ज्वर" कहलाता है। इन ऋतुओं में वात-पित्त-कफ का प्रकोप स्वभावत: ही होता है। अत: इन ऋतुओं में होने वाला ज्वर "प्राकृत" कहलाता है। काल स्वभाव के विपरीत अर्थात् वर्षाऋतु में पित्तज ज्वर, बसन्त ऋतु में वातज ज्वर तथा शरद ऋतु में कफज ज्वर "वैकृत ज्वर" कहलता है। वातिक ज्वर को छोड़ शेष प्राकृत ज्वर साध्य [illegible] एवं वैकृत ज्वर कृच्छ्रसाध्य होते हैं। सामान्यत: प्राकृत रोग सुखसाध्य नहीं होते, क्योंकि जिस ऋतु में जो दोष स्वभावकि रुप से कुपित होता है वह बलवान होता है व बलवान होने पर उस दोष से उत्पन्न होने वाला रोग सुखसाध्य नहीं होता, परन्तु ज्वर के लिये यह अपवाद है। ज्वर का अपना प्रभाव है कि तुल्य ऋतु व तुल्य दोष होने पर भी सुखसाध्य होता है[3]।

प्राकृत पित्त ज्वर अपनी प्रकृति (द्रव होने से) व कफानुबंधी होने से तथा विसर्ग काल (शरद ऋतु) होने से लंघन को सहन करने वाला होता है, अत: सुख साध्य है[4]। इसी प्रकार प्राकृत कफज ज्वर आदान काल का मध्य (बसन्त ऋतु) व वात-पित्तानुबंधी होने से तथा स्वभावत: कफ लंघन सहन करने वाला होने से सुख साध्य है[5]। परन्तु प्राकृत वातज ज्वर चिकित्सा क्रम में विरुद्ध होने से कृच्छ्र साध्य होता है क्योंकि सामदोष के पाचन के लिये लंघन आवश्यक है एवं लंघन से वात की वृद्धि होती है। अत: चिकित्सा कठिन हो जाती है। इसी प्रकार वैकृत ज्वर भी चिकित्सा क्रम विरुद्ध होने से कृच्छ्रसाध्य होता है।

1. "वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यै: प्राकृत: क्रमात्।
   वैकृतोऽन्य: स दु:साध्य: प्राकृतश्चानिलोद्भव: ॥" (अ.स. 2/50)
2. "प्रायेणानिलजो दु:ख: कालेष्वन्येषु वैकृत:।" (च.चि. 3/48)
3. "ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता।
   रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्॥" (च.चि. 3/48)
4. "संचितं पित्तमुद्रिक्तं शरद्यादित्यतेजसा।
   ज्वरं संजनयत्याशु तस्य चानुबल: कफ: ॥
   प्रकृत्येव विसर्गस्य तत्र नानशनाद्भयम्॥" (च.चि. 3/44-45)
5. "हेमन्तेसूर्यसंतप्त: स बसन्ते प्रकुप्यति।
   बसन्ते श्लेष्मणा तस्माज्वर: समुपजायते।
   आदानमध्ये तस्यापि वातपित्तं भवेदनु॥" (च.चि. 3/46-47)

IV. साध्य-असाध्य ज्वर के लक्षण

ज्वर की साध्यता एवं असाध्यता के निम्न लक्षण है-

1. साध्य ज्वर के लक्षण[1]

1. बलवान रोगी
2. दोषों की अल्पता
3. उपद्रव रहित होने पर ज्वर साध्य होता है।

2. असाध्य ज्वर के लक्षण[2]

1. दुर्बल रोगी
2. बलवान हेतु एवं दोषों की अधिकता
3. बहुत लक्षणों वाला उपद्रव युक्त ज्वर असाध्य होता है।

V. निजागन्तुज ज्वर के लक्षण[3]

निज ज्वर के विभिन्न भेदों के लक्षण निम्नानुसार हैं-

I. वातिक ज्वर के लक्षण[4]-वातिक ज्वर के निम्न लक्षण होते हैं-

1. वेपथु (Rigors)
2. विषमवेग (Inregular fever)
3. कण्ठौष्ठ शुष्कता (Dryness of throat & lips)
4. निद्रानाश (Loss of sleep)
5. मुखशोष (Dryness of mouth)
6. रुक्षता (Dryness of body)
7. शिर, हृदय एवं शरीर में वेदना (Bodyaches & body pains)
8. उदर शूल (Pain in abdomen)
9. आध्मान (Flatulence)
10. मुख वैरस्य (Distaste in mouth)
11. गाढ़ विट्कता (Hard stool)
12. जृम्भा (Yawning)

1. "बलवत्स्वरुप दोषेषु ज्वरो साध्योऽनुपद्रव:।" (च.चि. 3/49)
2. "हेतुर्भिबहुभिर्जातो बलभिर्बहु लक्षणम्।
   ज्वर: प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशन:॥" (च.चि. 3/50)
3. "ज्वरोऽष्टधापृथग्द्वन्द्व संघातागन्तुज: स्मृत:।" (मा.नि. ज्वर अ. 2)
4. "वेपथु र्विषमो वेग: कण्ठौष्ठपरिशोषणम्।
   निद्रानाश: क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च।
   शिरोहृदगात्ररुग्वक्त्र वैरस्यं गाढ़विट्कता॥
   शूलाध्मानं जृम्भणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे॥" (सु.उ. 39/29-30)

II. पैत्तिक ज्वर के लक्षण[1]

पैत्तिक ज्वर में निम्न लक्षण मिलते हैं-

1. तीक्ष्ण वेग ज्वर (Hyperpyrexia)
2. अतिसार (Diarrhoea)
3. निद्राल्पता (Insomnia)
4. पित्तवमन (Bilious vomiting)
5. कण्ठ, औष्ठ, मुख एवं नासापाक (Stomatitis & Rhinitis)
6. स्वेद प्रवृत्ति (Perspiration)
7. प्रलाप (Delirium)
8. मुखकटुता (Bitter taste of mouth)
9. मूर्च्छा (Fainting)
10. भ्रम (Vertigo)
11. दाह (Burning sensation)
12. तृष्णा (Polydypsia)

III. कफज ज्वर के लक्षण[2]

कफज ज्वर के निम्न लिक्षण हैं-

1. स्तैमित्य (Feeling of being covered with wet cloth)
2. मन्दवेग ज्वर (Low grade fever)
3. आलस्य (Lassitude)
4. मधुरास्यता (Sweetish taste of mouth)
5. शुक्ल वर्णता (Pallor)
6. गात्र स्तम्भ (Stiffness of body)
7. अरुचि (Anorexia)
8. उत्क्लेष (Nausea)

1. "वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः।
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते॥
प्रलापो कटुता वक्त्रे मूर्च्छादाहो मदस्तृषा।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च॥" (सु.उ.त. 39/31-32)
2. "स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता।
शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भस्तृप्तिरथापि च।
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता॥
स्रोतोरोधो रुगल्पत्वं प्रसेको लवणास्यता।
नात्युष्ण प्रतिश्यायोऽरुचिकासः कफजेऽक्षणोश्च शुक्लता॥" (मा.नि. 2/12-13)

9. रोमहर्ष (Horripilation)
10. निद्राधिक्य (Excessive sleep)
11. लालास्राव (Salivation)
12. वमन (Vomiting)
13. अपाक (indigestion)
14. प्रतिश्याय (Rhinitis)
15. कास (Cough)

IV. वात-पैत्तिक ज्वर के लक्षण[1]

वात-पैत्तिक ज्वर के निम्न लक्षण हैं-

1. तृष्णा (Polydypsia)
2. मूर्च्छा (Fainting)
3. भ्रम (Vertigo)
4. दाह (Burning sensation)
5. निद्रानाश (Loss of sleep)
6. शिरः शूल (Headache)
7. रोमहर्ष (Horripilation)
8. अरुचि (Anorexia)
9. तम (Darkness in front of eyes)
10. कण्ठास्य शोष (Dryness of throat & mouth)
11. पर्वभेद (Pain in all Joints)

V. वात-श्लेष्मज्वर के लक्षण[2]

वात-श्लेष्मिक ज्वर के लक्षण निम्न हैं। इसका साम्य आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Influenza से किया गया है।

1. स्तैमित्य (Feeling of being surrounded by wet clothings)
2. पर्वभेद (Pain in all Joints)
3. निद्रा (Excessive Sleep)
4. शिरोग्रह (Heaviness in head)

1. "तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा।
कण्ठास्यशोषो वमथुरोमहर्षोऽरुचिस्तमः॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वात-पित्त ज्वराकृतिः॥" (सु.उ.त. 39/47)
2. "स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च।
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदप्रवर्तनम्॥
सन्तापो मध्यवेगश्च वात-श्लेष्मज्वराकृति॥" (सु.उ. 39/48-49)

5. प्रतिश्याय (Rhinitis)
6. कास (Cough)
7. स्वेद बाहुल्य (Excessive perspiration)
8. सन्ताप (Increases body temparature)

VI. श्लेष्म-पैत्तिक ज्वर के लक्षण[1]

श्लेष्म-पैत्तिक ज्वरके निम्न लक्षण हैं-

1. लिप्तास्यता (Feeling of coating inside mouth)
2. तिक्तास्यता (Bitter taste of mouth)
3. तन्द्रा (Drowsiness)
4. मोह (Clouding of consciousness)
5. कास (Cough)
6. कभी शीत तो कभी दाह की अनुभूति (Feeling of cold alternately with feeling of burning in the body)

VII. सन्निपात ज्वर के लक्षण[2]

सन्निपात ज्वर में तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण प्रकट होते हैं जो निम्न हैं-

1. कभी शीत व कभी दाह की अनुभूति (Feeling of cold alternately with feeling of burning in the body)
2. अस्थि-संधि-शिर में पीड़ा (Bodyaches & headache)
3. अश्रुपूरित नेत्र व अधखुले नेत्र (Watering of eyes & Druping of eyes).

---

1. "लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृति॥" (सु.उ. 39/50)
2. "क्षणे दाहे क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा।
सस्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः।
तन्द्रा मोह प्रलापश्च कासःश्वासोऽरुचिभ्रमः॥
परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वास्तास्तृता परम्।
ष्ठीवनं रक्त पित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च॥
शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा।
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद दर्शनमल्पशः॥
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम्।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम॥
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च।
चिराद पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृति॥" (च.चि. 3/103-108)

4. अकारण शब्द सुनाई देना (Tinnitus)
5. कर्णशूल (Otalgia)
6. गले में सुई चुभने जैसी प्रतीति (Sore throat)
7. तन्द्रा (Drowsiness)
8. कास-श्वास (Cough & Dyspnoea)
9. अरूचि (Anorexia)
10. तृष्णा (Polydypsia)
11. मलावृत जिह्वा (Coated tongue)
12. खुरदुरी जिह्वा (Furred tongue)
13. अंगशैथिल्य (Flacidity)
14. रक्तष्ठीवन (Haemoptysis)
15. सिर इधर उधर पटकना (Restlessness)
16. अनिद्रा (Insomnia)
17. हृदय व्यथा (Chest pain or cardiac distress)
18. शरीर का कृश होना (Emaciation of body tissues)
19. कण्ठकूजन (Wheezing)
20. रक्तवर्ण के मण्डल की उत्पत्ति (Skin rashes)
21. मूकता (Aphasia)
22. मुखपाक (Stomatitis)
23. उदर आध्मान (Flatulence)
24. दोषों का विलम्ब से पाक (Delayed restoration of processes of body)

ये समस्त लक्षण समत्रिदोषज सन्निपात ज्वर के लक्षण हैं। इन लक्षणों का साम्य आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Typhoid fever से किया जा सकता है। दोषों के बलाबल तथा उत्पन्न लक्षणों की दृष्टि से सन्निपातिक ज्वर वातोल्वण, पित्तोल्वण, या कफोल्वण हो सकता है। आचार्यों ने दोषों की उल्वणता के आधार पर सन्निपातज ज्वर के भी तेरह भेद वर्णित किये हैं। आचार्य चरक ने 12 प्रकार के विषम त्रिदोषज सन्निपात ज्वरों का उल्लेख किया है जो निम्नानुसार है-

1. वातपित्तोल्वंण तथा हीन कफ सन्निपात ज्वर
2. वात कफोल्वण तथा हीन पित्त सन्निपात ज्वर
3. पित्तकफाधिक तथा हीन वात सन्निपात ज्वर
4. वाताधिक हीन पित्त व हीन कफ सन्निपात ज्वर
5. पित्ताधिक हीन वात कफ सन्निपात ज्वर

6. कफाधिक हीन वात पित्त सन्निपात ज्वर
7. हीन वात मध्य पित्त तथा श्लेष्माधिक सन्निपात ज्वर
8. हीन वात मध्य कफ तथा पित्ताधिक सन्निपात ज्वर
9. हीन पित्त मध्य कफ तथा वाताधिक सन्निपात ज्वर
10. हीन पित्त मध्य वात तथा कफाधिक सन्निपात ज्वर
11. हीन कफ मध्य वात तथा पित्ताधिक सन्निपात ज्वर
12. हीन कफ मध्य पित्त तथा वाताधिक सन्निपात ज्वर

''भालुकि तन्त्र'' में प्रत्येक सन्निपात ज्वर के लिये स्वतंत्र नाम वर्णित है जो निम्न प्रकार हैं-

1. वातोल्वण सन्निपात ज्वर - विस्फुरण
2. पित्तोल्वण सन्निपात ज्वर - आशुकारी
3. कफोल्वण सन्निपात ज्वर - कम्फण
4. वात-पित्तोल्वण सन्निपात - विभुसन्निपात
5. पित्त-श्लेष्मोल्वण सन्निपात - फल्गु सन्निपात
6. वात श्लेष्मोल्वण सन्निपात - मकरी सन्निपात
7. ↓ वात, = पित्त तथा कफोल्वण सन्निपात - वैदारिकर्ण सन्निपात
8. = वात ↓ पित्त तथा कफोल्वण सन्निपात - कर्कोटिक सन्निपात
9. ↑ वात = पित्त तथा ↓ कफ सन्निपात - सम्मोह सन्निपात
10. ↓ वात = पित्त तथा ↑ कफ सन्निपात - याम्यक सन्निपात
11. ↓ पित्त = कफ तथा ↑ वात सन्निपात - पाकल सन्निपात
12. ↓ कफ =वात तथा ↑ पित्त सन्निपात - क्रकच सन्निपात
13. प्रवृद्ध त्रिदोष सन्निपात - कूटपालक सन्निपात

उपरोक्त ज्वरों का निदान विकृत दोषों की अंशाश कल्पना द्वारा किया जाता है। वात पित्त कफ ये तीनों परस्पर विरुद्ध गुणवाले होते हैं एवं सामान्य आयुर्वेदीय सिद्धान्त के अनुसार एक दूसरे के ह्रासंक होते हैं[1] फिर ये तीनों मिलकर सन्निपात ज्वर कैसे उत्पन्न करते हैं ?

इसके समाधान में आचार्यों ने स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार सहज एवं सात्म्य होने से सर्प को उसका विष नष्ट नहीं करता उसी प्रकार दोष भी सहज एवं सात्म्य होने से परस्पर विरुद्ध गुण वाले होते हुये भी एक-दूसरे को नष्ट नहीं करते एवं सन्निपात ज्वर उत्पन्न करते हैं[2]।

1. ''ह्रासहेतुर्विशेषश्च सामान्यं वृद्धि कारणम्।'' (च.सू. 1)
2. ''विरुद्धैरपि न त्वेतैर्गुणैर्घ्नन्ति परस्परम्।
दोषाः सहज सात्म्यत्वाद् विषं घोरमहीनिव॥'' (च.सू. 1)

विषम त्रिदोषज सन्निपात ज्वरों के लक्षण निम्नानुसार वर्णित हैं-

1. वातोल्वण सन्निपात के लक्षण[1]

1. संधिशूल (Joint pains)
2. शिरः शूल (Headache)
3. प्रलाप (Delirium)
4. गौरव (Heaviness of body)
5. भ्रम (Vertigo)
6. तृष्णा (Polydypsia)
7. गले व मुख की शुष्कता (Dryness of mouth)

2. पित्तोल्वण सन्निपात के लक्षण[2]

1. तृष्णा (Polydypsia)
2. दाह (Burning sensation)
3. बलहानि (Loss of strength)
4. मूर्च्छा (Fainting)
5. मल व मूत्र का रक्त वर्ण (Reddish urine & faeces)

3. कफोल्वण सन्निपात के लक्षण[3]

1. अरूचि (Anorexia)
2. वमन (Vomiting)
3. दाह (Burning sensation)
4. तन्द्रा (Drowsiness)
5. भ्रम (Vertigo)
6. कास (Cough)
7. हल्लास (Nausea)

4. वात पित्तोल्वण सन्निपात के लक्षण[4]

1. तीव्र शिरः शूल (Severe headache)
2. तृष्णा (Polydypsia)

1. ''सन्ध्यस्थिशिरसः शूलं प्रलापो गौरवं भ्रमः।
वातोल्बणे स्यात् ह्यनुगे तृष्णा कण्ठास्य शुष्कता॥'' (च.चि. 3/94)
2. ''रक्तविण्मूत्रता दाहः स्वेदस्तृड् बलसंक्षयः।
मूर्च्छा चेति त्रिदोषे स्याल्लिङ्ग पित्ते गरीयसि॥'' (च.चि. 3/95)
3. ''आलस्यारुचिहल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः।
कफोल्वणं सन्निपातं तन्द्रा कासेन चादिशेत्॥'' (च.चि. 3/96)
4. ''भ्रमः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक्।
वातपित्तोल्बणे विद्यालिङ्गमन्दकफे ज्वरे ॥'' (च.चि. 3/91)

3. दाह (Burning sensation)
4. शरीर गौरव (Heaviness in body)

5. वातकफोल्वण सन्निपात के लक्षण[1]

1. तृष्णा (Polydypsia)
2. दाह (Burning sensation)
3. हृत्पीड़ा (Chest pain)
4. तन्द्रा (Drowsiness)
5. अरुचि (Anorexia)
6. कास (Cough)
7. अतिशीत अनुभूति (Feeling of chills & rigors)

6. पित्तकफोल्वण सन्निपात के लक्षण[2]

1. बार-बार शीत एवं दाह की अनुभूति (Recurrent feeling of cold & burning in the body)
2. वमन (Vomiting)
3. मूर्च्छा (Fainting)
4. तृष्णा (Polydypsia)
5. अस्थिशूल (Pain in bones)

7. हीनवात मध्य कफ पित्ताधिक सन्निपात के लक्षण[3]

1. दाह (Burning sensation)
2. तृष्णा (Polydypsia)
3. भ्रम (Vertigo)
4. अरुचि (Anorexia)
5. मल-मूत्र-नेत्र का वर्ण हल्दी सम होना (Yellowish discoloration of urine, faeces & eyes)

8. हीन पित्त मध्य कफ वाताधिक सन्निपात के लक्षण[4]

1. शिरः शूल (Headache)
2. कम्पन (Tremors)

1. "शैत्यं कासोऽरुचिस्तन्द्रा पिपासादाहरुग्व्यथाः।
वातश्लेष्मोल्बणे व्याधौ लिङ्गं पित्तावरे विदुः॥" (च.चि. 3/92)
2. "छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहोऽस्थिवेदना।
मन्दवाते व्यवस्यन्ति लिङ्गं पित्तकफोल्बणे॥" (च.चि. 3/93)
3. "हारिद्रमूत्रनेत्रत्वं दाहस्तृष्णा भ्रमोऽरुचि।
हीनवाते मध्यकफे लिङ्गं पित्ताधिके मते॥" (च.चि. 3/98)
4. "शिरोरुग्वेपथुः श्वासः प्रलापश्छर्द्यरोचकौ।
हीनपित्ते मध्यकफे लिङ्गं स्यान्मारुताधिके॥" (च.चि. 3/99)

3. श्वास (Dyspnoea)
4. अरुचि (Anorexia)
5. प्रलाप (Delirium)
6. वमन (Vomiting)

9. हीन वात मध्य पित्त कफाधिक सन्निपात के लक्षण[1]

1. अरुचि (Anorexia)
2. अग्निमांद्य (Indigestion)
3. तन्द्रा (Drowsiness)
4. आलस्य (Lassitude)
5. वमन (Vomiting)
6. प्रतिश्याय (Rhinitis)

10. हीनपित्त मध्य वात कफाधिक सन्निपात के लक्षण[2]

1. अस्थि व शिर में तीव्र शूल (Severe headache & bone pain)
2. प्रलाप (Delirium)
3. तन्द्रा (Drowsiness)
4. गौरव (Heaviness of body)
5. शीतानुभूति (Chills)

11. हीनकफ मध्यवात पित्ताधिक सन्निपात के लक्षण[3]

1. अतिसार (Diarrhoea)
2. अग्मिांद्य (Indigestion)
3. तृष्णा (Polydypsia)
4. दाह (Burning sensation)
5. अरुचि (Anorexia)
6. भ्रम (Vertigo)

12. हीन कफ मध्यपित्त वाताधिक सन्निपात के लक्षण[4]

1. श्वास (Dyspnoea)

1. "प्रतिश्यायछर्दिरालस्यं तन्द्राऽरुच्यग्निमार्दवम्।
हीनवाते पित्तमध्ये लिङ्गं श्लेष्माधिकं मतम्॥" (च.चि. 3/97)
2. "शीतको गौरवं तन्द्रा प्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक्।
हीनपित्ते मध्यवाते लिङ्गं श्लेष्माधिके विदुः॥" (च.चि. 3/100)
3. "वर्चोभेदोऽग्नि दौर्बल्यं तृष्णा दाहोऽरुचिर्भ्रमः।
कफहीनेवात मध्ये लिङ्गं पित्ताधिके विदुः॥" (च.चि. 3/102)
4. "श्वासकास प्रतिश्यायो मुखशोषोऽतिपार्श्वरुक्।
कफ हीने पित्तमध्ये लिङ्गं वाताधिके महत्॥" (च.चि. 3/101)

2. कास (Cough)
3. प्रतिश्याय (Rhinitis)
4. मुखशोष (Dryness of mouth)
5. तीव्रपार्श्वपीड़ा (Severe pain in laleral sides of body)

13. समत्रिदोषज सन्निपात ज्वर के लक्षण-पूर्व में वर्णित किए जा चुके हैं।

अभिन्यास ज्वर[1]

आचार्य सुश्रुत ने "अभिन्यास ज्वर" नामक सन्निपात का उल्लेख किया है। इसमें प्रकुपित वातादि दोष प्राणवह स्रोतस् उर व वक्ष प्रदेश का अनुगमन करते हुए आमदोष की अत्यधिक वृद्धि द्वारा मन एवं इन्द्रियों को प्रभावित करते हुए घोर अभिन्यास ज्वर को उत्पन्न करते हैं जिसमें रोगी तीव्र ज्वर के कारण मस्तिष्कगत विकृति व संन्यास को प्राप्त होता है। इस ज्वर के लक्षण निम्न प्रकार हैं-

1. नाक-कान में सुन्नता (Blunting of hearing & vision)
2. चेष्टा नाश (Impaired activities)
3. इन्द्रिय ज्ञान नाश (Loss of sensations)
4. बेचैनी (Restlessness)
5. अन्नद्वेष (Anorexia)
6. कबूतर सम घुर्घुर शब्द (Wheezing chest)
7. तोद (Pricking pain)
8. अल्पभाषण (Aphasia)
9. बार-बार करवट बदलने की इच्छा (Restlessness)
10. असाध्यता (Incurability)

इस अवस्था को "हतौजस" भी कहा है क्योंकि इसमें अत्यधिक ओजक्षय के लक्षण प्रकट होते हैं। आधुनिक मतानुसार इस अवस्था को severe toxaemic condition in Typhoid fever भी कह सकते हैं। समत्रिदोषज सन्निपात में सभी धातुएं समान रूप से दूषित होती हैं जबकि विषम त्रिदोषज सन्निपात में विभिन्न धातुयें अलग-अलग ढंग से भिन्न परिणाम से दूषित होती हैं, पश्चात् लक्षणोत्पत्ति होती है।

1. "नात्युष्णशीतोऽल्पसंज्ञो भ्रान्तपेक्षी हतस्वरः।
खरजिह्वः शुष्ककण्ठः स्वेदविण्मूत्रवर्जितः॥
सास्रो निर्भुग्नहृदयो भक्तद्वेषी हतप्रभः।
श्वसन्निपतितः शेते प्रलापोपद्रवैर्युतः॥
तमभिन्यासमित्याहुर्हतौजसमथापरे।
सन्निपातज्वरं कृच्छ्रमसाध्यमपरे विदुः॥" (सु.उ.त. 39/39-41)

VIII. आगन्तुज ज्वर के लक्षण-आगन्तुज ज्वर भी चार प्रकार के होते हैं। इनमें निदान वैशिष्ट्य के अनुसार दोषों का अनुबंध भी हो सकता है। यथा काम-भय-शोक से वायु, क्रोध से पित्त तथा भूताभिषङ्ग से त्रिदोष प्रकोप जानना चाहिए तत्पश्चात् लक्षण उत्पन्न होते हैं[1]। अतः आगन्तुज ज्वरों में निदान को जानकर निदान परिवर्जन करना ही प्रमुख चिकित्सा है। इसके भेदानुसार लक्षण निम्नानुसार हैं-

1. अभिघातज ज्वर के लक्षण[2]

तलवार, शस्त्र, काष्ठ, मुक्का, दांत आदि के प्रहार या अन्य कारणों से शरीर पर अभिघात लगने से उत्पन्न ज्वर 'अभिघातज ज्वर' होता है। इसके निम्न लक्षण हैं-

1. पीड़ा (Pain)
2. शोथ (Infiammation)
3. विवर्णता (Discoloration)
4. रक्तस्राव (Bleeding tendency)
5. ज्वर (Fever)

2. अभिषङ्गज ज्वर के लक्षण[3]

काम, क्रोध, शोक एवं भय से आसक्त तथा भूत प्रेतों से आसक्त जिन व्यक्तियों को ज्वर होता है उसे अभिषङ्गज ज्वर कहते हैं। इसके अतिरिक्त विषैले वृक्षों का स्पर्श करने से एवं वायु के लगने से जो ज्वर होता है वह भी अभिषङ्गज ज्वर के अन्तर्गत आता है। भूताभिषङ्ग से यहां पर विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं का संक्रमण (Bacterial Infection) समझ सकते हैं।

(i) विष वृक्षों के सम्पर्क से निम्न लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं-

1. श्यावता (Cyanosis)
2. अतिसार (Diarrhoea)
3. तृष्णा (Polydypsia)
4. तोद (Pricking pain)
5. मूर्च्छा (Fainting/coma)

लक्षणों के आधार पर इसे Toxic fever की स्थिति समझ सकते हैं।

1. "कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात् पित्तं त्रयो मलाः।
भूताभिषङ्गात् कुप्यन्ति भूतसामान्य लक्षणाः॥" (च.चि. 3/118)
2. "तत्राभिघातजे वायुः प्रायो रक्तं प्रदूषयन्।
सव्यथा शोफवैवर्ण्यं करोति सरुजं ज्वरं॥" (च.चि. 3/113)
3. "कामशोकभयक्रोधैरभिषक्तस्य यो ज्वरः।
सोऽभिषङ्गज्वरो ज्ञेयो यश्च भूताभिषङ्गजः॥" (च.चि. 3/114)

(ii) औषधि गन्धज ज्वर के निम्न लक्षण प्रकट हो सकते हैं-

1. मूर्च्छा (Fainting)
2. शिरः शूल (Headache)
3. वमन (Vomiting)
4. छींक आना (Sneezing)

(iii) कामज ज्वर के निम्न लक्षण प्रकट हो सकते हैं-

1. चित्तविभ्रंश (Anxiety)
2. तन्द्रा (Drowsiness)
3. आलस्य (Lassitude)
4. हृद् वेदना (Chest pain)
5. श्वास (Dyspnoea)
6. मुख एवं गात्र का सूखना (Dryness of mouth)

(iv) भयज एवं शोकज ज्वर के लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं-

1. प्रलाप (Delirium)
2. अरुचि (Anorexia)
3. क्षुधानाश (Loss of appetite)

(v) क्रोधज ज्वर में निम्न लक्षण प्रकट हो सकते हैं-

1. कम्पन (Tremors)
2. संरम्भ नेत्र (Red eyes)

(vi) भूताभिषङ्गज ज्वर के कारण निम्न लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं-

1. उद्वेग (Anxiety)
2. कभी हास्य कभी रुदन (Bizarre behaviour)
3. कम्पन (Tremors)

3. अभिचारज ज्वर के लक्षण[1]

सिद्ध पुरुषों के श्राप, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि कर्म से जो ज्वर उत्पन्न होता है उसे "अभिचारज ज्वर" कहते हैं। सन्निपात ज्वर के जो लक्षण बताए गए हैं वे ही लक्षण अभिचारज ज्वर में भी पाए जा सकते हैं।

4. अभिशापज ज्वर के लक्षण

देवता, गुरु, ब्राह्मण सिद्ध पुरुषों का अपमान करने से उनके क्रोधित होने पर अभिशाप देने से जो ज्वर उत्पन्न होता है वह 'अभिशापज ज्वर' होता है। इसमें भी सन्निपातज ज्वर के समान लक्षण मिलते हैं।

1. "अभिचाराभिशापाभ्यां सिद्धानां यैः प्रवर्तते। सन्निपातज्वरो घोरः स विज्ञेयः सुदारुणः॥ सन्निपात ज्वरस्योक्तं लिङ्गं तस्य तत्स्मतम्॥" (च.चि. 3/118-119)

आगन्तुज ज्वरों में प्रथम ज्वरोत्पत्ति होती है पश्चात् दोष प्रकोप होता है[1]। काम-क्रोध भय आदि के द्वारा जब मन आक्रान्त होता है तो ज्वर पहले उतना बलवान नहीं होता है किन्तु मन के वातादि दोषों से दूषित हो जाने के उपरान्त उपरोक्त वर्णित लक्षण विशेष बल सहित प्रकट होते हैं।

VI. अवस्था भेद से ज्वर के लक्षण-अवस्था भेद से ज्वर दो प्रकार होता है-

1. नव ज्वर
2. जीर्ण ज्वर

ज्वर चिकित्सा में सबसे पहले विचारणीय विषम ज्वर का नव या जीर्ण होना है। इसका निर्णय रोगी के ज्वर रोग से ग्रसित होने की अवधि से किया जाता है। जन्म से 7 दिन तक नव ज्वर या तरुण ज्वर, 8-12 दिन तक मध्यम ज्वर व उसके बाद पुराण ज्वर कहा जाता है एवं 21 दिन बीतने के बाद भी बने रहने वाला ज्वर जीर्ण ज्वर कहलाता है[2]। इसमें प्लीहावृद्धि (Splenomegaly) व अग्निसाद विशिष्ट लक्षण होते हैं। इस प्रकार अवस्था भेद से ज्वर निम्न प्रकार का होता है-

(i) नव ज्वर या तरुण ज्वर - 1-7 दिन तक
(ii) मध्यम ज्वर - 8 -12 दिन तक
(iii) जीर्ण ज्वर - 21 दिन से अधिक + प्लीहा वृद्धि +अग्निमांद्य

VII. आश्रय भेद से ज्वर के लक्षण

आश्रय भेद से सात प्रकार के धातुगत ज्वर होते हैं। वातादि दोषज ज्वर ही जब विशिष्ट धातुओं में आश्रित होते हैं तब कुछ विशेष लक्षण प्रकट होते हैं। किसी भी व्याधि के धात्वाश्रित होने का ज्ञान उसकी साध्या-साध्यता का निर्णय करने में तथा चिकित्सा सूत्र निर्धारित करने में सहायक होता है। रस, रक्त, मांस तथा मेद धातुगत ज्वर साध्य होते हैं। अस्थि-मज्जा धातु गत ज्वर कृच्छ्र साध्य व शुक्रधातुगत ज्वर असाध्य होता है[3]। विभिन्न धातु गत ज्वरों के लक्षण शास्त्रो में निम्नानुसार वर्णित हैं-

1. रसगत ज्वर के लक्षण[4]

1. गौरव (Heaviness of body)
2. उत्क्लेश (Nausea)

1. "ते पूर्वं केवलाः पश्चान्निजैर्व्यामिश्रलक्षणाः
हेत्वौषधविशिष्टाश्च भवन्त्यागन्तवो ज्वराः॥" (च.चि. 3/128)
2. "आसप्तरात्रं तरुणः, ज्वरमार्हुमनीषिणः। मध्यं द्वादशरात्रं तु पुराणमत उत्तरम्॥
त्रिसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरोयस्तनुतां गतः। प्लीहाऽग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते॥"
(च.चि. 3/139)
3. "रसरक्ताश्रितः साध्यो मांस मेदोगतश्च च।
अस्थिमज्जगतः कृच्छ्रः शुक्रस्थस्तु न सिद्धयति॥" (च.चि. 3/83)
4. "गुरुत्वदैन्यमुद्वेगः सदनं छर्द्यरोचकौ।
रसस्थिते बहिस्तापः साङ्गमर्दो विजृम्भाणम्॥" (च.चि. 3/291)

3. हृदयोत्क्लेश (Palpitation)
4. सदन (Sluggishness)
5. छर्दि (Vomiting)
6. अरुचि (Anorexia)
7. दैन्यता (Feeling of unwell)

2. रक्तगत ज्वर के लक्षण

1. रक्तष्ठीवन (Haemoptysis)
2. दाह (Burning)
3. मोह (Clouding of conciousness)
4. छर्दि (Vomiting)
5. विभ्रम (Confusion)
6. प्रलाप (Delirium)
7. पिड़िका (Boils)
8. तीव्रवेग ज्वर (Hyperpyrexia)
9. तृष्णा (Polydypsia)

3. मांसगत ज्वर के लक्षण[2]

1. अन्तर्दाह (Internal burning)
2. तृष्णा (Polydypsia)
3. मोह (Clouding of conciousness)
4. ग्लानि (Disgust)
5. अतिसार (Diarrhoea)
6. दुर्गन्धि (Emits bad smell)
7. हाथ पैर पटकना (Unsteady body postures)

4. मेदगत ज्वर के लक्षण[3]

1. स्वेद बाहुल्य (Excessive perspiration)
2. तृष्णा (Polydypsia)
3. प्रलाप (Delirium)

1. "रक्तोष्णा पिडिकास्तृष्णा सरक्तष्ठीवनं मृदुः।
दाहरागभ्रममदप्रलापा रक्तसंस्थिते॥" (च.चि. 3/77)
2. "अन्तर्दाह सतृष्मोहः सग्लानि सृष्टविट्कता।
दौर्गन्ध्यं गात्रविक्षेपो ज्वरे मांसस्थिते भवेत्॥" (च.चि. 3/78)
3. "स्वेदस्तीव्रा पिपासा च प्रलापो वम्यभीक्ष्णशः।
स्वगंधास्यासहत्वं च मेदःस्थग्लान्यरोचकौ" (च.चि. 3/79)

4. वमन (Vomiting)
5. गंध असहिष्णुता (Untolerable body smell)
6. ग्लानि (Disgust)
7. अरोचक (Anorexia)

5. अस्थिगत ज्वर के लक्षण[1]

1. अस्थियों में भेदनवत् पीड़ा (Piercing pain in bones)
2. वमन (Vimiting)
3. अतिसार (Diarrhoea)
4. कण्ठ कूजन (Wheezing)
5. हाथ पैर पटकना (Unsteady body posture)

6. मज्जागत ज्वर के लक्षण[2]

1. हिक्का (Hiccough)
2. श्वास-कास (Cough & Dyspnoea)
3. बहिर्शैत्य (Feeling of cold/chills outside)
4. तमः प्रवेश (Darkness infront of eyes)
5. मर्मस्थान में पीड़ा (Piercing pain in vital parts)
6. अन्तर्दाह (Internal burning)

7. शुक्रगत ज्वर के लक्षण[3]

1. शोफ स्तब्धता (Stiffness in penis)
2. शुक्रस्राव की प्रवृत्ति (Excessive semen ejaculation)
3. मृत्यु (Death)

VIII. ज्वर के अन्य भेद व उनके लक्षण

ज्वर की प्रकृति व स्वभाव के आधार पर ज्वर के दो अन्य भेद वर्णित हैं-

1. अविसर्गी ज्वर
2. विसर्गी ज्वर

1. "विरेकं वमनं क्षोभसास्थिभेदं प्रकूजनम्।
विक्षेपणं च गात्राणां श्वासश्चास्थिगते ज्वरे॥" (च.चि. 3/80)
2. "हिक्काश्वासस्तथा कासस्तमश्चातिदर्शनम्।
मर्मच्छेदो बहिः शैत्यं दाहोऽन्तश्चैव मज्जगे॥" (च.चि. 3/81)
3. "शुक्रस्थानगतः शुक्रमोक्षं कृत्वा विनाश्य च।
प्राणं वाय्वग्निसोमैश्च साधंगच्छत्यसौ विभुः॥" (च.चि. 3/82)

I. अविसर्गी ज्वर के लक्षण

जो ज्वर अपनी निश्चित अवधि तक बना रहता है तथा बीच में कभी भी शरीर का ताप प्राकृतिक स्थिति पर नहीं आता उसे अविसर्गी ज्वर कहते हैं। यह ज्वर पुन: दो प्रकार का होता है-

(i) समवेगी ज्वर
(ii) विषमवेगी ज्वर

(i) समवेगी ज्वर-इस प्रकार के ज्वर में ज्वर का वेग निरन्तर बना रहता है तथा दिन रात में बहुत ही कम अंश में ज्वर कम होता है। इसे Continuous fever कह सकते हैं।

(ii) विषमवेगी ज्वर-इस प्रकार के ज्वर में ज्वर का वेग 24 घण्टे में 2 डिग्री तक अधिक या कम होता है, परन्तु सामान्य तापमान पर कभी नहीं आता। इसे Remittent fever कह सकते हैं।

II. विसर्गी ज्वर-जिस ज्वर का वेग 24 घण्टे में एक या अधिक बार अपने प्राकृत तापमान (98.4 F)तक आ जाता है एवं पुन: बढ़ जाता है, इस ज्वर को विसर्गी ज्वर कहते हैं। इसके पुन: दो भेद हैं-

(i) मुक्तानुबंधी ज्वर
(ii) पुनरावर्तक ज्वर

(i) मुक्तानुबंधी ज्वर-इस प्रकार के ज्वर में दिन में एक या अनेक बार ज्वर का वेग घटकर अपने प्राकृत तापमान पर आ जाता है। इसे Intermittent fever भी कहते हैं।

(ii) पुनरावर्तक ज्वर[1]-ज्वर मुक्त व्यक्ति यदि पूर्ण रुपेण स्वस्थ होने के पूर्व ही अपथ्य का सेवन करता है तो वह पुन: ज्वर से पीड़ित हो जाता है। इस प्रकार ज्वर के वेग के पुन: आगमन को पुनरावर्तक ज्वर (Relapsing fever) कहते हैं[2]। दोषों के सम्यक् निर्हरण या पूर्ण शमन के बिना ही यदि ज्वर शांत हो जाता है तो वह थोड़े ही अपथ्य सेवन से पुन: उत्पन्न हो जाता है। यह पुनरावर्तक ज्वर दुर्बल व्यक्ति के लिये घातक होता है[3]।

1. "विगत क्लम संताप व्यथं विमलेन्द्रियम्।
युक्तं प्रकृति सत्वेन विद्यात् पुरुष ज्वरम्॥" (च.चि. 3/329)
2. "असंजात बलो यस्तु ज्वरमुक्तो निषेवते।
वर्ज्यमेवन्नरस्यास्य पुनरावर्तते ज्वर: ॥
दुर्ह्रतेषु च दोषेषु यस्य वा विनिवर्तते।
स्वल्पनाप्यपचारेण तस्य व्यावर्तते पुन: ॥" (च.चि. 3/333-334)
3. "चिरकाल परिक्लिष्टं दुर्बलहीनतैजसम्।
अचिरेणैव कालेन स हन्ति पुनरागत: ॥" (च.चि. 3/335)

वातबलासक ज्वर[1]

वात बलासक ज्वर का वर्णन आचार्य वागभट्ट ने अष्टांङ्ग संग्रह के निदान स्थान में किया है। इसके लक्षण निम्न प्रकार हैं-

1. नित्य मंदज्वर (Daily low grade fever)
2. त्वचा में रुक्षता (Dryness of skin)
3. शोथ (Oedema)
4. अंगों में स्तब्धता (Impaired sensory perception)
5. अवसाद (Depression)

जिस स्थान पर पानी अधिक होता है एवं जहां चावल मुख्य भोजन है उस स्थान पर यह ज्वर अधिक पाया जाता है।

प्रलेपक ज्वर[2]

प्रलेपक ज्वर का वर्णन आचार्य वागभट्ट ने किया है एवं इसके निम्न लक्षण वर्णित किए हैं-

1. गौरव (Heaviness in body)
2. स्वेद (Sweating)
3. शीत (Chills/Rigors)
4. मंद ज्वर (Low grade fever)

प्रकुपित दोषों के संधियो में पहुंचने पर प्रलेपक ज्वर की उत्पत्ति होती है। इसमें मंदज्वर सदा बना रहता है। प्रात:काल इसका वेग कम रहता है एवं मध्यान्ह व सांयकाल में बढ़ जाता है। यह ज्वर राजयक्ष्मा के रोगियों में विशेष कष्टप्रद होता है[3]। इसे विषम ज्वर की श्रेणी में रखा जाता है। परन्तु आचार्य सुश्रुत ने इसे विषम ज्वर से भिन्न कहा है[4]। दोषांश कल्पना से यह कफ-पित्तज ज्वर है[4]। प्रलेपक ज्वर व वात बलासक ज्वर दोनों ही जीर्ण स्वरुप के मंद ज्वर हैं जो अनेक दीर्घकालानुबंधी व्याधियों में मिलते हैं।

1. "नित्यमंदज्वरो रुक्ष: शूनकस्तेन सीदति।
स्तब्धाङ्ग: श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी॥" (अ.स.नि. 2)
2. "प्रलिम्पन्निव गात्राणि धर्मेण गौरवेण च।
मंदज्वर विलेपी च स शीत: स्यात् प्रलेपक: ॥" (अ.स.नि. 2)
3. "तथा प्रलेपको ज्ञेय: शोषिणां प्राणानाशन:।
दुश्चिकित्स्य तमो मन्द: सुकष्टो धातुशोषकृत॥" (सु.उ.त. 39/54)
4. i) "प्रलेपकस्त्व विषम: ।" (सु.उ.त. 39)
ii) "अटांच कफ पित्तज: ।" (मधुकोष)

ज्वरमोक्ष पूर्व लक्षण

आचार्य चरक ने[1] तथा आचार्य माधवकर[2] ने ज्वर मोक्ष (ज्वर छोड़ते समय) के निम्न लक्षणों का वर्णन किया है। ज्वर छूटते समय तीव्र लक्षणों का प्रकट होना, रोगकारक दोषों के सहसा हटने से दोषाक्रान्त धातुओं में क्षोभ उत्पन्न होने के कारण होता है। जिस प्रकार दीपक बुझने के पहले एक बार अधिक तेज जलता है उसी प्रकार रोग भी समाप्त होने के पूर्व उसका वेग तीव्र होता है[3]। इस समय रोगी की विशिष्ट देख-भाल करना चाहिए अन्यथा यह स्थिति घातक हो सकती है। ज्वर मोक्ष के लक्षण निम्न हैं-

1. कण्ठकूजन (Wheezing)
2. वमन (Vomiting)
3. श्वास (Dyspnoea)
4. कम्पन (Tremors)
5. मूर्च्छा (Fainting)
6. प्रलाप (Delirium)
7. विड्भेद (Diarrhoea)
8. संज्ञानाश (Loss of sensation)
9. शीताङ्ग (Cold body)
10. स्वेद (Perspiration)
11. दाह (Burning sensation)
12. भ्रम (Vertigo)
13. सहसा ताप परिवर्तन (Sudden variation in body temperature)
14. आस्यवैगन्ध्य (Smell from mouth)
15. तृष्णा (Polydypsia)

ज्वर मोक्ष भी दो प्रकार से हो सकता है—

1. **दारुण ज्वर मोक्ष**
2. **अदारुण ज्वर मोक्ष**

1. "ज्वरप्रमोक्षे पुरुषः कूजन् कम्पति चेष्टते।
श्वसन विवर्णः स्विन्नाङ्गो वेपते लीयते मुहुः॥
प्रलपत्युष्ण सर्वाङ्गशीताङ्गच भवत्यपि।
विसंज्ञो ज्वर वेगार्तः सक्रोधः इव वीक्षते॥" (च.चि. 3/324-326)
2. "दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्प विड्भिदसंज्ञता।
कूजन चास्यवैगन्ध्यकृतिर्ज्वर मोक्षणे॥" (मा.नि. 2/74)
3. "निर्वाणावस्थो दीपो विशेषतः प्रज्वलति" (मधुकोश)

I. दारुण ज्वर मोक्ष[1]-जो ज्वर तीव्र पीड़ा सहित सहसा छूट जाता है उसे दारुण ज्वर मोक्ष कहते हैं। बहुत दोष वाले बलवान पुरुष का नूतन ज्वर अच्छी चिकित्सा द्वारा दोषों के पच जाने पर सहसा छूट जाता है। इस अवस्था में क्षीण दोष भी नष्ट होते समय अपनी भयंकरता दिखाकर शांत हो जाते हैं। सन्निपातज ज्वर में दारुण मोक्ष होता है।

II. अदारुण ज्वर मोक्ष[2]-जो ज्वर दोष के अनुसार अपना समय पूर्ण करने के बाद क्रमशः नष्ट होता है, ऐसे कुछ दिन तक रहने वाले ज्वर का आचार्यों ने अदारुण मोक्ष होना बताया है। सन्निपात ज्वरों को छोड़कर शेष ज्वरों में अदारुण मोक्ष होता है।

ज्वर मुक्त के लक्षण[3]

आचार्यों ने ज्वर के छूट जाने पर कुछ विशिष्ट लक्षणों के प्रादुर्भाव का वर्णन किया है जिनको देखकर ज्वर मुक्ति का ज्ञान होता है। ये लक्षण निम्न हैं-

1. सामान्य स्वेद (Normal sweating)
2. शरीर में लघुता (Lightness in body)
3. शिर में कण्डू (Itching in head/scalp)
4. मुख पाक (Stomatitis)
5. क्षवथु (Sneezing)
6. अन्न के प्रति इच्छा (Increased appetite)
7. शरीर का ताप सामान्य होना (Normal body temparature)
8. विगत कलम (Feeling of freshness)

ज्वर मुक्ति पश्चात् जो लक्षण प्रकट होते हैं वे स्रोतसों के शुद्ध हो जाने पर स्वेद प्रवृत्ति, पाचकाग्नि के सामान्य हो जाने पर मुखपाक, अन्न के प्रति इच्छा, कफ की वृद्धि एवं पित्त की क्षीणता होने पर शिर में कण्डू एवं आरोग्य प्राप्ति के लक्षण शरीर में लघुता, विगत क्लम आदि के रूप में प्रकट होते हैं।

साध्यासाध्यता

ज्वर की साध्यता एवं असाध्यता के लक्षण निम्न हैं-

I. साध्य ज्वर के लक्षण

बलवान रोगी में अल्प दोष एवं उपद्रव रहित ज्वर साध्य होता है।

1. "बहुदोषस्य बलवान् प्रायेणाभिनवो ज्वरः।
सत्क्रिया दोष पक्त्या चेद्रिमुञ्चति सुदारुणम्॥" (च.चि. 3/327)
2. "कृत्वा दोषवशाद्वेगं क्रमादुपरमन्ति ये।
तेषामदारुणो मोक्षो ज्वराणां चिरकारिणम्॥" (च.चि. 3/328)
3. i) "स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डू पाको मुखस्य च।
क्षवयुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम्॥" (सु.उ. 39/322)
ii) "विगतक्लमसंतापमव्यथं विमलेन्द्रियम्।
युक्तं प्रकृतिसत्वेन विद्यात् पुरुषम ज्वरम्॥" (च.चि. 3/329)

II. असाध्य ज्वर के लक्षण

1. अनेक कारणों से उत्पन्न ज्वर।
2. अनेक लक्षण युक्त ज्वर।
3. इन्द्रिय शक्ति को शीघ्र नष्ट करने वाला ज्वर।
4. गूढ़ लिङ्ग वाला अन्तर्वेग ज्वर।
5. दीर्घकाल तक बना रहने वाला ज्वर।
6. क्षीण, कृश एवं शोथ युक्त रोगी में ज्वर।
7. प्रारम्भ से ही विषम वेग वाला ज्वर।
8. रोगी बेहोश हो व उठने बैठने में असमर्थ हो।
9. जिस रोगी की कांति नष्ट हो गई हो व इन्द्रिय निष्क्रिय व क्षीण हों।
10. जिसमें ज्वर के समस्त पूर्वरुप उपस्थित हों।
11. जिस ज्वर में बाहर से शीत व शरीर में अन्तर्दाह हो, वह असाध्य होता है।

असाध्य सन्निपात ज्वर के लक्षण[1]

1. दोष व मलों की प्रवृत्ति न होना (Excretory & Circulatory failure)
2. जठराग्नि का नाश होना (G.I.T. Upsets)
3. समस्त लक्षणों का उत्पन्न होना (Fully manifested disease)

ये सन्निपात ज्वर की असाध्यता के द्योतक लक्षण हैं। आचार्य चरक ने सन्निपात ज्वर को दुश्चिकित्स्य कहा है। यह किसी भी स्थिति में सुखसाध्य नहीं होता।

असाध्य पुनरावर्तक ज्वर के लक्षण[2]

1. पुनः पुनः लौटकर आने वाला ज्वर।
2. शरीर एवं मन से दुर्बल रोगी में अधिक दिन तक रहने वाला ज्वर।
3. दुर्बल एवं निस्तेज रोगी में पुनरावर्तक ज्वर शीघ्र ही प्राण का नाश करने वाला होता है।

सन्निपात ज्वर की काल मर्यादा[3]

1. वात प्रधान सन्निपात ज्वर सातवें दिन बढ़कर उतर जाता है या रोगी को मार डालता है।

---

1. "दोषे विबद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्ण लक्षणः।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा॥" (च.चि. 3/109)
2. "चिरकालपरिक्लिष्टं दुर्बलं हीनतेजसम्।
अचिरेणैव कालेन स हन्ति पुनरागतः॥" (च.चि. 3/235)
2. "पित्तकफानिलबृद्धया दशदिवस द्वादशाहसप्ताहात्। हन्ति विमुञ्चति वाशु त्रिदोषजो धातुमलपाकात्॥
सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा। पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं यान्ति हन्ति वा॥"
(सु.उ. 39/45)

2. पित्त प्रधान सन्निपात ज्वर दसवें दिन बढ़कर उतर जाता है या रोगी को मार डालता है।
3. कफ प्रधान सन्निपात ज्वर बारहवें दिन बढ़कर उतर जाता है या रोगी को मार डालता है। सन्निपातज ज्वर में यदि मल पाक होता है तो रोगी के प्राण बच जाते हैं एवं यदि धातुपाक होता है तो रोगी मर जाता है।

आचार्य माधवकर ने माधव निदान में सन्निपात ज्वर की काल मर्यादा 7, 9, 11, 14, 18 तथा 22 दिनों की कही है। इससे अधिक समय होने पर रोगी मर जाता है।

उपद्रव[2]

आचार्य चरक ने सन्निपात ज्वर के उपद्रव का वर्णन किया है। सन्निपात ज्वर के अन्त में कर्णमूलशोथ (Parotiditis) नामक भयंकर उपद्रव उत्पन्न होता है जो चिकित्सा न करने पर अत्यन्त घातक होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

आचार्य चरक ने ज्वर की विभिन्न अवस्थाओं को ध्यान में रखकर बहुत ही सटीक चिकित्सा सूत्रों का वर्णन ज्वर चिकित्सा के लिये किया है। इनमें से प्रमुख ज्वर चिकित्सा सूत्र निम्न प्रकार वर्णित हैं-

I. नव ज्वर का चिकित्सा सिद्धान्त

1. लंघन

नव ज्वर या आमज्वर में सर्वप्रथम दोष पाचनार्थ लंघन करना चाहिये। बलवान व्यक्तियों के लिये लंघन से तात्पर्य 'अनशन' है परन्तु दुर्बल रोगियों में लघु भोजन कराने का निर्देश किया गया है[3]।

लंघन निषेध[4]-क्षयज, वातज, भयज, क्रोधज, कामज, शोकज व श्रमज ज्वर में लंघन निषेध है।

---

1. "सप्तमी द्विगुणा चैव नवम्येकादशी तथा।
एषा दोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च॥" (मा.नि. ज्वर)
2. "सन्निपातज्वरास्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते॥" (च.चि. 3/287)
3. i) "ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात्॥" (च.चि. 3/139)
ii) "ज्वरादौ लंघनं शस्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम्।" (यो.र.)
4. "वातजे श्रमजे चैव पुराणे क्षतजे ज्वरे।
लघनं नाहितं विद्याच्छमनैस्तानुपाचरेत्॥" (सु.उ. 39/103)

आचार्य चरक ने लंघन की 7 दिन तक काल मर्यादा बतलाई है। 8वें दिन ज्वर निराम (दोषों का पाचन) हो जाता है[1]। आचार्य हारीत ने एक दिन, तीन दिन या छः दिन लंघन की काल मर्यादा बतलाई है जो आमावस्था की मात्रा के आधार पर है।

लंघन से लाभ[2]

1. लंघन से दोषों का पाचन होता है।
2. अग्नि संधुक्षण होता है।
3. शरीर में लघुता उत्पन्न होती है।
4. ज्वर का नाश होता है।
5. क्षुधा प्रवृत्ति होती है।
6. भोजन में रुचि जाग्रत होती है।

2. पाचन[3]

दोषों के पाचनार्थ आचार्य चरक ने लंघन, स्वेदन, काल तथा यवागू एवं तिक्त रस का प्रयोग नव ज्वर में बताया है। नव ज्वर में यथा शक्ति लंघन, ऊष्णोदक द्वारा मृदु स्वेदन, समय की प्रतीक्षा अर्थात् निराम स्थिति पश्चात् ही औषध कल्पना करना, दीपन पाचनीय यवागू का प्रयोग व तिक्त रस प्रधान औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

यवागू से लाभ[4]

1. जठराग्नि प्रदीप्त होना।
2. दोषों का अनुलोमन होना।
3. द्रव व ऊष्ण होने से स्वेद प्रवृत्ति।
4. तृष्णा का शमन।
5. शरीर में लघुता एवं बल बढ़ना।
6. ज्वर में सात्म्य है।

3. पानीय प्रयोग

ज्वर में तृष्णा होने पर दोषों का भली भांति विचार कर औषधयुक्त जल पीने के लिये देना चाहिये। आचार्य चरक ने षडंगपानीय का प्रयोग ज्वर में प्यास लगने पर बताया है।

1. "आससप्तरात्रं तरुणं ज्वरमार्हुमनीषिणः॥" (च.चि. 3)
2. "लंघनेन क्षयं नीते दोषे संधुक्षितेऽनले।
   विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवास्योपजायते॥" (च.चि. 3/140)
3. "लघनं स्वेदनं काले यवा वस्तिक्तको रसः।
   पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणे ज्वरः॥" (च.चि. 3/142)
4. "ताश्च भैषजसंयोगाल्लघुत्वाचाग्नि दीपनः।
   वातमूत्रपुरीषाणां दोषाणां चानुलोमनाः॥
   स्वेदनीयद्रवोष्णत्वाद् द्रवत्वात्तृट्प्रशान्तये।
   आहारभावात् प्राणाय सरत्वाल्लाघवाय च॥" (च.चि. 3/151-152)

षडंगपानीय[1]

मुस्तक, पर्पट, उशीर, चन्दन, सुगन्धवाला एवं सोंठ, इन छः द्रव्यों से सिद्ध किया गया जल शीतल होने पर प्यास व ज्वर की शांति के लिये करना चाहिये। इसे षडंगपानीय कहते हैं।

4. नव ज्वर में कषाय रस निषेध[2]

नव ज्वर में कषाय रस प्रधान द्रव्यों का प्रयोग निषेध है, क्योंकि कषाय रस स्तम्भक होने के कारण नवज्वर में दोषों को स्तम्भित कर देता है एवं दोषों का पाक नहीं हो पाने के कारण कषाय रस ज्वर का वेग बढ़ा सकता है और विषम ज्वर के लक्षणों को उत्पन्न कर सकता है।

5. पाचन व शमन औषध प्रयोग[3]

नव ज्वर व आम ज्वर से पीड़ित रोगी को सातवें दिन पाचन औषध देने तथा निरामावस्था प्राप्त हो जाने पर संशमन औषध देने का विधान है।

6. ज्वर में वमन

जब ज्वर में कफ की प्रधानता हो एवं दोष उत्क्लिष्ट हों तब वमन योग्य रोगियों में वमन कराना चाहिये[4]। नव ज्वर में यदि दोष उत्क्लिष्ट न हों और वमन करा दिया जाय तो हृद्रोग, श्वास रोग, आनाह, मोह आदि उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं[5]।

7. घृतपान प्रयोग[6]

कफ मन्द होने पर वात पित्त प्रधान ज्वर में दोषों के पक जाने पर 10 दिन बाद दोषानुसार औषध सिद्ध घृतपान कराना चाहिये।

चूंकि आमाशयोत्थ ज्वर में कफ दोष की प्रधानता रहती है एवं लंघन से कफ दोष क्षीण हो जाता है एवं ज्वर के संताप से रूक्षता बढ़ जाती है तथा धातुओं का शोषण होने

1. "मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः।
   श्रृतं शीतं जलं दद्यात् पिपासा ज्वर शांतये॥" (च.चि. 3/145)
2. "स्तम्भयन्ते न विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम्।
   दोषा वृद्धाः कषायेण स्तम्भित्वात् तरुण ज्वरे॥" (च.चि. 3/161)
3. "पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेद्भिषक्।
   ज्वरितं षडहेतीते लघ्वन्नं प्रतिभोजनम्॥" (च.चि. 3/160)
4. "कफप्रधानानुत्क्लिष्टान् दोषानामाशयस्थितान्।
   बुद्ध्वा ज्वरकरान् काले वम्यानां वमनैहरेत्॥" (च.चि. 3/146)
5. "अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणे ज्वरे।
   हृद् रोगं श्वासानाहं मोहं च जनयेद् भृशम्॥" (च.चि. 3/147)
6. "अत ऊर्ध्वं कफे मन्दे वातपित्तोत्तरे ज्वरे।
   परिक्लेषु दोषेषु सर्पिष्पानं यथाऽमृतम्॥" (च.चि. 3/164)

लगता है। अत: वात पित्त दोष बढ़ जाते हैं, ऐसी स्थिति में घृतपान कराने से धातु पुष्टि, रुक्षता का नाश एवं वात पित्त का शमन होता है। परन्तु 10 दिन बीत जाने पर भी यदि कफ दोष का प्राधान्य हो तब घृतपान नहीं कराना चाहिये।

8. दुग्ध प्रयोग[1]

दाह एवं तृष्णा से पीड़ित वात, पित्त या वात-पित्त प्रधान दोष वाले निराम ज्वर के रोगी को दुग्ध प्रयोग कराना चाहिये।

9. ज्वर में विरेचन[2]

यदि उपरोक्त वर्णित चिकित्सा से भी ज्वर शांत न हो तब बलवान रोगी को विरेचन कर्म करवाना चाहिये। स्रंसन विरेचन का प्रयोग पित्ताशय में गए हुए पित्त दोष या कफ-पित्त दोष को निकालने के लिए किया जाता है।

10. ज्वर में निरूह बस्ति[3]

ज्वर रोग से क्षीण रोगियों में वमन व विरेचन कर्म का निषेध है। अत: दोष निष्कासन के लिये रोगी को दुग्धपान कराकर निरूह बस्ति देना चाहिये। आस्थापन बस्ति पक्वाशय में रहने वाले वात-पित्त व कफ तीनों दोषों को निकालने वाली होती है।

11. ज्वर में अनुवासन बस्ति[4]

यदि बलवान रोगी का मल निष्कासन विरेचन व निरूह बस्ति के द्वारा उत्तम रुप से न हुआ हो या मल, पित्तदोष व कफ दोष के क्षय होने पर भी ज्वर शांत न हुआ हो तब रूक्ष, एवं बद्ध पुरीष वाले रोगी जिसका ज्वर पुराण हो गया हो, कफ पित्त दोष क्षीण हो तथा अग्नि तीव्र हो ऐसे रोगी में अनुवासन बस्ति का प्रयोग करना चाहिये।

12. नव ज्वर में नस्य प्रयोग[5]

ज्वर में शिर:शूल, शिरोगौरव हो तथा इन्द्रियां अपने विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ हों एवं ज्वर जीर्ण हो गया हो तब रोगी को शिरोविरेचन (नस्य) देना चाहिये।

1. "दाहतृष्णापरीतस्य वातपित्तोत्तरे ज्वरे।
   बद्धप्रच्युतदोषं वा निरामं पयसा जयेत्॥" (च.चि. 3/167)
2. "क्रियाभिराभि: प्रशमं न प्रयाति यदा ज्वर:।
   अक्षीणबलमांसाग्नेः शमयेत् तं विरेचनैः॥" (च.चि. 3/168)
3. "ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम्।
   कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान्॥" (च.चि. 3/169)
4. "ज्वरे पुराणे संक्षीणे कफपित्ते दृढाग्नये।
   रुक्षबद्धपुरीषाय प्रदद्यादनुवासनम्॥" (च.चि. 3/172)
5. "गौरवे शिरसः शूले विबद्धेष्विन्द्रियेषु च।
   जीर्णे ज्वरे रुचिकरं कुर्यान्मूर्धविरेचनम्॥" (च.चि. 3/173)

13. ज्वर में बाह्य चिकित्सा[1]

जीर्ण ज्वरों में शीत व ऊष्ण ज्वरों का विचार कर शीतज्वरों में ऊष्ण अभ्यंग, प्रदेह, परिषेक, अवगाह तथा ऊष्ण ज्वरों में शीत अभ्यंग, प्रदेह, परिषेक, अवगाह का प्रयोग करना चाहिये। यदि ज्वर केवल त्वचा मात्र में हो तथा आगन्तुज ज्वर में भूत-प्रेत अभिशाप-अभिचार आदि का अनुबंध हो तब धूपन व अञ्जन का प्रयोग करना चाहिये[2]।

14. वातिक ज्वर का चिकित्सा सूत्र

वात ज्वर में कषाय पान करने के बाद मांसरस के साथ भात का सेवन कराना चाहिये एवं जीर्ण ज्वर नाशक सभी चिकित्साओं का प्रयोग करना चाहिये।

द्वन्द्वज ज्वर का चिकित्सा सूत्र[3]

द्वन्द्वज व सन्निपात ज्वरों में उनके उत्पादक प्रकुपित वातादि दोषों के तर, तम व सम स्वरुप में समझकर उन-उन दोषों के तर-तम व सम अवस्था में जिन-जिन औषधियों को देने का विधान है उन उन औषधियों के प्रयोग से चिकित्सा करना चाहिये।

सन्निपातिक ज्वर का चिकित्सा सूत्र[4]

सन्निपातज ज्वर में एक दोष को बढ़ाकर व बढ़े हुये दोष को घटाकर अथवा कफ स्थान के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। आचार्य सुश्रुत ने विषम त्रिदोषज व समत्रिदोषज सन्निपात ज्वर की चिकित्सा का वर्णन किया है।

1. विषम त्रिदोषज सन्निपातज ज्वर में हीन दोष को बढ़ाकर तथा बढ़े हुए दोष को घटाकर एक समान स्थिति में लाकर चिकित्सा करनी चाहिए, क्योंकि समान मान में स्थित दोषों पर ही ज्वरघ्न औषधियों का प्रभाव होता है।
2. समत्रिदोषज सन्निपात ज्वर में कफ स्थान के अनुरुप चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् ऐसी औषधियों का प्रयोग करना चाहिये जिससे कफ दोष का शमन एवं आमाशय का शोधन एक साथ हो जाए। सम सन्निपात ज्वर में प्रथम किस दोष की चिकित्सा करनी चाहिये इसके बारे में भी भिन्न मत है।

1. "अभ्यंगाश्च प्रदेहाश्च परिषेकावगाहने।
   विभज्य शीतोष्णकृतं कुर्याज्जीर्णे ज्वरे भिषक्॥" (च.चि. 3/147)
2. "धूपनाञ्जनयोगश्च यान्ति जीर्णज्वराः शमम्।
   त्वङ्मात्रशेषः येषां च भवत्यागन्तुरन्वयः॥" (च.चि. 3/176)
3. "संसृष्टान् सन्निपतितान् बुद्ध्वा तरतमैः समैः।
   ज्वरान् दोषक्रमापेक्षी यथोक्तैरौषधैर्जयेत॥" (च.चि. 3/285)
4. "बर्धनेनैकदोषस्य क्षपणेनोन्क्लिष्टस्य वा।
   कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरं जयेत॥" (च.चि. 3/286)

आचार्य भेल के मतानुसार[1]

प्रथम आम दोष एवं कफ दोष शामक चिकित्सा करनी चाहिये। तत् पश्चात् पित्त दोष एवं वायु दोष का शमन करना चाहिये।

आचार्य सुश्रुत मतानुसार[2]

सन्निपात ज्वर में प्रथम पित्त दोष की चिकित्सा करनी चाहिये, क्योंकि ज्वरित में पित्त दोष का शमन करना कठिन होता है। आचार्य सुश्रुत का यह मत जीर्ण सन्निपात ज्वर की चिकित्सा के लिये उपयुक्त प्रतीत होता है।

आचार्य चरक मतानुसार

सम त्रिदोषज सन्निपात ज्वर में प्रथम कफ दोष की एवं आमाशय की चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु यदि सन्निपात ज्वर में संताप अधिक है तब उस संताप को शांत करने का प्रयास सर्वप्रथम करना चाहिये।

जीर्ण ज्वर का चिकित्सा सूत्र[3]

देह व धातुओं की पुष्टि के लिये बलकारक एवं बृंहण आहार द्वारा जीर्ण ज्वर की चिकित्सा करना चाहिये।

सप्तधातुगत ज्वरों का चिकित्सासूत्र[4]

धात्वाश्रित ज्वरों की चिकित्सा का स्पष्ट निर्देश आचार्य चरक ने निम्न प्रकार किया है-

1. **रसगत ज्वर**- वमन, उपवास
2. **रक्तगत ज्वर**- परिषेक, प्रदेह, संशमन औषध प्रयोग
3. **मांसगत ज्वर**- विरेचन, उपवास
4. **मेदगत ज्वर**- विरेचन, उपवास
5. **अस्थि-मज्जागत ज्वर**- निरूह व अनुवासन बस्ति

पुनरावर्तक ज्वर का चिकित्सा सूत्र[5]

पुनरावर्तक ज्वर होने की स्थिति में रोगी को मृदु संशोधन द्वारा दोष शुद्धि, यापनाबस्ति तथा भोजन में हल्का यूष व जांगल पशुपक्षियों का मांसरस देना लाभप्रद होता है।

1. "सन्निपातज्वरे पूर्वे कुर्यादामकफापहम्।
   पश्चाच्छलेषमणि सङ्क्षीणे शमयेत् पित्तमारुतौ॥" (भेल संहिता)
2. "शमयेत् पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु।
   दुर्निवारतरं तद्धि ज्वरार्तेषु विशेषतः॥" (सु.उ.त. 39)
3. "बल्यः सबृंहणैस्तस्मादाहारस्तमुपाचरेत्॥" (च.चि. 3/291)
4. "ज्वरे रसस्थे वमनुपवासं च कारयेत्। सेक प्रदेहो रक्तस्थे तथा संशमनानि च ॥
   विरेचनं सोपवासं मांसमेदः स्थिते हितम्। अस्थिमज्जगते देयं निरूहश्चानुवासनम्॥"
   (च.चि. 3/315-316)
4. "मृदुभिःसंशोधनैः शुद्धियापना वस्तयो हिताः।
   हिताश्च लघ्वो यूषा जाङ्गलाभिषजा रसाः॥" (च.चि. 3/340)

आगन्तुज ज्वरों का चिकित्सा सिद्धान्त[1]

1. **अभिशापज व अभिचारज ज्वर**-दैवव्यपाश्रय चिकित्सा (मणि, मंत्र, साधु दर्शनादि)
2. **अभिघातज ज्वर**-धूमपान, घृताभ्यंग, रक्तमोक्षण, मनोनुकूल मदिरापान एवं मांसरस के साथ भात का सेवन।
3. **कामज, शोकज व भयज ज्वर**-आश्वासन, अनुकूल वस्तुप्राप्ति व वातशामक चिकित्सा।
4. **क्रोधज ज्वर**-अनुकूल वस्तु प्राप्ति, पित्तशामक चिकित्सा।

क्रोधज ज्वर काम उत्पन्न हो जाने से, कामज ज्वर क्रोध उत्पन्न हो जाने से, भय एवं शोक उत्पन्न हो जाने पर काम-क्रोधज ज्वर शांत हो जाते हैं।

ज्वर चिकित्सा में विशेष[2]

ज्वर रोग " 'रोगसमूह' का राजा है। सभी प्राणियों का अंत करने वाला दारुण रोग है, अतः चिकित्सक को ज्वर की चिकित्सा में विशेष सावधानी एवं प्रयत्न करना चाहिये।

ज्वर चिकित्सा

उपरोक्त वर्णित चिकित्सा सिद्धान्तों के आधार पर ज्वर के रोगियों मे निम्न संशोधन व संशमन चिकित्सा की जा सकती है-

1. संशोधन चिकित्सा

1. वमन 2. विरेचन 3. निरुह बस्ति
4. अनुवासन बस्ति 5. नस्य 6. रक्तमोक्षण

2. संशमन चिकित्सा-ज्वर रोग की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार प्रस्तुत है। इन योगों को ज्वर रोग में रोगी की अवस्थानुसार युक्ति पूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है-

1. रस/भस्म/पिष्टी- मात्रा - 125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान - ऊष्णोदक / मधु

1. त्रिभुवन कीर्ति रस-हिंगुल, वत्सनाभ, त्रिकटु, टंकण।
2. हिंगुलेश्वर रस-वत्सनाभ, पिप्पली चूर्ण, हिंगुल।

1. "शापाभिचारद्भूतानांमभिषङ्गाच्च यो नरः।
   दैवव्यपाश्रयं तत्र सर्वमौषधमिष्यते॥
   .....याति ताभ्यामुभाभ्यां च भयशोकसमुत्थितः॥" (च.चि. 3/317-322)
2. "रोगराट् सर्वभूतानामन्तकृत् दारुणो ज्वरः।
   तस्माद्विशेषस्तस्य यतेत् प्रशमे भिषक्॥" (च.चि. 3/345)

3. स्वर्ण मालिनी बसंत रस-स्वर्णभस्म, मुक्तापिष्टी, हिंगुल, मरिच।
4. कस्तूरी भैरव रस-जावित्री, जायफल, मरिच, पिप्पली, कस्तूरी।
5. मृत्युञ्जय रस-वत्सनाभ, हिंगुल, गंधक, टंकण, पिप्पली, मरिच।
6. ज्वर केसरी रस-पारद, गंधक, त्रिफला, त्रिकटु, वत्सनाभ, जयपाल।
7. ज्वर संहार रस-रस सिन्दूर, त्रिकटु, कूठ, मुस्तक, टंकण, कुटकी।
8. गोदन्ती भस्म-गोदन्ती।
9. श्रृंग भस्म- मृगश्रृंग।
10. जहरमोहरा पिष्टी-जहर मोहरा।
11. लक्ष्मीविलास रस-स्वर्णभस्म, रजतभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, नागभस्म।
12. प्रवाल पिष्टी-प्रवाल शाखा।
13. कफकेतु रस-वत्सनाभ, शुद्ध टंकण, शंखभस्म, पिप्पली।

2. वटी-मात्रा - 250 - 500 मि.ग्रा. (1-2 गोली)

अनुपान - ऊष्णोदक

1. संजीवनी वटी-विडंग, नागर, पिप्पली, अभया, विभीतक, वचा, गुडुची, भल्लातक, विष।
2. सौभाग्य वटी-रस सिन्दूर, द्विक्षार, त्रिलवण, लौहभस्म, त्रिकटु, त्रिफला।
3. संशमनी वटी-गुडुची।
4. विषतिन्दुकादि वटी-कुचला, मुस्तक, पर्पट, त्रिफला।
5. जया वटी-शु.विष, त्रिकटु, मोथा, हरिद्रा, निम्बपत्र, बिंडग।
6. अमृता सत्व-गुडुची।
7. करञ्जादि वटी-करंजबीज, पर्पट, अतीस, गुडुची, पटोल, कुटकी।

3. चूर्ण-मात्रा - 3 - 6 ग्राम

अनुपान -ऊष्णोदक

1. सुदर्शन चूर्ण-त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद, अतीस, चिरायता।
2. पंचकोल चूर्ण-पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी।
3. सितोपलादि चूर्ण-दालचीनी, इलायची, पिप्पली, वंशलोचन, मिश्री।
4. तालिसादि चूर्ण-तालीस, मरिच, शुण्ठी, पिप्पली, वंशलोचन, मिश्री।
5. लंवगादि चूर्ण-लवंग, शीतल चीनी, खस, श्वेत चंदन, तगर, भृंगराज, मोथा।
6. द्राक्षादि चूर्ण-द्राक्षा, हरड़, मुस्तक, कुटकी, अमलतास, पर्पट।

4. क्वाथ/आसव-अरिष्ट-मात्रा - 10 - 20 मि.ली.

अनुपान - जल

1. आचार्य चरक ने विभिन्न कषायों का वर्णन ज्वर चिकित्सा के लिए किया है-

1. नागरमोथा + पर्पट

2. सोंठ + पर्पट
3. धमासा + पर्पट
4. चिरायता + गुडुची + मोथा + पर्पट
5. पाठा, खश, सुगन्धबाला।

इनमें से किसी भी द्रव्य का क्वाथ बनाकर प्रातः सायं सेवन करने से समस्त प्रकार के ज्वर शांत होते हैं।

1. पटोल पंचक क्वाथ-पटोल, ससपर्ण, गुडुची, निम्बत्वक् एवं वासा।
2. दार्व्यादि क्वाथ-देवदारु, पर्पट, भार्ङ्गी, मोथा, वच, धनिया।
3. गोजिह्वादि क्वाथ-गोजिह्वा, मुलैठी, सौंफ, मुनक्का, अंजीर, अडूसा।
4. भार्ङ्ग्यादि क्वाथ-भार्गी, वासा, पर्पट, मुस्तक।
5. गुडुच्यादि क्वाथ-गुडुची, धान्यक, पद्माख, निम्बछाल, रक्त चन्दन।
6. अमृतारिष्ट-गुडुची।

5. घृत/तैल-मात्रा - 10 - 20 मि.ली.

अनुपान- ऊष्णोदक

1. पंचतिक्त घृत-पटोल, ससपर्ण, निम्ब, वासा, गुडुची।
2. अमृतादि घृत-गुडुची, मुलैठी, द्राक्षा।
3. षट्पलक घृत- पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी, सेंधव।
4. चन्दनादि घृत- श्वेत चन्दन, वासा, करंज।
5. चन्दनबलालाक्षादि घृत-(बाह्य अंभ्यगार्थ) रक्तचन्दन, बला, लाक्षा, लामज्जक।

6. अवलेह-मात्रा - 20 - 30 ग्राम।

अनुपान- दुग्ध।

1. द्राक्षावलेह-द्राक्षा व मधुर वर्ग की औषधियां
2. च्यवनप्राश-आंवला, त्रिकटु, जीवनीयगण

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रातः सांयम्

त्रिभुवनकीर्ति रस- 250 मि.ग्रा.
अमृता सत्व - 250 मि.ग्रा.
गोदन्ती - 250 मि.ग्रा.
तुलसी पत्र स्वरस- शहद से 1 × 2 मात्रा

2. सुदर्शन चूर्ण - 2 ग्राम
कोष्ण जल/मधु से 1 × 2 मात्रा

3. भोजनोत्तर
   अमृतारिष्ट - 20 मि.लि.
   समभाग जल मिलाकर 1 × 2 मात्रा

4. पानार्थ-षडंगपानीय या लवंग साधित कोष्ण जल।

5. दौर्बल्य होने पर
   द्राक्षावलेह - 20 ग्राम
   दूध से 1 × 2 मात्रा

भेदानुसार विभिन्न ज्वरों की चिकित्सा

1. वातिक ज्वर की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा

1. लंघन निषेध
2. बस्ति

2. संशमन चिकित्सा-वातज ज्वर में प्रयुक्त होने वाले संशमन योगों का वर्णन निम्न प्रकार है-

1. **रस/भस्म/पिष्टी/वटी**-ज्वर की सामान्य चिकित्सा में वर्णित समस्त योगों का प्रयोग लाभप्रद है।

2. **क्वाथ**-मात्रा - 10-20 मि.ली.
   अनुपान - जल

1. किरातादिक्वाथ-चिरायता, मोथा, नीमछाल, गुडुची, कण्टकारी।
2. दशमूलादि क्वाथ-बृहत् एवं लघु पंचमूल
3. बृहत् पंचमूलादि क्वाथ-बिल्व, अग्निमंथ, श्योनाक।
4. भूनिम्बादिक्वाथ-चिरायता, मोथा, गुडुची, बृहती, कण्टकारी, पुष्करमूल।
5. शतपुष्पादि क्वाथ-सौंफ, सोंठ, वच, कूठ, खस, मुस्तक।

3. घृत प्रयोग-मात्रा - 20 - 40 मि.ली.
   अनुपान - ऊष्णोदक/दुग्ध

वातज ज्वर में विभिन्न वातशामक औषध सिद्ध घृत या साधारण घृत पान प्रयोग प्रशस्त है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रातः सांयम्
   हिंगुलेश्वर रस - 250 मि.ग्रा.
   गोदन्ती - 250 मि.ग्रा.
   भृष्ट जीरक चूर्ण - 2 ग्राम
   ऊष्णोदक से 1 × 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर
   किरातादिक्वाथ - 20 मि.ली.
   कोष्ण जल से 1 × 2 मात्रा

2. पैत्तिक ज्वर की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा

1. लंघन 2. विरेचन 3. बस्ति

2. संशमन चिकित्सा-पैत्तिक ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योग निम्नानुसार हैं-

1. रस/भस्म/वटी/पिष्टी/चूर्ण-पूर्वोक्त सामान्यतः पैत्तिक ज्वर में शीत वीर्य औषध तथा कटु, तिक्त रस प्रधान औषधियों का प्रयोग किया जता है।

2. क्वाथ-मात्रा - 20 मि.ली.
   अनुपान - जल

1. दुरालभादि क्वाथ-धमासा, पर्पट, प्रियंगु, मुस्तक, कुटकी।
2. पर्पटादिक्वाथ-पर्पट, नेत्रबाला, रक्तचन्दन, शुण्ठी।
3. गुडुच्यादि क्वाथ-गुडुची, निम्बछाल, धनिया, पद्माख।
4. द्राक्षादि क्वाथ-मुनक्का, हरड़, मुस्तक, कुटकी, अमलतास।
5. पटोलादि क्वाथ-परवल, त्रिफला, निम्बछाल, गुडुची।

3. घृत प्रयोग-तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत पानार्थ तथा शीत वीर्य द्रव्यों से सिद्ध घृत का प्रयोग दाहाधिक्य होने पर अभ्यंगार्थ किया जाता है।
   मात्रा - 20 - 40 मि.ली.
   अनुपान - ऊष्णोदक/दुग्ध

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रातः सांयम्
   ज्वरकेसरी रस - 250 मि.ग्रा.
   गोदन्ती - 500 मि.ग्रा.
   प्रवाल पिष्टी - 250 मि.ग्रा.
   गुडुची सत्व - 500 मि.ग्रा.
   नारियल पानी/मधु से 1 × 2 मात्रा
2. दाह तृष्णा होने पर पानार्थ धान्योदक, चन्दनोदक, नारियल का पानी।
3. रात्रि
   हरीतकी चूर्ण - 1 ग्राम
   कुटकी चूर्ण - 1 ग्राम
   अमलतास का गूदा - 3 ग्राम
   1 मात्रा
   ऊष्णोदक में भिगोकर, मथकर पिलायें

3. कफज ज्वर की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा

1. लंघन 2. स्वेदन 3. वमन
4. विरेचन 5. निरूह बस्ति

2. संशमन चिकित्सा-कफज ज्वर की चिकित्सा में वर्णित विभिन्न योगों का वर्णन निम्न अनुसार है-

1. रस/भस्म/पिष्टी/वटी/चूर्ण-पूर्वोक्त

1. पिप्पली चूर्ण-पिप्पली।

2. क्वाथ-मात्रा - 10 - 20 मि.ली.
अनुपान - जल

1. त्रिफलादि क्वाथ-त्रिफला, पटोल, वासा, गुडुची।
2. कटुत्रिकादि क्वाथ-त्रिकटु, हरिद्रा, कुटकी, इन्द्रयव।
3. मरिच्यादि क्वाथ-त्रिकटु, मंगरैला, चित्रक, कूठ, कायफल।
4. निम्वादि क्वाथ-निम्बछाल, शुण्ठी, गुडुची।

3. अवलेह-मात्रा - 1 ग्राम + 2 ग्राम मधु
अनुपान - मधु

1. **चातुर्भद्रावलेहिका**-कटफल, पुष्करमूल, कर्कटश्रृंगी एवं पिप्पली का समभाग चूर्ण 1 ग्राम लेकर 2 ग्राम मधु मिलाकर प्रयोग कराया जाता है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रातः सांयम्
   त्रिभुवनकीर्तिरस - 250 मि.ग्रा.
   शु.टंकण भस्म - 250 मि.ग्रा.
   श्रृंग भस्म - 125 मि.ग्रा.
   मधु +आद्रकस्वरस से 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   कटुत्रिकादिक्वाथ - 20 मि.ली.
   समभाग जल मिलाकर 1 × 2 मात्रा
3. प्रतिश्याय होने पर चूषणार्थ
   व्योषादि वटी- 4 - 6 गोली
   (2 - 2 घण्टे पर 1 - 1 गोली चूसने दें)
4. पानार्थ
   मुन्नका - 4 (बीज रहित)
   तुलसीपत्र - 4
   मरिच - 4
   लौंग - 2
   हरी एला - 1
   1 मात्रा

इनको कूटकर एक कप पानी में उबालकर गरम-गरम पीयें।

4. वात-पित्तज ज्वर की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा

1. लंघन 2. विरेचन 3. बस्ति

2. संशमन चिकित्सा-द्वन्द्वज ज्वरों में वात-पित्तज ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्न प्रकार है-

1. रस/भस्म/पिष्टी/वटी/चूर्ण-पूर्वोक्त।

2. क्वाथ-मात्रा - 10 - 20 मि.ली.
अनुपान - समभाग जल

1. किरातादि क्वाथ-चिरायता, गुडुची, आंवला, कचूर, मुनक्का।
2. नवाङ्ग क्वाथ-गुडुची, सोंठ, मुस्तक, चिरायता, शालपर्णी, प्रश्निपर्णी।
3. मुस्तादि क्वाथ-मोथा, पर्पट, नीलकमल, खस, चिरायता।

3. घृत-मात्रा - 20 - 40 मि.ली.

अनुपान – ऊष्णोदक/दुग्ध

वात-पैत्तिक ज्वर में दोषानुसार औषध सिद्ध घृत का प्रयोग करना लाभकारी है।

4. दुग्धपान-आचार्य चरक ने वात-पित्तज ज्वर में धारोष्ण दूध का प्रयोग लाभकारी बतलाया है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रातः सांयम्

मृत्युञ्जय रस	–	250 मि.ग्रा.
गोदन्ती	–	250 मि.ग्रा.
संजीवनी	–	250 मि. ग्रा.
ऊष्णोदक/मधु से		1 × 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर

किरातादिक्वाथ	–	20 मि.ली.
समभाग जल से		1 × 2 मात्रा

3. धारोष्ण दुग्ध सेवन।

5. वात-कफज ज्वर की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा

1. लंघन
2. स्वेदन
3. वमन

2. संशमन चिकित्सा-विभिन्न संहिता ग्रंथों में वात-कफज ज्वर में प्रयुक्त संशमन योग निम्न प्रकार हैं-

1. रस/भस्म/पिष्टी/वटी/चूर्ण-पूर्वोक्त

2. क्वाथ-मात्रा – 10 – 20 मि.ली.

अनुपान – जल

1. बृहत्पिप्पल्यादि क्वाथ-पिप्पली, अनन्तमूल, सौफं, द्राक्षा।
2. वचादि क्वाथ-कुटकी, पाठा, इन्द्रयव, आरग्वध।
3. पंचकोल क्वाथ-पंचकोल।
4. आरग्वधादि क्वाथ-पिप्पलीमूल, मुस्तक, कुटकी, हरड़, अमलतास।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रातः सांयम्

नारदीय लक्ष्मी विलास रस	–	250 मि.ग्रा.
शु. टंकण	–	250 मि.ग्रा.
श्रृंग भस्म	–	250 मि.ग्रा.
मधु से		1 × 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर

पंचकोल क्वाथ	20 मि.ली.
कोष्ण जल से	1 × 2 मात्रा

8. कफ-पैत्तिक ज्वर की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा

1. लंघन -पाचन
2. विरेचन
3. निरूह बस्ति
4. अनुवासन बस्ति

2. संशमन चिकित्सा-कफ-पैत्तिक ज्वर में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन शास्त्र मतानुसार निम्नानुसार है-

1. रस/भस्म/पिष्टी/वटी-मात्रा -125 -मि.ग्रा.

अनुपान- ऊष्णोदक

पूर्वोक्त समस्त योगों का प्रयोग प्रशस्त है।

2. चूर्ण-मात्रा 3-6 ग्राम

अनुपान – चीनी सहित ऊष्णोदक

1. कटुरोहिणी चूर्ण- कुटकी।

3. क्वाथ- मात्रा-10 – 20 मि.लि.

अनुपान – जल

1. पंचतिक्त क्वाथ-कण्टकारी, गुडुची, शुण्ठी, चिरायता, पुष्करमूल।
2. पटोलादि क्वाथ-पटोलपत्र, निम्बछाल, त्रिफला, मधुयष्ठी, बला।
3. अमृताष्टकक्वाथ-गुडुची, कुटकी, पटोल, इन्द्रयव, निम्बछाल, मोथा, शुण्ठी एवं रक्त चन्दन का समभाग क्वाथ + पिप्पली चूर्ण डालकर प्रयोग करायें।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रातः सांयम्

कस्तूरी भैरव रस	–	125 मि.ग्रा.
गोदन्ती भस्म	–	250 मि.ग्रा.
शुं टंकण	–	250 मि. ग्रा.
शहद से		1 × 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर
पंचतिक्त क्वाथ – 20 मि.ली.
समभाग जल से 1 × 2 मात्रा

3. रात्रि
हरीतकी चूर्ण – 3 ग्राम
ऊष्णोदक से 1 मात्रा

1. सन्निपातिक ज्वर की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा[1]

1. लंघन 2. स्वेदन 3. शिरोविरेचन 4. अंजन प्रयोग

1. लंघन-वात प्रधान सन्निपात ज्वर में 3 दिन लंघन, पित्तप्रधान सन्निपात ज्वर में 5 दिन लंघन एवं कफ प्रधान सन्निपात ज्वर में 10 दिन लंघन कराना चाहिये। जब तक आम का पाचन न हो जाय लंघन कराना लाभकारी होता है।

2. स्वेदन

(i) बालुका स्वेदन-संधिस्थानों पर रुक्ष स्वेदनार्थ
(ii) सैंधव स्वेद - सैंधव लवण को गरम करके स्वेदनार्थ प्रयोग
(iii) स्निग्ध स्वेद-सैंधव लवण +घृत मिलाकर वक्ष प्रदेश पर सेक

3. नस्य-जीर्ण सन्निपात ज्वर में तन्द्रा प्रलाप, मूर्च्छा की स्थिति में-

(i) त्रिकटु चूर्ण का प्रधमन नस्य।
(ii) कट्फल त्वक् चूर्ण का प्रधमन नस्य।
(iii) श्वास कुठार रस का नस्य।

4. अंजन-रोगी जब तन्द्रा या मूर्च्छा की स्थिति में हो तब शिरीषाञ्जन का प्रयोग नेत्रों में करना उत्तम रहता है।

2. संशमन चिकित्सा-सन्निपात ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का शास्त्र सम्मत वर्णन निम्नानुसार है-

1. रस/भस्म/पिष्टी/वटी-मात्रा 125 - 250 मि.ग्रा.

अनुपान - जल/मधु

1. नारदीय लक्ष्मी विलास रस-पारद, गंधक, कर्पूर, जायफल, जावित्री, विधारा।
2. मकरध्वज-शुद्ध पारद एवं स्वर्ण वर्क।
3. बृहत् वातचिन्तामणि रस-स्वर्ण, रौप्य, अभ्रक, पारद, लौह, प्रवाल, मुक्ता भस्म।
4. श्रृंगराभ्र रस-अभ्रकभस्म, कर्पूर, जावित्री, त्रिफला, त्रिकटु।

1. "लघनं बालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा।
अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे॥" (भै.र.)

5. कृष्ण चतुर्मुख रस-पारद, गंधक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म।
6. ब्राम्ही वटी-ब्राम्ही, स्वर्णसिन्दूर, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, शु. शिलाजीत।
7. हेमगर्भपोट्टली रस-शु.पारद, शु.गन्धक, ताम्रभस्म, स्वर्ण भस्म।
8. सर्पगंधा घन वटी-सर्पगंधा।
9. सूचिका भरण रस-शु.विष, शु.पारद।
10. आनन्द भैरव रस- विष, त्रिकटु, शु. गंधक, टंकण।
11. श्वास कुठार रस-पारद, गंधक, विष, टंकण, मनःशिला, त्रिकटु।
12. सूतशेखर रस-स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, त्रिकटु, धत्तूरबीज।
13. प्रवाल पिष्टी-प्रवाल शाखा।
14. अचिन्त्य शक्ति रस-पारद, गंधक, स्वर्ण-माक्षिक, ताम्रभस्म, निर्गुण्डी, भृंगराज।

2. चूर्ण-मात्रा - 3 - 6 ग्राम

अनुपान - ऊष्ण जल

1. त्रिकटु चूर्ण- सोंठ, मरिच, पिप्पली।
2. सुदर्शन चूर्ण-पूर्वोक्त।

3. क्वाथ-मात्रा - 10 - 20 मि.लि.

अनुपान - समभाग कोष्ण जल

1. दशमूल क्वाथ-बृहत् एवं लघुपंचमूल। (कास, श्वास व पार्श्वशूल की स्थिति में)
2. चतुर्दशाङ्ग क्वाथ-दशमूल, चिरायता, मुस्तक, गुडुची, शुण्ठी।
3. अष्टादशांङ्ग क्वाथ-दशमूल, कचूर, पुष्कर मूल, यवासा, कर्कटश्रृंगी, भारंगी, इन्द्रयव, पटोल, कुटकी।
4. पर्पटादि क्वाथ-पर्पट, रक्तचन्दन, नेत्रबाला, शुण्ठी।
5. बृहत्यादि क्वाथ-बृहती, कण्टकारी, पुष्कर मूल, भारंगी, कचूर, यवासा।
6. अमृताष्टक क्वाथ-(अरुचि, वमन व दाह होने पर) गुडुची, इन्द्रयव, निम्बछाल, पटोल, कुटकी, सोंठ, रक्तचन्दन, मुस्तक।

4. अवलेह- मात्रा - 20 ग्राम

अनुपान - शहद

अष्टांगावलेहिका- कटफल, पुष्करमूल, सोंठ, मरिच, पिप्पली, यवासा, जीरक (अधिक कफ जमने से कण्ठ में धुरधुराहट व कास होने पर)

आदर्श व्यवस्थापत्र

1. प्रातः सांयम्
कस्तूरी भैरव रस - 125 मि.ग्रा.
मुक्ता शुक्ति भस्म - 250 मि.ग्रा.

संजीवनी - 250 मि. ग्रा.
सौभाग्य वटी - 125 मि.ग्रा.
ऊष्णोदक /मधु से 1 × 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर
अष्टादशांङ्ग क्वाथ - 20 मि.ली.
समभाग जल से 1 × 2 मात्रा

1. वातोल्वण सन्निपात ज्वर में - बृहत् वात चिन्तामणि रस एवं सर्पगंधा चूर्ण का प्रयोग करें।
2. पित्तोल्वण सन्निपात ज्वर में- मुक्तापिष्टी, चन्द्रकला रस, जहरमोहरा पिष्टी, प्रवाल पिष्टी का प्रयोग करें।
3. कफोल्वण सन्निपात में-मकरध्वज, कृष्ण चतुर्मुख रस, टंकण भस्म, श्रृंगाराभ्र रस का प्रयोग करें।
4. निद्रानाश की स्थिति में- ब्राम्ही वटी, सर्पगंधा घन वटी का प्रयोग करें।
5. प्रलाप एवं मूर्च्छा की स्थिति में- हेमगर्भ पोट्टली रस व योगेन्द्र रस का प्रयोग करें।
6. त्रिदोषोल्वण सन्निपात ज्वर में- सूचिका भरण रस, बृहत् कस्तूरी भैरव रस, कृष्ण चतुर्मुख रस, सहस्रपुटी अभ्रक भस्म का प्रयोग उत्तम रहता है।

2. आगन्तुज ज्वर की चिकित्सा

आगन्तुज ज्वर में लंघन निषेध है। पूर्व में वर्णित चिकित्सा ही आगन्तुज ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त होती है तथा उत्पन्न लक्षणों के आधार पर लाक्षणिक चिकित्सा की जाती है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रात: सांयम्
कस्तूरी भैरव रस - 125 मि.ग्रा.
ब्राम्ही वटी - 250 मि.ग्रा.
प्रवाल पिष्टी - 250 मि. ग्रा.
अमृता सत्व - 250 मि.ग्रा.
मधु से 1 × 2 मात्रा

2. लाक्षणिक चिकित्सा - पूर्वोक्त

जीर्ण ज्वर की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा

1. अनुवासन वस्ति
2. निरूह वस्ति- मलाधिक्य होने पर।
3. नस्य- शिरोगौरव होने पर।
4. वमन एवं विरेचन-निषेध है, क्योंकि जीर्ण ज्वर में बलनाश एवं धातुओं में रूक्षता होती है।

2. संशमन चिकित्सा-जीर्ण ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार है-

1. रस/भस्म/पिष्टी/वटी/चूर्ण-पूर्वोक्त

2. क्वाथ—मात्रा 10 - 20 मि.लि.
अनुपान - ऊष्णोदक

1. मधुकादि क्वाथ-महुआ, मुस्तक, मुनक्का, गंभारी, खस, त्रिफला।
2. बृहत् भार्ङ्गयादि क्वाथ-भांर्ङ्गी, त्रिफला, त्रिकटु।
3. दार्व्यादि क्वाथ-दारुहरिद्रा, चिरायता, गुडुची।

3. घृत/तैल- मात्रा - 20 - 40 मि.लि.
अनुपान - दुग्ध/ऊष्णोदक

1. पिप्पल्यादि घृत- पिप्पली, श्वेत चन्दन, मुस्तक, खस।
2. गुडुच्यादि घृत- गुडुची, गोघृत, गोदुग्ध।
3. शतधौत व सहस्रधौत घृत-घृत (बाह्य अंभ्यागार्थ)
4. चन्दनादि तैल-हरिद्रा द्वय, श्वेत चन्दन, कूठ, मुलैठी।
5. चन्दनबला लाक्षादि तैल-पूर्वोक्त

4. **दुग्ध प्रयोग**-कफ की क्षीणता हो जाने से जीर्ण ज्वर में दुग्ध प्रयोग अमृत तुल्य है। दोषानुसार औषध सिद्ध दुग्ध का प्रयोग जीर्ण ज्वर में किया जाता है।

5. **अंजन**-उपर्युक्त उपायों से जब ज्वर का शमन न हो तब अञ्जन भैरव रस का अंजन कराने से ज्वर शांत होता है।

आदर्श व्यवस्था पत्र

1. प्रात: सांयम्
स्वर्ण बसन्त मालती रस - 125 मि.ग्रा.
विषम ज्वरान्तक लौह - 125 मि.ग्रा.
श्रृंगभस्म - 250 मि. ग्रा.
अमृता सत्व - 500 मि.ग्रा.
मधु से 1 × 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर
   गुडुच्यादि क्वाथ - 20 मि.लि.
   जल से 1 × 2 मात्रा

3. दाह होने पर- शतधौत घृत का अभ्यंग।

4. यकृतप्लीहा वृद्धि होने पर

(i) यकृतप्लीहारि लौह - 250 मि.ग्रा.
   मूलक क्षार - 250 मि.ग्रा.
   रोहीतक लौह - 250 मि.ग्रा.
   मधु से 1 × 2 मात्रा

(ii) भोजनोत्तर
   आरोग्यवर्धनी वटी - 2 × 2 मात्रा जल से

(iii) कुमार्यासव - 20 मि.ली.
   समभाग जल से 1 × 2 मात्रा

पुनरावर्तक ज्वर की चिकित्सा[1]

1. संशोधन चिकित्सा

1. यापना बस्ति
2. अभ्यंग (स्नेहन)

2. संशमन चिकित्सा-सामान्य ज्वर में प्रयुक्त होने वाली संशमन औषधियों का प्रयोग पुनरावर्तक ज्वर में प्रशस्त है।

1. रस/भस्म/पिष्टी/वटी/चूर्ण-पूर्वोक्त

2. क्वाथ- मात्रा - 10 - 20 मि.लि.
अनुपान - जल

1. किराततिक्तकादि क्वाथ- किरात तिक्तक, कुटकी, मुस्तक, पर्पट, अमृता।

3. घृत-मात्रा - 20 - 40 मि.लि.
अनुपान - ऊष्णोदक/दुग्ध

तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत का प्रयोग करना चाहिये।

1. "किरात तिक्तं तिक्ता मुस्तं पर्पटकोऽमृता।
ध्वन्ति पीतानि चाभ्यासात् पुनरावर्तक ज्वरे॥" (च.चि. 3/343)

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रातः सांयम्
   सर्व ज्वर हर लौह - 250 मि.ग्रा.
   संजीवनी - 250 मि.ग्रा.
   गोदन्ती - 250 मि.ग्रा.
   मधु से 1 × 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर
   किराततिक्तादिक्वाथ - 20 मि.ली.
   जल से 1 × 2 मात्रा

3. रात्रि सोते समय
   हरीतकी चूर्ण - 3 ग्राम
   ऊष्णोदक से 1 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
पुराणशालि, मुद्ग, मसूर, परवल, करेला, सहिजन, चौलाई, गुडुची, जीवन्ती, मकोय, मुनक्का, कपित्थ, अनार, लघु आहार, यवागू, पेया, विलेपी, यव, लाजमण्ड, दलिया आदि।	लंघन, वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य, अभ्यंग, विश्राम आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, विदाही, विष्टम्भी पदार्थ, दूषित जल सेवन, अंकुरित अन्न, तिलकुट, समोसा, कचौरी, पीजा, बर्गर, पकोड़े, हलवा, मिठाई, छोले, लस्सी आदि।	वेगधारण, व्यायाम, दिवास्वप्न, स्नान, मैथुन, अध्यशन आदि।

ज्वर में निषेध

1. नवज्वर में दिवास्वप्न, स्नान, अभ्यंग, मैथुन, क्रोध, धीमी हवा का सेवन, अति भोजन, व्यायाम एवं कषाय रस सेवन का निषेध है[1]।

1. "नव ज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्याङ्गान्न मैथुनम्।
क्रोधप्रवातव्यायाम कषायाश्च विवर्जयेत्॥" (च.चि. 3/318)

2. ज्वर मुक्त होने पर भी व्यायाम, व्यवाय, स्नान, चक्रंमण आदि का सेवन तब तक नहीं करना चाहिये जब तक कि पूर्ण बल की प्राप्ति न हो जाये[1]।

Latest Developments

Fever

मनुष्य के शरीर का स्भाविक तापक्रम 98.4°F होता है। कक्षा (Axillary temparature)से 0.5°F अधिक तापक्रम (Temparature) मुखगुहा (Buccal Cavity) का तथा इससे 0.5°F - 1.0°F अधिक तापक्रम गुदा (Rectal temparature) में होता है। शाम को शारीरिक तापक्रम (Body temparature) लगभग 1°F अधिक तथा प्रात: काल 1°F कम होता है। सोते समय शारीरिक तापक्रम लगभग 1.5°F कम हो जाता है। साधारणत: शारीर का तापमान 99°F से अधिक होना ज्वर को इंगित करता है।

शरीर में तापक्रम बढ़ना व घटना क्रमश: चलता रहता है। शरीर के तापक्रम पर मस्तिष्क के ताप नियन्त्रक केन्द्र (Hypothalamus) का नियन्त्रण रहता है।

शरीर में तापोत्पत्ति-शरीर में ताप की उत्पत्ति Proteins, Fats एवं Carbohydrates के जलने (oxidation) से होती है। अधिकांश ताप ऐच्छिक मांस पेशियों (Voluantry muscles) से उत्पन्न होता है। नमक (Salts) व जल (Water) के कम प्रयोग से भी शारीरिक तापक्रम बढ़ता है। इसके अतिरिक्त Thyroxine एवं Sympathetic System के प्रभाव के कारण शरीर में तापोत्पत्ति होती है।

शारीरिक ताप का स्वाभाविक नाश-शरीर की स्वाभाविक क्रियाओं से निम्नानुसार ऊष्मा हानि (Heat loss) होती है-

1. त्वचा द्वारा विकिरणों (Radiation)से - 55%
2. संवहन एवं चालन (Conduction) से - 15%
3. त्वचा (Skin) व फेफड़ों (Lungs) द्वारा वाष्पीकरण (Evaporation) से - 24%
4. शरीर में नि:श्वसित वायु (Expiread air) - 2% को गर्म करने में
5. शरीर में अन्त:श्वास (Inspiration) से Co_2 द्वारा - 3%
6. ग्रहीत अन्न पान के उष्मित करने में तथा मूत्र पुरीष द्वारा - 1%

ज्वर के कारण (Causes of fever)

Hypothalamic thermostat के set point का ऊपर होना ज्वर का मुख्य कारण

1. "व्यायामं च व्यावायं च स्नानं चक्रंमणानि च।
ज्वरमुक्तो न सेवेत् यावत्न न बलवान् भवेत्॥" (च.चि. 3/332)

है। इस Set Point के ऊपर होने के निम्न कारण हैं-

1. आमविष (Toxins) की रक्त में उपस्थिति।
2. जीवाणुविष (Bacterial toxins)
3. शरीर में जलीयांश की कमी (Dehydration)
4. रक्ताल्पता (Anaemia)
5. अंशुघात (Heat/Sun Stroke)
6. आघात (Trauma)
7. रक्तस्राव (Pontine haemorrhage)
8. देह कोशों (Body cells) के नाश से i.e. Rheumatic fever, Cardiac infarction, Serum sickness आदि में
9. अर्बुद (Neoplasms)
10. व्याधि क्षमत्व जन्य विकार (Immunological disorders)

Management : Principles

1. To treat the cause of fever.
2. To maintain hydration of body.
3. To maintain body temperature, antipyretic drugs should be given.

विशिष्ट ज्वरों का वर्णन

1. विषम ज्वर

(MALARIA)

व्याधि परिचय

"यः स्याद् नियतात् कालात् शीतोष्णाभ्यां तथैव च।
वेगतश्चापि विषमः स, ज्वरो विषमः स्मृतः॥"
(सिद्धान्त निदान ज्वर)

जो ज्वर कभी शीतपूर्वक, कभी दाह पूर्वक शरीर में उत्पन्न हो, जिसके उत्पन्न होने, बढ़ने या स्थिर रहने का समय भी निश्चित न हो तथा वेग में भी विषमता हो, इस प्रकार के ज्वर को विषम ज्वर कहते हैं।

निरुक्ति/परिभाषा

"विषमोविषमारम्भः क्रियाकालोऽनुषङ्गवान्।" (वाग्भट्ट)

जिस ज्वर का आरम्भ (Onset), क्रिया (Course) एवं काल (Duration) विषम हो अर्थात् कभी शिर से, कभी पृष्ठ से आरम्भ होने वाला, कभी अतिशीत (Rigors), कभी अधिक संताप (Hyperpyrexia) के साथ प्रकट होने वाला तथा जिस ज्वर का आक्रमण काल तथा ज्वर के बने रहने के काल में विषमता हो- इस प्रकार के ज्वर को 'विषम ज्वर' कहते हैं।

विषम ज्वर के विषय में आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं जो निम्न प्रकार हैं-

1. आचार्य काश्यप के मतानुसार

अल्प कारणों से उत्पन्न, बाह्य रोगमार्गाश्रयी, एक ही धातु में स्थित, सुखसाध्य एवं लघुपाकी ज्वर को "सम ज्वर" कहते हैं। इसके विपरीत लक्षणों वाला ज्वर 'विषम ज्वर' कहलाता है।

2. भालुकि तंत्र के अनुसार[1]

जो ज्वर कभी शीत या कभी ऊष्णता लगने के बाद विषम वेग से अनियत काल पर

1. "यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च।
वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषम स्मृतः॥" (भालुकितंत्र)

आता हो उसे 'विषम ज्वर' कहते हैं।

3. आचार्य विजय रक्षित के मतानुसार[1]

"मुक्तानुबन्धित्व" होना विषम ज्वर का लक्षण है। अर्थात् जो ज्वर छूट जाने के पश्चात् पुनः हो जाए उसे 'विषम ज्वर' कहे हैं। मुक्तानुबन्धित्व से तात्पर्य ज्वर मोक्ष की प्रतीति होते हुए भी ज्वर का दीर्घकाल तक आन्तरिक धातुओं में बना रहना है।

इस परिभाषा के अनुसार सन्तत ज्वर को विषम ज्वर मानने में मतभेद होता है। आचार्य खरनाद संतत ज्वर को विषम ज्वर नहीं मानते हैं[2]। परन्तु आचार्य चरक ने इसे विषम ज्वर ही माना है, क्योंकि इसमें मुक्तानुबन्धित्व की प्रवृत्ति मिलती है। संतत ज्वर कभी-कभी बारहवें दिन अव्यक्त रूप से अल्प काल के लिये उतरता है एवं पुनः चढ़कर दीर्घ काल तक बना रहता है[3]।अतः थोड़े समय के लिये अव्यक्त रूप से मुक्तानुबंधित्व के कारण संतत ज्वर को भी विषम ज्वर माना है।

4. आचार्य सुश्रुत मतानुसार[4]

विषम ज्वर भूताभिषङ्गज होता है तथा इसमें आगन्तुक कारणों का अनुबंध रहता है। यहाँ पर भूताभिषङ्ग[5] से भूत अर्थात् सूक्ष्म जीवाणुओं का ग्रहण तथा आगन्तुक कारणों से जीवाणु आक्रमण (Infection) का बोध होता है।

सामान्य निदान[6]

आचार्य काश्यप ने विषम ज्वर के निदानों का विस्तार से वर्णन किया है जो निम्न प्रकार हैं-

1. ज्वर मुक्त होने पर या पीड़ित रहने पर व्यायाम, गुरु, असात्म्य भोजन का सेवन
2. दधि, पिण्याक, उड़द से बने पदार्थ, ग्राम्य, आनूप मांस का सेवन
3. दिवास्वप्न
4. अजीर्ण होने पर अध्यशन करने से ज्वर बढ़कर विषम ज्वर का रुप धारण कर सकता है

विशिष्ट निदान[7]

1. दोष पाक न होने पर कषाय रस प्रधान द्रव्यों का सेवन

1. "मुक्तानुबन्धित्वं विषमत्वम्।" (विजयरक्षित)
2. "चत्वारः सन्ततं हित्वा ज्ञेयास्ते विषमज्वरा।" (खरनाद)
3. "विसर्गं द्वादशे कृत्वा दिवसेऽव्यक्तलक्षणम्।
दुर्लभोपशमः कालं दीर्घमप्यनुवर्तते॥" (च चे. 3)
4. "परो हेतुः स्वभावो वा विषमे कैश्चिदीरितः।
आगन्तुश्चानुबन्धो हि प्रायशोविषमे ज्वरे॥" (सु.उ. 39/68)
5. "केचित् भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम्॥" (सु.उ. 39/56)
6. "ज्वरितो मुच्यमानो वा मुक्तमात्रश्च यो नरः। एवं विधानि चान्यानि विरुद्धानि गुरुणि च॥
सेवते च दिवास्वप्नमजीर्णाध्यशननानि च। ज्वरोऽभिवर्धते तस्य विषमोवाऽऽशु जायते॥"
(का.स. खिलस्थान।)
5. (का. स. खिल 1/16-20)

2. स्नेह पान या बृंहण द्रव्यों का ज्वर होने पर सेवन
3. देवताओं का प्रकोप या ग्रहदुष्टि होना
4. विरेचन, वमन, अनुवासन प्रयोग बाद शीघ्र ही गुरु अन्न, मैथुन व शीतोपचार करना।
5. आचार्य सुश्रुत ने भूताभिषंङ्ग को विषम ज्वर का विशिष्ट निदान कहा है अर्थात् विषम ज्वर में आगन्तुक कारण या जीवाणु संक्रमण को कारण माना है[1]।

सम्प्राप्ति

आचार्य सुश्रुत ने विषम ज्वर को निज व आगन्तुक भेद से दो प्रकार का माना है-

1. निज विषम ज्वर की सम्प्राप्ति

आचार्य चरकानुसार[2]-जिस प्रकार बीज भूमि में प्रसुप्तावस्था में पड़ा रहता है एवं अनुकूल परिस्थिति पाकर अंकुरित होता है उसी प्रकार दोष धातुओं में लीन होकर प्रसुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं एवं अनुकूल परिस्थिति पाकर प्रकुपित होकर विषम ज्वर को उत्पन्न करते हैं। तात्पर्य यह है कि एक नियत समय (Incubation period) के बाद दोष जीवाणु प्रकुपित होकर ज्वरोत्पत्ति करते हैं।

आचार्य सुश्रुत मतानुसार[3]

प्रारम्भ से ही अल्प बल वाला दोष या फिर ज्वर मुक्त होने के बाद शरीर में बचा हुआ अल्पदोष, थोड़े से मिथ्याहार के सेवन से पुनः प्रकुपित होकर रस-रक्तादि धातुओं को आश्रय बनाकर विषम ज्वर को उत्पन्न करता है।

आचार्य काश्यप मतानुसार[4]

त्रिदोष या दो दोष विषम रूप से रसवाही धमनियों में पहुँचकर विषम ज्वर को उत्पन्न करते हैं। विषम ज्वर अनुषङ्गी स्वभाव के होने के कारण शांत होकर पुनः प्रकट हो जाते हैं[5]।

आगन्तुक विषम ज्वर की सम्प्राप्ति

आगन्तुज विषम ज्वर की प्रथम सम्प्राप्ति वर्णित नहीं किन्तु जब निज ज्वर में भूताभिषंग हो जाता है तब आगन्तुज विषम ज्वर उत्पन्न हो जाता है।

1. "आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे।" (सु.उ. 39/56)
2. "अधिशेते यथा भूमिं बीजं काले च रोहति।
   अधिशेते तथा धातु दोषः काले च कुप्यति॥" (च.चि. 3/68)
3. "दोषोऽल्पोऽहित संभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः।
   धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम्॥" (सु.उ. 39/66)
4. "समस्तो द्वन्दशोवाऽपि धमनी रसवाहिनीः।
   दोषाः प्रपन्नाः कुर्वन्ति विषमा विषमज्वरम्॥" (का.खि. 1)
5. "न च स्वभावोपशमं गच्छत्यनुशयात्मकः।
   नहि स्वभावशान्तानां भावानामस्ति संभवः॥" (का.स.खि.)

सम्प्राप्ति चक्र- निज विषमज्वर

1. अल्प बल युक्त अल्पदोष
2. ज्वर मुक्त दोष + मिथ्या आहार विहार
3. धातु वैषम्य

↓

लीन दोषों का पुनः प्रकोप

↓

रसरक्तादि धातुओं में पुनः संचय

↓

विषम आरम्भ, क्रिया, काल पूर्वक ज्वर प्रकोप

↓

विषम ज्वर

आगन्तुज विषमज्वर

निज विषम ज्वर

+

भूताभिषङ्ग

(जीवाणु आक्रमण)

↓

आगन्तुज विषम ज्वर

सम्प्राप्ति घटक

दोष	-	त्रिदोष पित्तप्रधान
दूष्य	-	कोष्ठाग्नि एवं धातुएं
स्रोतो दुष्टि	-	संग
अधिष्ठान	-	आमाशय, सर्वशरीर
स्वभाव	-	मृदु
साध्यासाध्यता	-	कृच्छ्रसाध्य

विषम ज्वर के भेद

आचार्यों ने विषम ज्वर के कई दृष्टि से भेद किए हैं जिनमें मत-मतान्तर हैं। रोगारम्भक कारण, दोषों के अधिष्ठान, वेग की प्रकृति के आधार पर विषम ज्वर के निम्न भेद किए गए हैं-

1. आचार्य सुश्रुत मतानुसार-आचार्य सुश्रुत ने कारण भेद से विषम ज्वर के दो प्रकार बताए हैं[1]-

1. निज विषम ज्वर
2. आगन्तुज विषम ज्वर

1. "परो हेतुः स्वभावो विषये कैश्चिदीरितः।" (सु.उ. 39/56)

इसके अतिरिक्त आचार्य सुश्रुत ने निम्न बारह प्रकार के विषम ज्वर माने हैं[1]-

1. संतत ज्वर
2. सतत ज्वर
3. अन्येद्युष्क ज्वर
4. तृतीयक ज्वर
5. चतुर्थक ज्वर
6. अन्येद्युष्क विपर्यय ज्वर
7. तृतीयक विपर्यय ज्वर
8. चतुर्थक विपर्यय ज्वर
9. औपत्यक ज्वर
10. मद्योत्थ ज्वर
11. प्रलेपक ज्वर
12. वात बलासक ज्वर

2. आचार्य चरक मतानुसार[2]-दोषों के अधिष्ठान भेद से वेग की प्रकृति के आधार पर आचार्य चरक ने विषम ज्वर के पाँच भेद वर्णित किए हैं-

1. संतत ज्वर
2. सतत ज्वर
3. अन्येद्युष्क ज्वर
4. तृतीयक ज्वर
5. चतुर्थक ज्वर

आचार्य चरक ने चतुर्थक विपर्यय ज्वर भी माना है। आचार्य वागभट्ट एवं आचार्य माधवकर का भी यही मत है[3]।

3. आचार्य काश्यप मतानुसार[4]-आचार्य काश्यप ने निम्न सात प्रकार के विषम ज्वरों का उल्लेख किया है-

1. संतत ज्वर
2. सतत ज्वर
3. अन्येद्युष्क ज्वर
4. तृतीयक ज्वर
5. चतुर्थक ज्वर
6. प्रेत ज्वर
7. ग्रहोत्थ ज्वर

4. आचार्य गणनाथ सेन मतानुसार[5]- आचार्य गणनाथ सेन ने 'सिद्धान्त निदान' में चरकोक्त पाँच प्रकार के विषम ज्वर के अतिरिक्त पाँच प्रकार के विषम ज्वर और वर्णित किये हैं यथा-

1. वात बलासक ज्वर
2. प्रलेपक ज्वर

1 "वाताधिकत्वात् प्रवदन्ति तज्ज्ञास्तृतीयकञ्चापि चतुर्थकञ्च।
औपत्यके मद्यसमुद्भवे च हेतु ज्वरे पित्तकृतं वदन्ति॥
प्रलेपकं वातबलासकञ्च कफाधिकत्वेन वदन्ति तज्ज्ञा।
मूर्च्छाऽनुबन्धा विषमज्वरा ये प्रायेण ते द्वन्द्वसमुत्थितास्तु॥" (सु.उ.त. 39/57-58)

2 "संतत: सततान्येद्युस्तृतीयक चतुर्थका:।" (च.चि. 3)

3 "विषम ज्वर एवान्यश्चतुर्थक विपर्यय:।" (च.चि. 3/73)

4 (काश्यप संहिता खिल स्थान 1)

5 "सन्तत: सततान्येद्युष्कतृतीयक चतुर्थका:। यश्च वातबलासकाख्य: क्षयिणीञ्च प्रलेपक: ॥
दर्शादिष्वपरो दृष्टो यश्च श्लैपदिको ज्वर:। यश्चौपद्रविक: द्रष्ट: प्रायशो जीर्णरोगिणाम्॥"
(सि.नि.ख. 1/183-185)

3. श्लैपदिक ज्वर
4. औपद्रविक ज्वर
5. जीर्ण सततक भेद काल ज्वर

5. आचार्य खवरनाद मतानुसार-आचार्य खरनाद ने चार प्रकार के विषम ज्वर माने हैं[2] जो निम्नानुसार हैं-

1. सततक ज्वर
2. अन्येद्युष्क ज्वर
3. तृतीयक ज्वर
4. चतुर्थक ज्वर

6. आचार्य दारुवाह के मतानुसार-आचार्य दारुवाह के अनुसार रस-रक्तादि धातुओं के उत्तरोत्तर धातुओं के स्रोत सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम तथा दूरतर व दूरतम होते हैं, अत: दोष को उत्तरोत्तर धातुओं में पहुँचने में अधिकाधिक विलम्ब होता है। अत: वेगागमन काल में विलम्ब होता है। उनके मतानुसार विषम ज्वर दो प्रकार के होते हैं[2]-

1. तृतीयक ज्वर
2. चतुर्थक ज्वर

धात्वाश्रय व विषम ज्वर-विषम ज्वर की उत्पत्ति में दोष धातुओं को आश्रय बनाकर ज्वरोत्पत्ति करते हैं जिसे निम्न सारणी द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है-

ज्वर	धात्वाश्रय[3]
संतत ज्वर	रस धातु
सतत ज्वर	रक्त धातु
अन्येद्युष्क ज्वर	मांस धातु
तृतीयक ज्वर	मेद धातु
चतुर्थक ज्वर	अस्थि एवं मज्जा धातु

इसी प्रकार दोष के अधिष्ठान में भी भिन्नता होने के कारण, दोषों की गति के अनुसार विषम ज्वर के वेगों में भी भिन्नता होती है[4]। यथा-

1. "अन्ये तु सन्ततं परित्यज्य सततकादीश्चतुरो विषमज्वरानिच्छन्ति
यत: सन्तते कालवैषम्यं तादृशे नस्ति, उक्तं च खरनादेन॥" (चक्रपाणि टीका)

2. "अन्येतु तृतीयक चतुर्थकानेन विषमौ, विषमाणो चिरेण-चोत्पादात् यदाह-दारुवाह:-
सूक्ष्मसूक्ष्मतरास्थेषु दूरदूरतरेषु च॥" (च.चि. 3/74 पर चक्रपाणि)

3. "संतत रसरक्तस्थ: सोऽन्येद्यु: पिशिताश्रिता:।
मेदोगतस्तृतीयेऽह्निचतुर्थेह्नि चतुर्थक: ॥" (च.चि. 3/74 पर चक्रपाणि)

4. "सततान्येद्युष्कत्र्याख्य चातुर्थकान् स प्रलेपकान्। कफस्थानविभागेन यथासंङ्ख्य करोति हि ॥
अहोरात्रादहोरात्राद् स्थानात् स्थानं प्रपद्यते। ततश्चामाशयं प्राप्यं दोष: कुर्याज्वरं नृणाम्॥"
(सु.उ. 39/52-53)

1. आमाशयस्थ दोष सतत ज्वर को उत्पन्न करते हैं एवं इस ज्वर का वेग दिन में 2 बार आता है।
2. उरः प्रदेश स्थित दोष एक दिन में आमाशय में पहुँचते हैं एवं दूसरे दिन अन्येद्युष्क ज्वर को उत्पन्न करते हैं अर्थात् दिन में एक बार ज्वर का वेग आता है।
3. कण्ठ प्रदेश स्थित दोष एक दिन में उरः प्रदेश में, दूसरे दिन आमाशय मे आते हैं एवं तीसरे दिन ज्वरोत्पत्ति करते हैं अर्थात् ज्वर का वेग एक दिन के अन्तराल से आता है।
4. जब दोष शिर प्रदेश में अवस्थित होते हैं तब एक दिन में कण्ठ प्रदेश, दूसरे दिन उरः प्रदेश तथा तीसरे दिन आमाशय में पहुँचकर चौथे दिन ज्वरोत्पत्ति करते हैं। अतः चतुर्थक ज्वर का वेग 2 दिन के अन्तराल से आता है।
5. आमाशयस्थ दोष प्रतिदिन प्रलेपक ज्वर को उत्पन्न करते हैं।
6. उरः प्रदेश एवं आमाशय स्थित दोष अन्येद्युष्क विपर्यय ज्वर को उत्पन्न करते हैं।
7. कण्ठ, हृदय एवं आमाशय में स्थित दोष तृतीयक विपर्यय ज्वर को उत्पन्न करते हैं।
8. शिर, कण्ठ, उर एवं आमाशयस्थ दोष चतुर्थक विपर्यय ज्वर को उत्पन्न करते हैं।

इसी प्रकार ऋतु, दिन-रात, दोष एवं मानसिक स्थिति के बलवान या निर्बल होने से तथा पूर्व जन्म के कर्मों के कारण सन्ततादि ज्वर अपने नियतकाल पर विभिन्न रूपों के साथ प्रकट होते हैं[1]।

आचार्य सुश्रुत ने विषम ज्वर के वेगों को 'ज्वारभाटा' की उपमा दी है। उनके अनुसार जिस प्रकार वायु के झोंको से उत्पन्न लहरों से सागर में ज्वारभाटा आता है एवं वेग चले जाने पर जल पुनः अपनी पूर्व स्थिति में आ जाता है उसी तरह वायु से प्रेरित दोष अनेक ज्वरों को उत्पन्न करते हैं। दोष वेग उत्पन्न होने पर ज्वर आता है एवं वेग शांत होने पर ज्वर उतर जाता है।

विषम ज्वर के भेदानुसार लक्षण

1. संतत ज्वर[2]

जब ज्वर लगातार (Continuous)7, 10 या 12 दिन तक निरन्तर बना रहे एवं कभी भी अपने सामान्य तापमान पर न आये तब उसे संतत ज्वर कहते हैं। इसे Continuous or Remittent fever कहते हैं।

संतत ज्वर में जब दोष अल्प बल वाले होते हैं तब ज्वर 7, 10 या 12 दिन में शांत हो जाता है अन्यथा दोष प्रबल होने पर ज्वर असाध्य हो जाता है।

1. "ऋत्वहोरात्रदोषाणां मनसश्च बलाबलात्। कालमर्थवशाच्चैव ज्वरस्तं तं प्रपद्यते॥" (च.चि. 3/75)
2. "सप्ताहं वादशाहं वा द्वादशाहमथापि वा।
सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात् संततः सनिगद्यते॥" (मा.नि.)

दोषों की उल्वणता के आधार पर वातोल्वण संतत ज्वर, पित्तोल्वण संतत ज्वर व कफोल्वण संतत ज्वर माने गए हैं।

वातोल्वण संतत ज्वर - 7 दिन पश्चात् उतरता है।
पित्तोल्वण संतत ज्वर - 10 दिन पश्चात् उतरता है।
कफोल्वण संतत ज्वर - 12 दिन पश्चात् उतरता है।

संतत ज्वर में दोष रस धातु में आश्रित रहते हैं। कभी-कभी संतत ज्वर दीर्घकाल तक भी चलता है[1]।

संतत ज्वर के आश्रय[2]

चूंकि संतत ज्वर में दोष रस धातु के आश्रित होते हैं परन्तु इसमें दोष मूत्र, पुरीष को भी दूषित करते हैं अतः वात, पित्त, कफ ये तीनों, सप्त धातुएं एवं मूत्र एवं पुरीष, ये बारह दूष्य संतत ज्वर के आश्रय होते हैं जो दूषित होकर ज्वरोत्पत्ति करते हैं।

संतत ज्वर की साध्यता[3]

संतत ज्वर को त्रिदोषज कहा गया है, परन्तु दोषों की उल्वणता के अनुसार वह दोष अपने अनुकूल ऋतु, प्रकृति एवं दूष्य के अनुसार ज्वरोत्पादक होता है अर्थात् वर्षा ऋतु, वात प्रकृति के मनुष्य में, अस्थि आश्रित वातिक ज्वर, बसन्त ऋतु में कफ प्रकृति के मनुष्य में मेदाश्रित कफज ज्वर तथा शरद ऋतु में पित्त प्रकृति के मनुष्य में रक्ताश्रित पित्तज ज्वर होता है जो काल दूष्य एवं प्रकृति के अनुकूल होने से निष्प्रत्यनीक होता है एवं अत्यधिक कठिनता से साध्य होता है।

विमर्श- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Typhoid fever, Pneumonia & Ceribrospinal fever में भी संतत ज्वर सदृश लक्षण बने रहते हैं, अतः इस दृष्टि से लक्षणों के आधार पर-

पित्तोल्वण संतत ज्वर से- Typhoid ferver
कफोल्वण सतंत ज्वर से- Pneumonia ferver
वातोल्वण संतत ज्वर से- Ceribrospinal fever

का सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं। इन ज्वरों में दिन भर में शरीर के अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान में 2°F का अन्तर हो सकता है, परन्तु प्रायः ज्वर सामान्य तापक्रम तक कभी नहीं आता।

1. "विसर्ग द्वादशे कृत्वा दिवसेऽव्यक्त लक्षणम्
दुर्लभोपशमः कालो दीर्घमप्यमुवर्तते॥" (च.चि. 3/59)
2. "यथा धातूस्तथा मूत्रं पुरीष चानिलाद सः। युगपुच्चानुपद्यन्ते नियमात् सन्तते ज्वरः॥
दादशैते समुदिष्टाः सन्तरस्याश्रयास्तदा॥' (च.चि. 3/56 व 69)
3. "काल दूष्य प्रकृति भिर्दोषस्तुल्यो हि सन्ततम्।
निष्यप्रत्यनीकः कुरुते तस्माज्ज्ञेयः सुदुःसहः॥" (च.चि. 3/55)

2. सततक ज्वर[1]

सततक ज्वर में दिन व रात में कुल दो बार ज्वर का वेग आता है अर्थात् दिन में 2 बार ज्वर चढ़ता है। सतत ज्वर में कुपित दोष रक्त धातु में आश्रित होते हैं तथा काल, दूष्य एवं प्रकृति के विरोधी होने के कारण ज्वर के बढ़ने व घटने वाले स्वभाव का अनुसरण कर सतत ज्वर को उत्पन्न करते हैं।

सतत ज्वर में दोष के अनुकूल काल अर्थात् वात प्रधान ज्वर में रात्रि का अंतिम भाग, पित्त प्रधान ज्वर में मध्यान्ह काल व कफ प्रधान ज्वर में प्रातः काल में ज्वर का वेग बढ़ता है एवं दोष के विपरीत काल में ज्वर का वेग कम कम हो जाता है। लक्षणों के आधार पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Double quotidian fever से सतत ज्वर का सामञ्जस्य स्थापित किया जा सकता है।

3. अन्येद्युष्क ज्वर[2]

दिन-रात में केवल एक बार ज्वर का वेग आने वाला ज्वर अन्येद्युष्क ज्वर कहलाता है। यह पूर्ण विसर्गी स्वरूप का होता है। आचार्य सुश्रुत इसे मांसधातु[3] आश्रित व आचार्य चरक इसे मेद धातु आश्रित[4] ज्वर मानते हैं।

अन्येद्युष्क ज्वर में दोष, काल, दूष्य एवं प्रकृति इनमें से किसी एक का बल प्राप्त कर मेदोवह सिराओं में अवरोध उत्पन्न कर दिन रात में केवल एक बार आने वाला ज्वर उत्पन्न करता है। इस प्रकार के ज्वर में ज्वर का वेग एक बार कभी भी आ सकता है, इसका कोई निश्चित समय नहीं होता है। इसे Quotidian fever मान सकते हैं।

4. तृतीयक ज्वर

एक दिन छोड़कर आने वाला ज्वर अर्थात् जिस दिन ज्वर आता है उसके दूसरे दिन छोड़कर पुनः तीसरे दिन आने वाला ज्वर का वेग तृतीयक ज्वर कहलाता है।

आचार्य डल्हण[5] के अनुसार कण्ठस्थ दोषों को एक दिन वक्ष प्रदेश में आने के लिए तथा दूसरा दिन आमाशय में आने के लिए लगता है। अतः प्रति तीसरे दिन आने वाले ज्वर के वेग को तृतीयक ज्वर कहते हैं। आचार्य सुश्रुत तृतीयक ज्वर में मेद धातु को दोषों का आश्रय मानते हैं[6] तथा आचार्य चरक अस्थि धातु[7] को दोषों का आश्रय मानते हैं। लक्षणों के आधार पर तृतीयक ज्वर को Tertian fever भी कह सकते हैं।

1. "रक्तधात्वाश्रयः प्रायो दोषः सततको ज्वरम्। सप्रत्यनीकः कुरुते कालवृद्धिक्षयात्मकम्॥ अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते॥" (च.चि. 3/61-62)
2. "अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रदेककालं अनुवर्तते॥" (सु.उ. 39/70)
3. "सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः।" (सु.उ. 39/67)
4. "अन्येद्युष्कं ज्वरं दोषो रुद्ध्वा मेदोवहाः सिराः।" (च.चि. 3/63)
5. "कण्ठस्थ तृतीयकम्।" (डल्हण)
6. "मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि।" (सु.उ. 39/69)
7. "दोषोऽस्थिमज्जाः कुर्यात्तृतीयक चतुर्थको।" (च.चि. 3/64)

तृतीयक ज्वर के प्रकार[1]-लक्षणों के आधार पर तृतीयक ज्वर तीन प्रकार का होता है-

1. कफ-पित्तज
2. वात-पित्तज
3. वात-कफज

1. इनमें कफपित्तोल्वण तृतीयक ज्वर में सर्वप्रथम त्रिक् प्रदेश में जकड़न (Stiffness in lumbar region) एवं कटिशूल (Lumbago) होता है।
2. वात पित्तोल्वण तृतीयक ज्वर में सर्वप्रथम शिर में वेदना (Headache) होती है, पश्चात् समस्त शरीर में वेदना (Bodyache) होती है।
3. वात कफोल्वण तृतीयक ज्वर में सर्वप्रथम पीठ में वेदना (Backache) होती है।

5. चतुर्थक ज्वर[2]

दो दिन के अन्तराल से अर्थात् प्रति चौथे दिन आने वाला ज्वर का वेग चतुर्थक ज्वर कहलाता है। जब विकृत दोष अस्थि व मज्जागत होते हैं तब भयंकर उपद्रवों से युक्त चतुर्थक ज्वर को उत्पन्न करते हैं। आचार्य डल्हण एवं आचार्य काश्यप के अनुसार शिर प्रदेश में स्थित दोष दूसरे दिन कण्ठ में, तीसरे दिन वक्ष प्रदेश में आकर चौथे दिन आमाशय में प्रकुपित होकर चतुर्थक ज्वर के वेग को उत्पन्न करते हैं। लक्षणों के आधार पर चतुर्थक ज्वर को Quartan fever भी कह सकते हैं।

चतुर्थक ज्वर के भेद[3]-प्रभाव भेद से चतुर्थक ज्वर दो प्रकार का होता है-

1. कफोल्वण चतुर्थक ज्वर
2. वातोल्वण चतुर्थक ज्वर

कफोल्वण चतुर्थक ज्वर में सर्वप्रथम जंघा की पिण्डलियों में वेदना (Pain in calf muscles) होती है। पश्चात् समस्त शरीर प्रभावित होता है।

वातोल्वण चतुर्थक ज्वर में सर्वप्रथम सिर में पीड़ा (Headache) होती है, पश्चात् समस्त शरीर प्रभावित होता है।

6. चतुर्थक विपर्ययज्वर[4]

आचार्य चरक ने चतुर्थक विपर्यय ज्वर का वर्णन किया है। इसमें विकृत दोष अस्थि

1. "कफपित्तात् त्रिकग्राही पृष्ठाद् वातकफात्मकः।
वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात् तृतीयकः॥" (च.चि. 3/71)
2. "दिनद्वयं यो विश्रम्य प्रत्येति स चतुर्थकः।" (च.चि. 3/67)
3. "चतुर्थको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः।
जंघाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरस्तोऽनिल संभवः॥" (च.चि. 3/72)
4. "विषमज्वर एवान्युश्चतुर्थक विपर्ययः।
त्रिविधो धातुरकैको द्विधातुस्थः करोतियम्॥" (च.चि. 3/73)

व मज्जा दोनों में ही आश्रित रहते हैं[1], अतः मध्य में दो दिन लगातर ज्वर का वेग रहता है एवं इन दो दिनों के आदि व अंत में ज्वर का वेग नहीं रहता अर्थात् पहले दिन व चौथे दिन ज्वर का वेग नहीं रहता केवल दूसरे व तीसरे दिन ही ज्वर का वेग रहता है।

7. तृतीयक, अन्येद्युष्क व सतत विपर्यय ज्वर[2]

कुछ आचार्य तृतीयक, अन्येद्युष्क एवं सतत विपर्यय ज्वर भी मानते हैं। आचार्य चरक ने इन्हें नहीं माना है। इन विशेष स्थितियों का कारण विभिन्न प्रकार की विशेष दोष विकृतियां होती हैं।

तृतीयक विपर्यय ज्वर में ज्वर आदि एवं अंत को छोड़ अर्थात् पहले एवं तीसरे दिन ज्वर का वेग नहीं चढ़ता दूसरे दिन ज्वर चढ़ता है। इसमें दोष आमाशय, हृदय एवं कण्ठ प्रदेश में स्थित रहते हैं।

अन्येद्युष्क विपर्यय ज्वर में दिन-रात में से किसी एक समय छोड़ शेष समय ज्वर रहता है। दोष आमाशय एवं हृदय में स्थित रहते हैं।

संतत विपर्यय ज्वर में दिन रात के किसी दो समय छोड़ शेष समय ज्वर का वेग बना रहता है।

8. प्रेतोत्थ ज्वर

आचार्य काश्यप ने इसका वर्णन किया है। देवता, पितृ आदि की अवहेलना या निन्दा करने से वे क्रुद्ध होकर विषम ज्वर सदृश रोगों को उत्पन्न करते हैं तब निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं-

1. ज्वर (Fever) 2. अतिसार (Diarrhoea) 3. वमन (Vomiting)

9. ग्रहोत्थ ज्वर[3]

इसका वर्णन भी आचार्य काश्यप ने किया है। इसमें रोगी अचानक रोने या हँसने लगता है। मुख्यतः जातहारणी ग्रह से पीड़ित बालकों में विषम ज्वर, तन्द्रा, पाण्डु, कामला आदि रोगों के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

10. औपद्रविक ज्वर

जीर्ण ज्वरों में उपद्रव स्वरूप त्रिदोष प्रकोप से ज्वर की उत्पत्ति होती है। यह ज्वर प्रारंभ से नहीं होता किन्तु बाद में व्याधि के उपद्रव के रूप में उत्पन्न होता है। यह ज्वर उस रोग की कृच्छ्रसाध्य या असाध्य स्थिति का बोध कराता है।

11. विशिष्ट विषम ज्वर

कुछ अन्य विशिष्ट विषम ज्वरों का वर्णन भी संहिताओं में प्राप्त होता है—

1. "अस्थि मज्जोभयगते चतुर्थक विपर्ययः।" (मधुकोष)
2. "त्र्यहाद् द्वयहं ज्वरयति ह्यादावन्ते च मुञ्चति।" (मधुकोष)
3. "काश्यप संहिता, सूत्रस्थान, वेदनाध्याय"

(1) **शीत विषम ज्वर[1]**-जब कफ एवं वात दोष कुपित होकर त्वचा में अवस्थित होते हैं तो पहले ठण्ड लगकर ज्वर चढ़ता है। कालान्तर में पित्त का प्रकोप होकर दाह आदि लक्षण भी उत्पन्न होते हैं।

(2) **दाह विषम ज्वर[2]**-जब प्रकुपित पित्त त्वचा में अवस्थित होता है तब पहले दाह उत्पन्न होता है एवं कालान्तर में पित्त शांत होने पर रोगी को शीत की अनुभूति होती है।

(3) जब कोष्ठ में दूषित पित्त अवस्थित रहता है तब शरीर का मध्य भाग गरम रहता है एवं हाथ-पैर में कफ स्थित होने से हाथ-पैर ठण्डे रहते हैं।

(4) जब कोष्ठ में दूषित कफ पहुँचता है तब मध्यशरीर ठण्डा रहता है एवं हाथ पैर में पित्त स्थित होने से इनमें दाह की अनुभूति होती है।

12. प्रलेपक एवं वात बलासक ज्वर

इनका वर्णन पूर्व में ज्वर के भेद के अन्तर्गत किया जा चुका है।

विषम ज्वर की साध्यासाध्यता

1. संतत ज्वर काल, दूष्य, प्रकृति के निष्प्रत्यनीक (अविरोधी) होने के कारण दुःसाध्य होता है। किन्तु सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक एवं चतुर्थक विषम ज्वर साधारणतः साध्य हैं।

2. उपद्रव युक्त होने पर ये ज्वर कृच्छ्र साध्य एवं असाध्य होते हैं।

विषम ज्वर का चिकित्सा सूत्र

आचार्य चरक ने विषम ज्वर की चिकित्सा हेतु निम्न सिद्धान्त वर्णित किये हैं-

1. तृतीयक एवं चतुर्थक ज्वर को साधारण कर्म अर्थात् युक्ति व्यापाश्रय एवं दैवव्यापाश्रय चिकित्सा के द्वारा जीतने का प्रयास करना चाहिये। विषम ज्वर में आगन्तुज अनुबंध होने के कारण बलि, मंगल, होम, धूपन आदि देवव्यपाश्रय चिकित्सा के साथ ज्वरहर औषध प्रयोग द्वारा युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा करने का विधान है[3]।

2. आचार्य चरक विषम ज्वर को सन्निपातज मानते हैं[4], अतः त्रिदोष नाशक चिकित्सा करनी चाहिये तथा दोषों की उल्वणता के आधार पर उस दोष नाशक चिकित्सा

1. "त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे।
तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च॥" (सु.उ. 39/59)
2. "करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च।
तस्मिन् प्रशान्ते त्वरितौ कुरुतः शीतमन्ततः॥" (सु.उ. 39/60)
3. "कर्म साधारणं जह्यात् तृतीयक चतुर्थको।
आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे॥" (च.चि. 3/292)
4. "प्रायशः सन्निपातेन दृष्टः पञ्चविधो ज्वरः।" (च.चि. 3/74)

करने का भी विधान है।

(i) वात प्रधान विषम ज्वर की चिकित्सा[1]

वात प्रधान विषम ज्वर में घृतपान, अनुवासन बस्ति व निरुह बस्ति के साथ ही स्निग्ध एवं ऊष्ण द्रव्यों के प्रयोग का वर्णन है।

(ii) पित्त प्रधान विषम ज्वर की चिकित्सा[2]

पित्त प्रधान विषम ज्वर की चिकित्सा हेतु रोगी को विरेचन, पित्तशामक औषधसिद्ध दुग्ध (क्षीर पाक विधि से पाक किया हुआ) पान, तथा तिक्त व शीत वीर्य द्रव्यों से सिद्ध घृत का प्रयोग करवाना निर्दिष्ट है।

(iii) कफ प्रधान विषम ज्वर की चिकित्सा

कफ प्रधान विषम ज्वर में रोगी की चिकित्सा हेतु पाचन, रूक्ष अन्नपान सेवन, लंघन तथा ऊष्ण द्रव्यों के प्रयोग द्वारा चिकित्सा देने का विधान है[3]।

3. विषम ज्वर से ग्रसित दुर्बल, क्षीण, वृद्ध, बालक में संशोधन कर्म अर्थात् वमन विरेचन न कराकर संशमन चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिये।

4. आचार्य वागभट्ट ने विषम ज्वर की चिकित्सा में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का अधिक प्रभाव आगन्तुज अनुबंध होने के कारण बताया है[4]।

5. प्रेतोत्थ व ग्रहोत्थ विषम ज्वर में बलि, होम, शांति, सिद्ध मंत्रों के जाप द्वारा चिकित्सा व शंकर भगवान की उपासना करनी चाहिये।

विषम ज्वर की चिकित्सा

1. संशोधन चिकित्सा

1. वातिक विषम ज्वर - अनुवासन, निरुह बस्ति
2. पैत्तिक विषम ज्वर - विरेचन कर्म
3. कफज विषम ज्वर - वमन कर्म (षटफल घृत पिलाकर)

2. संशमन चिकित्सा-विषम ज्वर के विभिन्न भेदों में प्रयुक्त संशमन चिकित्सा में

1. "वात प्रधानंसर्पिभिर्बस्तिभिः सानुवासनैः।
स्निग्धोष्णैरन्नपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम्॥" (च.चि. 3/293)
2. "विरेचनेन पयसा सर्पिषा संस्कृतेन च।
विषमं तिक्तशीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत्॥" (च.चि. 3/294)
3. "वमनं पाचनं रुक्षमन्नपानविलंघनम्।
कषायोष्णं च विषमे ज्वरे शस्तं कफोत्तरे॥" (च.चि. 3/295)
4. "दैवव्यापाश्रयं च भैषज्यं ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति।
विशेषाद्विषमान् प्रायस्ते ह्यागन्तुजानुबन्धजाः॥" (अ.ह.चि. 1)

प्रयोग किए जाने वाले संशमन योगों का वर्णन निम्न अनुसार प्रस्तुत है-

1. रस/भस्म/पिष्टी- मात्रा - 125 - 250 मि.ग्रा.
अनुपान - मधु/ऊष्ण जल

पूर्वोक्त ज्वर चिकित्सा में वर्णित रस/भस्म/पिष्टी का प्रयोग विषम ज्वर चिकित्सा में भी किया जा सकता है। विषम ज्वर की चिकित्सा के लिए कुछ अन्य विशिष्ट योग निम्न प्रकार हैं-

1. विषम ज्वरान्तक लौह- चिरायता, पर्पट, देवदारु, मनःशिला, गुडुची, अभ्रक, खर्परभस्म, लौहभस्म।
2. सर्व ज्वरहरलौह-लौहभस्म, कज्जली, त्रिफला, त्रिकटु, विडंग, मुस्तक।
3. महाज्वरांकुश रस-शु. पारद, गंधक, वत्सनाभ, धत्तूर बीज, त्रिकटु।
4. विश्वेश्वर रस- शु.पारद, गंधक, खर्पर भस्म।

2. वटी-मात्रा-250 - 500 मि.ग्रा.
अनुपान -कोष्णजल

1. करञ्जादि वटी- पूर्वोक्त।
2. सप्तपर्णघन वटी- सप्तपर्ण।
3. ज्वरघ्नी वटी- ज्वरोक्त।

3. चूर्ण- मात्रा - 3 - 6 ग्राम
अनुपान - कोष्ण जल।

1. सुदर्शन चूर्ण - पूर्वोक्त।
2. पिप्पली चूर्ण - पिप्पली।

इसका प्रयोग घृत, दुग्ध, मधु एवं चीनी के साथ करना चाहिये अथवा पिप्पली चूर्ण को दशमूल क्वाथ के साथ सेवन करना चाहिये।

4. क्वाथ/आसव-अरिष्ट-मात्रा - 20 मि.लि.
अनुपान - समभाग जल

1. आचार्य चरक ने विषम ज्वर के भेदानुसार निम्न विशिष्ट क्वाथों का वर्णन किया है[1]-

1. "कलिङ्गका: पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी।
पटोलः सारिवा मुस्तं पाठां कटुकरोहिणीम्॥
निम्ब पटोलस्त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ।
किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषज्यम्॥
गुडुच्यामलकी मुस्तमर्धश्लोक समापना:।
कषाया शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधान्ज्वरान्॥" (च.चि. 3/201-203)

(i) कलिङ्गादि क्वाथ- इन्द्रयव, पटोल पत्र एवं कुटकी।
यह संतत ज्वर की चिकित्सा में निर्दिष्ट है।

(ii) पटोलादि क्वाथ- पटोलपत्र, सारिवा, मुस्तक, पाठा एवं कुटकी।
यह सतत ज्वर की चिकित्सा में निर्दिष्ट है।

(iii) निम्बादि क्वाथ- निम्बछाल, पटोल पत्र, त्रिफला, मुनक्का, मुस्तक, इन्द्रयव।
यह अन्येद्युष्क ज्वर की चिकित्सा में निर्दिष्ट है।

(iv) किरातादिक्वाथ-चिरायता, गुडुची, रक्तचन्दन, शुण्ठी।
यह तृतीयक ज्वर की चिकित्सा में निर्दिष्ट है।

(v) गुडुच्यादि क्वाथ- गुडुची, आमलकी , मुस्तक।
यह चतुर्थक ज्वर की चकित्सा में निर्दिष्ट है।

2. जात्यादि क्वाथ- चमेलीपत्र, आमलकी, मुस्तक। इनके क्वाथ में गुड़ मिलाकर प्रयोग करने का विधान है।

5. घृत प्रयोग-मात्रा - 20 - 40 मि.लि.

अनुपान - ऊष्णोदक/दुग्ध

ज्वर की चिकित्सा में वर्णित घृत योगों के अतिरिक्त निम्न घृत योगों का प्रयोग सुविधानुसार किया जा सकता है-

1. षट्पल घृत- पंचकोल, सैंधव, घृत।
2. पंचकोल घृत- पंचकोल, घृत।
3. पिप्पल्यादि घृत- ज्वरोक्त।
4. महाकल्याण घृत- शालपर्णी, तगर, एला, हरिद्राद्वय, सारिवा, घृत।
5. पटोलदि घृत- ज्वरोक्त।

6. कल्प प्रयोग- मात्रा - रोग एवं रोगी के बलानुसार

अनुपान - दुग्ध

1. वर्धमानपिप्पली रसायन[1]-10 दिन तंक प्रतिदिन क्रम से 10 पिप्पली बढ़ाते हुए व क्रमशः 10 पिप्पली घटाते हुये 10 दिन तक पिप्पली सेवन करायें। पिप्पली सेवन काल में दुग्ध का अधिक प्रयोग प्रशस्त होता है।

7. अन्य प्रयोग- विभिन्न चिकित्सा ग्रंथों एवं संहिताओं में विषम ज्वर की चिकित्सा में निम्न एकल औषधियों का प्रयोग भी बताया गया है-

(i) रसोन सिद्ध तिल तैल का पान।
(ii) त्रिफला चूर्ण + गुड़ सेवन।

1. "पिप्पली वर्धमानं वा पिबेत् क्षीररसाशनः।
ताम्रचूडस्य मांसेन पिबेद् वा मधुमुत्तमः॥" (सु.उ. 39/217)

(iii) कृष्ण जीरक + गुड़ सेवन।
(iv) काली तुलसी का क्वाथ सेवन।
(v) निम्ब छाल के क्वाथ का सेवन।
(vi) सप्तपर्ण की छाल का चूर्ण दिन में तीन बार।
(vii) सहदेवी का स्वरस काली मिर्च के साथ।
(viii) गरम दूध में तिल तैल मिलाकर सेवन।
(ix) पंचसार का प्रयोग[1]-आ. सुश्रुत ने उबाला हुआ दूध, शर्करा, पीपरी, मधु, एवं घृत को पंचसार कहा है। इन्हें उचित प्रमाण में लेकर मथकर प्रतिदिन पान करने से विषम ज्वर नष्ट होता है।
(x) लहसुन स्वरस को घृत में डालकर प्रातः काल पान करने से विषम ज्वर नष्ट होता है[2]।

विषम ज्वर में वेग कालीन चिकित्सा-विषम ज्वर में ज्वर का वेग आ जाने पर उत्पन्न लक्षणों की सर्वप्रथम लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

1. अत्यधिक शीत लगने पर रोगी को सर्वप्रथम कम्बल/रजाई आदि से ढंक कर शीत से बचाना चाहिये।
2. वेग की द्वितीय अवस्था में रोगी को ज्वर का संताप बढ़ने से दाह की अनुभूति होती है, अतः ज्वर शामक औषध से ज्वर को शांत करना चाहिये।
3. अधिक तृष्णा एवं प्रलाप की स्थिति में बृहत कस्तूरी भैरव रस का प्रयोग व षडंगपानीय का प्रयोग करना चाहिये।
4. रोगी का बल बना रहे अतः उसे लघु व सुपाच्य आहार के साथ फलों का रस देते रहना चाहिये।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. ज्वराधिक्य होने पर

1.

	प्रातः	सांयम्
विषमज्वरान्तक लौह-	250 मि.ग्रा.	
गोदन्ती भस्म -	500 मि.ग्रा.	
जहरमोहरा-	500 मि. ग्रा.	
अचिंत्य शक्ति रस-	250 मि.ग्रा.	
षंडगपानीय से	1 × 4 मात्रा	

1. "शृतंपयः शर्करा च पिप्पल्यो मधु सर्पिणी।
पञ्च सारमिदं पेयं मथितं विषम ज्वरे॥" (सु.उ. 39/255)
2. "प्रातः प्रातः ससर्पिष्कं रसोनमुपयोजयेत्।" (सु.उ. 39/213)

2. सुदर्शन चूर्ण- 3 ग्राम
ऊष्ण जल से 1 × 2 मात्रा

3. भोजनोत्तर
अमृतारिष्ट - 20 मि.ली.
समभाग जल से 1 × 2 मात्रा

2. प्रलाप की स्थिति में

1. प्रातः सांयम्
बृहत् कस्तूरी भैरव रस-500 मि.ग्रा.
संजीवनी वटी- 250 मि.ग्रा.
गोदन्ती- 500 मि.ग्रा.
लवंगोदक से 1 × 2 मात्रा

3. तृष्णाधिक्य होने पर

1. प्रातः सांयम्
प्रवाल पिष्टी- 500 मि.ग्रा.
अमृता घन सत्व- 250 मि.ग्रा.
जल से 1 × 2 मात्रा

2. रोगी को षडंगपानीय व लवंगोदक बार-बार पीने को दें।

ज्वर वेग प्रतिषेधात्मक चिकित्सा (Preventive treatment)

1. आचार्य चरक ने ज्वर का वेग आने के समय से पूर्व आस्थापन एवं यापना बस्ति का प्रयोग बताया है।
2. ज्वर का वेग आने के पूर्व भोजन के बाद पर्याप्त मात्रा में मद्यपान करके सोने से ज्वर का वेग नहीं आता।
3. लाल फिटकरी का लावा बताशे में रखकर ज्वर का वेग आने के पूर्व खिला देने से ज्वर का वेग नहीं आता।
4. सेंधव, पीपर एवं मनः शिला को समभाग लेकर तिल तैल में पीसकर अंजन लगाने से ज्वर का वेग नहीं आता।
5. गुग्गुलु, निम्बपत्र, पीली सरसों, यव एवं घी को कूटकर आग में धूपन करने से ज्वर का वेग नहीं आता।
6. अगस्त्य पत्र स्वरस एवं हींग घोंटकर उसका नस्य देने से चातुर्थक ज्वर का वेग नहीं आता।
7. इसके अतिरिक्त विषमज्वर के रोकथाम (Prophylaxis) के रुप में मच्छरों को पनपने नहीं देना चाहिये। रात्रि में सोते समय मच्छरदानी का प्रयोग करना चाहिये।

विषम ज्वर में पथ्यापथ्य

पथ्य

आहार	विहार
गेहूँ, यव, मुद्ग, चना, अगहनी चावल, साठी चावल, बथुआ, परवल, रसोन, करेला, पपीता, दुग्ध, मुर्गा, तीतर, मोर का मांसरस सेवन प्रशस्त है। नारंगी, सेव, अनार, मुनक्का, खर्जूर आदि।	विश्राम।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, विष्टम्भी, तीक्ष्ण आहार सेवन, उड़द, आनूप मांसरस सेवन आदि।	स्नान, अभ्यंग, मैथुन, श्रम, व्यायाम, दिवास्वप्न, क्रोध आदि।

Latest Developments

Malaria

आयुर्वेदोक्त आगन्तुज विषम ज्वर की तुलना आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Malaria से कर सकते हैं।

मलेरिया के कारण (Causes of Malaria)-मलेरिया का कारण एक परजीवी (Parasite) है जिसे Plasmodium के नाम से जाना जाता है। इसकी विभिन्न प्रजातियों के द्वारा विभिन्न प्रकार के विषम ज्वर (Malaria-Fever) उत्पन्न होते हैं। इसकी वाहक (Carrier) मादा एनाफिलीज मच्छर होती है। अतः ऐसे स्थान जहाँ पर गंदगी ज्यादा हो व मच्छर अधिक हों उन स्थानों पर मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति अधिक होती है। लक्षणों के आधार पर Malarial fever तथा आयुर्वेदोक्त विषम ज्वर में निम्न साम्य स्थापित किया जा सकता है-

1. तृतीयक ज्वर (Benign tertian Malaria)-Plasmodium Vivax.
2. चतुर्थक ज्वर (Quartan malaria fever)-Plasmodium Malaria .
3. घातक तृतीयक ज्वर (Malignant tertian Malaria)-Plasmodium Falcip arum.
4. तृतीयक ज्वर (Tertian ma arial fever)-Plasmodium ovale.

इस परजीवी (Parasite) का जीवन चक्र दो चरणों में पूर्ण होता है। एक चक्र मच्छर के शरीर में एवं दूसरा चक्र मानव शरीर में सम्पन्न होता है।

1. **मैथुनी चक्र (Sexual Cycle)**-इसमें नर एवं मादा दोनों प्रकार के मच्छरों की आवश्यकता होती है। यह चक्र मच्छरों की आंत्र में पूर्ण होता है।

2. **अमैथुनी चक्र (Asexual Cycle)**-इसमें नर एवं मादा दोनों प्रकार के मच्छरों की आवश्यकता नहीं होती। यह जीवन चक्र मनुष्य के शरीर (यकृत एवं रक्तकणों) में पूर्ण होता है।

1. Plasmodium Ovale का जीवन चक्र-24 घण्टे में पूर्ण होता है।
2. Plasmodium Falciparum का जीवन चक्र- 36 घण्टे में पूर्ण होता है।
3. Plasmodium Vivax का जीवन चक्र- 72 घण्टे में पूर्ण होता है।
4. Plasmodium Malarae का जीवन चक्र- 72 घण्टे में पूर्ण होता है।

Stages of Malaria Fever (मलेरिया की अवस्थायें)

मलेरिया की निम्न 3 अवस्थायें वर्णित हैं-

1. **प्रथम अवस्था (Ist Stage)**-यह अवस्था 1/2 घण्टे तक रहती है। इसमें निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं-
   1. बैचेनी (Restlessness)
   2. संधि पीड़ा (Joint Pain)
   3. शरीर में कम्पन (Rigors)
   4. ठण्ड लगना (Chills)
   5. अंगुलियों का नीला पड़ना (Cyanosis)
   6. नाड़ी गति बढ़ना (Increased Pulse rate)
   7. मुख का लाल होना (Redness of face)
   8. शरीर का ताप बढ़ना (Raised body temparature)
   9. जी मचलाना (Nausea)
2. **द्वितीय अवस्था (IInd Stage)**-यह अवस्था 1-6 घण्टे तक रहती है। इसमें निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं-
   1. शरीर का तापमान अधिक बढ़ना (Hyperpyrexia)
   2. शरीर में दाह (Burning sensation)
   3. प्रलाप (Delirium)
3. **तृतीय अवस्था (IIIrd Stage)**-इस अवस्था में निम्न लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं-
   1. पसीना आना (Perspiration)
   2. बेचैनी का शमन (Relief in restlessness)
   3. ज्वर उतरना (Decline in the body temparature)
   4. कमजोरी (Weakness)
   5. अनिद्रा (Insomnia)
   6. रक्ताल्पता (Anaemia)
   7. यकृत्प्लीहा वृद्धि (Hepato-splenomegaly)

मलेरिया ज्वर का प्रभाव (Effects of Malaria Fever)

1. रक्ताल्पता (Anaemia)
2. रक्त में श्वेतकण वृद्धि (Leucocytosis)
3. प्लीहा वृद्धि (Splenomegaly)
4. यकृत् वृद्धि (Hepatomegaly)
5. रक्त-कृष्ण वर्ण का मूत्र (Red blackish urine)
6. रक्त में यूरिया की वृद्धि (Uraemia)
7. गालों पर कृष्ण वर्ण के धब्बे (Blackish spots over the cheeks)

ये समस्त लक्षण मलेरिया ज्वर से अधिक समय तक पीड़ित रोगी में मिलते हैं।

मलेरिया के लक्षण (Symptoms of Malaria Fever)

1. शीत पूर्वक ज्वर (Fever with chills & rigors)
2. दौर्बल्य (Weakness)
3. नाड़ी गति तीव्र (Increased pulse rate)
4. तीव्र शिर: शूल एवं अंगमर्द (Headache & bodyache)
5. तीव्र ज्वर के समय प्रलाप (Delirium in Hyperpyrexia)
6. रक्तचाप में कमी (Hypotension)
7. विबंध (Constipation)
8. हृल्लास व छर्दि (Nausea & vomiting)
9. तिक्तास्यता (Bitter taste of mouth)
10. चक्कर (Vertigo)
11. रक्त परीक्षण में Malaria Parasite Positive

Management of Malaria Fever: Principles

1. Give Antipyretics for febrile Stage.
2. Cases of P. Vivax, P. Ovale, P. Malariae would need a course of drug of choice for malarial fever i.e. Chloroquine orally. In case of Vomiting/Gastric irritation administer Chloroquine by Intravenous route.
3. Adequate hydration & nutrition of the patitent should be maintained.
4. Watch out for complications in case of Falciparum Malarial infection.
5. Prevention of future exposure to Malarial fever by prophylaxis & prevention of mosquito bites.

2. कालाजार ज्वर

(KALA-AZAR)

व्याधि परिचय

इसकी तुलना जीर्ण सततक ज्वर से की जाती है। जब सततक विषम ज्वर धातुओं में लीन होकर रहता है एवं समय आने पर प्रकट होता है तब रोगी के शरीर में इस ज्वर के जो लक्षण प्रकट होते हैं उनमें व 'कालाजार' के लक्षणों में काफी साम्यता है।

कारण-इस ज्वर को Tropical Splenomegaly भी कहते हैं। इसका कारण Leishmania Donovan नामक कीटाणु है जो कि प्लोनोटामस जाति के मक्खी के काटने से मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होकर ज्वरोत्पत्ति करता है।

लक्षण-इसमें निम्न लिखित लक्षण पाए जाते हैं-

1. अनियमित ज्वर (Irregular Fever up to 3 - 6 weeks)
2. यकृत वृद्धि (Hepatomegaly)
3. प्लीहा वृद्धि (Splenomegaly)
4. काष्र्य (Blackish-blue spots over skin)
5. लसीका ग्रंथियों की वृद्धि (Generalised enlargement of lymph glands.)
6. अस्थि संधि पीड़ा (Joint pains)
7. दौर्बल्य (Weakness)
8. सिराविस्फार (Dialatation of veins)
9. भूख लगना (Appetite)
10. जिह्वा सामान्य (Normal Tongue)
11. अग्निमांद्य (Indigestion)

चिकित्सा-आचार्य सुश्रुत ने कालाजार ज्वर से मिलती जुलती अवस्था को "लाघरक" नाम से वर्णित किया है तथा इसकी चिकित्सा में प्रवाल मुक्तादि योग का वर्णन किया है जो इसकी उत्तम औषध है।

प्रवाल मुक्ता योग-प्रवाला शाखा, स्वर्ण, गैरिक, नीलांजन, मुक्ताभस्म, शंख भस्म व त्रिकटु का मिश्रण है।

मात्रा -125 - 250 मि.ग्रा.

अनुपान - मधु

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रातः सांयम्

प्रवाल मुक्तादि योग	- 500 मि.ग्रा.
सर्वज्वर हर लौह	- 500 मि.ग्रा.
नवायस लौह	- 250 मि. ग्रा.
शृंग भस्म	- 250 मि.ग्रा.
मधु से	1 × 3 मात्रा

2. भोजनोत्तर

आरोग्य वर्धनी वटी	2/2/2
पुनर्नवारिष्ट	- 10 मि.ली.
रोहितकारिष्ट	- 10 मि.ली.
समभागं जल से	1 × 2 मात्रा

3. मन्थर ज्वर

(Typhoid Fever)

व्याधि परिचय

इस ज्वर से पीड़ित रोगी के शरीर पर 'मन्थरी', दानें या पिड़िकायें निकल आती हैं अत: इस कारण इसकी संज्ञा 'मंथर ज्वर' है। आचार्य गणनाथ सेन ने विकृति स्थल के आधार पर इसकी संज्ञा 'आन्त्रिक ज्वर' दी है, क्योंकि इसमें प्रधान रूप से आंतों (Intestines) में विकार होता है। मन्थर ज्वर में त्रिदोष प्रकोप होने से इसकी गणना सन्निपातज ज्वर में की जाती है। इस ज्वर में तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण प्रकट होते हैं। लक्षणों के आधार पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे Typhoid or Enteric fever कहा जाता है। इसका कारण Bacillus Typhosus or Salmonela Typhi नामक Bacteria है जो कि Gram negetive bacteria है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

संहिता ग्रंथों में मन्थर ज्वर नाम से इस ज्वर का वर्णन प्राप्त नहीं होता है परन्तु सन्निपात ज्वर से इसका लाक्षणिक साम्य है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित आंत्रिक ज्वर के आधार पर आचार्य गणनाथ सेन व आचार्य माधवकर ने मन्थर ज्वर का वर्णन किया है।

सामान्य निदान[1]

मन्थर ज्वर के सामान्य निदान निम्न हैं-

1. अतिमार्ग गमन।
2. अति उपवास।
3. दुर्गन्धिपूर्ण, दूषित स्थान में निवास।
4. दूषित मल इत्यादि से दूषित भक्ष्य एवं पेय पदार्थो का सेवन।

विशिष्ट निदान[1]

आगन्तुज कारण (Bacterial Infection) मंथर ज्वर का विशिष्ट निदान है। इसमें Bacillus Typhosus का संक्रमण होता है।

1. "बह्वध्व क्लान्ततनवस्तथाऽन्नस्नकर्षिता:। दुर्गन्धिपूर्णभूमौ वा नित्यमेव निवासिन:॥
आंत्रिककेत्यभिधानं चापरमस्यैव कथ्यते। सामस्य कारणं प्रोक्तं विशिष्टं तु निगद्यते॥"
(मा.नि. परि. मंथर ज्वर 1-4)

सम्प्राप्ति[1]

मल, मूत्र, स्वेद में स्थित दोषों के संसर्ग से दूषित भक्ष्य एवं पेय पदार्थों के सेवन से नानाविध संक्रमण के कारणों से उक्त जीवाणु विशेष रुप से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुँचते हैं तथा सर्वप्रथम आंत्र में प्रवेश कर आंत्र की भित्तियों में स्थित ग्रंथियों को शोथयुक्त कर रस, रक्त तथा दोषों को शीघ्र कुपित कर देते हैं, तत्पश्चात् छोटी आंत्र (Small Intestine) के अंतिम भागों को धीरे-धीरे क्षत युक्त कर देते हैं। समय पर चिकित्सा नहीं करने पर क्षत बढ़कर आंत्र में छेद कर देते हैं व उदरावणकला में शोथ उत्पन्न हो जाता है। अधिक क्षत बढ़ने पर कभी-कभी मल त्याग के समय रक्तस्राव होने लगता है। इस अवस्था को असाध्य समझना चाहिये।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन
+
जीवाणु संक्रमण
(Bacillus Typhosus Infection)
↓
जीवाणु का आंत्र में प्रवेश
↓
आंत्रस्थ ग्रंथियों में शोथ
↓
आंत्रस्थ रस, रक्त व दोषों का कुपित होना।
↓
आंत्र में क्षत होना
↓
समय व्यतीत होने पर-क्षत का बढ़कर छिद्र रूप धारण करना
(Perforation of Intestine)
↓
आंत्र में छिद्र
↓
रक्त स्राव
↓
मन्थर ज्वर की असाध्य स्थिति

1. "कीटाणवो बेसिलस टाइफोसस नामका:। दण्डाकारा: कृतावासा रक्ते मूत्राशये मले॥
स्वेदे पित्ताशये प्लीह्नि पिडिकास्वान्त्रिकव्रणे। जनयन्ति नृणां देहे ज्वरं प्रोक्तं विशेषत:॥"
(मा.नि.परि.)

3. "मलमूत्रस्वेदजात दोष संसर्ग दूषिते। भक्ष्यपेयादिभिद्रव्यैर्नाना संक्रमणकारणै:॥
लक्ष्येत यदि रक्तस्थस्त्रावो भिन्नान्नता तदा॥" (मा.नि.परि.मन्थर ज्वर 7/11)

सम्प्राप्ति घटक

दोष - त्रिदोष
दूष्य - रस, रक्त
स्त्रोतस् - अन्नवह, रस वह स्रोत
स्त्रोतोदुष्टि - संग
अधिष्ठान - आंत्र
स्वभाव - चिरकारी
साध्यासाध्यता - कृच्छसाध्य

पूर्वरूप[1]-मन्थर ज्वर के पूर्वरुप निम्न प्रकार विर्णित हैं-

1. शिरो व्यथा (Headache)
2. अरुचि (Anorexia)
3. बैचेनी (Restlessness)
4. तमः प्रवेश (Darkness in front of eyes)
5. अवसाद (Depression)
6. मलबद्धता (Constipation)

ये पूर्वरूप किसी रोगी में प्रकट होते हैं किसी में नहीं।

लक्षण[2]

पित्तोल्वण सन्निपात ज्वर के लक्षणों से मन्थर ज्वर के लक्षणों का साम्य है। सन्निपात ज्वर के लक्षणों को पूर्व में ज्वर प्रकरण में वर्णित किया जा चुका है। आचार्य गणनाथ सेन ने 'सिद्धान्त निदान' में मन्थर ज्वर का वर्णन दिया है जो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Typhoid fever को ध्यान में रखकर दिया गया है। यह लक्षण निम्न प्रकार हैं-

प्रथम सप्ताह (Ist Week) के लक्षण

1. ज्वराधिक्य (Hyperpyrexia [103° F - 104°F])
2. प्लीहावृद्धि (Splenomegaly)
3. जिह्वा मलिन एवं रक्तवर्ण (Tongue coated & reddish)
4. आध्मान (Flatulence)
5. विबंध (Constipation)

1. "शिरोव्यथा स्यादरुचिस्ततोऽरतितमोऽवसादौऽपि च बिड्बद्धता।
सप्ताहपर्यन्तमिति स्फुटास्फुटं ज्वरेऽग्ररुपं नियंत सदाऽऽत्रिके॥" (मा.नि.परि.)
2. "तदग्ररुपं च ततोऽष्मेऽहनि भवेदभिव्यक्तिमवाप्यलक्षणम्।
ज्वरोऽथ नित्यं क्रमशः प्रवर्द्धते सहापरैमन्थरिकऽत्र लक्षणैः॥
भवेत्तदा तु ज्वरजाप सीमा चतुर्थुतं पञ्चमुतं शतं वा॥
उपद्रवसमाधिक्यं सप्ताहितं सेविनः।" (मा.नि. परिशिष्ट)

6. ग्रीवा, उदर एवं वक्ष प्रदेश पर लाल दाने (Red spots on neck, abdomen & chest area)

द्वितीय सप्ताह (IInd week) के लक्षण

1. ज्वराधिक्य (Hyperpyrexia)
2. प्रलाप (Delirium)
3. तन्द्रा (Drowsiness)
4. कास (Cough)
5. जिह्वा कटी हुई, कर्कश एवं रक्त वर्ण युक्त (Furrowed tongue, dry with reddish coloration)
6. दुर्बलता (Weakness)
7. मुखशोष (Dryness of mouth)
8. अरति (Restlessness)
9. आध्मान (Flatulence)
10. तापमान बढ़ने पर भी नाड़ी गति सामान्य (Dicrotic pulse)
11. मल के साथ रक्तागमन (Blood mixed stool)

तृतीय सप्ताह में ज्वर शांत हो जाता है परन्तु अपथ्य सेवन करने वाले रोगी में उपद्रव उत्पन्न होने पर ज्वर पुनः उत्पन्न होकर असाध्य हो जाता है।

साध्यासाध्यता[1]

मन्थर ज्वर का रोगी यदि निरन्तर अपथ्य का सेवन करता है तब रोग असाध्य हो जाता है। निम्न स्थितियों में भी यह ज्वर असाध्य कहा जाता है-

1. अति रक्तस्राव (Excessive bleeding)
2. नाड़ी गति तीव्र (Increased pulse rate)
3. उदर में तीव्र शूल (Acute pain in abdomen)
4. प्रातः काल एवं रात्रि में तापमान बढ़ना (Tendency of raised body temperature during morning hours and night)
5. उदरच्छद पाक (Generalised peritonitis)
6. अति दौर्बल्य (Excessive weakness)
7. हस्तपाद कम्प (Tremors in hands & feet)
8. आंत्रगत रक्तस्राव (Intestinal bleeding)

1. "असाध्यतां प्राप्यं तदा तु याप्यतां लभेत् रोगी बहुयत्नतः कचिद्।
यदाऽतिसारोऽधिकतीव्रतापो विषाक्ता रक्तविनिर्गमश्च॥
शोथान्विताऽथोदरगा कला स्यात्तदाऽप्यसाध्यो गदितो गदोऽयम्।
बिना चिकित्साऽऽगाम सिद्ध पादचतुष्टयं स्यात्र तदा तु साध्यता॥" (मा.नि.परिशिष्ट)

इन लक्षणों में से किसी भी लक्षण के उत्पन्न होने पर मन्थर ज्वर असाध्य माना जाता है। उपर्युक्त लक्षण उपस्थित न हुये हों तो तथा रोगी पथ्य का सेवन करता हो तब मन्थर ज्वर साध्य होता है एवं तीसरे सप्ताह से ज्वर क्रमशः शांत होने लगता है।

उपद्रव

मंथर ज्वर से पीड़ित रोगी में निम्न उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं-

1. आंत्रक्षय (Intestinal tuberculosis)
2. विषाक्तता (Toxaemia)
3. रक्तस्राव (Haemorrhage)
4. उदरावरणकला शोथ (Peritonitis)
5. आंत्र विदारण (Intestinal perforation)
6. वृक्क शोथ (Nephritis)

चिकित्सा सूत्र-मन्थर ज्वर की चिकित्सा निम्न सिद्धान्तों के आधार पर करनी चाहिये-

1. सर्वप्रथम दोष पाचनार्थ लंघन करायें।
2. सन्निपात ज्वर में ज्वर का उग्र वेग होने पर प्रथम पित्त का उपचार पश्चात् क्रमशः कफ एवं वात का उपचार करने का निर्देश है।
3. लक्षणों के आधार पर मंथर ज्वर का साम्य सन्निपात ज्वर से किया जाता है अतः इसकी चिकित्सा कफ स्थान (आमाशय) के अनुसार अर्थात् कफ एवं आमदोष का पाचन करने के पश्चात् पित्त एवं वात का उपचार करके करना चाहिये[1]।
4. बिबंध होने की स्थिति में स्रंसन औषध का प्रयोग रोग एवं रोगी के बलानुसार करवाकर कोष्ठ शोधन करवाना चाहिये।
5. आंत्र प्रदाह शांत करने के लिये शीत, तिक्त एवं मधुर द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।
6. तृष्णा होने पर षडंगपानीय का प्रयोग प्रशस्त है।
7. मन्थर ज्वर की चिकित्सा में पथ्य का पालन कराना चाहिये। इनके साथ ही रोगी की पर्याप्त सेवा व परिचर्या की उचित व्यवस्था व Hygeine का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है।
8. पुष्टि कारक, बलप्रद, एवं सुपाच्य द्रव आहार द्रव्य का प्रयोग करना चाहिये।

1. "कफस्थानानुपूर्व्या तु सन्निपातं ज्वरं जयेत्।" (च.चि. 3)

मंथर ज्वर की चिकित्सा

1. **संशोधन चिकित्सा**-पूर्व में सन्निपात ज्वर की चिकित्सा में वर्णित उपाय करने चाहिये।
2. **संशमन चिकित्सा**-मंथर ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त संशमन योगों का वर्णन निम्नानुसार हैं-

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

	मात्रा	: 125-250 मि.ग्रा.
	अनुपान	: ऊष्णोदक/मधु
1.	सूत शेखर रस	: पूर्वोक्त
2.	प्रवाल पंचामृत	: प्रवाल, मुक्ता, शंख, शुक्ति एवं वराटिका
3.	चिन्तामणि चतुर्मुख रस	: शुद्ध पारद, गंधक, अभ्रक भस्म, वत्सनाभ, शुद्ध जायफल
4.	कर्पूर रस	: शुद्ध, हिंगुल, शुद्ध अफीम, मुस्तक, कर्पूर, जातीफल चूर्ण
5.	रामबाण रस	: शुद्ध पारद, शुद्ध वत्सनाभ, लंवग, गंधक, मरिच
6.	योगेन्द्र रस	: रस सिन्दूर, स्वर्णभस्म, कान्तलौह भस्म, अभ्रक भस्म
7.	बोल पर्पटी	: पारद, गंधक, बोल
8.	नवायस लौह	: त्रिफला, त्रिकटु, लौहभस्म

2. **वटी**

	मात्रा	: 250-500 मि.ग्रा.
	अनुपान	: ऊष्ण जल
1.	मधुरान्तक वटी	: मुक्ता पिष्टी, कस्तूरी, केशर, जायफल, जावित्री, लौंग
2.	सौभाग्य वटी	: पूर्वोक्त
3.	संशमनी वटी	: पूर्वोक्त

3. **चूर्ण**

	मात्रा	: 3-6 ग्राम
	अनुपान	: कोष्ण जल
1.	सितोपलादि चूर्ण	: पूर्वोक्त
2.	यवानी षाड़व चूर्ण	: अजवाइन, पिप्पली, पिप्पली मूल

3. ज्वरोक्त अन्य चूर्ण भी युक्ति पूर्वक मन्थर ज्वर की चिकित्सा हेतु प्रयोग किये जा सकते हैं।

4. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**

मात्रा	: 10 - 20 मि.लि.
अनुपान	: जल
1. खूबकलां फाण्ड	: खूबकलां
2. चन्दनादि क्वाथ	: ज्वरोक्त
3. मुस्तादि क्वाथ	: ज्वरोक्त
4. किरातादि क्वाथ	: ज्वरोक्त
5. चन्दन किरातादि क्वाथ	: रक्तचन्दन, यवासा, सौंठ
6. लोहासव	: लौहभस्म, त्रिफला, विडंग, मुनक्का
7. द्राक्षारिष्ट	: पूर्वोक्त।

6. **अन्य योग**

लौंग	: 7
जायफल	: 2 ग्राम
सोंठ	: 2 ग्राम
हरी एला	: 2
तुलसी	: 5 पत्र

सभी को 400 मि.लि. पानी में उबाल कर 50 मि.लि. शेष रहने पर मधु मिलाकर पान करायें।

आदर्श व्यवस्था पत्र

(1) प्रथम सप्ताह

1. प्रातः सांयम्

अभ्रक भस्म	: 250 मि.ग्रा.
मुक्ता पिष्टी	: 250 मि.ग्रा.
मधुरान्तक वटी	: 500 मि. ग्रा.
वृ.कस्तूरी भैरव रस	: 250 मि.ग्रा.
मधु से	1 × 4 मात्रा

2. भोजनोत्तर

खूबकलां क्वाथ	: 20 मि.लि.
समभाग जल से	1 × 2 मात्रा

(2) द्वितीय सप्ताह

1. प्रातः सांयम्

सर्वज्वरहर लौह	: 250 मि.ग्रा.
मुक्ताशुक्ति भस्म	: 250 मि.ग्रा.
प्रवाल पंचामृत	: 250 मि.ग्रा.
सूतशेखर	: 250 मि.ग्रा.
मधु से	1×2 मात्रा

2. भोजनोत्तर

सौभाग्य वटी	: 2/2/2, कोष्ण जल से

(3) तृतीय सप्ताह

1. प्रातः सांयम्

गुडुची सत्व	: 250 मि.ग्रा.
वसन्तमालिनी रस	: 250 मि.ग्रा.
पिप्पली चूर्ण	: 3 ग्राम
मधु से	1×2 मात्रा

2. भोजनोत्तर

संशमनी वटी	: 2×2 मात्रा, जल से

(4) चतुर्थ सप्ताह

1. प्रातः सांयम्

नवायस लौह	: 250 मि.ग्रा.
वसन्तमालती रस	: 125 मि.ग्रा.
सितोपलादि चूर्ण	: 2 ग्राम
मधु से	1×2 मात्रा

2. भोजनोत्तर

द्राक्षारिष्ट	: 10 मि.ली.
अमृतारिष्ट	: 10 मि.ली.
समभाग जल से	1×2 मात्रा

(5) प्रलाप की स्थिति

1. प्रातः सांयम्

योगेन्द्र रस	: 125 मि.ग्रा.
ब्राह्मी वटी	: 2 गोली
मुक्ताभस्म	: 250 मि.ग्रा.
मधु से	1×2 मात्रा

(6) अनिद्रा की स्थिति

1.		प्रातः सांयम्
	सर्पगन्धा घन वटी	: 2/2, कोष्ण जल से

(7) हृद दौर्बल्य की स्थिति

1.		प्रातः सांयम्
	विश्वेश्वर रस	: 250 मि.ग्रा.
	सिद्ध मकरध्वज	: 250 मि.ग्रा.
	सौभाग्य वटी	: 250 मि.ग्रा.
	मधु से	1×4 मात्रा

(8) अतिसार होने पर

1.		प्रातः सांयम्
	संजीवनी वटी	: 250 मि.ग्रा.
	आनन्द भैरव रस	: 250 मि.ग्रा.
	रामबाण रस	: 250 मि.ग्रा.
	बिल्व चूर्ण	: 2 ग्राम
	मधु से	1×3 मात्रा
2.	भोजनोत्तर	
	कुटजारिष्ट	: 20 मि.ली.
	समभाग जल से	1×2 मात्रा

(9) आंत्रगत रक्तस्राव होने पर

1.		प्रातः सांयम्
	रक्तपित्तकुलकण्डन रस	: 250 मि.ग्रा.
	बोलपर्पटी	: 250 मि.ग्रा.
	कर्पूर रस	: 125 मि.ग्रा.
	नागकेशर चूर्ण	: 2 ग्राम
	मधु से	1×3 मात्रा
2.	भोजनोत्तर	
	चन्दनादि क्वाथ	: 20 मि.ली.
	समभाग जल से	1×2 मात्रा

(10) ज्वरोत्तर दौर्बल्य

1.		प्रातः सांयम्
	नवायस लौह	: 250 मि.ग्रा.
	गुडुची सत्व	: 250 मि.ग्रा.
	सितोपलादि चूर्ण	: 2 ग्राम
	शतावरी चूर्ण	: 2 ग्राम
	मधु से	1×2 मात्रा
2.	यवानी षाडव चूर्ण	: 2 ग्राम
	गर्म जल से	1×2 मात्रा
3.	भोजनोत्तर	
	द्राक्षारिष्ट	: 20 मि.ली.
	समभाग जल से	1×2 मात्रा
4.	च्यवनप्राश अवलेह	: 20 ग्राम
	दूध से	1×2 मात्रा
5.	चन्दनादि या लाक्षादि तैल का अभ्यंग करें	

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
कूर्चिका, मौसमी, अनार, अंगूर, मुनक्का, गोदुग्ध, मुद्ग, यवमण्ड, लाजमण्ड, पुराण शालि, पेया, विलेपी, पटोल, लंवगोदक, षंडगपानीय आदि।	लंघन, विश्राम, वेगों को धारण न करना आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
गुरु, अभिष्यंदी, मसालेदार, तीक्ष्ण भोजन चाट-पकौड़ी, पीजा, वर्गर, समोसा, कचोरी, हलवा, मालपुआ आदि।	अध्यशन, व्यायाम, व्यवाय, श्रम, चिन्ता, प्रजागरण आदि।

Latest Developments
Typhoid Fever

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मंथर ज्वर को Typhoid fever या Enteric fever कहते हैं।

कारण—Salmonela Typhi or Bacillus typhosus नामक Bacteria

संचय काल (Incubation period)— 7-21 दिन

संचय स्थान

Bacteria रक्त के माध्यम से संचरित होकर क्षुद्रान्त्र (Small intestine) के लसीका ग्रंथियों (Payer's Patches) में संचित होकर रोगोत्पत्ति करते हैं।

लक्षण

पूर्व में वर्णित मंथर ज्वर के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय सप्ताह के लक्षण ही Typhoid fever के लक्षण हैं।

अवस्थायें

Typhoid fever में सर्वाधिक विकृति क्षुद्रान्त्र के अंतिम भाग में होती है। इस विकृति की चार अवस्थायें (Stages) हैं जिन्हें 4S कहा जाता है। प्रत्येक अवस्था एक सप्ताह की होती है-

प्रथम सप्ताह	Swelling (शोथ-कफाधिक्य)
द्वितीय सप्ताह	Sloughing (सड़न)
तृतीय सप्ताह	Supuration (व्रण-पित्ताधिक्य)
चतुर्थ सप्ताह	Scarring (रोपण)

Effects of Typhoid Fever

1. लसीका ग्रंथियों की वृद्धि (Enlargement of lymph glands)
2. यकृत-प्लीहा वृद्धि (Hepato-Splenomegaly)
3. पित्ताशय शोथ (Cholecystitis)
4. वृक्क शोथ (Nephritis)
5. रक्तभार मंदता (Low B.P.)
6. नाड़ी गति मंदता (Low pulse rate-Bradycardia)
7. श्वेत रक्त कण में कमी (Leucopaenia)
8. लिम्फोसाइट एवं पोलीमार्फ में वृद्धि (Lymphocytosis and Polymorphocytosis)

Differential Diagnosis

Pneumonia, Dengue fever, Malaria, Cerebro-Spinal fever, Tuberculosis, Relapsing fever, Para typhoid fever से Typhoid fever का सापेक्ष निदान किया जाना चाहिये।

Management of Typhoid fever : Principles

1. Bed rest until few days elapse after subsidence of fever.
2. Simple bland liquid, semi solid diet.
3. Maintain temperature with in normal range.
4. Adequate fluid & electrolyte balance to be maintained.
5. Avoidance of faecal-oral transmission by proper hand washing after defaecation.
6. To treat the cause by appropriate drug (Antibiotic) therapy.

4. दण्डक ज्वर

(DENGUE FEVER)

व्याधि परिचय

आयुर्वेद में दण्डक ज्वर का पृथक् वर्णन नहीं मिलता, परन्तु लक्षणों के आधार पर वातोल्वण सन्निपात ज्वर के अन्तर्गत इसका समावेश किया जा सकता है। इसमें रोगी दण्डे से मारने के समान पीड़ा महसूस करता है, अत: इसे 'दण्डक ज्वर' कहा है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे Dengue fever, Dendy fever or Break bone fever या हड्डी तोड़ बुखार कहते हैं। यह तीव्र (Acute) या आशुकारी एवं संक्रामक (Infectious) व्याधि है। इसमें ज्वर अचानक चढ़ता है एवं रोगी अत्यन्त दुर्बलता महसूस करता है।

संदर्भ ग्रंथ

संहिता ग्रंथों में दण्डक ज्वर का पृथकत: वर्णन नहीं है। आ. गणनाथ सेन एवं माधवकर ने इस व्याधि का वर्णन आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित लक्षणों के आधार पर किया है।

निदान

इस ज्वर का प्रमुख निदान एक विषाणु (Toga Virus) है जो इडिस इजिप्टी (Aedes Aegypti) नामक मच्छर के काटने से मानव शरीर में फैलता है।

संचय काल— इस Virus का Incubation period 5-7 दिन है।

सम्प्राप्ति

इस विषाणु का प्रभाव शरीर में रस, लसीका, यकृत, प्लीहा एवं लसीका ग्रंथियों पर पड़ता है तत्पश्चात् रोगोत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति घटक

दोष	त्रिदोष वात प्रधान
दूष्य	रस, लसीका, लसीकाग्रंथि
स्रोत.स्	रसवह, अन्नवह स्रोतस
अधिष्ठान	यकृत, प्लीहा
साध्यासाध्यता	कृच्छ्रसाध्य
स्वभाव	आशुकारी

पूर्वरूप[1]

आचार्य माधवकर ने दण्डक ज्वर के निम्न पूर्वरूप वर्णित किए हैं-

1. अंगमर्द (Bodyache)
2. क्लम (Tiredness without exertion)
3. अरुचि (Anorexia)
4. जी मचलाना (Nausea)
5. अवसाद (Depression)

लक्षण[2]

दण्डक ज्वर के निम्न लक्षण माधव निदान में वर्णित हैं-

1. ज्वर (मध्य निम्न प्रकार का) दूसरे-तीसरे दिन ज्वर कम, पुनः चढ़ता है (Saddle back fever)
2. हाथ, पैर, कटि, सिर एवं नेत्रों में तीव्र पीड़ा (Severe pain in limbs, back, head & eyes)
3. शरीर में जकड़ाहट (Stiffness in body)
4. अस्थियों में तीव्र पीड़ा (Severe pain in bones)
5. चलने में असमर्थता (Difficulty in walking)
6. गले में खराश (Sore throat)
7. वमन एवं हल्लास (Nausea & Vomiting)
8. शरीर पर दाने (Small boils over body)
9. नाड़ी मंद (Slow Pulse).
10. अति दौर्बल्य (Excessive weakness)
11. क्षुधानाश (Loss of Appetite)
12. 8वें दिन ज्वर का शमन

दण्डक ज्वर का प्रभाव (Effects of Dengue fever)

1. लसीका ग्रंथि वृद्धि (Enlargement of lymph glands)
2. श्वेत रक्त कणों में कमी (Leucopenia)
3. प्लेटलेट्स में कमी (Thrombocytopaenia)

साध्यासाध्यता

दण्डक ज्वर याप्य या कृच्छ्रसाध्य व्याधि है। बालक एवं वृद्ध, में यह अधिक कष्टकारी होती है। उपद्रव उत्पन्न हो जाने पर यह असाध्य होता है।

1 "यदामानवास्याङ्गमध्येऽङ्गमर्दः क्लमश्चारुचिर्दृश्यते देव योगात्।
अथोत्क्लेशसादौ तदा दण्डकाख्य-ज्वरस्याग्ररुपं जनैवेदितव्यम्॥" (मा.नि.परि.)
"अस्थ्नां सन्धिषु घोरा दण्डाहननजसमा पीड़ा। क्षिप्रोदयलयशाली समस्ततनुगोऽपि वीसर्पः॥
संचारी संधिशूलं शोथयुतं लक्ष्यते तत्र। ..... दारुण उदीरितो वैद्यैः॥"
(मा.नि.परि.)

चिकित्सा सिद्धान्त

(1) सन्निपात ज्वर का चिकित्सा सिद्धान्त ध्यान में रखते हुये दोषोल्वणता के आधार पर चिकित्सा करनी चाहिये।
(2) रोगी की प्रर्याप्त विश्राम कराना चाहिये एवं मच्छरों से बचाव करना चाहिये।
(3) ज्वरारम्भ होने पर ऊष्णोदक का पान 2-3 दिन तक करायें।
(4) मल शोधनार्थ विरेचन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।
(5) रोगी को लघु एवं सुपाच्य आहार देना चाहिये।

चिकित्सा

1. **संशोधन चिकित्सा**—मल शोधनार्थ मृदु विरेचन दे सकते हैं।
2. **संशमन चिकित्सा**—दण्डक ज्वर की संशमन चिकित्सा में निम्न योगों का प्रयोग लाभप्रद है—

1. **रस/भस्म/वटी/पिष्टी/चूर्ण**—ज्वरोक्त समस्त औषधियां दण्डक ज्वर की चिकित्सार्थ युक्तिपूर्वक प्रयोग की जा सकती हैं।

2. **क्वाथ**

मात्रा	: 20 मि.ली.
अनुपान	: जल
(i) गुडुच्यादि क्वाथ	: ज्वरोक्त
(ii) कुटकी व सुदर्शन चूर्ण का क्वाथ लाभप्रद है।	

3. **आसव/अरिष्ट/अवलेह/घृत**—ज्वरोक्त

आदर्श व्यवस्था पत्र

1. प्रातः सायम्

हिंगुलेश्वर रस	: 500 मि.ग्रा.
संजीवनी वटी	: 500 मि.ग्रा.
शुण्ठी चूर्ण	: 2 ग्राम
मधु से	1×3 मात्रा

तीव्र वेदना होने पर

1. प्रातः सायम्

बृहत् वात चिन्तामणि रस	: 120 मि.ग्रा.
गुडुची सत्व	: 500 मि.ग्रा.
मधु से	1×3 मात्रा

2. भोजनोत्तर

चन्द्रप्रभावटी	: 2 गोली×3 मात्रा, जल से

ज्वरोत्तर दौर्बल्य में

		प्रात: सायम्
1.	नवायस लौह	: 500 मि.ग्रा.
	शतावरी चूर्ण	: 2 ग्राम
	सितोपलादि चूर्ण	: 2 ग्राम
	मधु से	1×3 मात्रा
2.	भोजनोत्तर	
	आरोग्य वर्धनी वटी	: 2 गोली×3 मात्रा, जल से
	अश्वगंधारिष्ट	: 20 मि.ली.
	समभाग जल से	1×2 मात्रा
3.	रात्रि	
	हरीतकी चूर्ण	: 3 ग्राम
	कोष्ण जल से	1 मात्रा

दण्डक ज्वर में पथ्य एवं अपथ्य—ज्वरोक्त समस्त पथ्य एवं अपथ्य दण्डक ज्वर में भी पथ्य एवं अपथ्य हैं।

Latest Developments

Dengue fever

Management of Dengue fever : Principles

1. Dengue fever requires only symptomatic therapy.
2. Patient tend to deteriorate after becoming afebrile. Look out for restlessness, abdominal pain & any fall in haematocrit value, which should be monitored.
3. Close observatioin of patient for any haemorrhagic condition.
4. Antipyretics & mild sedatives should be given.
5. Oral fluids & electrolytes should be maintained.
6. Rapid sponging.
7. Complete bed rest during acute stage.
8. In case of any haemorrhagic condition patient's hospitalisation is must.

5. श्वसनक ज्वर

(PNEUMONIA)

व्याधि परिचय

यह हीन पित्त-मध्यवात एवं कफोल्वण सन्निपात ज्वर का विशिष्ट प्रकार है। इसमें मुख्य विकृति फुफ्फुस (Lungs) में होती है। यह रोग सब अवस्थाओं में हो सकता है परन्तु 15-40 वर्ष की आयु में सर्वाधिक होता है।

जो रोगी लाक्षारस के समान रक्त मिश्रित कफ निरन्तर थूकता हो, ज्वर के साथ-साथ श्वास से युक्त हो, जिसके फुफ्फुस का कोई भाग घन (Solid) हो, उसे 'श्वसनक ज्वर' युक्त समझना चाहिये[1]।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में इसे Pneumonia कहते हैं। इसका कारण Pneumococus नामक Gram possitive bacteria है। इसे Micrococus lanceolatus भी कहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

संहिता ग्रंथों में 'श्वसनक ज्वर' नाम से इस ज्वर का वर्णन नहीं है। आचार्य गणनाथ सेन एवं माधवकर ने इसका वर्णन आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Pneumonia के आधार पर किया है। भैषज्य रत्नावली में 'श्वसनक ज्वर' नाम से एक विशिष्ट ज्वर का वर्णन है। इसके लक्षण 'कर्कटक सन्निपात' ज्वर से मिलते हैं।

निदान[2]

आचार्य माधवकर ने श्वसनक ज्वर के निम्न निदान वर्णित किये हैं-

अन्न वस्त्र से रहित, दुर्बल, थके हुये, अजीर्ण रोगी, बहुत मद्यपान करने वाले, वृक्क (Kidney) या यकृत (Liver) में शोथ युक्त व्यक्ति, मिथ्या आहार-विहार करने वाले, शीत तथा वर्षा से पीड़ित होने से या श्वसनक ज्वर के रोगी के संसर्ग होने से यह ज्वर उत्पन्न होता है। इसका आक्रमण प्राय: सभी ऋतुओं में होता है परन्तु शिशिर, बसन्त एवं वर्षा ऋतु में विशेष रूप से देखा जाता है।

1. "लाक्षारसं प्रतिमरक्तयुतं कफं य: ष्ठीवेज्जवरेण बहुश: श्वसेनन युक्त:।
स्त्यानो भवदपि च कश्चनं फुफ्फुसीयो भागस्तु यस्य कथित श्वसनज्वरी स:॥" (मा.नि.परि.)
2. "ये चान्नवस्त्ररहिताअपिदुर्बला: स्यु: शान्ताश्च दु:खितहदोमनुजास्तु दीना:।
..... निर्दिष्टं निदानं किलास्य॥" (मा.नि.परि.)

सम्प्राप्ति[1]

जब रोगी के मुख, गले तथा श्वास मार्ग से इस रोग के उत्पादक जीवाणु (Pneumococci) फुफ्फुस के अन्त:कोष्ठ में तथा वायु की सूक्ष्म प्रणालियों में प्राप्त होते हैं तब विषैले प्रभाव को उत्पन्न करके रक्त लसीका को दूषित कर गाढ़ा बना देते हैं तब रोगी के बायें एवं दाहिने, दोनों फुफ्फुस में शोथ उत्पन्न होता है तथा श्वासकृच्छ्रता एवं ज्वर के साथ यह रोग उत्पन्न होता है। श्वास मार्ग में प्रविष्ट जीवाणुओं के विष प्रभाव से कुपित वातादि दोष फुफ्फुस को क्षत-विक्षत कर नष्ट करते हैं, परिणाम स्वरूप 'श्वसनक' नामक सन्निपात ज्वर उत्पन्न होता है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन
↓
जीवाणु संक्रमण (Bacillus Pneumoniae)
↓
फुफ्फुस के अंत:कोष्ठ में प्रवेश
↓
श्वास प्रणालियों तक संचार
↓
जीवाणु के विषैले प्रभाव (Toxic effect) से रक्त का गाढ़ा होना
↓
फुफ्फुस में शोथ
↓
मुख्यत: फुफ्फुस के अधोभाग (Lower Lobe) में शोथ होना
↓
फुफ्फुस में रक्ताधिक्य (Congestion)
↓
श्वसनक ज्वर

सम्प्राप्ति घटक

दोष	त्रिदोष (कफ प्रधान)
दूष्य	रस, रक्त,
स्रोतस्	प्राणवह स्रोतस
स्रोतोदुष्टि	संग

1. "आस्यतोगलतोऽणवोऽस्य श्वासपथतो रोगदा:, फुफ्फुसस्यान्त: प्रकोष्ठेषूपयाता वै सदा।
वात प्रणालीष्वपि विषस्य प्रभावामापाद्य हि, तदा शोणिते विदधति घनत्वं सर्वदा ते दु:खदः॥
..... भिषग्भि नियतं कथ्यते॥" (मा.नि.परि.)

अधिष्ठान	फुफ्फुस (Lungs)
स्वभाव	आशुकारी
साध्यासाध्यता	याप्य

भेद[1]—श्वसनक ज्वर के दो भेद हैं-

1. खण्डीय श्वसनक ज्वर (Lobar pneumonia)
2. प्रणालिक श्वसनक ज्वर (Broncho pneumonia)

जब वायु कोषों में शोथ हो तब इसे 'खण्डीय श्वसनक ज्वर' कहते हैं तथा जब वायु प्रणालियों में शोथ हो तो तब उसे 'प्रणालिक श्वसनक ज्वर' कहते हैं।

पूर्वरूप[2]—श्वसनक ज्वर की पूर्वरूपावस्था में निम्न लक्षण मिलते हैं-

1. पार्श्वशूल (Pain in ribs)
2. श्वास (Dyspnoea)
3. अवसाद (Depression)
4. कास (Cough)
5. कम्प (Tremors)

लक्षण[3]—श्वसनक ज्वर के निम्न लक्षण माधव निदान में वर्णित हैं-

1. सहसा शीत लगकर तीव्र ज्वर (Fever with chills)
2. अतितृषा (Excessive thirst)
3. अरुचि (Anorexia)
4. श्वास (Dyspnoea)
5. पार्श्वशूल (Pain in ribs)
6. कास (Cough)
7. रक्तष्ठीवन (Haemoptysis)
8. श्वासगति तीव्र (Increased rate of respiration)
9. गालों पर रक्तिमा (Redness over cheeks)
10. माथे पर पसीना (Sweating on fore head)
11. दुर्बलता (Weakness)
12. कण्ठ कूजन (Wheezing)
13. शरीर पर सरसों के बराबर पिड़िकायें (Small boils over body)

1. "द्विविध: श्वसनकसंज्ञो गदितो बैद्येर्ज्वरस्तत्र।
खण्डीयस्तु प्रथमस्तथा द्वितीय: प्रणालिक प्रोक्त:॥" (मा.नि.परिशिष्ट)
2. "प्रायोज्वरे श्वसनके ननु पार्श्वपीड़ाश्वासोऽवसादकसंन अपि कम्पनं च।
संद्रश्यमानमितिलक्षणमग्ररूपं सर्वे गदन्ति भिषजो गदरुपविज्ञा:॥" (मा.नि.परि.)
3. "ज्वरोऽतितीव्र: सहसैव शीतेन संप्रवर्तेतं ततोऽतितृष्णा।
अन्नारुचि: श्वासससमृद्धिरेधेत पार्श्वशूलं कसंन कृमेण॥" (मा.नि.परि.)

14. जिह्वा मलिन (Tongue coated)
15. नाड़ी गति वृद्धि (Increased pulse rate)
16. अवसाद (Depression)
17. प्रलाप (Delirium)

धातु-मल पाकानुसार 7वें, 8वें, 9वें या 10वें दिन सहसा ज्वर उतर जाता है। उस समय रोगी के शरीर से अत्यधिक स्वेद निकलता है जिससे योग्य चिकित्सा होने पर ही रोगी बच पाता है, अन्यथा मर जाता है।

साध्यासाध्यता[1]

(1) दैव योग से एक फुफ्फुस के दूषित होने पर तथा ज्वर की मन्दता, बल की स्थिरता तथा चतुष्पाद की उत्तमता रहने पर रोग सुखसाध्य होता है।

(2) यदि स्वेदाधिक्य हो एवं ज्वर अधिक तीव्र हो, रोगी वृद्ध व अत्यंत क्षीण हो तब उपयुक्त चिकित्सा करने पर भी कदाचित् देवयोग से पुण्यात्मा बच जाता है अन्यथा प्रायः करके मर ही जाता है।

उपद्रव[2]

श्वसनक ज्वर के निम्न उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं—

1. निद्रानाश (Loss of sleep)
2. प्रलाप (Delirium)
3. कम्प (Tremors)
4. तीव्रताप (Hyperpyrexia)
5. संज्ञानाश (Loss of sensations)
6. हृद कार्यावरोध (Heart attack)

चिकित्सा सिद्धान्त

श्वसनक ज्वर की चिकित्सा निम्न सिद्धान्तों के आधार पर करनी चाहिये-

1. दोनों प्रकार के श्वसन ज्वरों में रोगी की वय एवं अवस्था भेद से औषध, पथ्य एवं अनुपान का निर्धारण युक्तिपूर्वक करना चाहिये।
2. रोग के निदानों का परित्याग करना चाहिये।
3. रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये तथा वातावरण स्वच्छ एवं हवादार होना चाहिये।
4. जिस पार्श्व में विकृति हो उस ओर करवट लेकर नहीं सोना चाहिये एवं उस भाग को दबाव से बचाना चाहिये।

1. "एकस्मिन्नधिफुफ्फुसं विधिवशाद् दुष्टे च मन्दे ज्वरे।
देहे साधुतया स्थिते ननु बले पादत्रयेऽत्युत्तम॥
.....।
प्रायेणान्तकमन्दिरान्तिकगति प्राप्नोति चात्रान्यथा॥" (मा.नि.परिशिष्ट)
2. "निद्रानाशोऽपि प्रलापोऽथकम्पस्तीव्रस्तापोऽत्यर्थमेवातुरस्य।
संज्ञाहानिः कार्यरोधो हृदोऽस्मिञ् ज्ञेया एते सर्वदोपद्रवा वै॥" (मा.नि.परि.)

5. अतिशीत लगने की स्थिति में रोगी को पर्याप्त वस्त्र ओढ़ने को देना चाहिये एवं कमरे को गर्म करने का प्रयास करना चाहिये।
6. बालकों में संक्रमण को यथाशीघ्र रोकना चाहिये अन्यथा उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।
7. उरः प्रदेश पर ऊष्ण सेक तथा लघु एवं सुपाच्य आहार देना चाहिये।
8. रोगी को प्रारंभ में लंघन कराना चाहिये।

चिकित्सा

श्वसनक ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त संशमन योगों का वर्णन निम्न अनुसार है—

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	: 125-250 मि.ग्रा.
अनुपान	: मधु/कोष्ण जल
(i) त्रिभुवन कीर्ति रस	: ज्वरोक्त
(ii) लक्ष्मी विलास रस	: ज्वरोक्त
(iii) गोदन्ती भस्म	: ज्वरोक्त
(iv) श्रृंग भस्म	: ज्वरोक्त
(v) श्वास कुठार रस	: ज्वरोक्त
(vi) श्रृगांराभ्र रस	: ज्वरोक्त
(vii) अचिन्त्य शक्ति रस	: ज्वरोक्त

2. **वटी/चूर्ण (वटी)**

मात्रा	: 250-500 मि.ग्रा.
चूर्ण	: 3-6 ग्राम
अनुपान	: जल
(i) लवंगादि वटी	: लवंग, मरिच, विभीतक, बबूल-चूषणार्थ
(ii) व्योषादि वटी	: त्रिकटु, मिश्री-चूषणार्थ
(iii) मरिच्यादि वटी	: मिश्री, कालीमिर्च-चूषणार्थ
(iv) सितोपलादि चूर्ण	: ज्वरोक्त
(v) तालिसादि चूर्ण	: ज्वरोक्त
(vi) विभीतक चूर्ण	: विभीतक
(vii) मधुयष्ठी चूर्ण	: मुलैठी /

3. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**

मात्रा	: 10-20 मि.ली.
अनुपान	: जल
(i) गोजिह्वादि क्वाथ	: पूर्वोक्त
(ii) भाङ्गर्यादि क्वाथ	: भारंगी
(iii) अष्टादशांग क्वाथ	: पूर्वोक्त
(iv) दशमूल क्वाथ	: पूर्वोक्त

4. अवलेह
   मात्रा : 20 ग्राम
   अनुपान : दुग्ध
(i) वासावलेह : वासा, कण्टकारी, त्रिफला
(ii) कण्टकार्यावलेह : कण्टकारी, मुलैठी
(iii) च्यवनप्राश : आंवला, जीवनीय गण
(iv) व्याघ्रीहरीतकी : कासोक्त

इन योगों के अतिरिक्त ज्वर चिकित्सा में वर्णित योगों का प्रयोग युक्तिपूर्वक श्वसनक ज्वर की चिकित्सा में किया जा सकता है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

(1) तीव्र ज्वर में

1. प्रातः सायम्
   महालक्ष्मीविलास रस : 120 मि.ग्रा.
   श्रृंगाराभ्र रस : 250 मि.ग्रा.
   गोदन्ती : 250 मि.ग्रा.
   शु.टंकण : 250 ग्राम
   मधु से 1×2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   गोजिह्वादि क्वाथ : 20 मि.ली.
   समभाग जल से 1×3 मात्रा

(2) श्वास कृच्छ्रता होने पर

1. प्रातः सायम्
   श्वासकुठार रस : 250 मि.ग्रा.
   श्रृंगाराभ्र रस : 250 मि.ग्रा
   शु.टंकण : 500 ग्राम
   श्रृग्यांदि चूर्ण : 3 ग्राम
   मधु से 1×2 मात्रा
2. चूषणार्थ
   मरिच्यादि वटी : 4 गोली दिनभर में चूसें।

(3) कफाधिक्य होने पर

1. प्रातः सांयम्
   तालिसादी चूर्ण : 3 ग्राम
   त्रिभुवनकीर्ति रस : 250 मि.ग्रा.
   यवक्षार : 250 मि.ग्रा.
   शु.टंकण : 250 मि.ग्रा.
   मधु से 1×2 मात्रा

2. चूषणार्थ
   व्योषादि वटी : 4 गोली दिनभर में चूसें।

(4) रक्तष्ठीवन होने पर

1. प्रातः सायम्
   रक्त पित्तान्तक योग : 250 मि.ग्रा.
   स्वर्ण गैरिक : 250 मि.ग्रा.
   प्रवाल पिष्टी : 250 मि.ग्रा.
   मधु से 1×2 मात्रा

(5) ज्वरोत्तर दौर्बल्य में

1. प्रातः सायम्
   स्वर्ण बसन्त मालती रस : 120 मि.ग्रा.
   अभ्रक भस्म : 250 मि.ग्रा.
   प्रवाल पंचामृत : 250 मि.ग्रा.
   सप्तामृत लौह : 250 मि.ग्रा.
   मधु से 1×2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   द्राक्षासव : 20 मि.ली.
   समभाग जल से 1×2 मात्रा
3. वासावलेह : 20 ग्राम
   दूध से 1×2 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
मुद्ग, मण्ड, पेया, विलेपी, गोदुग्ध, बकरी का दूध, परवल, करेला, सुखोष्ण जल, पपीता, मनुक्का, किशमिश, अंगूर, अनार, मौसमी, गेहूं, यव आदि।	विश्राम, वेग धारण न करना, हवादार, स्वच्छ वातावरण में आराम करना आदि।

अपथ्य

ज्वरोक्त समस्त अपथ्य श्वसनक ज्वर में भी अपथ्य हैं।

Latest Developments

Pneumonia

आयुर्वेद में वर्णित श्वसनक ज्वर का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Pneumonia से सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है।

Pneumonia is an inflammatory response of lung parenchyma to a variety of infective as well as non infective agents.

Types—Pneumonia के दो प्रकार होते हैं—

1. **Lobar pneumonia**
   - (i) Apical
   - (ii) Creeping
   - (iii) Central
   - (iv) Double
   - (v) Massive
2. **Broncho-Pneumonia**
   - (i) Primary
   - (ii) Secondary

Symptoms

1. Fever
2. Rigors
3. Cough
4. Purulent Sputum
5. Signs of consolidation of chest
6. Leucocytosis
7. Herpes Labialis

Management of Pneumonia : Principles

1. Bed rest, adequate nutrition and hydration should be maintained.
2. Encourage coughing & deep breathing exercises to clear secretions.
3. Appropriate antibiotic therapy.
4. Avoid smoking.

6. श्लैष्मिक ज्वर (INFLUENZA)

व्याधि परिचय

श्लैष्मिक या वातश्लैष्मिक ज्वर एक विषाणु (Virus)जन्य रोग है। आयुर्वेद में वातश्लैष्मिक ज्वर को त्रिदोषज माना है। इसमें कफ जन्य उपद्रव उत्पन्न होते हैं एवं वात की प्रधानता होती है। यह एक संक्रामक रोग है। प्रथम आगन्तुज रूप में उत्पन्न होता है पश्चात् दोषों का अनुबंध होता है। वात एवं श्लेष्मा की अधिकता होने से इसका नाम 'वात श्लैष्मिक ज्वर' पड़ा है।

भेल संहिता में इसका वर्णन 'सामान्य प्रतिश्याय' नाम से जनपदोध्वसंक रोगों में किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ

चरक संहिता में ज्वर के प्रकारों में द्वन्द्वज ज्वर में इसका वर्णन है। पृथक् रूप से इसका वर्णन संहिताओं में उपलब्ध नहीं है। माधव निदान व सिद्धान्त निदान[1] में इसका वर्णन मिलता है।

निदान[2]

इस रोग का प्रमुख निदान Influenza A & B या Haemophilus Influenza virus A & B हैं।

इसका संक्रमण वायु द्वारा होता है तथा बसन्त ऋतु में इस रोग का आक्रमण सर्वाधिक होता है। इसके Bacteria का संचयकाल (Incubation Period) 3-4 दिन होता है।

सम्प्राप्ति[3]

इस रोग के जीवाणु हवा से फैलकर श्वासमार्ग से, कभी-कभी भोजनादि के साथ अन्नमार्ग से एवं कभी-कभी वस्त्र-माला आदि के द्वारा मनुष्यों को आक्रान्त करते हैं तथा

---

1. "प्रदुषन्तीह यत् प्रायः श्लेष्मजोपद्रवा भृशम्।
   क्वचिज्जनपदोध्वंसो ज्वरोऽसौ श्लेष्मक स्मृतः॥" (सि.नि.पू.ख.)
2. "वायुवाहित जीवाणु विषं युगपदञ्जसा। लोकेषु प्रसृतं प्रायः श्वासमार्गेण तं ज्वरम्॥
   विदधाति क्वचित् वाऽथ भुक्तमार्गेण संक्रमः। जनाञ्जने च सङ्क्रान्ति श्वसनादिनिमित्ततः॥"
   (सि.नि.पू.ख.)
3. "यदा श्वासमार्गेण कीटाणवोऽस्य प्रवेश प्रकुर्युस्तदा ते गलं च।
   प्रणाली तु वायोः परं दूषयन्तो व्रजेयुर्ध्रुवं फुफ्फुसौ सर्वदैवः॥
   ..... ससंप्राप्ति चेत्थं सुवैधावदन्ति॥" (मा.नि.परि.)

गले एवं श्वास प्रणाली को अत्यन्त दूषित करते हुए फुफ्फुस में तथा अन्नमार्ग में पहुंचकर विकृति उत्पन्न करते हैं तथा कभी-कभी समस्त धातुओं को विषाक्त करके मनुष्यों को मार डालते हैं।

सम्प्राप्ति घटक

दोष	त्रिदोष (कफ-वात प्रधान)
दूष्य	रस, रक्त
स्रोतस्	प्राणवह, अन्नवह
स्रोतोदुष्टि	संग
अधिष्ठान	फुफ्फुस (Lungs)
स्वभाव	आशुकारी
साध्यासाध्यता	याप्य

भेद[1]

आचार्य माधवकर ने श्लैष्मिक ज्वर के चार भेद वर्णित किए हैं-

1. साधारण श्लैष्मिक ज्वर
2. श्वसनक श्लैष्मिक ज्वर
3. आन्त्रिक श्लैष्मिक ज्वर
4. वातिक श्लैष्मिक ज्वर

भेदानुसार श्लेष्मिक ज्वर के लक्षण

श्लेष्मिक ज्वर के विभिन्न भेदों के लक्षण निम्नानुसार वर्णित हैं—

1. साधारण श्लैष्मिक ज्वर के लक्षण[2]

1. शिरःशूल (Headache)
2. अंगमर्द (Bodyache)
3. कटि एवं पृष्ठ शूल (Lumbago & backache)
4. प्रतिश्याय (जुकाम) (Cold)
5. अवसाद (Depression)
6. ज्वर (Fever)
7. गलग्रह (Neck stiffness)

1. "साधारणश्वसनकान्त्रिकवातिकाख्यभेदाच्चतुर्विध उदीरित एष रोगः॥" (मा.नि.परि.)
2. "शिरः शूलमङ्गेषु मर्दोऽथकम्पः कटीपृष्टवक्षःस्थलेऽत्युग्रपीड़ा।
प्रतिश्यायशैत्यावसादज्वराश्च गलैकग्रहोऽल्पैर्दिनेर्भूरि काश्यम्॥
बलस्यापि हानिर्भृशं नाडिकाया गतेर्नातिचाञ्चल्यमाभाति चात्र।
अभिज्ञभिषविभर्यथैवोपदिष्टं तथैवात्र हद्यैः स्वपद्यैः प्रदिष्टम्॥" (मा.नि.परि.)

7. अत्यंत कृशता (Excessive weakness)
8. बलहानि (Loss of strength)
9. जिह्वा रक्तवर्ण (Reddish tongue)
10. नाड़ी गति में तीव्रता का अभाव (Low intensity/slow pulse)

2. श्वसनक श्लैष्मिक ज्वर[1]

उपरोक्त समस्त लक्षणों के साथ निम्न लक्षण भी श्वसनक श्लैष्मिक ज्वर में मिलते हैं—

1. तीव्रकास (Severe Cough)
2. रक्तष्ठीवन (Haemoptysis)
3. तीव्र श्वास (Severe Dyspnoea)
4. प्रलाप (Delirium)
5. शरीर का वर्ण रक्त होना (Reddish body Complexion)

3. आंत्रिक श्लैष्मिक ज्वर के लक्षण[2]

1. वमन (Vomiting)
2. अतिसार (Diarrhoea)
3. वमन एवं अतिसार (Vomiting & Diarrhoea)
4. उत्क्लेश (Nausea)
5. उदर शूल (Pain in abdomen)
6. कामला (Jaundice)

4. वातिक श्लैष्मिक ज्वर के लक्षण[3]

1. प्रतिश्याय (Cold)
2. कास (Cough)
3. ज्वर (Fever)
4. क्षीणता (Weakness)
5. प्रलाप (Deliriun)
6. मन की अस्थिरता (Unstability of mind)
7. निद्रानाश (Loss of sleep)
8. कभी-कभी पक्षाघात (Occasionally paralysis)

1. "निष्ठीवनं कफविमिश्रितशोणितस्य श्वासप्रलापबहुशोणितवर्णताश्च।
दशेयंज्वरस्यास्यविश्वतवैद्यैः समस्ते भृशं दारुणो दारितोऽपि॥" (मा.नि.परि.)
2. "भवेदुद्भवोऽथान्त्रिकाख्यंप्रभेदे वमेर्वाऽतिसारस्य किंवात द्वयोश्च।
तथोत्क्लेशशूलामयौ कामलाऽपि क्वचिन्नूनमेवोद्भवेयु विशिष्टा॥" (मा.नि.परि.)
3. "अथो वातिकाख्यप्रभेदविशेषात् प्रतिश्यायकासज्वरक्षीणताश्च।
प्रलापो मनोऽस्थैर्यनिद्राविनाशो क्वचित् पक्षघातः प्रजायेत् दैवात्॥" (मा.नि.परि.)

श्लैष्मिक ज्वर के उपद्रव[1]

आचार्य माधवकर ने श्लैष्मिक ज्वर के निम्न उपद्रव वर्णित किए हैं—

1. पक्षाघात (Paralysis)
2. हृदयावसाद (Cardiac failure)
3. रोग का पुन: पुन: आक्रमण (Relapsing fever)
4. फुफ्फुस में प्रदाह (Pneumonia)

चिकित्सा सिद्धान्त

श्लेष्मिक ज्वर के चिकित्सा सिद्धान्त पूर्व में वर्णित वात-श्लेष्मिक ज्वर के चिकित्सा सिद्धान्त के समान ही हैं, उसे वहीं पर देखें।

चिकित्सा

श्लेष्मिक ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त संशमन योग ज्वर चिकित्सा में प्रयुक्त संशमन योगों के समान ही हैं। इनका युक्तिपूर्वक वात-श्लेष्मिक ज्वर की चिकित्सा में प्रयोग करना चाहिये।

आदर्श व्यवस्था पत्र

1.		प्रात: सायम्
	त्रिभुवन कीर्ति रस	: 250 मि.ग्रा.
	महालक्ष्मी विलास रस	: 120 मि.ग्रा.
	श्रृंग भस्म	: 250 मि.ग्रा.
	संजीवनी वटी	: 500 मि.ग्रा.
	शु.टंकण	: 250 मि.ग्रा.
	मधु से	1×2 मात्रा
2.	भोजनोत्तर	
	ब्राह्मी वटी	: 2 गोली×2 मात्रा, जल से
	गोजिह्वादि क्वाथ	: 20 मि.ली.
	जल से	1×2 मात्रा
3.	द्राक्षावलेह	: 20 ग्राम
	दूध से	1×2 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

ज्वरोक्त समस्त पथ्य एवं अपथ्य श्लेष्मिक या वात-श्लेष्मिक ज्वर में भी पथ्य एवं अपथ्य हैं।

---

1. "पक्षाभिघातो हृदयावसाद: पुन: पुन:श्चाक्रमणं गदस्य।
तथा प्रदाहो ननु फुफ्फुसे र्स्यु ज्ञेया इमे श्लेष्मजा उपद्रवा: ॥" (मा.नि.परि.)

Latest Developments
Influenza

आधुनिक मतानुसार वात-श्लेष्मिक ज्वर को Influenza कह सकते हैं। इसका कारण Haemophilus Influenzae A & B Virus हैं। यह एक Infectious disease है।

Symptoms

1. तीव्र ज्वर (Hyperpyrexia 104°F-105°F)
2. नाड़ी गति तीव्र (Increased pulse rate)
3. मस्तिष्क में भारीपन (Heaviness in head)
4. प्रतिश्याय एवं शिर:शूल (Cold & headache)
5. अंगमर्द (Bodyache)
6. क्षवथु (Sneezing)
7. नासिका में उग्रता (Nasal irritation)
8. नेत्रों में लालिमा (Redness in eyes)
9. गले में वेदना (Pain in throat)
10. स्वरभेद (Hoarseness of voice)
11. श्वासकृच्छता (Dyspnoea)

Management of Influenza : Principles

1. Symptomatic treatment.
2. Bed rest & adequate hydration.
3. Appropriate antibiotics.
4. Proper hygenic care of patient is must.

7. ग्रंथिक ज्वर
(PLAGUE)

व्याधि परिचय

ग्रीवा, कक्षा, वंक्षण आदि प्रदेश में स्थित लसीका ग्रंथियों में शोथ तथा तीव्र पीड़ा युक्त दर्श को विध्वंस करने वाले घोर ज्वर को ग्रंथिक ज्वर कहते हैं। इसका मूल कारण चूहों पर रहने वाला पिस्सू है जो Pasteurella Pestis नामक Bacteria का वाहक है। इस पिस्सू के मनुष्य को काटने से इसके द्वारा ये जीवाणु मनुष्य शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

यह रोग शीघ्र फैलने वाला व मारक होता है।

संदर्भ ग्रंथ

संहिता ग्रंथों में इसका वर्णन नहीं मिलता, परन्तु माधव निदान व सिद्धान्त निदान में इसका वर्णन उपलब्ध है।

निदान[1]

ग्रंथिक ज्वर का मुख्य कारण Pasteurella Pestis नामक बेक्टीरिया है जो चूहों पर रहने वाले पिस्सू पर पाया जाता है।

सम्प्राप्ति[2]

पिस्सू के काटने से रोगोत्पादक जीवाणु शरीर में लसीका में प्रविष्ट होकर संचार कर लसीका ग्रंथियों में पहुंचते हैं और शोथ उत्पन्न करते हैं। परिणाम स्वरूप लसीका ग्रंथियों की वृद्धि हो जाती है। जीवाणु जन्य विष (Bacterial toxins) के प्रभाव से तीव्र ज्वर उत्पन्न होता है।

सम्प्राप्ति घटक

दोष	त्रिदोष
दूष्य	रस, रक्त, लसीका
स्रोतस्	रसवह, रक्तवह

1. "भूम्यारोगार्त्तांखुभी रोगयुक्तस्थाने श्वासोच्छ्वासत: स्पर्शतोऽपि।
दण्डाकारास्तस्य कीटाणवो वै मूलं प्रोक्तं मूषकोत्था भिषग्भि: ॥"
2. "यदा मूषकस्थायिकीट: कथंच्चिन्नरं संदशत्यत्र दशात्तदानीम्।
विनि:सृत्य कीटाणवस्तल्लसीकावहासु प्रकुर्वन्ति संचारमेव॥
यदा ते रसतो यान्ति तद्ग्रंथिमध्ये तदा क्षोभमायान्ति तद्ग्रंथयोऽपि।" (मा.नि.परि.)

स्रोतोदृष्टि	संग
अधिष्ठान	लसीका ग्रंथि
स्वभाव	आशुकारी
साध्यासाध्यता	याप्य/असाध्य

भेद[1]

ग्रंथिक ज्वर के तीन भेद माधव निदान में वर्णित हैं-

1. ग्रंथिक (Bubonic)
2. कीट रक्तज (Septicaemic)
3. फुफ्फुस प्रदाही (Pneumonic)

पूर्वरूप[2]

ज्वर के सामान्य लक्षणों के अतिरिक्त ग्रंथिक ज्वर में निम्न पूर्वरूप उत्पन्न हो सकते हैं-

1. शिर:शूल (Headache)
2. शैथिल्य (Looseness of body)
3. अवसाद (Depression)
4. मानसिक दीनता (Mental fatigue)
5. ज्वर (Fever)
6. उत्क्लेश (Nausea)
7. अन्न में अरुचि (Anorexia)

लक्षण

भेदानुसार ग्रंथिक ज्वर के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन निम्न प्रकार है-

1. **ग्रंथिक ज्वर का लक्षण**[3]

(1) तीव्र ज्वर (Hyperpyrexia)
(2) शिर:शूल (Headache)
(3) अरति (Restlessness)
(4) भ्रम (Vertigo)
(5) उत्क्लेश (Nausea)

1. "तद्भेदास्तु ग्रंथिक: कीटरक्त: संदृश्यन्ते फुफ्फुसस्य प्रदाही।" (मा.नि.परि.)
2. "व्यथाशीर्ष्णि शैथिल्यमङ्गेषु सादो मनोदैन्यमुत्क्लेशभक्तारुची च।
ज्वरोक्तं च सामान्यं पूर्वरूपं भवेद् ग्रंथिकाख्ये ज्वरोऽदोग्ररुपम्॥" (मा.नि.परि.)
3. "तीव्र ज्वरो भवति पूर्वमिहक्कचिद्वामन्द: शिरोरुगरतीवमनं भ्रमश्च।
उत्क्लेशगात्रशिथिलत्वतृषाप्रलापा उन्मादमोहधमनीद्रुतगामिताश्च॥
.....।
इदं ग्रंथिकाख्यज्वरस्याद्यभेद स्वरूपं यथावद् भिषग्भि: प्रदिष्टम्॥" (मा.नि.परि.)

(6) शरीर शैथिल्य (Looseness of body)
(7) तृष्णा (Polydypsia)
(8) प्रलाप (Delirium)
(9) उन्माद (Psychosis)
(10) नाड़ी गति तीव्र (Rapid pulse rate)
(11) मूर्च्छा (Fainting)
(12) निद्रानाश (Sleeplessness)
(13) दौर्बल्य (Weakness)
(14) लसीका ग्रंथि शोथ (Inflammed lymph glands)
(15) लसीका ग्रंथि में स्पर्शासह्यता (Tenderness over lymph glands)
(16) लसीका ग्रंथि पाक एवं पूयोत्पत्ति (Supuration of lymph glands)
(17) कानों में प्रसुप्ति (Numbness in ears)

2. कीटरक्तज ग्रंथिक ज्वर के लक्षण[1]

(1) तीव्र ज्वर (Hyperpyrexia)
(2) नाड़ी दुर्बल किन्तु तीव्र (Pulse weak & fast)
(3) संज्ञा नाश (Loss of sensation)
(4) सन्निपात ज्वर के लक्षण

3. फुफ्फुस प्रदाही ग्रन्थिक ज्वर के लक्षण[2]

(1) लसीका ग्रंथियों में वृद्धि नहीं होती (No lymphadenopathy)
(2) शीत पूर्वक ज्वर (Fever with Chills)
(3) शिरःशूल (Headache)
(4) अंगमर्द (Bodyache)
(5) भ्रम (Vertigo)
(6) उत्क्लेश (Nausea)
(7) उरःशूल (Chest pain)
(8) कास (Cough)
(9) कण्ठ कूजन (Wheezing)
(10) रक्तष्ठीवन (Haemoptysis)
(11) फुफ्फुस में घनता (Consolidation of Lungs)

1. "बहुग्रन्थयः कीटरक्ताख्य भेदे ज्वरे ग्रंन्थिके नापि वर्द्धन्त एव।
भवेत्तत्र रक्तस्य दुष्टिस्तथा च ज्वरस्यानिशं तीव्रता वै विशेषात्॥" (मा.नि.परि.)
2. "शीतपूर्वक दारुण ज्वर आशु संजायतेहि, शिरसि शूलमथाङ्गमर्दो भ्रमश्चोत्क्लेशोऽधिमाहि॥
..... लक्ष्य जातं लक्ष्यते॥" (मा.नि.परि.)

उपद्रव[1]

1. कास (Cough)
2. अतिसार (Diarrhoea)
3. रक्त पित्त (Epistaxis)
4. मूत्रावरोध (Retention of urine)
5. वमन (Vomiting)

साध्यासाध्यता[2]

1. ग्रंथियां अनेक स्थानों पर हों,
2. शीघ्रपाकी हों,
3. रोगी बालक या वृद्ध हो, तब सुखसाध्य होता है।

असाध्यता के लक्षण

1. इन्द्रिय व्यापार नष्ट हो गये हों।
2. अतिसार उग्ररूप से हो।
3. रोगी सिन्दूर वर्ण का कफष्ठीवन करे।
4. तीव्र श्वास उत्पन्न होने पर ग्रंथिक ज्वर असाध्य होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

(1) रोगी को निदान परिवर्जन करना चाहिये।
(2) रोगी को उत्तम परिचर्या एवं द्रव आहार (Liquid diet) देना चाहिये।
(3) ग्रंथियों पर ऊष्ण सेक करना चाहिये एवं पाक होने पर उस पर चीरा लगाना चाहिये।
(4) रोगी की लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।
(5) रोग का कारण चूहे एवं पिस्सूओं को नष्ट करने के उपाय करना चाहिये।

चिकित्सा

ग्रंथिक ज्वर की चिकित्सा में ज्वरोक्त समस्त संशमन योगों का प्रयोग किया जा सकता है। अन्य योग निम्नानुसार हैं—

1.	योगेन्द्र रस	] ज्वरोक्त	
2.	बृहत् वात चिन्तामणि रस		
3.	बृहत् कस्तूरी भैरव रस		
4.	चण्डेश्वर रस	–	ताम्रभस्म, पारद, गंधक, मनःशिला
5.	ताम्र भस्म	–	ताम्र
6.	रस सिन्दूर	–	पारद, गंधक

1. "कासोऽतिसारोऽप्यथ रक्तपित्तं मूत्रावरोधो वमनं तथैव।
उपद्रवा ग्रंथिक नामकेऽस्मिन् ज्वरे त्वमी वैद्यजनैः प्रदिष्टाः॥" (मा.नि.परि.)
2. "सर्वेन्द्रियाणां मनसोऽप्यशेषव्यापारनाशो यदि वाऽतिसारः।
अत्युल्बणा स्यात्तुतदा सुवैद्याऽरिष्ट वदेद ग्रंथिकपीडितस्य॥
ष्ठीवेत् सुसिन्दूर समोज्वलं चेद् रक्तं कफेनानुगतं तु रोगी॥" (मा.नि.परि.)

7. अश्वगंधा चूर्ण – अश्वगंधा
8. शतावरी चूर्ण – शतावरी
9. रोहीतक लौह – रोहीतक, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद

आदर्श व्यवस्था पत्र

1. प्रात: सायम्
   - चण्डेश्वर रस : 250 मि.ग्रा.
   - रस सिन्दूर : 250 मि.ग्रा.
   - बृहत् वात चिन्तामणि रस : 125 मि.ग्रा.
   - गोदन्ती भस्म : 250 मि.ग्रा.
   - मधु से 1×3 मात्रा
2. भोजनोत्तर
   - संजीवनी वटी : 2 गोली×3 मात्रा, जल से
3. सारिवाद्यासव : 20 मि.ली.
   समभाग जल से 1×2 मात्रा
4. रात्रि
   - आरोग्यवर्धनी वटी : 2 गोली
   - कोष्ण जल से 1 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य—ज्वरोक्त।

Latest Developments

Plague

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Plague का ग्रंथिक ज्वर से साम्य है। इसका मूल कारण Pasteurella Pestis नामक Bacteria है।

A disease of rats & other small vertebrates caused by Pasturella Pestis, and communicated to humans by rat fleas, and occasionally by handling of infected tissues and manifesting in bunonic, pneumonic & septicaemic forms.

Management of Plague : Principles

1. Every case should be hospitalised & pneumonic plague has to be strictly isolated until 2 days after sputum negativity.
2. Appropriate drug therapy & symptomatic managent should be done.
3. Advise to patient for complete bed rest, adequate nutrition & hydration.
4. Hot moist compresses for buboes. They generally resolve without any specific therapy but necrotising buboes might require incision & drainage.

8. संधिक ज्वर
(RHEUMATIC FEVER)

व्याधि परिचय

संधिक ज्वर का दूसरा नाम 'आमवातिक ज्वर' भी है। जिस ज्वर में व्रणशोथ के समान संधियों में शोथ एवं पीड़ा तथा हृदरोग भी होता है उसे संधिक ज्वर कहते हैं[1]।

प्राय: संधिक ज्वर में युवा पुरुषों की संधियों में एवं बालकों के हृदय में विशेष रूप से विकार उत्पन्न होते हैं[2]।

संदर्भ ग्रंथ

1. माधव निदान परिशिष्ट
2. सिद्धान्त निदान प्रथम खण्ड

निदान[3]

संधिक ज्वर के निम्न निदान शास्त्र में वर्णित हैं—

1. हेमन्त, वर्षा, शिशिर एवं बसन्त ऋतु।
2. शीतकाल।
3. आद्र एवं ऊष्ण भूभाग।
4. निरन्तर भ्रमण करना।
5. बाल्य एवं युवावस्था।
6. बल क्षीण होना।

सम्प्राप्ति[4]

इस रोग के जीवाणु गले की ग्रंथियों द्वारा धातुओं में प्रविष्ट होकर वात-पित्तोल्वण सन्निपात ज्वर को उत्पन्न कर देते हैं। उसके बाद रोगी की संधियों में घोर व्रणशोथ के

---

1. "भवेज्ज्वरो यो व्रणशोथतुल्य: शोथैर्भृश सन्धिगणंप्रपीडयन्।
   घोरोऽपि हृद्रोगयुत: स वैद्यैरुदीरित: सन्धिक नामकोऽत्र॥" (मा.नि.परि.)
2. "प्रायो ज्वरे भवति सन्धिकनामकेऽस्मिन् यूनां तु संधिषु विशिष्य विकारवृन्दम्।
   तद्बन्नृणां हि हृदि बाल्य वय: स्थितानां वैशिट्य मित्यपि विबोध्य वैद्य: ॥" (मा.नि.परि.)
3. "हेमन्तवर्षाशिशिरर्तुमध्ये तथा बसन्तेऽपि च शीतकाले।
   क्लिन्नोष्णभूमिष्वविशङ्कमद्वाऽजस्त्रं जनानां भ्रमतामवश्यम्॥"
4. "लोके तु बिन्दुआकृतिशीलनैजकीटाणुहेतोर्जननं सुसिद्धम्।" (मा.नि.परि.)

समान शोथ उत्पन्न हो जाता है। पश्चात् सन्धि स्थित श्लेष्मिक कला भी शोथ युक्त होकर जलपूर्ण हो जाती है। संधियों के भीतर वृद्धि को प्राप्त कफ पूर्णरूप से विदग्ध हो जाता है। हृदय समीपस्थित कलापुट (हृदयावरण) में शीघ्रता से जल का संचय हो जाता है एवं हृदय व हृदय कपाट के मध्य में व्रण शोथ उत्पन्न होने वाले विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग में वाम पार्श्व के फुप्फुसावरण कला में शोथ हो जाता है एवं कास, श्वास आदि के लक्षणों के साथ फुप्फुस भी विष से आक्रान्त हो जाता है।

सम्प्राप्ति घटक

दोष	त्रिदोष (वात-पित्त प्रधान)
दूष्य	रस, रक्त, लसीका
स्रोतस्	रक्तवह, प्राणवह, अस्थिवह
स्रोतोदुष्टि	संग
अधिष्ठान	संधि, हृदय
स्वभाव	आशुकारी
साध्यासाध्यता	याप्य

लक्षण[1]

1. शीत पूर्वक ज्वर (Fever with chills)
2. अंगमर्द (Bodyache)
3. कण्ठदाह (Burning in throat)
4. हृदव्यथा (Cardiac discomfort)
5. स्वेदाधिक्य (Excessive sweating)
6. ग्रीवा में स्तब्धता (Stiffness in neck)
7. गलग्रंथि शोथ (Cervical lymphadenopathy)
8. मूत्राल्पता (Oligurea)
9. संधियों में शोथ एवं स्पर्शासह्यता (Inflammation in Joints & tenderness)
10. संधिक ज्वर का रोगी ज्वर मुक्त हो जाने पर भी हृद् रोग से पीड़ित हो जाता है।

साध्यासाध्यता

सामान्यतः 6 सप्ताह के अन्त तक इस रोग की शांति हो जाती है, किन्तु उचित चिकित्सा नहीं होने पर तथा उपद्रव उत्पन्न होने पर यह असाध्य हो जाता है।

1. "गदे ज्वर स्यात् सहसेहसाधारणः सशीतेन विबद्धेतेऽद्धा।
अथांऽङ्गमर्दोऽपि च कण्ठदाहो हृदि व्यथास्वेदकृतं बहुत्वम्॥
ग्रीवास्तम्भोऽथोगलग्रन्थिमध्ये शूनत्वं स्यादल्पमूत्रत्वमेव।
..... प्रोक्तो वैद्यैः संप्रशाम्येत्तदन्ते॥" (मा.नि.परिशिष्ट)

उपद्रव[1]

1. तीव्रतम ज्वर (Hyperpyrexia)
2. हृदय, फुप्फुस, शिर एवं कण्ठ में शोथ

चिकित्सा सिद्धान्त

1. सर्वप्रथम रोगी को निदान परिवर्जन करना चाहिये।
2. आमवात, संधिवात व ज्वरोक्त चिकित्सा क्रम अपनाना चाहिये।
3. रोगी को पूर्ण विश्राम दें।
4. रोगी को लघु एवं सुपाच्य आहार देना चाहिये।
5. लक्षणों के अनुसार लाक्षणिक चिकित्सा करें।

चिकित्सा

संधिक ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त संशमन योग निम्नानुसार हैं—

1. **रस/भस्म/पिष्टी/वटी/चूर्ण**

ज्वरोक्त समस्त रस/भस्म/पिष्टी/वटी/चूर्ण के अतिरिक्त निम्न योगों का प्रयोग संधिक ज्वर की चिकित्सार्थ किया जा सकता है-

(i) आमवातारि रस	: पारद, चित्रक, गुग्गुल, त्रिफला, गंधक
(ii) वात गजांकुश रस	: पारद, गंधक, स्वर्ण
(iii) महायोगराज गुग्गुल	: त्रिफला, त्रिकटु, गुग्गुल, रास्ना, देवदारु
(iv) सिंहनांद गुग्गुल	: त्रिफला, जयपाल, एरण्ड स्नेह
(v) पंचकोल चूर्ण	: पंचकोल
(vi) नागराद्य चूर्ण	: शुण्ठी, पंचकोल, कुचला
(vii) अजमोदादि चूर्ण	: अजमोद, त्रिकटु, पंचकोल
(viii) हृदयार्णव रस	: हृदय रोग में वर्णित
(ix) अर्जुन त्वक् चूर्ण	: अर्जुन छाल
(x) रास्ना द्वादश क्वाथ	: रास्ना, गुडुची, देवदारु, अमलतास
(xi) दशमूलारिष्ट	: दशमूल

आदर्श व्यवस्था पत्र

1.

	प्रातः सायम्
आमवातारि रस	: 250 मि.ग्रा.
समीरपन्नग रस	: 125 मि.ग्रा.
संजीवनी वटी	: 500 मि.ग्रा.
गोदन्ती भस्म	: 500 मि.ग्रा.
मधु से	1×2 मात्रा

1. "शोथाः सदा हृदयफुप्फुसशीर्षकण्ठमध्यस्थिता अथ च तीव्रतरो ज्वरोऽपि।
नूनं निदानविधिविज्ञवरैः सुवैद्यैः ख्याता उपद्रवतयेति गदा इहैव॥" (मा.नि.परि.)

2. भोजनोत्तर
   रास्ना द्वादश क्वाथ : 20 मि.ली.
   समभाग जल से 1×2 मात्रा
   योगराज गुग्गुल : 2×2 मात्रा, जल से

3. रात्रि
   एरण्ड स्नेह : 20 मि.ली.
   दूध से 1 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य—संधिक ज्वर के पथ्य एवं अपथ्य ज्वरोक्त पथ्य एवं अपथ्य के समान ही हैं।

Latest Developments
Rheumatic fever

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Rheumatic fever का संधिक ज्वर से साम्य है। इसे आनुवांशिक कहा गया है।

A multisystem inflammatory disease occuring in a genetically susceptible host after upper respiratary tract infection with group A Streptococcus.

संचय काल (Incubation period)—1-5 weeks.

Symptoms

1. Arthritis
2. Fever
3. Chorea
4. Carditis
5. Polyarthralgia
6. Raised ESR

Management of Rheumatic fever : Principles

1. Bed Rest.
2. Appropriate Antibiotics & drug therapy for symptomatic relief.
3. Need for proper therapy of Streptococcal sore throat.
4. Advance activity very cautiously in those with evidence of Carditis.
5. Importance of prophylaxis to be understood.

9. आक्षेपक ज्वर
(CEREBRO SPINAL FEVER)

व्याधि परिचय

जिस रोग में रोगी के अंङ्ग प्राय: आक्षेप युक्त एवं संकुचित होते रहते हों एवं रोगी संज्ञा शून्य हो जाये तब घोर ज्वर उत्पन्न होता है इसे 'आक्षेपक ज्वर' कहते हैं'। सामान्य भाषा में इसे गर्दनतोड़ बुखार कहते हैं। आयुर्वेद में इसका साम्य 'कृकच सन्निपात' ज्वर से किया जा सकता है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में इसे Meningitis या Cerebro-Spinal Fever कहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. माधव निदान परिशिष्ट
2. सिद्धान्त निदान

निदान[2]—माधव निदान में आक्षेपक ज्वर के निम्न निदान वर्णित हैं—

1. धूल, धुआं से व्याप्त स्थान।
2. संकीर्ण स्थान जहां पर अधिक मनुष्य निवास करते हैं, ऐसे स्थानों पर निवास।
3. निर्धन एवं निर्बल पुरुषों में यह रोग अधिक होता है।
4. इस रोग का मुख्य कारण Meningococcus नामक Bacteria है।
5. बसन्त व ग्रीष्म ऋतु में यह रोग प्राय: होता है।
6. नासा रोग गले के रोग एवं प्रतिश्याय इस रोग के सहायक कारण हैं।

सम्प्राप्ति[3]

उपरोक्त निदानों द्वारा उत्पन्न विष जिस मनुष्य के मस्तिष्क मूल में संसक्त सुषुम्ना काण्ड को आच्छादित करने वाली कला के अन्दर स्थित लसीका को पूय युक्त कर बढ़ा

1. "यस्मादाक्षिप्यन्ते प्रायेणाङ्गानि यन्ति संकोचम्।
   घोरो ज्वरश्च संज्ञाहृदसावाक्षेपक: प्रोक्त: ॥" (मा.नि.परि.)
2. "बसंतासङ्कुले देशे रजोधूमाकुले चिरम्।
   दरिद्राणां भवेद् भूम्नांसोऽयं जीवाणुसम्भव: ॥" (सि.नि.पू.ख.)
3. "मष्तिष्क मूले परित: सुषुम्नाकाण्डं च तच्छादिकलान्तराले।
   विषं क्रमात् पूयसमां लसीको संहृत्य दोषान्खिलान् प्रकोप्य ॥
   चेष्टावहानामथ नाड़िकानामुत्तेजनादाक्षिपदङ्ककानि ॥
   संकोच्य शाखाश्च निहन्ति संज्ञायाम् आक्षेपके दुर्लभजीवितस्य।" (सि.नि.पू.ख.)

देता है और सम्पूर्ण दोषों को प्रकुपित कर चेष्टावह नाड़ियों को अत्यन्त उत्तेजित कर देता है तब अंगों में आक्षेप एवं हाथ पैरों में संकोच उत्पन्न हो जाता है एवं संज्ञा भी नष्ट हो जाती है।

सम्प्राप्ति घटक

दोष	त्रिदोषज
दूष्य	रस, लसीका
स्रोतस्	रसवह, संज्ञावह
अधिष्ठान	मष्तिष्क, सुषुम्ना
स्वभाव	आशुकारी
साध्यासाध्यता	कृच्छ्र साध्य

लक्षण[1]

1. तीव्र मष्तिष्क शूल व वमन (Severe headache & Vomiting)
2. शीत प्रतीति (Rigors)
3. कभी-कभी कम्प (Tremors)
4. ग्रीवा स्तब्धता (Neck Stiffness)
5. हाथ-पैर स्तब्धता (Stiffness in limbs)
6. ज्वर की निरन्तर वृद्धि (Continuous fever)
7. तन्द्रा (Drowsiness)
8. मोह (Confusion)
9. प्रलाप (Delirium)
10. आक्षेप (convulsions)
11. शरीर पर रक्त वर्ण के दाने (Red rashes over body)
12. सिर का पीछे खिंच जाना व अंग संकुचित हो जाना (Opisthotonous decubitus)
13. अति तीव्र आक्षेपक ज्वर (Acute cerobro spinal fever) में रोगी अति दुर्बल हो जाता है एवं उपरोक्त लक्षण अति उग्र अवस्था में होते हैं तथा रोगी 1-3 दिन में ही मर जाता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. रोगी को स्वच्छ, हवादार, प्रकाशदार स्थान पर विश्राम करायें।
2. रोगी को प्रथम 4-6 दिन लंघन करना चाहिये एवं अति तृषा की स्थिति में लवंगोदक व षडंग पानीय पीने को देना चाहिये।

1. "उग्र पीड़ा जायते यस्य शीर्ष्णिच्छर्दिः शैत्यं जातुचिद्वेपथुश्च।
ग्रीवास्तम्भोऽपि प्रसह्याथ शीर्ष पश्चात् यत्राकृष्यतेऽद्धाऽऽमये तु
..... सुभिषजां गदितं भयेत्थम्॥" (मा.नि.परि.)

3. ग्रीवा या पृष्ठ में वेदना होने पर ऊष्ण सेक करें।
4. रोगी को पर्याप्त मात्रा में पानी पीना चाहिये।
5. मूर्च्छित रोगी को समय-समय पर करवट बदलते रहना चाहिये।
6. लाक्षाणिक उपचार करना चाहिये। अतितीव्र ज्वर की स्थिति में ठण्डे पानी की पट्टियां रखनी चाहियें।
7. रोगी की समुचित देखभाल करनी चाहिये।

चिकित्सा

आक्षेपक ज्वर की संशमन चिकित्सा में प्रयुक्त योगों का वर्णन निम्नानुसार है-

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	: 125-250 मि.ग्रा.
अनुपान	: जल/मधु
(i) मूर्च्छान्तक रस	
(ii) वात कुलान्तक रस	: मृगनाभि, मनःशिला, नागकेशर, विभीतक
(iii) महालक्ष्मी विलास रस	: ज्वरोक्त
(iv) सूतशेखर रस	. अम्ल पित्तोक्त
(v) मयूर पिच्छ भस्म	: अम्ल पित्तोक्त
(vi) सप्तामृत लौह	: त्रिफला, मुलैठी
(vii) चतुर्भुज रस	: ज्वरोक्त

2. **वटी**

मात्रा	: 250-500 मि.ग्रा.
अनुपान	: जल
(i) संजीवनी वटी	: ज्वरोक्त
(ii) संशमनी वटी	: ज्वरोक्त
(iii) सौभाग्य वटी	: ज्वरोक्त
(iv) ब्राह्मी वटी	: ज्वरोक्त
(v) चन्द्रप्रभा वटी	: पूर्वोक्त

3. **चूर्ण**

मात्रा	: 3-6 ग्राम
अनुपान	: जल
(i) सारस्वत चूर्ण	: ज्योतिष्मती
(ii) वचा चूर्ण	: वचा
(iii) जटामांसी चूर्ण	: जटामांसी
(iv) सुदर्शन चूर्ण	: ज्वरोक्त

4. क्वाथ/आसव-अरिष्ट

ज्वरोक्त समस्त क्वाथ/आसव-अरिष्ट आक्षेपक ज्वर की चिकित्सा में भी प्रयोग किए जाते हैं।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रात: सायम्

वातकुलान्तक रस	: 120 मि.ग्रा.
वृ. कस्तूरी भैरव रस	: 120 मि.ग्रा.
स्वर्णमाक्षिक भस्म	: 250 मि.ग्रा.
सूतशेखर रस	: 250 ग्राम
मयूर पिच्छ भस्म	: 250 मि.ग्रा.
मधु से	1×3 मात्रा

2. भोजनोत्तर

ब्राह्मी वटी	: 2 गोली×2 मात्रा, जल से
सारस्वतारिष्ट	: 20 मि.ली.
समभाग जल से	1×2 मात्रा

3. द्राक्षावलेह : 20 ग्राम
   दूध से 1×2 मात्रा

4. रात्रि

चन्द्रप्रभा वटी	: 2 गोली
जल से	1 मात्रा

5. तृष्णा होने पर : लवंगोदक/षडंगपानीय पीने को दें।

पथ्य एवं अपथ्य—ज्वरोक्त।

विशेष-आक्षेपक ज्वर के रोगी को स्वस्थ व्यक्ति के सम्पर्क से दूर रखना चाहिये। यह तीव्र संक्रामक व्याधि है। रोगी के खांसने छींकने से Droplet infection के द्वारा इसका प्रसार होता है।

Latest Developments
Cerebro-Spinal Fever

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में आक्षेपक ज्वर को Cerebro-Spinal fever कहते हैं। यह Menigococcus bacteria के infection द्वारा होता है।

Inflammatory response to bacterial infection of the Pia-arachnoid and the cerebro-spinal fluid.

Symptoms

1. Antecedent respiratory infections.
2. Headache & vomiting.
3. Seizures.
4. Meningismus.
5. Profuse sweats.
6. Altered mental status.
7. Weakness.
8. Focal neurogenic deficit.

Management of Cerebro Spinal fever : Principles

1. Acute meningitis is a medical emergency.
2. Once the diagnosis is suspected, the patient should be hospitalised for lumbar puncture & further management.
3. Anti microbial therapy should be started.
4. Maintenance of fluid & electrolyte balance.
5. Bed rest should be advised to the patient.
6. Intubating the comatosed patient.

10. कर्णमूलिक ज्वर (MUMPS)

व्याधि परिचय

यह तीव्र संक्रामक ज्वर है जो महामारी के रूप में फैलता है। सामान्य भाषा में इसे 'गलसुआ', 'पाषाण गर्दभ" या 'कनफेर' कहते हैं। इस ज्वर में प्रथम किसी भी पार्श्व में कर्णमूल में पीड़ायुक्त शोथ होता है। पुनः दूसरी ओर के कर्णमूल में भी शोथ हो जाता है एवं ज्वर भी होता है। इसे 'कर्णमूलिक ज्वर' कहते हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे Mumps या Parotitis कहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. सुश्रुत संहिता, निदान स्थान,-अध्याय 13
2. माधव निदान, परिशिष्ट
3. सिद्धान्त निदान, प्रथम खण्ड

निदान

आयुर्वेद में इसे कफ व वात के प्रकोप से उत्पन्न माना गया है। इस का मूल कारण Virus है जो कि Parotid glands में शोथ उत्पन्न करता है।

सम्प्राप्ति

इसका संक्रमण रोगी या उसके वाहक द्वारा होता है। विषाणु उपसर्ग के 2-3 सप्ताह बाद तक लसीका ग्रंथियों की प्रणालियों द्वारा लाला ग्रंथियों (Salivary glands) में पहुंचकर शोथ उत्पन्न करता है। शोथ प्रायः कर्णमूल स्थित लालाग्रंथियों (Parotid glands) में होता है।

लक्षण

1. कर्णमूलिक शोथ (Inflammation in parotid glands)
2. तीव्र ज्वर (Hyperpyrexia)
3. सर्वांग वेदना (Malaise)
4. मुखगत गतिविधियों में कठिनता का अनुभव (Difficulty in oral activities)
5. 5-6 दिन में शोथ समाप्ति।

"हनुसन्धौ समुद्भूतं शोफमल्परूजं स्थिरम्।
पाषाणगर्दभ विद्याद् बलासपवनात्मकम्॥" (सु.नि.13/137)

उपद्रव

ज्वराक्रमण के 7 दिन बाद निम्न उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं-

1. वृषण शोथ (Orchitis)
2. गर्भाशय शोथ (Inflammation of Uterus)
3. भगनासा शोथ (Clitoritis)
4. अग्न्याशय शोथ (Pancreatitis)
5. मष्तिष्कावरण शोथ (Menigo-encephalitis)

चिकित्सा सिद्धान्त

1. रोगी को स्वच्छ, हवादार वातावरण में पूर्ण विश्राम करायें।
2. रोगी के मुख की स्वच्छता (Oral hygene) का पूरा ध्यान रखना चाहिये।
3. प्रथम तीन दिन रोगी को लंघन कराना चाहिये।
4. लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।
5. शोथ युक्त स्थान पर रुक्ष स्वेद करना चाहिये।
6. पित्त प्रकृति के रोगी में वर्फ द्वारा सेक करना चाहिये।
7. शोथ स्थान पर उपनाह (Poultice) बांधना चाहिये।

चिकित्सा

कर्णमूलिक ज्वर की चिकित्सा में ज्वर व शोथ चिकित्सा में वर्णित समस्त औषधियों का युक्तिपूर्वक प्रयोग चिकित्सार्थ करना चाहिये। निम्न लेप का प्रयोग शोथ पर लगाने हेतु करना चाहिये-

दशांगलेप—शिरीष, मुलैठी, तगर, चन्दन, ऐला, जटामांसी, हरिद्रा द्वय कुष्ठ एवं नेत्र वाला

आदर्श व्यवस्था पत्र

1. प्रातः सांयम्

त्रिभुवन कीर्ति रस	: 250 मि.ग्रा.
शु. टंकण	: 250 मि.ग्रा.
हिंगुलेश्वर रस	: 250 मि.ग्रा.
पंचानन रस	: 250 मि.ग्रा.
मधु से	1×3 मात्रा

2. चूषणार्थ
   लवंगादि वटी : 4 गोली दिनभर में
3. दशन संस्कार चूर्ण का गण्डूष धारण करें।
4. दशांग लेप-शोथ प्रदेश पर लेपनार्थ।

पथ्य एवं अपथ्य

ज्वरोक्त समस्त पथ्य एवं अपथ्य इसमें भी पथ्य एवं अपथ्य हैं।

Latest Developments
Mumps

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मतानुसार कर्णमूलिक ज्वर को Mumps या Parotitis कहा गया है। यह एक Viral disease है।

Acute viral infection presenting with unilateral or bilateral parotitis & occasionally other salivary glands and fever. Mostly affecting the young below 15 years of age.

Management of Mumps : Principles

1. Treatment is just symptometic for the uncomplicated cases.
2. Isolate patient until swelling and pain subside.
3. Keep in bed until fever subsides and in case of orchitis immobile the patient in bed until pain & swelling subside.
4. Patient must be out of school or work place until 10 days after the onset of parotitis.

11. रोमान्तिका
(MEASLES)

व्याधि परिचय

आचार्य सुश्रुत ने इसका वर्णन नहीं किया है तथा आचार्य माधवकर ने भी मसूरिका के वर्णन के साथ ही अतिसंक्षेप में इसका वर्णन किया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे 'खसरा' या Measles कहा गया है। यह पांच वर्ष के बच्चों में अधिक होता है तथा इसका कारण अज्ञात (Unknown origin) है। संभवत: यह Virus द्वारा होता है तथा Droptet infection (बिन्दुत्क्षेप) द्वारा इसका संक्रमण होता है। एक बार रोमान्तिका हो जाने के पश्चात् उसके प्रति हमेशा के लिए रोग प्रतिरोधक क्षमता शरीर में उत्पन्न हो जाती है।

कफ-पित्त के प्रकोप से रोमकूपों के उभार के सदृश जो छोटी व लालवर्ण की पिड़िकायें हो जाती हैं उन्हें 'रोमान्तिका' कहते हैं। इसे मसूरिका का ही एक प्रकार कहा गया है[1]।

संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान - अध्याय 12
2. माधव निदान-अध्याय 54
3. सिद्धान्त निदान, प्रथम खण्ड

निदान

इसका कारण virus (विषाणु) है। यह एक संक्रामक रोग है तथा तीव्रता से फैलता है। आयुर्वेद में इसे कफ पित्तज कहा गया है।

लक्षण[2]

आचार्यों ने रोमान्तिका के निम्न लक्षण वर्णित किये हैं-

---

1. "रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्य: कफ-पित्तज:।
कासारोचक संयुक्तारोगान्त्यो ज्वर पूर्विका:॥" (मा.नि. 54/13)
2. i) "क्षुद्रप्रमाणा पिडिका: शरीरे सर्वाङ्गगा सज्वरदाहस्तृष्णा:।
कण्डूयुता: सारुचि प्रसेका: रोमान्तिका: पित्तकफात् प्रदिष्टा:॥" (च.चि. 12/92)
ii) "तत्रादित: प्रतिश्यायो ज्वरो रागश्च नेत्रयो:।
तन्द्राऽरुचि क्लम: सादो विड्भेदश्चापि कुत्रचित्॥
शोषायनानां ताल्वादौ दर्शनं लक्ष्मणां ध्रुवम्।
वृत्ते रक्तातिसारे वा रोमान्त्यां दुर्लभं सुखम्॥" (सि.नि.प्र.ख.)

1. छोटी व रक्त वर्ण की पिड़िकाओं की शरीर पर उत्पत्ति (Small reddish rashes all over body)
2. ज्वर (High grade fever)
3. कास (Cough)
4. अरुचि (Anorexia)
5. दाह (Burning sensation)
6. तृष्णा (Polydypsia)
7. प्रसेक (Excessive salivation)
8. कण्डू (Itching in Rashes)
9. क्लम (Tiredness without exertion)
10. अवसाद (Depression)
11. विडभेद (Diarrhoea)
12. प्रकाश असह्यता (Photophobia)
13. नासास्राव एवं क्षवथु (Rhinorhoea & sneezing)
14. शिरःशूल (Headache)
15. मुख के भीतर रक्त वर्ण के दानों की उत्पत्ति (Koplick's spots)
16. श्वास व नाड़ी गति तीव्र (Rapid pulse rate & respiration)
17. अति दौर्बल्य (Excessive Weakness)
18. तन्द्रा (Drowsiness)

यह रोग सहसा ज्वर से प्रारम्भ होता है तथा पश्चात् उपरोक्त लक्षण उत्पन्न होते हैं। 3-4th दिन मस्तक या कानों के पास, पश्चात् पूरे शरीर में दाने निकलने लगते हैं। प्रारम्भ में कान के पास दाढ़ी एवं ओंठ पर मच्छर काटने के समान धब्बे प्रतीत होते हैं। सारे शरीर पर पिड़िकाएं निकलने के बाद ज्वर कम हो जाता है एवं पिड़िकाओं के ऊपर की पतली त्वचा निकल जाती है। धीरे-धीरे ज्वर व पिड़िकाएं शांत हो जाती हैं। रोगी 15-20 दिन में स्वस्थ हो जाता है परन्तु रोगमुक्ति के 15 दिन बाद तक रोगी को बच्चों से दूर रखना चाहिये।

विशेष-इस रोग का मुख्य चिह्न (Sign) मुख के भीतर श्लेष्मिक कला के उभरे हुये लाल-नीले वर्ण के दानों का निकलना है जिन्हें 'Koplik's spot' कहते हैं।

उपद्रव

रोमान्तिका के तीव्र प्रकार (Acute condition) में निम्न उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं—

1. स्वरयंत्र प्रदाह (Laryngitis)

2. श्वास प्रणालिका प्रदाह (Pneumonitis)
3. नेत्र रोग (Eye diseases)
4. कर्णशूल (Otalgia)
5. वृक्क शोथ (Nephritis)
6. कोथ (Gangrene)
7. पक्षवध (Paralysis)
8. हृदयावरोध (Cardiac failure)
9. रक्तष्ठीवन (Haemoptysis)
10. रक्तातिसार (Blood mixed diarrhoea)

चिकित्सा सूत्र

(1) रोगी को पृथक् स्वच्छ, हवादार कमरे में रखना चाहिये तथा कमरे में प्रकाश व ठण्डी हवा नहीं होनी चाहिये।

(2) प्रथम 3-4 दिन लंघन कराना चाहिये। भोजन में रुचि जागृत होने पर लघु व सुपाच्य द्रव आहार, फलों के रस आदि देना चाहिये।

(3) Cold Sponging द्वारा ज्वर कम करने का प्रयास करना चाहिये व ज्वरहर औषधियां देनी चाहियें।

(4) मल शोधनार्थ मृदु विरेचक औषधियां देनी चाहियें।

(5) इन उपचारों के साथ ही लाक्षणिक चिकित्सा (Symptomatic treatment) करना चाहिये।

चिकित्सा

रोमान्तिका की संशमन चिकित्सा में ज्वरोक्त समस्त संशमन योगों का प्रयोग युक्ति पूर्वक किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त निम्न योगों का भी प्रयोग लाभप्रद रहता है—

1. कांचनार गुग्गुल : कांचनार, गुग्गुल
2. कांचनार क्वाथ : कांचनार त्वक्
3. पटोलादि क्वाथ : पटोल, त्रिफला, निम्ब छाल, गुडुची
4. खदिराष्टक क्वाथ : खदिर छाल, त्रिफला, निम्ब छाल
5. अश्वकंचुकी रस : उदर रोगोक्त
6. शिरीष त्वक् क्वाथ : शिरीष त्वक्
7. सर्वतोभद्र रस : रससिन्दूर, अभ्रक, स्वर्ण, रजत, मनःशिला, वंशलोचन
8. गुडुच्यादि क्वाथ : गुडुची, मुलैठी, मुनक्का, अनार त्वक्, गुड़

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.		प्रातः सांयम्
	सर्वतोभद्र रस	: 250 मि.ग्रा.
	गुडुची सत्व	: 250 मि.ग्रा.
	गोदन्ती भस्म	: 500 मि.ग्रा.
	मधु से	1×3 मात्रा
2.	भोजनोत्तर	
	कांचनारादि क्वाथ	: 20 मि.ली.
	समभाग जल से	1×2 मात्रा
3.	रात्रि	
	अश्वकंचुकी रस	: 2 गोली
		1 मात्रा
या		
	आरोग्य वर्धनी वटी	: 2 गोली
	कोष्ण जल से	1 मात्रा

ज्वरोत्तर दौर्बल्य में

1.		प्रातः सांयम्
	स्वर्ण बसन्त मालती रस	: 120 मि.ग्रा.
	पुनर्नवा मण्डूर	: 250 मि.ग्रा.
	प्रवाल पिष्टी	: 250 मि.ग्रा.
	सितोपलादि चूर्ण	: 3 ग्राम
	मधु से	1×2 मात्रा
2.	च्यवनप्राश / द्राक्षावलेह	: 20 ग्राम
	दूध से	1×2 मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य—ज्वरोक्त समस्त पथ्य के अतिरिक्त स्वेदन, उष्ण वस्त्र धारण करना, उष्ण द्रव्यों का प्रयोग, वेग धारण न करना आदि पथ्य हैं।

अपथ्य—ज्वरोक्त समस्त अपथ्य के अतिरिक्त शीतल वायु में बैठना, घूमना, शीतल जल से स्नान, शीतल जलपान, अग्नि एवं सूर्य ताप का सेवन, मैथुन, दिवास्वप्न, अतिमार्ग गमन तथा रात्रि जागरण अपथ्य हैं।

Latest Developments

Measles

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में रोमान्तिका को Measles कहा गया है जो एक viral disease है।

An acute exanthematous viral infection presenting with fever, maculopapular rash that gets confluent and starts in the head and spreads centrifugally towards the feet.

Management of Measles : Principles

1. All cases should be placed in respiratory isolation until 4 days after the onset of disease.
2. Antipyretics & antitussives should be given.
3. Encourage oral fluids.
4. Vit. A should be given for prevention of complications.
5. Symptomatic treatment.

12. मसूरिका
(SMALL POX)

व्याधि परिचय

प्राचीन आयुर्वेदीक वाङ्मय में इसका वर्णन अतिसंक्षेप में मिलता है। आचार्य सुश्रुत ने इसे क्षुद्र रोग मानकर अति संक्षेप में वर्णन किया है[1]। आचार्य माधवकर ने इसका विस्तृत वर्णन किया है तथा भाव प्रकाश में 'शीतला' नाम से इसका वर्णन उपलब्ध है। मसूर के आकार की पिड़िकाएं निकलने से इसे 'मसूरिका' कहा गया है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे Small Pox कहा गया है एवं इसका कारण Virus है। यह एक तीव्र संक्रामक व जानपदिक रोग है। यह रोग सभी उम्र में हो सकता है परन्तु बाल्यावस्था में अधिक होता है। बसन्त ऋतु में इस रोग का प्रारम्भ होता है एवं ग्रीष्म ऋतु में इसका उग्र रूप देखने को मिलता है। एक बार इस रोग के हो जाने के बाद पुन: इसके होने की संभावना कम हो जाती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 12
2. सुश्रुत संहिता, निदान स्थान-अध्याय 13
3. माधव निदान-अध्याय 54
4. भाव प्रकाश, शीतला प्रकरण
5. सिद्धान्त निदान, प्रथम खण्ड

निदान[2]

1. कटु, अम्ल, लवण व क्षारयुक्त पदार्थों का अति सेवन।
2. विरुद्ध अन्न सेवन।
3. अध्यशन।
4. वात प्रकोपक सेम, मटर, आलू का अति प्रयोग।
5. दुष्ट वायु व दुष्ट जल का सेवन।
6. विषाणु संक्रमण।

इसके virus (Variola virus) का संक्रमण droplet infection द्वारा होता है।

1. "दाह ज्वर रूजावन्तस्ताम्रा: स्फोटा: सपीतका:।
गात्रेषु वदने चान्तर्विज्ञेयास्ता: मसूरिका:॥" (सु.नि.13/37)
2. "कटवम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनै:। दुष्टनिष्पाव शाकाद्यै: प्रदुष्टपवनोदकै:॥
क्रूरग्रहेक्षणाञ्चापि देशे दोषा: समुद्धता। जनयन्ति शरीरेऽस्मिन् दुष्टरक्तैर्नसङ्गता॥"
(भाव प्रकाश)

सम्प्राप्ति[1]

मसूरिका का विषाणु रक्त में गमन करता हुआ त्वचा के Epidermis में आकर रुक जाता है एवं वहां पर कोशायें रक्तमय (Hyperaemia) हो जाती हैं तथा उनमें शोथ हो जाता है। त्वचा पर स्पर्श करने पर अधोभाग में मसूर के आकार की छोटी-छोटी ग्रंथियां प्रतीत होती हैं फिर इनमें द्रव भर जाता है, पश्चात द्रव पूययुक्त हो जाता है एवं पिड़िकायें भी बड़ी हो जाती हैं। पिड़िकाओं के फूटने पर पूय जमकर पपड़ी के रुप में पिड़िका के ऊपर कई दिनों तक रहता है। पपड़ी निकल जाने पर क्षत के चिन्ह रह जाते हैं।

संचय काल-इसका संचयकाल (Incubation period) 12-13 दिन है।

भेद

आचार्य माधवकर ने दोषानुसार मसूरिका के पांच भेद वर्णित किए हैं-

1. वातज मसूरिका
2. पित्तज मसूरिका
3. कफज मसूरिका
4. रक्तज मसूरिका
5. सन्निपातज मसूरिका

अन्यत्र मसूरिका के 3 भेद वर्णित हैं-

1. बृहत् मसूरिका (Small pox)
2. लघु मसूरिका (Chicken pox)
3. रोमान्तिका (Measles)

पूर्वरुप[2]

आचार्य माधवकर ने निम्न पूर्वरुपों का उल्लेख किया है-

1. ज्वर (Fever)
2. कण्डू (Itching)
3. अंगों का टूटना (Malaise)
4. अरति (Restlessness)
5. चक्कर (Vertigo)

1. "वायव्यादि दोषादथवाऽन्यरोगिस्पर्शादपैतत् पिडिकात्वचो व।
नासागलाद्यै: प्रतिशद् विषं तद् दोषानशेषान् विकरोति सद्य:॥
ततो ज्वरो स्यादतिघोरलिङ्गो रोषा: विष तच्च बहि: क्षिपन्ति।
गात्रेषु जाता: पिडिकास्ततस्ता पक्का: क्षयं यान्ति विषक्षयेण॥
तारतम्येन दोषस्य वा बलाबलात् वा।
पृथग्वाऽत्यन्तसान्द्रा वा सरक्ता वामवन्ति ता:॥" (सि.नि.प्र.ख.)
2. "तासां पूर्वं ज्वर: कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरतिर्भ्रम:।
त्वचिशोथ: सवैवर्ण्यो नेत्ररागश्च जायते॥" (मा.नि. 54/3)

6. त्वक्शोथ (Inflammed skin)
7. त्वक् वैवर्ण्य (Discoloration of skin)
8. रक्तनेत्रता (Red eyes)

लक्षण

मसूरिका के लक्षण निम्नानुसार हैं-

1. शीत, कम्प व शिरःशूल के साथ ज्वर (Fever with Chills, Rigors & Headache)
2. कटि एवं पीठ में वेदना (Lumbago & Backache)
3. प्रलाप (Delirium)
4. निद्रानाश (Loss of sleep)
5. मलावरोध (Constipation)
6. तीसरे दिन ज्वर कम (After 3rd day fever comes down)
7. त्वचा पर कठोर पिड़िकाओं की उत्पत्ति (Hard rashes on skin)
8. मष्तिष्क एवं ललाट से प्रारंभ होकर मुख, गले एवं हाथ पैरों में पिड़िकायें प्रकट होती हैं।
9. छठे दिन पिड़िकायें द्रव से भर जाती हैं (Papules)
10. आठवें दिन उनमें पूय भर जाता है (Pustules)
11. बारहवें दिन पिड़िकायें सूख जाती हैं।
12. 2 सप्ताह में पिड़िकायें नष्ट होकर तीसरे सप्ताह तक रोगी स्वस्थ हो जाता है
13. अति प्रकोप होने पर त्वचा पर चिन्ह जीवन भर रह जाते हैं जिसे सामान्य भाषा में 'चेचक' कहते हैं।
14. जिह्वा शुष्क एवं मलिन रहती है (Dry & Coated tongue)

उपद्रव[1]

मसूरिका के अंत में कूर्पर संधि, मणिबन्ध तथा असंफलक पर भयंकर शोथ उत्पन्न हो जाता है जो असाध्य होता है।

साध्यासाध्यता

1. जिस मसूरिका से पीड़ित रोगी को तृषाधिक्य हो, वायु अधिक दूषित हो गई हो तथा नासा से अधिक तीव्र श्वास लेता हो वह निश्चित रुप से प्राण त्याग देता है।
2. उपद्रव युक्त मसूरिका का रोगी भी असाध्य होता है।

1. "मसूरिकान्ते शोथः स्यात् कर्पूरमणिबन्धके।
तथाऽसंफलके चापि दुश्चिचिकित्स्य सुदारुण॥" (मा.नि. 54/31)

चिकित्सा सिद्धांत

1. रोगी को स्वच्छ, हवादार, प्रकाशयुक्त स्थान पर विश्राम कराना चाहिए।
2. रोगी की Personal Hygeine का पूर्णतः ध्यान रखना चाहिए।
3. स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।
4. वायु शुद्धि के लिए गुग्गुल, लोभान, देवदारु व जटामांसी का धूपन कमरे में करना चाहिए।
5. रोगी को निम्ब पत्र में उबाले हुए पानी से स्नान कराना चाहिए एवं पिड़िकाओं पर बोरिक पाउडर छिड़क देना चाहिए।
6. पूयोत्पत्ति पश्चात् दशांग लेप पिड़िकाओं पर लगाना चाहिए।
7. आक्रांत रोगी को संक्रामक रोग चिकित्सालय में प्रविष्ट कराना चाहिए।
8. रोगी का लाक्षणिक उपचार करना चाहिए।

चिकित्सा

1. **संशोधन चिकित्सा**
   1. लंघन
   2. वमन
   3. विरेचन
2. **संशमन चिकित्सा**

मसूरिका की संशमन चिकित्सा में प्रयुक्त योगों का वर्णन निम्नानुसार है-

1. **रस/भस्म/पिष्टी**

मात्रा	: 125-250 मि.ग्रा.
अनुपान	: मधु / कोष्ण जल
(i) दुर्लभ रस	: पारद, बला, अतिबला, रुद्राक्ष, पीपर, आंवला
(ii) सर्वतोभद्र रस	: रस सिन्दूर, अभ्रक, रजत, स्वर्ण भस्म, वंशलोचन
(iii) प्रवाल पंचामृत	: प्रवाल, शंख, शुक्ति, मुक्ता, कर्पद
(iv) त्रिभुवन कीर्ती रस	: हिंगुल, विष, त्रिकटु, टंकण
(v) मुक्ता पिष्टि	: मुक्ता
(vi) स्वर्ण माक्षिक भस्म	: स्वर्ण माक्षिक

(vii) अन्य ज्वरोक्त समस्त रस/भस्म/पिष्टी/वटी आदि मसूरिका में भी प्रयोग की जा सकती है।

2. **वटी**

मात्रा	: 250-500 मि.ग्रा.
अनुपान	: जल
(i) इन्दुकला वटी	: शिलाजीत, लौह भस्म, स्वर्ण भस्म

3. **चूर्ण**

मात्रा	: 3-6 ग्राम
अनुपान	: जल
(i) निम्ब चूर्ण	: निम्ब
(ii) पटोल पत्र चूर्ण	: पटोल
(iii) ऊषणादि चूर्ण	: मरिच, पिप्पली मूल, कूठ, मोथा, मुलैठी
(iv) बदिर मज्जा चूर्ण	: शुष्क बदिर मज्जा

4. **क्वाथ/आसव-अरिष्ट**

मात्रा	: 20 मि.ली.
अनुपान	: जल
(i) गुडुच्यादि क्वाथ (ii) पटोलादि क्वाथ (iii) खदिराष्टक क्वाथ (iv) कांचनारादि क्वाथ	रोमान्तिका में वर्णित हैं।
(v) जात्यादि क्वाथ	: चमेली पत्र, मंजीठ, दारुहरिद्रा, आंवला, मुलैठी
(vi) एलाद्यरिष्ट	: छोटी एला, वासा, दन्ती, हरिद्राद्वय

5. **घृत**

मात्रा	: 20-40 मि.ली.
अनुपान	: दुग्ध/ऊष्णोदक
(i) पंचतिक्त घृत (ii) पटोलाद्य घृत	कुष्ठोक्त

आदर्श चिकित्सा पत्र

तीव्र ज्वर में

1. प्रातः सायम्

सर्वतोभद्र रस	: 250 मि.ग्रा.
वृ. कस्तूरी भैरव रस	: 120 मि.ग्रा.
गोदन्ती भस्म	: 500 मि.ग्रा.
प्रवाल पिष्टी	: 500 मि.ग्रा.
मधु से	1×4 मात्रा

शिरःशूल होने पर

1. प्रातः सायम्

शिरःशूलादिवज्र रस	: 250 मि.ग्रा.
गोदन्ती भस्म	: 500 मि.ग्रा.
ब्राह्मी वटी	: 500 मि.ग्रा.
मधु से	1×3 मात्रा

2. पंचतिक्त घृत : 20 मि.ली.
   दूध से 1×2 मात्रा

3. भोजनोत्तर
   सारिवाद्यरिष्ट : 20 मि.ली.
   समजल से 1×2 मात्रा

4. पिड़िकाओं को निम्ब क्वाथ से धोयें व दाह होने पर-शत धौत घृत या दशांग लेप लगायें।

5. रात्रि
   अश्वकंचुकी रस : 2 गोली
   जल से 1 मात्रा

ज्वरोत्तर दौर्बल्य की स्थिति में

1. प्रातः सायम्

स्वर्ण बसन्त मालती रस	: 120 मि.ग्रा.
गुडुची सत्व	: 500 मि.ग्रा.
अश्वगंधा चूर्ण	: 2 ग्राम
शतावरी चूर्ण	: 2 ग्राम
मधु से	1×2 मात्रा

2. भोजनोत्तर
   द्राक्षासव : 20 मि.ली.
   समभाग जल से 1×2 मात्रा

पिड़िकाओं के दाग मिटाने हेतु

मसूर की दाल चिरौंजी हरिद्रा लोध्र मुलैठी तथा वचा	इनको समभाग लेकर गोदुग्ध में पीसकर लेप लगायें

पथ्य एवं अपथ्य

पथ्य

आहार	विहार
शालि चावल, शाठी चावल, मूंग, मसूर, जौ, जांगल मांस रस, परवल, करेला, ककोड़ा, केला, शिग्रु की फली, बिनौरा नींबू, द्राक्षा, अनार, बेर, मुलैठी आदि।	ज्वरोक्त समस्त विहार के अतिरिक्त लंघन, वमन, विरेचन, विश्राम आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
ज्वरोक्त समस्त अपथ्य के अतिरिक्त लोबिया, विरुद्धान्न, आलू, नमक, विषम भोजन कटु एवं अम्ल पदार्थ आदि।	ज्वरोक्त समस्त विहार के साथ ही स्वेदन, परिश्रम, मैथुन, क्रोध, आतप सेवन, दूषित वायु सेवन आदि।

Latest Developments
Small Pox

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मसूरिका को Small Pox कहा गया है। इसका कारण Variola Virus है जो कि droptet infection द्वारा फैलता है। इसका Incubation Period 12–13 दिन है। मनुष्य को एक बार इसका संक्रमण हो जाने पर इसके प्रति विशिष्ट प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। अत: पुन: भविष्य में इसके संक्रमण की संभावना कम हो जाती है। आजकल इसका बेक्सीन (Vaccine) उपलब्ध है जिसको लगवाने के बाद मसूरिका के संक्रमण की संभावना खत्म हो जाती है।

Management of Small Pox : Principles

1. Complete rest & isolation of the patient is must.
2. Proper hygeinic care of patient is necessary.
3. Symptomatic treatment should be given to the patient.
4. For prevention / prophylaxis, vaccination for small pox is must.

13. लघु मसूरिका
(CHICKEN POX)

व्याधि परिचय

सामान्य व्यवहार की भाषा में इसे छोटी-माता या छोटी चेचक कहते हैं। इसका वर्णन प्राचीन संहिता ग्रंथों में नहीं मिलता है। यह स्वल्प ज्वर युक्त तरल भरी पिड़िकाओं सहित विशेष संक्रामक रोग है जिसे लघु मसूरिका कहा गया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे Chicken Pox कहते हैं। यह बच्चों में अधिकांशत: होता है परन्तु वयस्कों में भी हो सकता है। इस ज्वर की काल मर्यादा 11–24 दिन की है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सिद्धान्त निदान, प्रथम खण्ड

निदान[1]

इस ज्वर का मुख्य कारण Varicella virus है। इसके साथ ही वायु जल तथा भूमि के दोष से या रोगी के संस्पर्श से इसका संक्रमण होता है।

सम्प्राप्ति[2]

वायु के दूषित होने से या रोगी के संसर्ग से इस रोग का विष शरीर में प्रविष्ट होकर दोषों को प्रकुपित कर देता है जिससे बाह्य त्वचा में स्वल्प पिड़िकाओं की उत्पत्ति होती है तथा अल्प वेग के ज्वर के साथ पिड़िकाएं उत्पन्न होती हैं अल्प समय (5–6 दिनों) में यह रोग शांत हो जाता है। यह मसूरिका की अपेक्षा कम क्षति पहुंचाता है।

लक्षण[3]

सिद्धान्त निदान में लघु मसूरिका के निम्न लक्षण वर्णित हैं—

1. हल्का ज्वर (Mild fever)

---

1. "वाय्वादे: रोगिसंगाद् वा सक्रांत तद्विषं तनौ: ।"
2. "दोषकोपं विद्यायाल्पं निरेतिर्त्वा च सत्वरम्।
   ततस्ता: पिडिका: स्वल्पा: ज्वर: स्वल्पश्च जायते।
   शीघ्रमुल्लाघता चापि पिडिकानां प्रशोषणात्॥" (सि.नि.प्र.ख.)
3. "नातितीव्रो ज्वर: स्वल्पलिंङ्ग शीघ्रं प्रमुञ्चति।
   प्रथमेऽह्नि द्वितीये वा पिड़िका: सम्भवन्ति हि॥
   प्रायोऽष्टमेऽह्नि नैरुज्यं लक्षणाञ्च द्रुतं लय:॥" (सि.नि.प्र.ख.)

2. दूसरे दिन पिड़िकाएं निकलती हैं (Small rashes on body)
3. लगातार तीन दिन तक पिड़िकोत्पत्ति (Rashes formation continiously for three days)
4. चौथे दिन पिड़िकाओं में द्रव भर जाता है (Pustule formation)
5. पांचवे-छठे दिन पिड़िकाएं सूख जाती हैं।
6. आठवें दिन आरोग्य प्राप्ति हो जाती है।
7. पिड़िकाओं में कण्डू (Itching in Rashes)

असाध्यता[1]

कभी-कभी विष की अधिकता एवं रोगी की दुर्बलता के कारण पिड़िकाओं में कोथ (Gangrene) हो जाता है तथा उनमें पूय एवं रक्तभर जाता है जिसके कारण तीव्र ज्वर (Hyperpyrexia) हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह कृच्छ्र साध्य या असाध्य हो जाती है।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. मसूरिका की चिकित्सा के समस्त सिद्धान्त लघु मसूरिका में भी लागू होते हैं। इसके अतिरिक्त-
2. पिड़िकाओं को नाखून से न खुजलायें व कण्डू होने पर नारियल का तैल लगाना चाहिये।
3. लाक्षणिक चिकित्सा करें।
4. व्रणों पर पंचवल्कल त्वक् भस्म या निम्ब पत्र चूर्ण छिड़कना चाहिये।

लघु मसूरिका की चिकित्सा, पथ्य एवं अपथ्य

मसूरिका की चिकित्सा में प्रयुक्त समस्त संशोधन व संशमन चिकित्सा तथा पथ्य एवं अपथ्य लघु मसूरिका में भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

Latest Developments

Chichen Pox

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे Chicken Pox कहा गया है। यह एक Viral disease है।

Highly contagious viral illness, mostly affecting children, with pruritic diffuse papulo vesicular rashes appearing in crops.

Incubation Period. 11-21 days.

1. "क्वचित् विषस्य बाहुल्याद् दौर्बल्याद्वाथरोगिणः।
कोथं गच्छन्ति पिड़िकाः नानारुपा भवन्ति वा॥
कृच्छ्रसाध्यानसाध्यान् वा प्रकारांस्तान् प्रचक्षते॥" (सि.नि.प्र.ख.)

Symptoms

(1) Rose coloured macules changing in to papules then into vesicles, pustules & ultimately crusting.
(2) Rash centrally (centripetal) distributed but involving the face & scalp.

Management of Chicken Pox : Principles

1. Majority of children need supportive symptomatic therapy only.
2. Adults with complications like pneumonia might need hospitalisation.
3. Anti-viral therapy indicated in neonates, adults & in pregnancy.
4. Antipyretics should be given to the patient.
5. Symptomatic treatment for pruritis should be given.
6. Keep in bed until afebrile & isolate to the patient until primary crusts have disappeared.
7. Daily bath using antibacterial soap.
8. Keeping finger nails trimmed to avoid infection due to scratching.

14. मूषिक दंश ज्वर
(RAT BITE FEVER)

व्याधि परिचय

यह ज्वर चूहे के काटने से उत्पन्न होता है। अतः इसे मूषिक दंश ज्वर कहते हैं। इसमें शीत पूर्वक ज्वर दंश स्थान पर शोथ तथा शरीर में ग्रंथियों की उत्पत्ति होती है। संहिता ग्रंथों में इसका स्पष्ट वर्णन उपलब्ध नहीं है। सुश्रुत संहिता के कल्पस्थान में 'विष' वर्णन में इसका अत्यल्प वर्णन मिलता है। इसे दूषी विष कहा गया है।

निदान

इस ज्वर का कारण एक जीवाणु है जो उपसृष्ट चूहे के काटने से मनुष्य के शरीर में पहुंचता है। इस जीवाणु को Spirillum Minus कहते हैं।

सम्प्राप्ति

ये जीवाणु मूषिक दंश के समय शरीर में प्रविष्ट होते हैं एवं लसीका वाहनियों के द्वारा समस्त शरीर में फैल जाते हैं। लसीका ग्रंथियों में शोथ एवं ज्वर उत्पन्न करते हैं।

लक्षण[1]

आचार्य वागभट्ट ने मूषिक विष का वर्णन किया है जिसके द्वारा निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं—

1. ग्रंथि उत्पत्ति (Gland formation)
2. शोथ (Inflammation)
3. मण्डलोत्पत्ति (Rashes)
4. भ्रम (Vertigo)
5. अरुचि (Anorexia)
6. शीत पूर्वक ज्वर (Fever with chills)
7. अति तीव्र पीड़ा (Severe pain at bite site)
8. अंगसाद (Looseness of body)
9. वेपथु (Tremors)

1. "ग्रंथयः श्वयथुः कोपो मण्डलानि भ्रमोऽरुचि।
शीतज्वरोऽतिरुक् सादो वेपथु पर्वभेदनम्॥
रोमहर्षः सुप्ति मूर्च्छा दीर्घाकालानुबंधनम्॥" (वागभट्ट)

10. पर्वभेद (Pain in joints)
11. रोमहर्ष (Horipillation)
12. सुप्ति (Numbness)
13. मूर्च्छा (Fainting)
14. अतिसार (Diarrhoea)
15. छर्दि (Vomiting)
16. दौर्बल्य (Weakness)
17. बैचेनी (Restlessness)
18. लसीका ग्रंथि वृद्धि (Enlargement of lymph glands)

चिकित्सा सिद्धान्त

1. आचार्य सुश्रुत ने मूषिक विष की चिकित्सा दूषी विष की चिकित्सा समान करने का निर्देश दिया है[1]।
2. रोगी को वमन व विरेचन कराना चाहिये।
3. शिरीष बीज चूर्ण का प्रधमन नस्य देना चाहिये।
4. दंश स्थान पर अग्नि कर्म करने से इसके लक्षण प्रकट नहीं होते[2]।
5. दंश स्थान पर प्रच्छान कर रक्तविस्रावण करने के बाद शिरीष, कुष्ठ, हरिद्रा व गुडुची को पीसकर लेप लगाना चाहिये।
6. इसमें समस्त विषघ्न उपचार करने चाहियें।
7. कपित्थ स्वरस को मधु के साथ पानार्थ देना चाहिये।
8. त्रिकटु को गोबर के रस में मिलाकर अंजन कराने का विधान है।

चिकित्सा

1. **संशोधन चिकित्सा**
   1. वमन
   2. विरेचन
   3. नस्य
2. **संशमन चिकित्सा**

ज्वरोक्त व विषघ्न समस्त संशमन योगों का युक्ति पूर्वक प्रयोग मूषिक दंश ज्वर में करना चाहिये।

1. योगरत्नाकर में वर्णित आखुविषान्तक रस का प्रयोग करना चाहिये।

1. "मूषिकाणां विषं प्रायः कुप्यत्यभृष्वनिहतम्।
तत्राप्येष विधिः कार्यो यश्च दूषीविषापहः॥" (सु.क. 7/41)
2. "दग्ध्वा विस्त्रावयेद् दंशं प्रच्छन्नं च प्रलेपयेत्॥" (सु.क. 7/33)

2. संखिया तथा पारद के योगों का प्रयोग करना चाहिये।
3. दालचीनी चूर्ण व शुण्ठी चूर्ण समभाग को ऊष्णोदक के साथ सेवन करने का आचार्य चरक ने निर्देश किया है[1]।

आदर्श व्यवस्था पत्र

		प्रात :	सांयम्
1.	आखुविषान्तक रस	: 250 मि.ग्रा.	
	प्रवाल भस्म	: 250 मि.ग्रा.	
	शंखभस्म	: 250 मि.ग्रा.	
	गोदन्ती	: 250 मि.ग्रा.	
	मधु से	1×4 मात्रा	
2.	दालचीनी चूर्ण	: 500 मि.ग्रा.	
	शुण्ठी चूर्ण	: 1 ग्राम	
	ऊष्णोदक से	1×2 मात्रा	
3.	भोजनोत्तर		
	अमृतारिष्ट	: 10 मि.ली.	
	शिरीष क्वाथ	: 10 मि.ली.	
	समभाग जल से	1×2 मात्रा	
4.	रात्रि		
	आरोग्यवर्धनी वटी	: 2 गोली	
	जल से	1 मात्रा	
5.	दंश स्थान पर	: दंशाग लेप घृत में मिलाकर लगायें।	

पथ्य एवं अपथ्य—ज्वरोक्त।

1. "त्वचं च नागरं चैव समांशश्लक्ष्णपेषिताम्।
पेयमुष्णाम्बुना सर्वमूसिकाणां विषापहम्॥" (च.चि. 23/204)

अध्याय-29

पाण्डु रोग
ANAEMIA

व्याधि परिचय

जिस रोग में रोगी का वर्ण श्वेत-पीत हो जाता है उसे 'पाण्डु रोग' कहते हैं। 'पाण्डु रोग' वर्ण परक संज्ञा है। 'पाण्डु वर्णता' रक्ताल्पता का सूचक है। अत: यह समझा जाता है कि पाण्डु रोग रक्ताल्पता जन्य रोग है। अत: वे सभी रोग जिनमें रक्ताल्पता के कारण शरीर का वर्ण पाण्डु (श्वेत-पीत) हो जाता है तथा रक्त की विकृति के कारण शरीर का वर्ण बदल जाता है, पाण्डु रोग के अन्तर्गत आते हैं। अर्थात् पाण्डु रोग पाण्डु प्रधान लक्षण वाले अनेक रोगों का एक वर्ग है। पाण्डु रोग का सामञ्जस्य आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Anaemia रोग से स्थापित किया जा सकता है।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 16
2. सुश्रुत संहिता, उत्तर तन्त्र-अध्याय 44
3. अष्टांङ्ग हृदय, निदान स्थान-अध्याय 13
4. अष्टांङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान-अध्याय 16
5. माधव निदान-अध्याय 8

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

1. पाण्डु 'पडि नाशनै' धातु से कुप्रत्यय करने पर निपात से 'पाण्डु' शब्द बनता है।
2. पाण्डुनो नृपतौ सितौ। (हेम:)। पाण्डु: कुन्नीपतोसिते।
3. 'पाण्डुस्तु पीतभागार्थ: केतकी धूलसन्निभ:।' अर्थात् केतकी की धूलि के समान सफेदी लिए हुए पीलापन।
4. 'पाण्डुत्वेनोपलक्षितो रोग: पाण्डु रोग:।' अर्थात् पाण्डु वर्ण से उपलक्षित रोग को पाण्डु रोग कहते हैं।
5. 'पाण्डुना वक्ष्यमाणा हरितादिवर्णा अपि गृह्यन्ते' अर्थात् पाण्डु शब्द से पाण्डु रोग में होने वाले हरित, हरिद्रादि वर्ण भी गृहीत होते हैं।

अतः पाण्डु शब्द का अर्थ श्वेत, श्वेतपीत, पीतश्वेत, श्वेताभ, पीताभ, धूसर, मलिन आदि होता है।

परिभाषा

जिस रोग में रोगी की त्वचा का वर्ण श्वेत पीत (पाण्डु) हो जाता है उसे पाण्डु रोग कहा जाता है[1]।

Pallor

Pallor is paleness of skin and mucous membrane either as a result of diminished circulatory red blood cells or diminished blood supply.

निदान

संहिताओं में वर्णित पाण्डु रोग के प्रमुख निदानों को निम्न तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं[2]—

(अ) आहारज निदान

i. अम्ल, लवण, क्षार एवं अति उष्ण पदार्थों का अति सेवन
ii. विरुद्ध व असात्म्य भोजन
iii. निष्पाव (सेम), माष, पिण्याक, तिलतैल का अति सेवन
iv. तीक्ष्ण पदार्थ सेवन, विदग्ध अन्न सेवन
v. अतिमद्य सेवन, मत्स्य सेवन, स्नेह विभ्रम
vi. मृदा (मिट्टी) सेवन
vii. प्रमिताशन (षड्रसों में से केवल किसी एक रस का ही लगातार सेवन करना)

(ब) विहारज निदान

i. अति व्यायाम
ii. दिवाशयन
iii. अतिमैथुन

1. "पाण्डुत्वेनोपलक्षितो रोगाः पाण्डुरोगाः।" (मा.नि. 8/1)
2. i) "क्षाराम्लवणात्युष्णविरुद्धासात्म्यभोजनात्।
निष्पावमाषपिण्याकतिलतैलनिषेवणात्॥
विदग्धेऽन्ने दिवास्वप्नाद् व्यायामान्मेथुनात्तथा।
प्रतिकर्मर्तुवैषम्याद्वेगानां च विधारणात्॥
कामचिन्ताभयक्रोधशोकोपहतचेतसः।" (च.चि. 16/7-9)
ii) "व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं, मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम्।
निषेवमाणस्य विदूष्य रक्तं, कुर्वन्ति दोषास्त्वचि पाण्डुभावम्॥" (सु.उ. 44/3)

iv. वेग धारण (मत्र-मूत्र आदि)
v. काम-चिन्ता-भय-क्रोध-शोक से ग्रस्त रहना
vi. पंचकर्म का विषम योग

(स) निदानार्थकर रोग

'पाण्डुता' लक्षण लगभग 40 रोगों में पूर्वरूप, लक्षण (रूप) या उपद्रव के रूप में मिलता है जिनमें से कुछ प्रमुख रोग निम्न हैं[1]—

i.	रक्तार्श	ii.	शोथ
iii.	रक्तपित्त	iv.	उदर रोग
v.	उदर कृमि	vi.	ग्रहणी दोष
vii.	विषम ज्वर	viii.	जीर्ण ज्वर
ix.	रक्त प्रदर	x.	रक्तार्बुद
xi.	व्रण	xii.	राजयक्ष्मा
xiii.	पित्तज प्रतिश्याय	xiv.	प्रमेह
xv.	गुल्म	xvi.	अश्मरी
xvii.	कामला		

उपर्युक्त वर्णित निदान पाण्डु रोग के सामान्य निदान हैं। पाण्डु रोग के विशिष्ट निदानों का वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

आधुनिक निदान

आधुनिक मतानुसार रक्ताल्पता (पाण्डु रोग - Anaemia) के निम्न कारण होते हैं—

i. Excessive Blood loss (Haemorrhage)
ii. Impaired Red Cell formation due to
  (a) Thalassemia - A group of hereditary anaemias produced by defective production of Alpha or Beta haemoglobin.
  (b) Iron deficiency / folic acid deficiency
  (c) Protein malnutrition
  (d) Infections / Inflammations
  (e) Renal / Hepatic failure
  (f) Vitamin B_{12} deficiency
  (g) Metastatic Malignant diseases
  (h) Aplastic anaemia (Bone-marrow - disorders)
  (i) Drug induced anaemia

1. "निदान-पञ्चके (वैद्य शिवचरणध्यानी) से सामार उद्धृत।"

iii. Haemolytic causes
   (a) Extrinsic factors - Vit. B_{12}, Iron, Folic acid, Ascorbic acid.
   (b) Intrinsic factor - Bone marrow
iv. Worm infestation (Hook worm)
v. Various diseases
   (a) Scurvy - Vitamin C deficiency disease characterised by Haemorrhagic manifestations.
   (b) Purpura - A condition with various manifestations characterised by haemorrhages into the skin, mucous membrane, internal organs and other tissues.
   (c) Haemophilia - A hereditary blood disorder marked by greatly prolonged coagulation time, with consequent failure of the blood to clot and abnormal bleeding due to deficiency of factor VIII.
   (d) Malaria - An infectious disease due to protozoa of the genus plasmodium in red blood cells.

सम्प्राप्ति—पाण्डु रोग की सामान्य व विशिष्ट सम्प्राप्ति का वर्णन शास्त्रों में निम्न रुप में प्राप्त होता है—

1. सामान्य सम्प्राप्ति[1]

रस रक्तादि धातुवह स्रोतस् में पित्तप्रधान त्रिदोष के प्रकुपित होने से धातु पोषण क्रम में शिथिलता व गौरवता उत्पन्न हो जाती हैं। दोष-दूष्य के प्रदूषित होने से बल, वर्ण, स्नेह व ओज के गुणों का क्षय होने लगता है, परिणामस्वरुप अल्परक्तता, अल्पमेदता, नि:सारता एवं इंद्रिय शिथिलता उत्पन्न होती है। शरीर वैवर्ण्य हो जाता है। फलस्वरुप पाण्डु रोग की उत्पत्ति होती है।

1. i) "दोषाः पित्तप्रधानास्तु यस्य कुप्यन्ति धातुषु।
   शैथिल्यं तस्य धातूनां गौरवं चोपजायते॥
   ततो वर्णबलस्नेहा ये चान्येऽप्योजसो गुणाः।
   व्रजन्ति क्षयमत्यर्थं दोषदूष्यप्रदूषणात्॥
   सोऽल्परक्तोऽल्पमेदस्को निःसारः शिथिलेन्द्रियः।
   वैवर्ण्यं भजते, तस्य हेतुं श्रृणु सलक्षणम्॥" (च.चि. 16/4-6)
   ii) "निषेवमाणस्य विदूष्य रक्तं, कुर्वन्ति दोषास्त्वचिपाण्डुभावम्॥" (सु.उ. 44/3)

2. विशिष्ट सम्प्राप्ति[1]

विभिन्न निदान सेवन
↓
पित्त प्रधान त्रिदोष प्रकोप
↓
त्वचा व मांस के मध्य स्थानसंश्रय
↓
कफ, वात, रक्त, मांस दूषित (रक्ताल्पता)
↓
त्वचा का पाण्डुर वर्ण होना (Pallor)
↓
पाण्डु रोग (Anaemia)

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	पित्त प्रधान त्रिदोष प्रकोप
दूष्य	:	रस, रक्त, त्वचा व मांस
स्रोतस्	:	रसवह, रक्तवह
स्रोतो दुष्टि प्रकार	:	संग
अधिष्ठान	:	सर्व शरीरगत त्वचा
आशय	:	आमाशयोत्थ (संतर्पणजन्य रोग)
अग्नि	:	धात्वग्निमांद्य
व्याधिस्वभाव	:	चिरकारी
साध्यासाध्यता	:	साध्य/कृच्छ्र साध्य

भेद

आचार्यों ने पाण्डु रोग के निम्न भेद वर्णित किए हैं[2]—

1. "समुदीर्णं यदा पित्तं हृदये समवस्थितम्।
   वायुना बलिना क्षिप्तं संप्राप्य धमनीदंश॥
   प्रपन्न केवलं देहं त्वङ्मांसान्तरमाश्रितम्।
   प्रदूष्य कफवातासृक्त्वङ्मांसानि करोति तत्।
   पाण्डुहारिद्रहरितान् वर्णान्बहुविधांस्त्वचि॥" (च.चि. 16/9-11)
2. i) "पञ्च पाण्डुरोगा इति वातपित्तकफसन्निपातमृद्भक्षणजाः॥" [च.सू. 19/3 (4)]
   ii) "पाण्ड्वाभयोऽष्टार्धविधः प्रदिष्टः पृथक् समस्तैर्युगपच्च दोषैः।" (सु.उ. 44/4)
   iii) "स पञ्चधा पृथग्दोषैः समस्तैर्मृत्तिकाऽदनात्॥" (अ.हृ.नि. 13/7)

क्र.सं.	आचार्य चरक	आचार्य सुश्रुत	आचार्य वाग्भट्ट (अ.हृ.)
1.	वातज	वातज	वातज
2.	पित्तज	पित्तज	पित्तज
3.	कफज	कफज	कफज
4.	सन्निपातज	सन्निपातज	सन्निपातज
5.	मृदु भक्षण जन्य (कृमि कोष्ठज)	---	मृत्तिकाभक्षण जन्य

अन्य आचार्य कामला, हलीमक, पानकी को भी पाण्डु रोग का ही भेद मानते हैं। आचार्य चरक ने पाण्डु, कामला व हलीमक रोग का वर्णन एक ही अध्याय में किया है।

पूर्वरुप[1]

षड्क्रियाकाल (सम्प्राप्ति क्रम) में स्थानसंश्रय की अवस्था में उत्पन्न होने वाले लक्षणों को पूर्वरुप (Pre-clinical stage/prodormal symptoms) कहा जाता है। आचार्यों ने पाण्डुरोग के निम्न पूर्वरुपों का वर्णन किया है—

i. हृदयस्पन्दन (Palpitation)
ii. रुक्षता (Dryness of skin)
iii. स्वेदाभाव (No sweating)
iv. थकावट (Fatigue)
v. त्वक्स्फोट (Fissuring of skin)
vi. ष्ठीवन (Excessive salivation)
vii. गात्रसाद (Inertia in Body)
viii. मृद्भक्षण इच्छा (Desire to eat clay/mud)
ix. अक्षिकूटशोथ (Swelling around the eyes)
x. मल-मूत्र पीला (Yellowness of urine, stool)
xi. अविपाक (Indigestion)

1. i) "तस्य लिङ्गं भविष्यतः।
हृदयस्पन्दनं रौक्ष्यं स्वेदाभावः श्रमस्तथा॥" (च.चि. 16/12)
ii) "त्वक्स्फोटनं ष्ठीवनगात्रसादौ मृद्भक्षणं प्रेक्षणकूटशोथः।
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको, भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि॥" (सु.उ. 44/5)

सामान्य लक्षण (रुप)[1]

आचार्य चरक ने पाण्डु रोग के निम्न लक्षण वर्णित किए हैं—

i. त्वचा का पाण्डु वर्ण होना (Pallor of the skin)
ii. रक्ताल्पता (Scanty blood)
iii. अल्प मेदस्विता (Fat/marrow deficiency)
iv. निःसारता (Loss of glow)
v. शिथिलेन्द्रिय (Sensory blunting)
vi. कर्णक्ष्वेड (Tinnitus)
vii. दुर्बलता (Weakness)
viii. अग्निमान्द्य (हतानल) (Indigestion)
ix. अरुचि (Anorexia)
x. थकावट (Fatigue)
xi. भ्रम (Vertigo)
xii. ज्वर (Fever)
xiii. श्वास (Exertional Dyspnoea)
xiv. अक्षिकूट शोथ (प्रेक्षणकूट शोथ) (Swelling around eyes)
xv. शीर्णलोम (Fall of hair)
xvi. शिशिरद्वेषी (Avertion to cold)
xvii. अतिनिद्रा (Excessive sleep)
xviii. ष्ठीवन (Excessive salivation)
xix. अल्पवाक् (Feeble speech)
xx. पिण्डिकोद्वेष्टन (Cramps in calf region)

1. i) "सोऽल्परक्तोऽल्पमेदस्को निःसारः शिथिलेन्द्रियः।" (च.चि. 16/6)
ii) "संभूतेऽस्मिन् भवेत् सर्वः कर्णक्ष्वेडी हतानलः।
दुर्बलः सदनोऽन्नद्विट् श्रमभ्रमनिपीडितः॥
गात्रशूलज्वरश्वासगौरवारुचिमान्नरः।
मृदितैरिव गात्रैश्च पीडितोन्मथितैरिव॥
शूनाक्षिकूटो हरितः शीर्णलोमा हतप्रभः।
कोपनः शिशिरद्वेषी निद्रालुः ष्ठीवनोऽल्पवाक्॥
पिण्डिकोद्वेष्टकट्यूरुपादरुक्सदनानि च।
भवन्त्यारोहणायासैर्विशेषश्चास्य वक्ष्यते॥" (च.चि. 16/13-16)

विशिष्ट लक्षण (भेदानुसार लक्षण)[1]

विभिन्न संहिताओं में पाण्डु रोग के भेदों के लक्षण निम्नानुसार वर्णित हैं—

क्र.सं.	वातज	पित्तज	कफज	सन्निपातज	मृदभक्षण जन्य
1.	कृष्णता	पीतता	गौरव	त्रिदोषों	बलनाश
2.	पाण्डुता	हरिद्रता	तन्द्रा	के मिश्रित	वर्णनाश
3.	रुक्षता	ज्वर	छर्दि	लक्षण	अग्निनाश
4.	अरुणता (लालिमा)	दाह	श्वेतता	मिलते हैं	अक्षिकूटशोथ
5.	अंगमर्द	तृष्णा	प्रसेक	यथा-ज्वर,	गण्ड व भ्रू-
6.	रुजा	मूर्च्छा	लोमहर्ष	अरोचक,	प्रदेश शोथ
7.	तोद	मल-मूत्र-पीला	गात्रसाद	हल्लास,	पाद व नाभि
8.	कम्प	अतिस्वेद	मूर्च्छा	छर्दि,	में शोथ
9.	पार्श्वशूल	शीतकामिता	भ्रम	तृष्णा,	कोष्ठकृमि-
10.	शिर:शूल	अरुचि	क्लम	क्लम आदि	(worm)
11.	शुष्क मल	कटुकास्यता	श्वास		रक्त व कफ
12.	आस्य वैरस्य	उद्‌गार	कास		मिश्रित रक्त
13.	शोफ	विदग्ध अन्न	आलस्य		त्याग
14.	आनाह	दौर्गन्ध	अरुचि		
15.	बलक्षय	तम	वाक्स्वरग्रह		
		भिन्न वर्च-	मलमूत्रनेत्रश्वेत		
		अतिसार	कटु-रुक्ष-		
			उष्णकामिता		
			शोथ		
			मधुरास्यता		

1. i) "आहारैरुपचारैश्च .....।
.....बलक्षयान्॥" (च.चि. 16/17-18)
ii) "पित्तलस्याचितं .....।
.....तम एव च॥" (च.चि. 16/19-22)
iii) "विवृद्धः .....।
.....कफात्॥" (च.चि. 16/23-25)
iv) "सर्वात्रसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम्।
त्रिदोषलिङ्गं कुर्वन्ति पाण्डुरोगं सुदुःसहम्॥" (च.चि. 16/26)
v) "मृत्तिकादनशीलस्य .....।
.....कफान्वितम्॥" (च.चि. 16/27-30)
vi) "कृष्णेक्षणं .....।.....व्यवस्येद्॥" (सु.उ. 44/7-9)
vii) "ज्वरारोचकहल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः।
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः॥" (मा.नि. 8/7)

मृत्तिकाभक्षण जन्य पाण्डु[1]

आचार्य चरक ने मिट्टी के सेवन से उत्पन्न मृद्‌भक्षणजन्य पाण्डु का वर्णन किया है। इसकी सम्प्राप्ति निम्नानुसार है—

मृत्तिकाभक्षण (निदान सेवन)
↓
कषायमृत्तिका → वातप्रकोप
ऊसर मृत्तिका → पित्त प्रकोप
मधुर मृत्तिका → कफ प्रकोप
↓
मृत्तिका रुक्षण गुण+त्रिदोष प्रकोप
↓
भोजन, रस, रक्तादि रूक्षता
↓
मृत्तिका अविपाक
↓
स्रोतोरोध
↓
धातुपोषण अभाव
↓
दोष प्रकोप
↓
इन्द्रिय बलनाश
बल-वर्ण-अग्निनाश
उष्मा क्षय (मन्दाग्नि)
ओजक्षय
↓
पाण्डु उत्पत्ति

लक्षण—मृद्‌भक्षण जन्य पाण्डु में निम्न लक्षण मिलते हैं—

i. शोथ-अक्षिकूट, गण्ड, भ्रू, पाद, नाभि, मूत्रेन्द्रिय में शोथ।
ii. उदर कृमि

1. "मृत्तिकादनशीलस्य.....।
..... कफान्वितम्॥" (च.चि. 16/27-30)

iii. बार-बार कफ व रक्तमिश्रित मल त्याग
iv. अग्निमांद्य
v. ओजक्षय

साध्यासाध्यता

विभिन्न ग्रंथों में पाण्डु रोग की असाध्यता के निम्न लक्षण मिलते हैं। इन लक्षणों से युक्त रोगी असाध्य होता है—

असाध्यता लक्षण[1]

i. चिरकालीन उत्पन्न (Chronic Anaemia)
ii. खरीभूतता (Tissue Damage)
iii. शोथाधिक्य (Oedema)
iv. पीतानि पश्यति (Yellow vision)
v. बद्धाल्पविड् (Constipation)
vi. सकफहरित अतिसार (Diarrhoea - Geenish mucoid)
vii. दीन (Lean & weak)
viii. अति श्वेत (Severe Paleness)
ix. छर्दि (Vomiting)
x. मूर्च्छा (Fainting)
xi. तृष्णा (Excessive Thirst)
xii. अतिरक्तक्षय जिसमें पाण्डुता श्वेतता में बदल गयी हो।
xiii. दन्त, नख, नेत्र का पाण्डु वर्ण होना
xiv. पाण्डुसंघात दर्शी—जो सभी वस्तुओं को श्वेत-पीत वर्ण का देखता हो।
xv. हस्त-पाद-शिर शोथ युक्त हो, मध्यकाय क्षीण हो।
xvi. मध्य काय शोथ युक्त व हस्तपाद शिर शोथ रहित हो।
xvii. गुदा, लिङ्ग अण्डकोष में शोथ हो।

1. i) "पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः .....।
..... लक्षणम्॥" (च.चि. 16/31-33)
ii) "अन्तेषु शूनं.....।
.....ज्वरपीड़ित च॥" (सु.उ. 43/44)
iii) "पाण्डुदन्तनखो यश्च पाण्डुनेत्रश्च मानवः।
पाण्डुसंवातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति॥" (सु.सू. 33/23)

उपद्रव[1]

आचार्य सुश्रुत ने उत्तर तंत्र में पाण्डुरोग के निम्न उपद्रवों का वर्णन किया है—

i. अरुचि (Anorexia)
ii. पिपासाधिक्य (Excessive thirst)
iii. छर्दि (Vomiting)
iv. ज्वर (Fever)
v. शिरःशूल (Headache)
vi. अग्निमांद्य (Indigestion)
vii. शोष (Emaciation)
viii. कण्ठदुर्बलता (Feeble voice)
ix. मूर्च्छा (Fainting)
x. क्लम (Malaise)
xi. हृपीड़नम (Cardiac pain)
xii. श्वास (Exerstional dyspnoea)
xiii. अतिसार (Diarrhoea)
xiv. कास (Cough)
xv. दाह (Burning sensation)
xvi. स्वरभेद (Hoarseness of voice)

इन सभी उपद्रवों की चिकित्सा शास्त्र में वर्णित उपक्रमों से करनी चाहिए।

चिकित्सा सूत्र

1. निदान परिवर्जनम्
2. **संशोधन चिकित्सा[2]**

आचार्य चरक ने साध्य पाण्डु रोगी की चिकित्सा का निम्न सूत्र वर्णित किया है—

तत्र पाण्ड्वामयी स्निग्धैस्तीक्ष्णैरुर्ध्वानुलोमिकैः।
संशोध्यो मृदुभिस्तिक्तै कामली तु विरेचनैः॥
(च.चि. 16/40)

अर्थात् साध्य पाण्डु रोग में निम्न उपक्रम अपनाने चाहिए—

1. i) "उपद्रवास्तेष्वरुचिः पिपासा छर्दिर्ज्वरोमूर्धरुजाऽग्निसादः।
शोषस्तथाकण्ठगतोऽबलत्वं, मूर्च्छा क्लमो हृद्यपीड़नं च॥" (सु.उ. 44/15)
ii) "श्वासातिसारारुचिकासमूर्च्छा तृट्छर्दिशूलज्वरशोफदाहान्।
तथाऽविपाकस्वरभेदसादान् जयेद्यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम्॥" (सु.उ. 44/38)
2. "साध्यतु पाण्ड्वामयिनं समीक्ष्य, स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम्।
संपादयेत क्षौद्रघृतप्रगाढै हरीतकीचूर्णयुतैःप्रयोगैः॥" (सु.उ. 44/16)

i. निदान परिवर्जन
ii. आभ्यन्तर स्नेहन
iii. तीक्ष्ण संशोधन (वमन, विरेचन)
iv. बस्ति (रक्तवस्ति)

उपर्युक्त उपक्रमों के द्वारा चिकित्सक दोषों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बार-बार शरीर से बाहर निकालें, क्योंकि दोषों के बाहर न निकलने से शोथ उत्पन्न हो जाता है[1]।

3. संशमन चिकित्सा[2]

पाण्डु रोगी की चिकित्सा में निम्न संशमन चिकित्सा अपनाने का विधान है—

1. वातज पाण्डु— स्नेहन (आभ्यन्तर)
2. पित्तज पाण्डु— तिक्त रस व शीतवीर्य औषध
3. कफज पाण्डु— कटु-तिक्त रस व उष्णवीर्य औषध
4. सन्निपातज पाण्डु— मिश्रित चिकित्सा
5. मृदभक्षणजन्य पाण्डु— निदान परिवर्जनम्, कृमि उपचार, बल्यघृत।
6. सभी प्रकार के पाण्डु में— पथ्य अन्न सेवन

चिकित्सा क्रम

पाण्डु रोगी की चिकित्सा में निम्न चिकित्सा क्रम उपयोग में लाना चाहिये-

I. संशोधन चिकित्सा[3]

1. स्नेहन (आभ्यन्तर)— विशेषकर वातज पाण्डु में

मात्रा	: 10-20 मि.ली.
अनुपान	: उष्णोदक
(i) दाड़िम घृत	: दाड़िम, धान्यक, चित्रक
(ii) कटुकाद्य घृत	: कुटकी, मुस्तक, हरिद्रा
(iii) पञ्चगव्यघृत	: गोर्बर, दधि, क्षीर, मूत्र, घृत
(iv) महातिक्त घृत	: अतीस, अमलतास, कुटकी
(v) कल्याणक घृत	: इन्द्रवारुणी, त्रिफला
(vi) हरिद्रादि घृत	: हरिद्रा, त्रिफला, निम्ब

1. "हरेच्च दोषान् बहुशोऽल्पमात्रान् श्वयेद्धि दोषेष्वतिनिर्हृतेषु॥" (सु.उ. 44/20)
2. i) "वातिके स्नेहभूयिष्ठं, पैत्तिके तिक्तशीतलम्॥
श्लैष्मिके कटुतिक्तोष्णं, विमिश्रं सान्निपातिके।" (च.चि. 16/116-117)
ii) "निपातयेच्छरीरातु .....।
.....योजयेत्॥" (च.चि. 16/117-118)
3. "पञ्चगव्यं महातिक्तं कल्याणकमथापि वा।
स्नेहनार्थं घृतं दद्यात् कामलापाण्डुरोगिणे॥" (च.चि. 16/43)

(vii) पथ्याघृत : हरीतकी
(viii) दन्तीघृत : दन्ती
(ix) द्राक्षा घृत : द्राक्षा
(x) व्योषाद्य घृत : त्रिकटु, त्रिफला, बिल्व।

2. तीक्ष्ण वमन कर्म[1]

(i) विशेषकर मृद्भक्षण जन्य पाण्डु में।
(ii) कफज पाण्डु में कटु-तिक्त रस युक्त व उष्ण वीर्य द्रव्यों से तीक्ष्ण वमन। यथा- धामार्गव कल्प से।

3. तीक्ष्ण विरेचन कर्म[2]—विशेषकर पित्तज पाण्डु रोगी में

(i) गोमूत्र व दुग्ध से
(ii) केवल दुग्ध से
(iii) दन्तीफलक्वाथ, द्राक्षा व गम्भारी फल से
(iv) निशोथ चूर्ण व शर्करा से
(v) पथ्याघृत प्रयोग से
(vi) हरीतकी चूर्ण से।

4. रक्तबस्ति[3]—आचार्य चरक ने सिद्धि स्थान में जीवादान (रक्तक्षय) की अवस्था में अजा रक्त बस्ति का वर्णन किया है।

II. संशमन चिकित्सा

पाण्डु रोग की सफल चिकित्सा हेतु निम्न औषध योगों का युक्तिपूर्वक प्रयोग करना चाहिये—

1. रस/भस्म/लौह/मण्डूर

मात्रा	: 125-250 मि.ग्रा.
अनुपान	: मधु, घृत, तक्र
(i) सिन्दूर भूषण रस	: पारद, रससिन्दूर, लौह
(ii) पुनर्नवा मण्डूर	: पुनर्नवा, त्रिफला, शुण्ठी

1. "तत्र पाण्ड्वामयी स्निग्धस्तीक्ष्णैरुर्ध्वानुलोमिकैः।
संशोध्यो मृदुभिस्तिक्तैः कामली तु विरेचनैः॥" (च.चि. 16/40)
2. "स्नेहैरेभिरुपक्रम्य स्निग्धं मत्वा विरेचयेत्।
पयसा मूत्रयुक्तेन बहुशः केवलेन वा।
दन्तीफलरसे कोष्णे काश्मर्याञ्जलिना शृतम्॥
द्राक्षाञ्जलि मृदित्वा वा दद्यात् पाण्ड्वामयापहम्।
द्विशर्करं त्रिवृच्चूर्णं पलार्धं पैत्तिकः पिबेत्।" (च.चि. 16/55-57)
3. "तदेव दर्भमृदितं रक्तं बस्तिं प्रदापयेत्॥" (च.सि. 6/83)

(iii) नवायस लौह : त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद, लौह
(iv) शोथारि लौह : त्रिकटु, यवक्षार, लौह
(v) विडंगादि लौह : विडंग, मुस्तक, त्रिफला
(vi) स्वर्ण माक्षिक भस्म : ताम्र, लौह, गंधक
(vii) ताप्यादि लौह : [illegible]ता, त्रिकटु, शिलाजतु
(viii) धात्री लौह : आमलकी, मुलैठी, अमृता, लौह
(ix) योगराज : त्रिफला, त्रिकटु, स्वर्ण माक्षिक
(x) त्र्यूषाद्य लौह : त्रिकटु, त्रिफला, लौह
(xi) शुद्ध मण्डूर भस्म (गोमूत्र भावित)
(xii) लौह भस्म (गुग्गुलु भावित)
(xiii) शुद्ध कासीस भस्म
(xiv) शंख भस्म (निम्बू स्वरस भावित)

2. वटी/वटक

मात्रा : 250-500 मि.ग्रा.
अनुपान : मधु/घृत/तक्र
(i) आरोग्यवर्धिनी वटी : कज्जली, कुटकी, ताम्र, त्रिफला
(ii) मण्डूर वटक : त्रिकटु, त्रिफला, विडंग, मण्डूर
(iii) अभयावटी : हरीतकी, मरिच, जयपाल
(iv) तक्रवटी : कज्जली, वत्सनाभ, मण्डूर

3. चूर्ण

मात्रा : 2-6 ग्राम
अनुपान : उष्णोदक, मधु
(i) विशालादि चूर्ण : इन्द्रायण, कुटकी, मुस्तक
(ii) त्रिफला चूर्ण : त्रिफला स्वरस भावित हरीतकी, विभीतकी, आमलकी
(iii) आमलकी चूर्ण : आमलकी स्वरस भावित आमलकी

4. क्वाथ

मात्रा : 20-40 मि.ली.
अनुपान : मधु, जल
(i) फलत्रिकादि क्वाथ : त्रिफला, गिलोय, वासा
(ii) पुनर्नवाष्टक क्वाथ : पुनर्नवा, नीम की छाल, पटोलपत्र, सौंठ, कुटकी, गिलोय, देवदारू, बड़ी हरड़

5. आसव/अरिष्ट/अर्क

मात्रा : 20-40 मि.ली.
अनुपान : जल
(i) कुमार्यासव : कुमारी, हरीतकी, ताम्र, लौह
(ii) लोहासव : त्रिकटु, त्रिफला, विडंग, लौह
(iii) पुनर्नवासव : त्रिफला, त्रिकटु, एरण्ड, पुनर्नवा
(iv) विडंगारिष्ट : पिप्पली, रास्ना, इन्द्रयव, विडंग
(v) रक्तमित्रार्क : गुड़, दधि, लोहचूर्ण, गोमूत्र
(vi) द्राक्षासव : द्राक्षा, मधु, धायपुष्प

6. अवलेह

मात्रा : 10-20 ग्राम
अनुपान : दुग्ध, जल
(i) धात्र्यवलेह : वंशलोचन, शुण्ठी, मुलैठी, आमलकी
(ii) दार्व्यादि लेह : दारुहरिद्रा, त्रिफला, त्रिकटु, विडंग
(iii) द्राक्षावलेह : मुनक्का, गोघृत, जायफल

7. घृत

मात्रा : 10-20 मि.ली.
अनुपान : दुग्ध, उष्णोदक
(i) रोहितक घृत : पंचकोल, रोहितक
(ii) महातिक्त घृत : अतीस, अमलतास, कुटकी
(iii) कल्याणक घृत : इन्द्रवारुणी, त्रिफला
(iv) त्रिफला घृत : हरीतकी, विभीतकी, आमलकी

8. रसायन

मात्रा : रोग व रोगी की आवश्यकतानुसार
(i) योगराज रसायन
(ii) त्रिफला रसायन
(iii) आमलकी रसायन
(iv) शिलाजतु रसायन
(v) लौह रसायन
(vi) गोमूत्र हरीतकी
(vii) च्यवनप्राश
(viii) मण्डूर रसायन

9. **कल्प चिकित्सा**

(i) लौह पर्पटी : पारद, गंधक, लौह

(ii) विजय पर्पटी : पारद, गंधक, स्वर्ण, रजत

मात्रा : 125 मि.ग्रा. से प्रारम्भ कर प्रतिदिन 125 मि.ग्रा. बढ़ाते हुये कल्प प्रारम्भ करते हैं।

विधान : केवल दुग्धाहार पर रहकर संयमित रहते हुए कल्प क्रम कराते हैं।

काल मर्यादा : 40 दिन (एक मण्डल)

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
2. प्रातः सायंम्

पुनर्नवामण्डूर	: 250 मि.ग्रा.
नवायस लौह	: 125 मि.ग्रा.
शंख भस्म	: 250 मि.ग्रा.
प्रवाल पिष्टी	: 250 मि.ग्रा.
मधु से	: 1×2 मात्रा

3. भोजनोत्तर

आमलकी चूर्ण	: 2 ग्राम
त्रिफला चूर्ण	: 2 ग्राम
उष्णोदक से	: 1×2 मात्रा

4. आरोग्यवर्धिनी वटी : 2 वटी × तीन मात्रा
5. भोजनोत्तर

लोहासव	: 20 मि.ली.
रक्तमित्रार्क	: 20 मि.ली.
समभाग जल से	: 1×2 मात्रा

6. द्राक्षावलेह : 20 ग्राम
   दुग्ध से : 1×2 मात्रा
7. रात्रि में

हरीतकी चूर्ण	: 3 ग्राम
उष्णोदक से	: एक मात्रा

पथ्यापथ्य[1]

पाण्डु रोगी में युक्तिपूर्वक निम्न पथ्यापथ्य दिया जाना हितकारी रहता है—

[1] "शालीन सयवगोधूमान् पुराणान् यूषसंहितान्॥ मुद्गाढकी मसूरैश्च जाङ्गलैश्च रसैहितैः।"
(च.चि. 16/41-42)

पथ्य

आहार	विहार
यव, शाली चावल, मूंग-मसूर, कूष्माण्ड, परवल, जांगल मांस रस, गोमूत्र, हरिद्रा, मधु, घृत, तक्र, हरड़, शुण्ठी, आमलकी, पालक, चौलाई, मेथी, गाजर, केला, लशुन आदि।	प्रसन्नचित रहना, मृदु विरेचन आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
माष-सेम-तिल, हिंगु, ताम्बुल, सर्षप, सुरा, लवण, अम्ल, मत्स्य, अति जलपान आदि।	आतपसेवन, मैथुन कर्म, धूम्रपान, दिवाशयन, व्यायाम, वेगधारण, चिन्ता, क्रोध आदि।

Latest Developments

Anaemia

A reduction in the number of circulating Red blood cells is termed as Anaemia, which is not a disease; it is a symptom of various diseases.

Etiology

(i) Haemorrhage
(ii) Excessive Haemolysis in hypersplenism, malaria etc.
(iii) Iron deficiency
(iv) Nutritional anaemia-vit B_{12}, folic acid, protein deficiency
(v) Leukaemia, Aplastic anaemia
(vi) Congenital anaemia

Symptoms

(i) Pallor skin, nailbed and mucous membrane.
(ii) Vertigo
(iii) Weakness
(iv) Headache
(v) Drowsiness
(vi) General malaise
(vii) Dyspnoea
(viii) Tachycardia
(ix) Palpitation
(x) Slight fever etc.

Management : Principles

(i) Symptomatic
(ii) According to cause
(iii) Haematinic drugs
(iv) Haemopoietic drugs
(v) Blood transfusion
(vi) Plasma expander
(vii) Nourishing Diet etc.

अध्याय-30

आमवात
RHEUMATOID ARTHRITIS

व्याधि परिचय

सन्धि प्रदेश में मुख्य रूप से पाए जाने वाले रोगों में आमवात, सन्धिवात, वातरक्त, ग्रीवाग्रह एवं सन्धिग्रह आदि प्रमुख रोग हैं। आमवात रोग में आम रस (आम विष) से दूषित वात दोष ही व्याधि उत्पन्न करता है। आमवात का संकेत संहिताओं में मिलता है तथापि इसका स्वतन्त्र अध्याय के रूप में वर्णन सर्वप्रथम माधव निदान में आया है। आमवात सन्धिशोथ, स्तब्धता एवं शूल युक्त व्याधि है। यह रोग शरीर की छोटी तथा बड़ी सभी सन्धियों में किसी भी आयुवर्ग में उत्पन्न हो सकता है। प्रौढ़ावस्था व स्त्रियों में यह रोग अधिकतर मिलता है। आयुर्वेदोक्त 'आमवात' रोग आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित गठिया रोग (Rheumatoid Arthritis) से बहुत समानता रखता है।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 12, 15
2. माधव निदान-अध्याय 25
3. चक्रदत्त-अध्याय 25
4. शार्ङ्गधर संहिता, पूर्वखण्ड-अध्याय 7
5. रस रत्न समुच्चय-अध्याय 21
6. भैषज्य रत्नावली-अध्याय 29

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

'आमवात' शब्द 'आम' एवं 'वात' इन दो शब्दों से निर्मित हुआ है। एकी भाव होकर आम व वात इन दोनों के संयुक्त रूप को ही 'आमवात' संज्ञा दी जाती है।

* आमेन सहितः वातः आमवातः।
* आमश्च वातश्च आमवातः।

परिभाषा[1]

जब आम व वात दोष एक साथ प्रकुपित होकर शरीर में कोष्ठ, त्रिक प्रदेश और संधियों में प्रविष्ट होकर शोथ, शूल व स्तब्धता उत्पन्न करते हैं तब यह आमवात रोग

1. "युगपत्कुपितावन्तस्त्रिकसन्धिप्रवेशकौ।
स्तब्धं च गुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते॥" (मा.नि. 25/5)

कहलाता है।

पर्याय

विभिन्न ग्रंथों में आमवात के निम्न पर्याय वर्णित हैं—

i. रस वात
ii. आममारुत
iii. साम सन्धिवात
iv. गठिया वात
v. Rheumatoid arthritis

निदान

आमवात रोग में 'आमदोष' व 'वातदोष' प्रकोप के निदान एक साथ मिलते हैं जो निम्न हैं—

(अ) आहारज निदान[1]

i. विरुद्ध आहार
ii. स्निग्ध आहार
iii. अभिष्यन्दी, विदाही, गुरु अन्न सेवन
iv. शीतल व विषम आहार
v. विषमाशन
vi. अजीर्णाशन
vii. दधि-माष (उड़द), दुग्ध-पायस-लकुच-तैल-मत्स्य, आनूप मांस सेवन
viii. दूषित, विषयुक्त व पर्यूषित जल पान
ix. मन्दाग्नि

(ब) विहारज निदान

i. अतिव्यायाम
ii. रात्रिजागरण
iii. विरुद्ध विहार
iv. वेग धारण (विबन्ध)
v. दिवाशयन
vi. निश्चेष्ट (Lack of exercises)

1. i) "विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा॥" (मा.नि. 25/1)
ii) "न च खलु..... ।
..... प्रदूषयति॥" (च.वि. 2/8)
iii) "हिताहितोपसंयुक्तमन्नं समशनं स्मृतम्।
बहु स्तोकमकाले वा तज्ज्ञेयं विषमाशनम्॥
अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते।
त्रयमेतन्निहन्त्याशु बहून् व्याधीन् करोति वा॥" (सु.सू. 46/508-9)

vii. मेघावृत वात
viii. शीतल-पूर्वी वायु सेवन

(स) मानसिक निदान[1]

i. ईर्ष्या-द्वेष
ii. काम-क्रोध
iii. लोभ-मोह
iv. लज्जा-शोक
v. भय-चिन्ता
vi. आलस्य
vii. अवसाद

(द) निदानार्थकर रोग

i. ग्रहणी दोष
ii. रसावृत वात
iii. अग्निमांद्य (मन्दाग्नि)
iv. अजीर्ण रोग
v. उरुस्तम्भ

(इ) आधुनिक निदान

The cause of Rheumatoid arthritis is unknown. However it is thought that, particularly in genetically predisposed individuals, some environmental antigenic trigger, probably a virus, stimulates the production of autoantibodies (IgM rheumatoid factor) against the bodys, own IgM immunoglobins. This process can become self-perpetuating. The prominent feature is the formation of immune complexes (आमविष) within the joint resulting from tissue damage. These complexes activate complement and attract neutrophils. Phagocytosis of immune complexes by neutrophils leads to releasse of chemical mediators of inflammation. Continued inflammation stimulates the formation of a proliferative synovitis. This hypertrophic granulation tissue is called pannus. It is this process that is responsible for causing joint erosions[2].

सम्प्राप्ति

पूर्व वर्णित निदानों के सेवन से निर्मित आम दोष (Auto antigen) प्रकुपित वायु से प्रेरित होकर स्वधर्मी श्लेष्मा के मुख्य स्थान आमाशय, सन्धि, उर:, शिर एवं कण्ठ प्रदेश की ओर जाकर धमनियों में पहुँच जाता है। धमनियों में स्थित त्रिदोष से मिलकर और भी अधिक दूषित होकर पिच्छिलता-अभिष्यन्दता-गौरवता आदि गुणों से दृश्य-अदृश्य उभयविध स्रोतसों को दूषित कर शरीर में दुर्बलता, हृदय में भारीपन एवं क्लेदता

1. "मात्रयाऽयभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति।
चिन्ताशोकभयक्रोधदु:खशय्याप्रजागरै: ॥" (च.वि. 2/9)
2. From Medicine for Students by Golwalla and Colour Guide-Rheumatology by J.M.H. Moll.

उत्पन्न करता है। यह आम दोष शरीर में अनेक व्याधियों का जनक होने से अत्यन्त घातक होता है। आम दोष स्वधर्मी श्लेष्मा स्थान त्रिक-जानु-कर्पूर-मणिबन्ध अंगुलिसन्धियों में स्थान संश्रित होकर 'आमवात' रोग उत्पन्न कर वायु की चंचलता के कारण एक संधि से दूसरी संधि में स्थानान्तरित होता रहता है। आमदोष के कारण संधियों में शोथ, शूल, स्तब्धता, गौरवता एवं शरीर में अरुचि आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं[1]।

आमदोष

आचार्यों के अनुसार जठराग्नि (Digestive fire) की मन्दता के कारण अपाचित अन्न रस (आमदोष) जो उर्ध्व आमाशय में आश्रित हो, दोषों से और भी दूषित हो जाता है, वही आम है[2]। 'रोगा: सर्वेऽपिमन्देग्नौ' के अनुसार अधिकांश रोगों की उत्पत्ति मन्दाग्नि (Decreased Digestive fire) से ही होती है। मन्दाग्नि के कारण शरीर में अनेक मध्यवर्ती (Intermediate), अवांछित अपक्व पदार्थ बनकर संवाहित होते हैं जिन्हें 'आम' कहते हैं। 'आम' अपक्व व अर्धपक्व होने के कारण इनके अणु (Molecules) सामान्यत: सुपाचित व चयापचित द्रव्यों की तुलना में बड़े होते हैं। अत: ये शरीर के सूक्ष्म स्रोतों (Microchannels-Subcellular level) में प्राकृतत: संवाहित नहीं हो पाते और विभिन्न स्तरों पर स्रोतोरोध उत्पन्न करके विभिन्न रोग उत्पन्न करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। 'आमदोष' शरीर में विजातीय या विषद्रव्य के रूप में क्षोभक (Auto antigen) प्रभाव उत्पन्न करके अनेक विध बल दोष (Immune disorders) जैसे-आमवात रोग उत्पन्न करते हैं। अत: आम दोष की उत्पत्ति की कल्पना केवल अन्न रस के स्तर पर न करकर जठराग्नि, धात्वग्नि तथा भूताग्नि के स्तर पर भी करनी चाहिये।

1. "विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा॥
वायुना प्रेरितो ह्याम: श्लेष्मस्थानं प्रधावति।
तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनी: प्रतिपद्यते॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषित: सोऽन्नजो रस:।
स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिल:॥
जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरवं हृदयस्य च।
व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुण:॥" (मा.नि. 25/1-4)
2. i) "ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम्।
दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते॥" (अ.हृ.सू. 13/25)
ii) "आमेन तेन सम्पृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिता:।
सामा इत्युपदिश्यन्ते ये च रोगास्तदुद्भवा:॥" (अ.हृ.सू. 13/27)
iii) "अपच्यमानं शुक्तत्वं यात्यन्नं विषरूपताम्॥" (च.चि. 15/44)

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन→ (संचय) गुरु-स्निग्ध अन्नपान सेवन ↓ अग्निमान्द्य ↓ आमदोष उत्पत्ति ↳ आम+वात ↵ (प्रकोप) व्यायामादि वात प्रकोपक हेतु सेवन ↓ वात प्रकोप (चल गुण)↑

↓

(प्रसर) धमनियों द्वारा सर्व शरीर में संचरण

↓

स्थानिक दोषों से आम अत्यधिक दूषित, अतिपैच्छिल्य

↓

(स्थानसंश्रय) दूषित आम का श्लेष्म स्थानों (त्रिक, उरः, आमाशय, हृदय, सन्धि) में संश्रय

↓

रसवह स्रोतोसंग

↓

(व्यक्तावस्था) संधिशूल, शोथ, स्तब्धता गौरवता, ज्वर, हृद्दौर्बल्य लक्षण उत्पत्ति

↓

आमवात रोग (Rheumatoid Arthritis)

Pathogenesis of Rheumatoid Disease

Enteropathy

↓

Antigens of GIT origin (आम)

↓

Circulation in Blood

↓

Antibodies formation

↓

Antigen-Antibody Reaction

↓

Immune complex formation

↓

Immuno-Inflammation in-connective tissue system

↓

Rheumatoid Arthritis

सम्प्राप्ति घटक

दोष	: वातकफ प्रधान त्रिदोष, आम दोष	
दूष्य	: रस, रक्त, मांस, स्नायु, अस्थि, सन्धि, कण्डरा	
स्रोतस्	: रसवह स्रोतस्	
स्रोतोदुष्टि प्रकार	: संग	
अधिष्ठान	: सर्व सन्धियाँ	
उद्भव स्थान	: आमाशयोत्थ	
रोग मार्ग	: मध्यम रोगमार्ग	
व्याधि स्वभाव	: आशुकारी, कष्ट प्रद	
अग्नि	: जठराग्निमान्द्य, धात्वग्निमान्द्य	
साध्यासाध्यता	: नवीन रोग - साध्य	
	द्विदोषज - याप्य	वस्तुतः याप्य रोग
	त्रिदोषज - असाध्य	

भेद

(अ) **लक्षण तीव्रता अनुसार अवस्था**

(i) आशुकारी या तीव्रावस्था (Acute Phase)

(ii) चिरकारी या जीर्णावस्था (Chronic Phase)

(ब) **दोषानुसार अवस्था**[1]

(i) वातोल्वण (ii) पित्तोल्वण

(iii) कफोल्वण (iv) सन्निपातज

पूर्वरूप

आमवात रोग के पूर्वरूप में मुख्यतः आमोत्पत्ति के लक्षण एवं वातप्रकोपक सूचक लक्षण प्राप्त होते हैं। जैसे—

i. अग्निमान्द्य ii. आलस्य

iii. अंगमर्द iv. लालास्राव

1. "चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।
चतुर्थः सन्निपातेन..... ॥" (शा.स.पू.ख. 7/41)

v. हृद्गौरव
vi. निद्रानाश
vii. अरति
viii. रोम हर्ष

सामान्य रूप/लक्षण

आमवात रोग में निम्न सामान्य लक्षण प्राप्त होते हैं[1]—

i. अंगमर्द
ii. अरुचि
iii. तृष्णा
iv. शरीर में भारीपन
v. ज्वर
vi. सन्धि शोथ
vii. अपाक (अजीर्ण)
viii. कटि (प्रदेश) शूल
ix. उठने-बैठने, चलने-फिरने में कष्ट

भेदानुसार विशिष्ट लक्षण

(अ) लक्षणतीव्रता अनुसार अवस्था

(I) आशुकारी या तीव्रावस्था (Acute Phase) के लक्षण[2]

आमवात रोग की नवीन अवस्था तीव्र या उग्र स्वरुप की होती है। इसमें निम्न लक्षण प्रकट होते हैं-

i हस्त, पाद, शिर, गुल्फ, त्रिक, जानु, उरु प्रदेश की संधियों में पीड़ा युक्त शोथ (Large joint pain with swelling)
ii. विसर्पणशील शूल (वृश्चिकदंशवत् वेदना) (Agonising joint pain or fleeting pain)
iii. अग्निमांद्य (Indigestion)
iv. दौर्बल्य (Muscles wasting, weakness with weight loss)
v. प्रसेक (Excessive salivation)
vi. अरुचि (Anorexia)
vii. गौरवता (Heaviness)
viii. उत्साह हानि (Letharginess)
ix. आस्यवैरस्य (Tasteless mouth)
x. दाह (Burning sensation)

1. i) "अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णाह्यालस्यं गौरवं ज्वरः।
अपाकः शूनताऽङ्गानामामवातस्य लक्षणम्॥" (मा.नि. 25/6)
ii) "कट्यां व्यथा भवेन्नित्यं सन्धिषु श्वयथुर्भवेत्।
उत्थानेऽत्यसमर्थत्वमामवातस्य लक्षणम्॥" (र.र.स. 21/46)
2. "स कष्टः .....।
.....कष्टाश्चान्यानुपद्रवान्॥" (मा.नि. 25/7-10)

xi. बहुमूत्रता (Polyurea)
xii. कुक्षि में भारीपन व शूल (Pain & Heaviness in flanks)
xiii. निद्राविपर्यय (Day sleep, night awakening)
xiv. तृष्णा (Thirst)
xv. छर्दि (Vomiting)
xvi. भ्रम (Vertigo)
xvii. मूर्च्छा (Fainting)
xviii. हृद्ग्रह (Heaviness in Cardiac region)
xix. विबन्ध (Constipation)
xx. आन्त्रकूजन (Increased Bowel/sounds)
xxi. प्रातःकालीन जाड्यता (Morning stiffness)
xxii. आनाह (Flatulence)
xxiii. मृदु ज्वर (Low grade fever)
xxiv. पाण्डुता (Anemia)

कभी-कभी रोग की जीर्णावस्था (Chronic stage) में भी मेघावृत आकाश, वर्षा ऋतु, शीत ऋतु, ऋतुसंधि, विबन्ध, मानसिक तनाव आदि के कारण आमवात रोग के तीव्र स्वरुप के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। प्रायः आमवात रोग की तीव्र व उग्र अवस्था में रोगी को अत्यधिक कष्ट होता है।

(II) चिरकारी या जीर्णावस्था के लक्षण (Advanced / Chronic stage)

आमवात रोग की जीर्णावस्था में लक्षण कुछ मृदु स्वरुप के होते हैं जो निम्न प्रकार हैं-

i. अंग वैकल्य (Flexion deformity)
ii. खंज-अस्थि विकृति (e.g. Ulnar Deviation, Swan neck deformity)
iii. संकोच (Contractures)
iv. लघु संधियों का मृदंग आकृति का हो जाना (Spindle shaped small joints)
v. अंगुलिवक्रता (Spindle shaped fingers)
vi. संधिजाड्यता (Ankylosis)

(ब) दोषानुसार अवस्था

आचार्य माधवकर ने आमवात रोग के वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातिक भेद

के लक्षण वर्णित किये हैं। प्रत्येक भेद में त्रिदोषों की न्यूनाधिक उपस्थिति रहती है, किंतु विशिष्ट दोष की उल्बणता के आधार पर रोग का विशिष्ट भेद किया जाता है, यथा[1]-

i. **वातोल्बण आमवात के लक्षण**

(i) तीव्र संधि शूल (Acute joint pain)
(ii) निद्रानाश (Insomnia)
(iii) विबंध (Constipation)
(iv) उत्साहहानि (Letharginess)
(v) भ्रम (Vertigo)

ii. **पित्तोल्बण आमवात के लक्षण**

(i) अतिदाह (Intense Burning)
(ii) रक्तिमा (Redness)
(iii) पिपासाधिक्य (Excessive thirst)
(iv) मृदु ज्वर (Low grade fever)
(v) मूर्च्छा (Fainting)

iii. **कफोल्वण आमवात के लक्षण**

(i) स्तिमितता (Feeling as if covered with wet cloth)
(ii) गुरुता (Heaviness)
(iii) कण्डू (Itching)
(iv) अग्निमांद्य (Indigestion)
(v) बहुमूत्रता (Polyurea)

iv. **सन्निपातज आमवात के लक्षण**

इसमें त्रिदोषों के उपर्युक्त वर्णित मिश्रित लक्षण पाये जाते हैं। यह दुश्चिकित्स्य होता है।

सापेक्ष निदान

सामान्यत: आमवात का विभेदक निदान सन्धि शोथ युक्त विभिन्न विकृतियों से ही करना पड़ता है। अत: आमवात, संधिवात, वातरक्त एवं कोष्टुकशीर्ष व्याधियों में निम्न लक्षणों के आधार पर भेद किया जा सकता है-

1. "पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम्।
स्तिमितं गुरुकण्डूं च कफदुष्टं तमादिशेत्॥" (मा.नि. 25/11)

क्र.स. आमवात	सन्धिवात	वातरक्त	क्रोष्टुकशीर्ष
1. प्राय: बड़ी संधियों से प्रारंभ होता है।	प्राय: जानुसंधि व त्रिक-कटि में उत्पन्न होता है।	प्राय: छोटी संधियों से प्रारंभ होता है (पाद अंगुष्ठ मूल)	प्राय: जानु संधि में ही विकृति रहती है
2. ज्वर रहता है	नहीं	नहीं	नहीं
3. संधि शोथ, शूल, स्तब्धता	संधि शोथ	संधि शूल	जानु संधि शोथ, शूल, वक्रता
4. हृद्ग्रह, हृद्गौरव	नहीं	नहीं	नहीं
5. त्रिदोषज (वातकफ प्रधान)	वात प्रधान	त्रिदोषज (वात पित्त प्रधान)	वात-रक्त प्रधान
6. वृश्चिक दंशवत् वेदना (Fleeting pain)	संधि शूल संधि स्फुटन (Bony crepitus)	मूषकदंशवत वेदना	संधि शूल
7. शोथ प्रधान रोग (Inflammatory Joint disease)	अस्थि-संधिक्षय प्रधान रोग (Degenerative Joint disease)	चयापचय जनित संधि रोग जनित संधि रोग (Metabolic Joint disease)	आघातज संधि रोग (Traumatic Joint disease)
8. जीर्णावस्था में स्नेहन से लाभ	स्नेहन से लाभ	स्नेहन से रोग वृद्धि	स्नेहन से रोग वृद्धि
9. रक्तमोक्षण से लाभ नहीं	लाभ नहीं	लाभ	लाभ

साध्यासाध्यता[1]

आमवात रोग की साध्यासाध्यता निम्न बिन्दुओं पर निर्भर करती है-
(i) नवीन आमवात रोग साध्य होता है।
(ii) एक दोषज व अल्प संधियों में उत्पन्न आमवात रोग साध्य होता है।
(iii) द्विदोषज व अल्प संधियों में उत्पन्न आमवात रोग याप्य होता है।
(iv) सन्निपातिक व सर्वशरीर गत संधियों में उत्पन्न आमवात रोग कृच्छ्रसाध्य होता है।

1. "एकदोषानुग: साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते।
सर्वदेहचर: शोथ: स: कृच्छ्र: सान्निपातिक:॥" (मा.नि. 25/12)

(v) आमवात रोग में पुनः पुनः प्रत्यावर्तन (Relapse) होने की प्रवृत्ति के कारण याप्य है।

(vi) सर्वाङ्ग शोथ युक्त व उपद्रव युक्त आमवात रोग असाध्य होता है।

उपद्रव

आमवात रोग के जीर्ण एवं जटिल होने पर निम्न कष्टदायक उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं-

(i) स्थायी वैकल्यता (Permanent deformity)
(ii) हृदयविकृति - द्विपत्रक कपाट विकृति (Cardiac involvement - mitral stenosis)
(iii) स्तब्धता (Ankylosis)
(iv) गतिनाश (Restricted movements)
(v) निद्रानाश (Insomnia)
(vi) चित्तावसादता (Depression)

चिकित्सा सूत्र

आचार्य चक्रपाणिदत्त ने सर्वप्रथम आमवात रोग के चिकित्सा सूत्र को वर्णित किया है, जो निम्न प्रकार है-

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च।
विरेचनं स्नेहपानं बस्तयश्चाममारुते॥
सैन्धवाद्येनानुवास्य क्षारबस्ति प्रशस्यते॥

(चक्रदत्त 25/1)

I **लंघन (अपतर्पण)**-आमवात संतर्पणजन्य रोग है। अतः आमदोष के पाचन हेतु लंघन (उपवास) कराया जाता है। अल्प बल दोष होने पर लंघन ही कराना चाहिए।

II **स्वेदन**-आमवात की नवीन अवस्था में आम दोष उपस्थित रहने पर रुक्ष स्वेद (Dry fomenntation) कराया जाता है। जीर्ण अवस्था में स्निग्ध स्वेदन कराते हैं। यह स्वेदन स्थानिक (नाड़ी स्वेद) व सार्वदैहिक (सर्वाङ्ग) प्रकार का होता है।

III **दीपन-पाचन**-आम दोष के पाचन के लिए व मध्य बल दोष उपस्थित रहने पर कटु-तिक्त द्रव्यों से दीपन पाचन कराना चाहिए। इससे अग्निबल की वृद्धि होती है।

IV **स्नेहपान**-शूल, विबन्ध एवं आनाह को दूर करने के लिए एरण्डतैल का पान कराते हैं।

V **विरेचन**-अधिक मात्रा में दोष उपस्थित रहने पर विरेचन कर्म कराया जाता है। इससे शोथ, दाह, विबन्ध एवं ज्वर शांत होता है।

VI **बस्ति**-आमवात रोग में अनुवासन व आस्थापन बस्ति (क्षार बस्ति) का प्रयोग विशिष्ट परिस्थितियों में कराना विशेष लाभकारी रहता है।

चिकित्सा क्रम

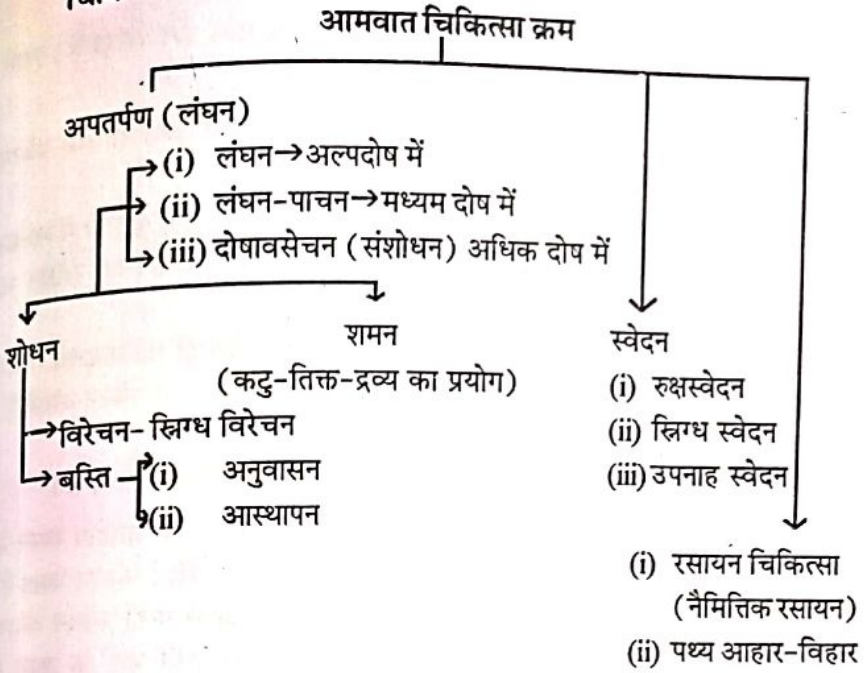

चिकित्सा

(अ) संशोधन चिकित्सा

आमवात रोग की चिकित्सा में रोग एवं रोगी की स्थिति अनुसार निम्न संशोधन चिकित्सा युक्ति पूर्वक प्रयुक्त कराना चाहिये—

(I) **लंघन-पाचन**—आम दोष पाचन के लिये निम्न औषध योग प्रयोग कराते हैं-

मात्रा : 3-6 ग्राम
अनुपान : उष्णोदक

(i) पंचकोल चूर्ण
(ii) अजमोदादि चूर्ण
(iii) त्रिकटु चूर्ण
(iv) शुण्ठी-दारक क्वाथ-20 मि.ली.×2 मात्रा

(II) **स्नेहन**—आमवात रोग की नवीन अवस्था में स्नेहन कर्म निषिद्ध है। रोग की जीर्णावस्था में निम्न तैल कल्पों से बाह्य स्नेहन कराते हैं—

(i) सैंधवादि तैल
(ii) वृहद् सैंधवादि तैल
(iii) प्रसारिणी तैल

आभ्यान्तर स्नेहपान के लिये एरण्ड तैल को गोमूत्र के साथ पान कराते हैं। इससे विबन्ध दूर होकर कोष्ठ शोधन होता है।

(III) **स्वेदन**—नवीन आमवात (सामावस्था) रोग में निम्न द्रव्यों से रूक्ष स्वेदन कराया जाता है—

(i) **बालुका स्वेद**—बालु (रेत) को कड़ाही में लाल गर्म कर, पोट्टली में भरकर शोथ-शूल युक्त संधियों पर स्वेदन के लिये प्रयुक्त करते हैं। यह स्वेदन 10 से 20 मिनट तक करावें।

(ii) **सैंधव लवण स्वेद**—सैंधव लवण के छोटे-छोटे टुकड़ों को कड़ाही में गर्म कर पोट्टली में भरकर शोथ-शूल व स्तब्धता वाले स्थान पर स्वेदन कराते हैं। यह स्वेदन भी 10-20 मिनट तक कराया जाता है।

(iii) कुल्थी, यव, तिल, अतसी आदि द्रव्यों से भी रूक्ष स्वेदन कराते हैं।

आमवात की जीर्णावस्था में जब आम दोष नष्ट हो जाता है तब वातदोष शमन के लिये स्निग्ध स्वेदन जैसे-पत्र पिण्ड स्वेद व षष्टिक शालि पिण्ड स्वेद कराया जाता है। एकाङ्ग सन्धि में दशमूल, बला, निर्गुन्डी, एरण्ड, शिग्रू के पत्रों से नाड़ी स्वेदन कराया जाता है। सर्वाङ्ग संधिगत दोष अवस्थित होने की स्थिति में इन्हीं पत्रों के क्वाथ से सर्वाङ्गपेटिका स्वेद कराने का विधान है।

(IV) **विरेचन**—आमवात रोगी में विरेचन हेतु निम्न औषध योगों का युक्ति पूर्वक प्रयोग करावें। इन विरेचक द्रव्यों का प्रयोग दोष, दूष्य, देश, काल, बल, सात्म्य, संहनन, अग्नि बल व कोष्ठ स्थिति के आधार किया जाता है—

(i) हरीतकी चूर्ण
(ii) एरण्डतैल (गोमूत्र या गोदुग्ध के साथ)
(iii) कंसहरीतकी
(iv) जयपाल युक्त सिंहनाद गुग्गुलु
(v) अभयादि मोदक
(vi) त्रिवृतादि चूर्ण (भै.र.) निशोथ, सैंधव, शुण्ठी

(V) **बस्ति**

(i) **अनुवासन**—आमवात रोग में सैंधवादि तैल अथवा नारायण तैल की अनुवासन बस्ति का प्रयोग किया जाता है। इसकी मात्रा लगभग 50 मि.ली.-100 मि.ली. तक होती है।

(ii) **निरूह (आस्थापन) बस्ति**—आमवात रोग में निम्न आस्थापन बस्तियों का प्रयोग निर्दिष्ट है—

i. **एरण्डमूलादि निरूह बस्ति**—एरण्ड, पलाश, लघुपंचमूल आदि।
(च.सि. 3/38-42)

ii. **दशमूलादि निरूह बस्ति**—दशमूल क्वाथ, कांजी, मांस रस, बला आदि।
(च.सि. 3/35)

iii. **क्षारबस्ति**—इमली, सौंफ, गुड़, सैंधव, गोमूत्र।
(च.द.निरुहाधिकार /29-31)

iv. **वैतरणबस्ति**—इमली, गुड़, सैंधव, गोमूत्र, तैल
(च.द.निरुहाधिकार /32)

(ब) संशमन चिकित्सा

आमवात रोग में निम्न शमन औषध योगों/कल्पों का प्रयोग युक्तिपूर्वक करवाना चाहिये—

1. रस/भस्म

मात्रा	: 125-250 मि.ग्रा.
अनुपान	: मधु
(i) आमवातारि रस	: कज्जली, त्रिफला, चित्रक, एरण्ड
(ii) मल्लसिन्दूर	: पारद, गन्धक, संखिया
(iii) समीरपन्नग रस	: कज्जली, संखिया, मनःशिला
(iv) महावातविध्वंस रस	: पारद, गंधक, वङ्ग, वत्सनाभ
(v) सुवर्ण भूपति रस	: कज्जली, ताम्र, अभ्रक, स्वर्ण
(vi) वातगजांकुश रस	: रस सिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, वत्सनाभ
(vii) योगेन्द्र रस	: रस सिन्दूर, स्वर्ण, लौह, अभ्रक
(viii) चिन्तामणिचतुर्मुख रस	: रस सिन्दूर, लौह, अभ्रक
(ix) रसराज रस	: रस सिन्दूर, अभ्रक, स्वर्ण
(x) श्रृंङ्ग भस्म	: मृगश्रृङ्ग
(xi) गोदन्ती भस्म	: अर्क भावित गोदन्ती

2. वटी

मात्रा	: 250-500 मि.ग्रा.
अनुपान	: सुखोष्ण जल
(i) संजीवनी वटी	: वत्सनाभ, भल्लातक, त्रिफला

(ii) अग्नितुण्डी वटी : कज्जली, वत्सनाभ, कुचला
(iii) चित्रकादि वटी : चित्रक, पिप्पली मूल, अजमोदा
(iv) आम प्रमाथिनी वटिका : अर्क, गंधक, लौह
(v) आमवातारि वटिका : कज्जली, लौह, ताम्र

3. **लौह**
मात्रा : 250-500 मि.ग्रा.
अनुपान : मधु
(i) त्रिफलादि लौह : त्रिफला, मोथा, विडंग, लौह
(ii) विडङ्गादि लौह : लौह, अभ्रक, कज्जली
(iii) पञ्चानन रस लौह : लौह, गुग्गुलु, अभ्रक

4. **गुग्गुलु**
मात्रा : 500 मि.ग्रा.-1000 मि.ग्रा.
अनुपान : सुखोष्ण जल
(i) सिंहनाद गुग्गुलु : त्रिफला, गंधक, एरण्ड तैल
(ii) योगराज गुग्गुलु : चित्रक, पिप्पली, अजवाइन
(iii) महायोगराज गुग्गुलु : शुण्ठी, कुटकी, रस सिन्दूर
(iv) वातारि गुग्गुलु : एरण्ड, गंधक, गुग्गुलु
(v) त्रयोदशांग गुग्गुलु : आभा, अश्वगंधा, गोक्षुर
(vi) गोक्षुरादि गुग्गुलु : त्रिफला, त्रिकटु, गोक्षुर
(vii) अमृतादि गुग्गुलु : त्रिफला, गिलोय, दन्ती
(viii) शिवा गुग्गुलु : एरण्ड, त्रिफला, गुग्गुलु
(ix) पुनर्नवादि गुग्गुलु : पुनर्नवा, देवदारु, हरड़

5. **चूर्ण**
मात्रा : 2-6 ग्राम
अनुपान : उष्णोदक, दशमूलक्वाथ
(i) पथ्यादि चूर्ण : हरीतकी, शुण्ठी, अजवाइन
(ii) पंचकोल चूर्ण : पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी
(iii) अजमोदादि चूर्ण : अजमोदा, विडंग, चित्रक
(iv) वैश्वानर चूर्ण : अजवाइन, शुण्ठी, सैंधव
(v) नागराद्य चूर्ण : शुण्ठी, पिप्पली
(vi) त्रिकटु चूर्ण : शुण्ठी, मरिच, पिप्पली
(vii) पंचसम चूर्ण : शुण्ठी, हरड़, निशोथ

(viii) नारसिंह चूर्ण : भिलावा, चित्रक, त्रिकटु

6. **क्वाथ**
मात्रा : 20-40 मि.ली.
अनुपान : जल, स्वतन्त्र रूप से
(i) धान्यपंचक क्वाथ : धनियां, शुण्ठी, नागरमोथा, बिल्व
(ii) रास्ना पञ्चक क्वाथ : रास्ना, अमृता, एरण्डमूल, शुण्ठी
(iii) रास्ना ससक क्वाथ : रास्ना, अमलतास, गोक्षुर
(iv) पुनर्नवादि क्वाथ : पुनर्नवा, शुण्ठी, कर्चूर
(v) महारास्नादि क्वाथ : रास्ना, एरण्ड, वासा
(vi) दशमूल क्वाथ : बिल्व, श्योनाक, गोक्षुर

7. **आसव/अरिष्ट**
मात्रा : 20-40 मि.ली.
अनुपान : जल
(i) पुनर्नवासव : शुण्ठी, मरिच, त्रिफला, पुनर्नवा
(ii) अश्वगन्धारिष्ट : अश्वगन्धा, मुसली, हरड़, विदारी कन्द
(iii) दशमूलारिष्ट : शालपर्णी, गोक्षुर, चित्रक
(iv) बलारिष्ट : बला, अश्वगन्धा, रास्ना

8. **पाक/लेह**
मात्रा : 10-20 ग्राम
अनुपान : दुग्ध, उष्णोदक
(i) एरण्डपाक : एरण्डगिरि, घृत, शर्करा, त्रिकटु
(ii) गोक्षुरादि अवलेह : गोक्षुर, शुण्ठी, मरिच

9. **लेप**
मात्रा : यथावश्यक
(i) दशांङ्ग लेप : शिरीष, चन्दन, एला
(ii) हिंस्रादि लेप : हिंस्रा, कण्टकारी, शिग्रू
(iii) हरिद्रा लेप : हरिद्रा
(iv) निर्गुन्डी पत्र लेप : निर्गुण्डी पत्र

10. **घृत**
मात्रा : 10-20 मि.ली.
अनुपान : उष्ण जल, दुग्ध
(i) शुण्ठी घृत : गोघृत, कांजी, शुण्ठी

(ii) गुडुची घृत : गिलोय, गोघृत, शुण्ठी
(iii) अश्वगंधा घृत : गोघृत, अश्वगन्धा, गोदुग्ध

11. तैल
(i) आभ्यान्तर प्रयोगार्थ : एरण्डतैल 20 मि.ली.
: एक मात्रा रात्रि में दूध से (5-7 दिन तक)

(ii) बाह्य प्रयोगार्थ
(i) बला तैल : बला, दशमूल, कुल्थी
(ii) प्रसारणी तैल : गन्ध प्रसारणी, एरण्ड
(iii) सैंधवाद्य तैल : सैंधव, देवदारु, वचा
(iv) महानारायण तैल : बिल्व, अश्वगन्धा, कण्टकारी

12. **एकल औषधियाँ**
शुण्ठी, रास्ना, चोपचीनी, पुनर्नवा, कुचला, अश्वगंधा, लशुन, भल्लातक, गुडुची आदि।

13. **रसायन प्रयोग**—चिकित्सक के परामर्श अनुसार
(i) अमृत भल्लातक (नैमित्तिक रसायन)
(ii) अश्वगन्धा रसायन
(iii) गुग्गुलु
(iv) रास्ना

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
2. लघु-रूक्ष-उष्ण-तिक्त-कटु आहार
3. सामावस्था (नवीन रोग)-रूक्षस्वेद, आमपाचन
निरामावस्था (जीर्ण रोग)-स्नेहन, स्वेदन, मृदु रेचन, बस्ति कर्म
4. प्रातः सायम्

आमवात विध्वंस रस	: 250 मि.ग्रा.
मल्ल सिन्दूर	: 125 मि.ग्रा.
संजीवनी वटी	: 500 मि.ग्रा.
शृङ्ग भस्म	: 250 मि.ग्रा.
शुद्ध कुपीलू	: 250 मि.ग्रा.
मधु से	1×2 मात्रा

5. भोजनोत्तर

अजमोदादि चूर्ण	: 2 ग्राम
नागराद्य चूर्ण	: 1 ग्राम
उष्णोदक से	1×2 मात्रा

6. भोजनोत्तर

अश्वगन्धारिष्ट	: 20 मि.ली.
अथवा	
बलारिष्ट	: 20 मि.ली
समभाग जल से	1×2 मात्रा

7. सिंहनाद गुग्गुलु : 2 वटी × तीन मात्रा, उष्ण जल से
अथवा
महायोगराज गुग्गुलु : 2 वटी × तीन मात्रा, उष्णोदक से

8. एरण्डपाक : 10-20 ग्राम
गर्म जल से 1×2 मात्रा

9. रात्रि (5-7 दिन प्रतिमाह)

एरण्ड तैल	: 20 मि.ली
दूध से	1 मात्रा

10. अमृत भल्लातक : 5-10 ग्राम
दूध से 1×2 मात्रा
अथवा

अश्वगन्धा पाक	: 10-20 ग्राम
दूध से	1×2 मात्रा

11. प्यास लगने पर पंचकोल पेय या शुण्ठी जीरक जल (यथावश्यक)
12. नियमित व्यायाम, चक्रमण : योगासन— चिकित्सकीय देखरेख में
: सत्वावजय— आश्वासन आदि उपाय।

पथ्यापथ्य

आमवात रोगी में युक्ति पूर्वक निम्न पथ्यापथ्य आहार-विहार का सेवन कराना लाभप्रद होता है—

पथ्य[1]

आहार	विहार
शुण्ठी, आर्द्रक, अजवाइन, सौंफ, मरिच, सैंधव, हिंगु, लशुन, जीरक, सहजन, परवल, करेला, यव, कोदों, तक्र, कुल्थी, गोमूत्र, उष्णोदक, एरण्ड तैल (विशेष उपयोगी) आदि।	रूक्षण, स्वेदन, लंघन (उपवास), चंक्रमण, मृदुव्यायाम, उष्ण वस्त्र आदि।

1. "रुक्षः स्वेदो.....।
..... आर्द्रकच्च॥" (भै.र. 29/232-234)

नोट—शरीर रूप वन में विचरण करने वाले आमवात रूपी गजेन्द्र (हस्ति) को नष्ट करने के लिये एरण्ड तैल रूपी सिंह ही अकेला पर्याप्त हैं[1]।

अपथ्य[2]

आहार	विहार
दधि, मत्स्य, गुड़, दुग्ध, माष, आनूप मांस, विरुद्ध-गुरु, असात्म्य भोजन पिष्टान्न, गरिष्ट भोजन आदि।	पूर्वी वायु, वेगधारण, रात्रि जागरण, आलस्य, चिन्ता शोक, मेघाच्छत्र, आकाश आदि।

Latest Developments
Rheumatoid Arthritis (R.A.)

Definition
A chronic polyarthritis characterised by bilateral symmetrical joint disease, erosions and synovitis.

Prevalence

Male	:	Female
6	:	2

Onset- 16-70 years

Etiology
Formation of immune complexes within the joints.

Clinical features
i. Pain in joints
ii. Morning stiffness.
iii. Swelling over joint.
iv. Anaemia.
v. Weight loss.
vi. Low grade fever.
vii. Lymph node enlargement.

Investigations
Anaemia-Hb%↓
Raised E S R
Positive test for Rheumatoid factor (R.A. factor)
Positive CRP (C. Reactive Protein)

1. "आमवातगजेन्द्रस्य शरीर वनचारिणः।
निहन्त्यसावेक एव एरण्डस्नेदकेशरी॥" (भै.र. 29/13)
2. "दधि.....।
..... सम्भवभ॥" (भै.र. 29/235-236)

Management : Principles

(I) General measures
i. Rest- Physical & mental.
ii. Diet- Nutritious, fibrous diet.
iii. Correction of Anaemia.
iv. Avoidance of cold, dampness, Rainy day.
v. Active Exerciss

(II) Drug Treatment
i. Analgesics.
ii. Non Steroidal Anti Inflammatory Drugs (NSAIDs).
iii. Remission inducing agents,
Such as Gold,
Penicillamine,
Chloroquine,
Corticosteroids etc.

(III) Local Treatment
i. Splinting.
ii. Aids & Appliances.
iii. Intra articular injections.
iv. Physiotherapy.
v. Occupational therapy.

(IV) Surgical Treatment
i. Prosthesis- Replacement of a missing part of joint by an artificial substitute. e.g. Hip joint replacement, knee joint replacement.
ii. Surgical fusion- If atlanto-axial subluxation with evidence of cord compression.
iii. Synovectomy- Surgical excision of the synovial membrane can produce subjective benefit for some years.

अध्याय-31

मद-मदात्यय
ALCOHOLISM

व्याधि परिचय

तमो गुण प्रधान होने से जो द्रव्य बुद्धि का नाश करके मद या मदात्यय उत्पन्न करते हैं वे मद्य-मदकारी या मादक द्रव्य कहलाते हैं[1]। आचार्यों ने स्पष्ट किया है कि मद्य एवं विष में ओज के विपरीत गुण होते हैं। अतः मद्य या सुरा का विधि विपरीत सेवन करने से उग्र स्वरूप का कष्टकारी 'मदात्यय' रोग उत्पन्न होता है[2]। आचार्य चरक के मतानुसार रस, रक्त एवं संज्ञावाही स्रोतसों में संग के कारण मद-मूर्च्छा-सन्यास रोग की उत्पत्ति होती है। हेतु, लिङ्ग, उपशय भेद से मद से मूर्च्छा और मूर्च्छा से सन्यास रोग अधिक बलवान होता है[3]। मद्य में लघु-उष्ण-तीक्ष्ण-सूक्ष्म-अम्ल-व्यवायी-आशुकारी-रूक्ष-विकासी एवं विशद से दश गुण होते हैं। ये गुण ओज के गुणों के बिल्कुल विपरीत हैं। अतः ओजक्षय ही मदात्यय रोग का प्रधान हेतु है।

आयुर्वेदीय संहिता ग्रन्थों में विविध प्रकार के मद्य, उनकी निर्माण विधियां, पानविधि एवं पानगोष्ठी का विस्तृत उल्लेख मिलता है। शल्यक्रिया के पूर्व संज्ञाहरण हेतु (As Anaesthesia) मद्य पान का भी इतिहास मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में मद्यपान का प्रचलन बहुत था। इसी कारण संहिता ग्रंथों में मद-मदात्यय एवं उनकी चिकित्सा व्यवस्था का विस्तृत उल्लेख मिलता है। मद्यपान के सामान्य प्रभाव को 'मद' कहा जाता है। आचार्य सुश्रुत ने मद की तीन अवस्थाओं का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त विधि-विधान विपरीत मद्य सेवन से उत्पन्न होने वाले चार प्रकार के निम्न विकारों का वर्णन भी किया है—

(i) पानात्यय (मदात्यय) (ii) परमद
(iii) पानाजीर्ण (iv) पानविभ्रम

1. "बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।
तमोगुणप्रधानं च यथामद्यसुराऽऽदिकम्॥" (शा.स.पू.ख. 4/22)
2. "ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्तेऽपि मद्ये प्रतिष्ठिताः।
तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः॥" (मा.नि. 18/1)
3. "यदातु.....।
.....हेतुलिङ्गोपशान्तिषु॥" (च.सू. 24/25-27)

मद-मदात्यय के अतिरिक्त मूर्च्छा रोग के सन्दर्भ में भी 'मद्यज मूर्च्छा' का उल्लेख मिलता है। मद्य का सेवन एकाएक छोड़कर पुनः मद्यपान करने से 'ध्वसंक' व 'विक्षय' नामक रोग उत्पन्न होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। सभी प्रकार के मदात्यय रोग त्रिदोषज होते हैं। अतः मद-मदात्यय के वर्णन के पूर्व मद्य के विषय में जानना आवश्यक है।

मद्य

आचार्य चरक ने निर्दिष्ट किया है कि अन्न-पान-वय-व्याधि-बल-काल इन षट्त्रिक एवं दोष-सत्व का विचार कर मद्यपान करना चाहिए[1]। स्वभावतः मद्य को अन्न के समान माना गया है। विधिपूर्वक सेवन करने पर मद्य एवं अन्न अमृत के समान गुणकारी होता है, अविधिपूर्वक एवं मात्राधिक्य सेवन करने से मद्य व अन्न रोगों को उत्पन्न भी करता है। क्योंकि कहा गया है कि प्राणियों का प्राण अन्न ही होता है। यदि विधिपूर्वक विष का भी सेवन किया जाय तो रसायन तुल्य होता है[2]। वात प्रकृति के व्यक्ति के लिए गुड़ व चावल से बनी मदिरा, पित्त प्रकृति के व्यक्ति के लिए मुनक्के (द्राक्षा) से बनी मदिरा एवं कफ प्रकृति के व्यक्ति के लिए मधु से बनी मदिरा हितकर होती है[3]। आचार्य चरक ने मद्य के गुणों में रोचन, दीपन, हृद्य, स्वरवर्ण प्रसादन, प्रीणन, बृंहण, वल्य, भय-शोक नाशन, निद्रा में रति कारक, विबन्धकर आदि का वर्णन किया है[4]। अविधि पूर्वक मद्य सेवन से ओज एवं सत्व गुण का नाश होता है। इंद्रियाँ वश में नहीं रहतीं एवं मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। विधिपूर्वक मद्य सेवन से वातानुलोमन होता है, स्रोतो विबन्ध व स्रोतोरोध दूर होता है, भोजन में रुचि होती है एवं जठराग्नि प्रदीप्त होती है[5]।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता, सूत्र स्थान-अध्याय 24
2. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 24

1. "अन्नपानवयोव्याधिबलकालत्रिकाणि षट्।
त्रीन्दोषां स्त्रिविधं सत्वं ज्ञात्वा मद्यं पिबेत्सदा॥" (च.चि. 24/68)
2. "किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम्।
आयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम्॥
प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून्।
विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम्॥" (च.चि. 24/59-60)
3. "वातिकेभ्यो हितं मद्यं प्रायो गौडिकपैष्टिकम्।
कफपित्ताधिकेभ्यस्तु माद्वीकं माधवं च यत्॥" (च.चि. 24/25)
4. "रोचनं दीपनं.....।
.....मद्यमुत्सवामोदकारकम्॥" (च.चि. 24/62-65)
5. "स्रोतोविबन्धनुन्मद्यं मारुतस्यानुलोमनम्।
रोचनं दीपनं चाग्नेरभ्यासात् सात्म्यमेव च॥" (च.चि. 24/119)

3. सुश्रुत संहिता, उत्तर तंत्र-अध्याय 47
4. अष्टाङ्ग हृदय, निदान स्थान-अध्याय 6
5. अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान-अध्याय 7
6. माधव निदान-अध्याय 18

निरुक्ति/ व्युत्पत्ति

(i) माद्यति इति मदः।

(ii) मदी हर्षे।

(iii) मदोऽनुपसर्गे इत्यप्। हर्षेऽप्यामोदवन्मदः॥ (अमरकोष 3/3/9)

परिभाषा[1]

जिन द्रव्यों के सेवन से बुद्धि (सत्व) का लोप हो अर्थात् जो द्रव्य तमोगुण प्रधान होकर सत्व व ओज का क्षय करते हैं वे "मदकारी" द्रव्य कहलाते हैं। मदकारक द्रव्यों से उत्पन्न रोगकारक स्थिति "मदात्यय" कहलाती है।

पर्याय

मद, मदात्यय, पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण, पानविभ्रम आदि मिलती-जुलती संज्ञायें हैं जो मदात्यय (Alcoholism) से सामञ्जस्य रखती हैं। आयुर्वेदोक्त मद एवं मदात्यय का वर्णन आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Alcoholism नामक रोग से बहुत मिलता है।

निदान- मदात्यय रोग के कारणों को निम्न प्रकार से विभाजित कर सकते हैं-

(I) सामान्य निदान[2]

(अ) शारीरिक निदान

(i) आहाराज निदान

i. अविधिपूर्वक, निर्जल मद्यपान
ii. मात्राधिक्य मद्यपान
iii. अहितकर प्रकृति विपरीत मद्यपान
iv. निरात्र कोष्ठ मद्यपान

1. "बुद्धिलुम्पति.....।
.....दिकम्॥" (शा.स.पू.ख. 4/22)
2. "कुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन।
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि॥
अत्यम्लभक्ष्यावततादरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन।
उष्माभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान् विकारान्॥" (सु.उ. 47/15-16)

v. क्षुधा की अवस्था में मद्यपान
vi. अजीर्णावस्था में मद्यपान
vii. कृश शरीर होना
viii. प्रमिताशन करने वाले व्यक्ति द्वारा मद्यपान

(ii) विहारज निदान

i. व्यायाम, भारवहन व अध्वगमन के पश्चात् मद्यसेवन।
ii. वेगावरोध कर मद्यपान।
iii. उष्ण/ग्रीष्म ऋतु होने पर मद्यमान
iv. पित्त प्रकृति होना

(ब) मानिसक निदान

i. क्रोध
ii. भय
iii. शोक
iv. अल्प सत्व (दुर्बल मन)

(II) विशिष्ट निदान

आचार्य चरक ने मदात्यय को दोषानुसार विभाजित कर उनके निम्न निदानों का वर्णन किया है-

वातज मदात्यय[1]	पित्तज मदात्तय[2]	कफज मदात्यय[3]
शोक-भय से कृशी, अति भार वहन से कृशी, अतिव्यवाय से कृशी, अध्वगमन से कृशी रुक्ष भोजन, अल्प भोजन, प्रमितासन (एक रस सेवन) [उपर्युक्त निदान सेवन के पश्चात् मद्यपान करना]	क्रोध करना, अग्नि-आतप का अतिसवेन करना, अम्ल पदार्थों का अति सेवन, तीक्ष्ण आहार का सेवन [उपर्युक्त निदान सेवन के साथ तीक्ष्ण अम्ल मदिरा का सेवन करना]	अव्यायामी, दिवाशयनी, सुखशय्यासनी, मधुर-स्निग्ध-गुरु आहार सेवन कर [मधुर-गुड़- चावल से बनी मदिरा का अति सेवन]

नोट- सन्निपातज मदात्यय में त्रिदोषों के मिश्रित निदान होते हैं जो विष तुल्य होते हैं[1]। अन्त में आचार्य चरक ने स्पष्ट किया है कि सभी मदात्यय रोग त्रिदोषज ही होते हैं।

1. "स्त्रीशोकभय.....।.....मदात्ययम्॥" (च.चि. 24/89-90)
2. "तीक्ष्णोष्णं.....।.....मदात्ययः॥" (च.चि. 24/92-93)
3. "तरुणं.....।..... शीघ्रमधिगच्छति॥" (च.चि. 24/95-96)

वातादि दोष भेद से अलग-अलग जो इस रोग के भेद बतलाए गए हैं वह लक्षणों की विशेषता के आधार पर किया गया है[2]।

सम्प्राप्ति

संहिताओं में मदात्यय रोग की स्पष्ट सम्प्राप्ति का उल्लेख वर्णित नहीं है। चरक संहिता के सूत्र स्थान में मद-मूर्च्छा-सन्यास रोग की सम्प्राप्ति का वर्णन मिलता है अत: मदात्यय रोग की संभावित सम्प्राप्ति निम्नानुसार हो सकती है[3]-

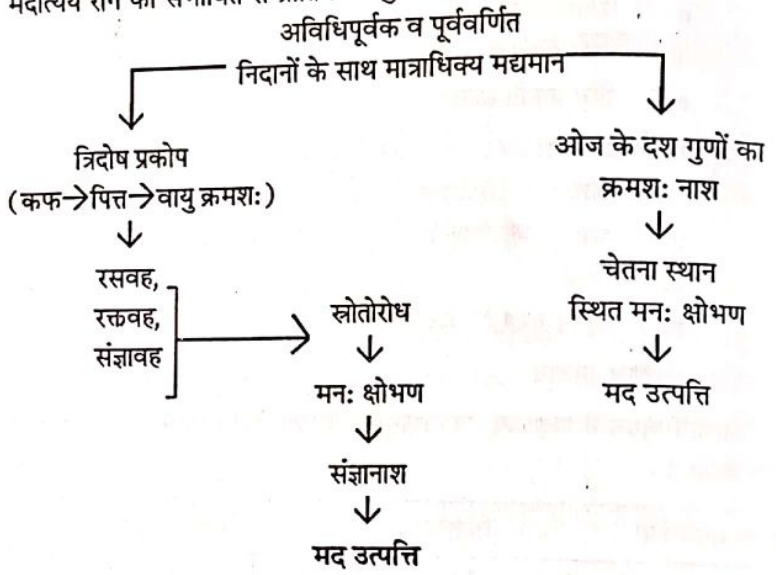

1. "विषस्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातज प्रकोपणाः।
त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बल वत्तराः॥" (च.चि. 24/98)
2. "तस्मात् त्रिदोषजं लिङ्गं सर्वत्रापि मदात्यये।
दृश्यते रूपवैशेष्यात् पृथकत्वं चास्य लक्ष्यते॥" (च.चि. 24/100)
3. i) "यदा तु रक्तवाहीनि रससंज्ञावहानि च।
पृथक्-पृथक् समस्ता वा स्रोतांसि कुपिता मलाः॥
मलिनाहारशीलस्य रजोमोहावृतात्मनः।
प्रतिहत्यावतिष्ठन्ते जायन्ते व्याधयस्तदा॥
मदमूर्च्छायसंन्यासास्तेषां विद्याद्विचक्षणः।
यथोत्तरं बलाधिक्यं हेतुलिङ्गोपशान्तिषु॥" (च.सू. 24/25, 26, 27)
ii) "गुरुत्वं .....।
.....जनयेन्मदम्॥" (च.चि. 24/32-34)
iii) "दुर्बलं चेतसः .....।
.....वक्ष्यते॥" (च.सू. 24/28-29)

सम्प्राप्ति घटक

दोष	-	त्रिदोष (कफ→पित्त→वायु क्रम से)
दूष्य	-	रस, रक्त, संज्ञा (बुद्धि)
स्रोतस	-	रसवह, रक्तवह, संज्ञावाही
स्रोतोदुष्टि प्रकार	-	संग
अधिष्ठान	-	हृदय (चेतना)
अग्नि	-	तीक्ष्णाग्नि
साध्यासाध्यता	-	कष्टसाध्य

भेद

(अ) मद भेद

क्र.सं.	आचार्य चरक	आचार्य माधवकर	Modern Co-relation
i	प्रथम मद	प्रथम मद	Stage of Stimulation
ii	द्वितीय मद (मध्यम)	द्वितीय मद	Stage of Excitement
iii	मदान्तर	तृतीय मद	Stage of Delirium
iv	तृतीय मद (उत्तम)	चतुर्थ मद	Stage of Coma

नोट

i आचार्य चरक[1] ने सूत्र स्थान में मद के वातज, पित्तज, कफज व सन्निपातज स्वरुप का भी वर्णन किया है।
ii आचार्य सुश्रुत[2] ने मद की पूर्व, मध्य एवं पश्चिम अवस्थाओं का वर्णन किया है।
iii आचार्य सुश्रुत ने मद्यज, विषज एवं रक्तविकारजन्य मद का भी उल्लेख किया है।
iv अन्य शास्त्रों में धत्तूर, तम्बाकू, अहिफेन, भांग, कोद्रव, पूग जनित मद का भी वर्णन मिलता है।

(ब) मदात्यय भेद[3]

i. पानात्यय[4]-वातज, पित्तज, कफज व त्रिदोषज भेद
ii. परमद

1. i) "चत्वारो मदाः इति वातपित्तकफसन्निपातनिमित्ताः।।" (च.चि. 19/3 (5))
ii) "सक्तानल्पद्रुताभाषं .....।
..... मद्यमदाकृतिः॥" (च.सू. 24/30-33)
2. "त्र्यवस्थश्च .....।
.....नष्टकर्म क्रियागुणः॥" (सु.उ. 47/11-12)
3. "पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा।
पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्॥" (सु.उ. 47/17)
4. "स्तमभाङ्गमर्द.....।
..... सर्वविकार संपत्॥" (सु.उ. 47/18-19)

iii. पानाजीर्ण
iv. पानविभ्रम
v. मद्य त्याग के पश्चात् सहसा मद्यपान जनित रोग
   (अ) ध्वसंक
   (ब) विक्षय

पूर्वरुप

शास्त्रों में स्पष्ट रुप से मद-मदात्यय के पूर्वरुपों का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। मद की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में मृदुतम से उग्रतर लक्षण होते हैं। अत: मद की प्रथम अवस्था को ही पूर्वरुप माना जा सकता है।

सामान्य रूप (लक्षण)

मद-मदात्यय रोगी में निम्न सामान्य रुप (लक्षण) पाए जाते हैं[1]-

i. स्मृति विभ्रंश (Disturbed memory)
ii. दु:ख या वेदना (Feeling of grief)
iii. संमोह (Confusion)
iv. हृदय व्यथा (Cardiac neurosis)
v. अरुचि (Anorexia)
vi. तृष्णा (Excessive Thirst)
vii. शीत ज्वर (Fever with rigors)
viii. शिर:शूल - पार्श्व शूल (Headache - pain in loins)
ix. अस्थि संधि शूल (Pain in bone & joints)
x. जृम्भा (Yawning)
xi. स्फुरण (Hypersensitivity)
xii. श्रम - थकावट (Fatigue)
xiii. उरोविबन्ध (Tightness in chest)
xiv. कास (Cough)
xv. श्वास (Dyspnoea)
xvi. हिक्का (Hiccough)
xvii. प्रजागर, निद्रानाश (Insomnia)
xviii. शरीर कम्प (Tremors in body)
xix. वमन/छर्दि (Vomitting)
xx. भ्रम (Vertigo)

1. "शरीर दु:ख ..... ।
   .....लक्षयेत्॥" (च.चि. 24/101-106)

xxi. प्रलाप (Delirium)
xxii. हल्लास (Nausea)
xxiii. अदृश्य वस्तु दिखाई देना (Hallucinations)

विशिष्ट लक्षण (भेदानुसार)

विभिन्न ग्रंथों के अनुसार मद-मदात्यय रोग के भेदों के लक्षण निम्नानुसार हैं-

मद-प्रथम अवस्था लक्षण (Stage of Stimulation)

निम्न लक्षण अल्प मात्रा में मद्यपान करने से उत्पन्न होते हैं[1]-

(i) बुद्धि, स्मरण शक्ति, प्रीति, सुख उत्पत्ति।
(ii) अन्न-पान-निद्रा वृद्धि।
(iii) पाठ, गीत, व्याख्यान देने की शक्ति बढ़ जाती है।
(iv) हंसी-मजाक ज्यादा करता है।

मद-द्वितीय अवस्था लक्षण[2] (Stage of Excitement)

(i) इस अवस्था में विवेक धीरे-धीरे नष्ट होने लगता है।
(ii) बुद्धि, स्मृति, वाणी, चेष्टायें अस्तव्यस्त।
(iii) उन्मत्त (पागल) के समान चेष्टायें।
(iv) आलस्य व निद्रा का प्रभाव।
(v) ओज में थोड़ी विकृति।
(vi) कभी उचित, कभी अनुचित तथा अनर्थक वचनों को कहता है।

मद-तृतीय अवस्था लक्षण[3] (Stage of Delirium)

(i) रोगी परतंत्र या वस्तुत: पागल हो जाता है (उन्माद)।
(ii) दूष्य यान में सवारी करता है अथवा जिनसे मजाक न करनी हो उनसे भी मजाक करता है।
(iii) गुरुजनों का मान-सम्मान नहीं करता।

1. i) "प्रहर्षण ..... ।
   .....प्रथमो सुखदो मद: ॥" (च.चि. 24/42-43)
   ii) "बुद्धिस्मृतिप्रीतिकर: सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्धनश्च।
   संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरभ्य: प्रथमोमदोहि॥" (मा.नि. 18/7)
2. i) "मुहु: स्मृति .... ।
   ....मध्यमे मदे॥" (च.चि. 24/44-45)
   ii) "अव्यक्तबु[illegible]स्मृतिवाग्विचेष्ट: सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्त:।
   आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्त: पुरुषो मदेना॥" (मा.नि. 18/8)
3. i) "मध्यमं मदमुत्क्रम्य ..... ।
   .....बहुदोषमिवाध्वग: ॥" (च.चि. 24/46-47)
   ii) "गच्छेदगम्यान्न गुरुंश्च मन्येत् खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञ:।
   ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतंत्र: ॥" (मा.नि. 18/9)

(iv) अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करने लगता है।
(v) चेतना नष्ट हो जाती है।
(vi) मद के वशीभूत होकर मन के गोपनीय रहस्यों को भी प्रगट कर देता है।
(vii) प्रत्येक अशुभ/अनुचित कार्य करने में समर्थ हो जाता है।

आचार्य चरक व वाग्भट ने द्वितीय व तृतीय अवस्था के बीच में 'मदान्तर' अवस्था का वर्णन किया है।

मद-चतुर्थ अवस्था लक्षण[1] (Stage of Coma)

(i) रोगी टूटे हुए काष्ठ के समान निष्क्रिय होकर भूमि पर गिर पड़ता है।
(ii) रोगी को कर्त्तव्य या अकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रहता व मुर्दे से भी बुरा हो जाता है अर्थात् जीते हुए भी मुर्दे के समान होता है।
(iii) जिस सुख प्राप्ति के लिए मद्यपान करता है वह सुख भी उसे प्राप्त नहीं होता।
(iv) क्या सुख है, क्या दुख है तथा जगत् में कौन वस्तु हितकर है, कौन वस्तु अहितकर है इसका भी ज्ञान नहीं रहता।

कोई भी विद्वान व्यक्ति अपनी ज्ञानावस्था में इतनी अधिक मदिरा का पान नहीं कर सकता। यह सन्यास (Coma) की अवस्था है जो अत्यन्त दु:खदायी होती है।

मदात्यय लक्षण

मदात्यय रोग के विभिन्न भेदों के लक्षण निम्नानुसार वर्णित हैं-

क्र.सं.	वातज[2]	पित्तज[3]	कफज[4]
1	हिक्का	तृष्णा	छर्दि
2	श्वास	दाह	अरोचक
3	शिर:कम्प	ज्वर	हल्लास
4	पार्श्वशूल	अतिस्वेद	तन्द्रा
5	अनिद्रा (रात्रि जागरण)	मूर्च्छा	स्तैमित्य
6	प्रलाप	अतिसार	गौरव
7	×	भ्रम	×

1. i) "तृतीयं तुमदं.....।
.....व्याधिमश्नुते॥" (च.चि. 24/48-51)
ii) "चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रिय:। कार्याकार्यविभागज्ञो मृतादप्यपरो मृत:॥
कोमदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम्। बहुदोषमिवामूढ़: कान्तारं स्ववश: कृती॥"
(मा.नि. 18/10-11)
2. "हिक्का श्वासशिर:कम्प पार्श्वशूल प्रजागरै:।
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम्॥" (च.चि. 24/91)
3. "स तु.....।
..... मदात्ययम्॥" (च.चि. 24/93-94)
4. "छर्दिरोचकहल्लास तन्द्रास्तैमित्यगौरवै:।
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम्॥" (च.चि. 24/97)

नोट-त्रिदोषज (सन्निपातज) मदात्यय में उपर्युक्त सभी लक्षण मिश्रित रूप में पाए जाते हैं।

विधि रहित मद्यपान से उत्पन्न रोग

अविधि मद्यपान

निम्न अवस्थाओं में मद्यपान अविधि मद्यपान कहलाता है-

i. निर्भक्त (बिना भोजन के) पान
ii. एकान्त पान
iii. नित्य मद्यपान
iv. क्रोध-भय-पिपासा-शोक की अवस्था में मद्यपान
v. व्यायाम के पश्चात् मद्यपान
vi. अजीर्णावस्था में मद्यपान
vii. कृशता में मद्यपान

विधि रहित मद्यपान से निम्न विकार उत्पन्न हो सकते हैं-

विकार

(अ) पानात्यय (मदात्यय)
(ब) परमद
(स) पानाजीर्ण
(द) पानविभ्रम

(अ) पानात्यय (Acute Alcoholism)- यह रोग मादक द्रव्य के अधिक सेवन से होता है। इसके वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज भेद होते हैं जिनके लक्षण निम्नानुसार हैं[1]-

वातज- स्तब्धता, अंगमर्द, हृदग्रह, तोद, कम्प, शिरशूल।
पित्तज- स्वेद, प्रलाप, मुखशोष, दाह, मूर्च्छा, नेत्र व मुख प्रदेश पीला।
कफज- छर्दि, शीत, कफ प्रसेक।
सन्निपातज- उपर्युक्त मिश्रित लक्षण मिलते हैं।

(ब) परमद (Immediate after effects of Alcoholism)[2]

यह रोग मद (नशा) के अधिक हो जाने से होता है। इसमें कफाधिक्य, गुरुता, आस्यवैरस्यता, अरुचि, मल-मूत्रावरोध, तन्द्रा, अरोचक, शिर:शूल, सन्धि शूल, तृष्णा

1. "स्तम्भाङ्गमर्दहृदयग्रहतोदकम्प:, पानात्ययेऽनिलकृते शिरसो रुजश्च।
स्वेदप्रलापमुखशोषणदाहमूर्च्छा:, पित्तात्मके वदनलोचनपीतता च॥
श्लैष्मात्मके वमथुशीतकफप्रसेका:, सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत्॥" (सु.उ. 47/18-19)
2. "उष्माणमङ्गगुरुता विरसाननत्वं, श्लैष्माधिकत्वमरुचि मलमूत्रसङ्गम्।
लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञा, स्तृष्णां रुजां शिरसि सन्धिषु चापि भेदम्॥"
(सु.उ. 47/19 20)

आदि लक्षण पाए जाते हैं। इसे मद्यपान के सद्य: परिणाम (Immediate after effects of Alcoholism) कहा जा सकता है।

(स) पानाजीर्ण (Indigestion of Alcohol)[1]

यह रोग मद्य-मादक द्रव्य के अपचन से होता है। इसमें मद्य का अविपाक होने से या मद्य के अजीर्ण होने से आध्मान, छर्दि, विदाह (Peripheral neuritis) आदि पित्तज लक्षण उत्पन्न होते हैं।

(द) पानविभ्रम (Chronic Alcoholism)[2]

यह मद्यपान के मिथ्या योग से होता है। इस चिरकालीन मदात्यय में निम्न लक्षण पाए जाते हैं-

i. हृदय व शरीर में तोद
ii. कफ स्राव
iii. कण्ठ में धुएं जैसा प्रतीत होना
iv. मूर्च्छा
v. वमि/छर्दि
vi. ज्वर
vii. शिरोरुजा
viii. प्रदाह
ix. अरुचि

साध्या साध्यता[3]-निम्न लक्षणों वाला मदात्यय रोगी असाध्य होता है-

i. अधर ओष्ठ (Lower Lip) अन्दर को दबा होना।
ii. शरीर में बाहर शीतता व अन्दर दाह प्रतीति होना।
iii. मुख पर तैलीय चमक होना।
iv. जिह्वा, ओष्ठ, दन्त का कृष्ण वर्ण या नील वर्ण होना (Cyanosis)
v. नेत्र लाल या पीले होना।

उपद्रव- मद-मदात्यय रोग में निम्न उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं[4]-

i. हिक्का
ii. ज्वर

1. "आध्मानमुदगिरणमम्लरसोविदाहोऽजीर्णस्यपानजनितस्य वदन्ति लिङ्गम्॥
ज्ञेयापि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि, पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि॥" (सु.उ. 47/20-21)
2. "हृद्गात्रतोदवमथुज्वरकण्ठधूम मूर्च्छाकफस्रवणमूर्धरुजाविदाहः॥
द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु, तं पानावभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः॥" (सु.उ. 47/21-22)
3. "हीनोत्तरोष्ठमतिशीतममन्ददाहं, तैलप्रमास्यमति (पि) पानहतं विजह्यात्॥
जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथवाऽपि नीलं, पीते च यस्य नयने रुचिरप्रभे च॥" (सु.उ. 47/22)
4. "हिक्काज्वरौ वमथुवेपथु पार्श्वशूलाः, कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते॥" (सु.उ. 47/22)

iii. वमन/छर्दि
iv. वेपथु (शरीर कम्प)
v. पार्श्वशूल
vi. कास
vii. भ्रम
viii. आधुनिक मतानुसार- यकृद्दाल्युदर (Cirrhosis of liver)

मद्यपान जन्य रोग[1]

अत्यधिक एवं विधि रहित मद्यपान से निम्नलिखित रोग उत्पन्न होते सकते हैं-

i. मोह
ii. भय
iii. शोक
iv. क्रोध
v. मद
vi. मूर्च्छा
vii. उन्माद
viii. अपस्मार
ix. अपतानक
x. मृत्यु

मद-मदात्यय चिकित्सा सूत्र

(अ) मद चिकित्सा सूत्र

मद की विभिन्न अवस्थाओं में निम्न चिकित्सा सिद्धांत युक्तिपूर्वक प्रयुक्त करना चाहिए-

प्रथम मद

मद की प्रथम (पूर्वावस्था) अवस्था हर्ष, उल्लास एवं प्रसन्नतादायक होती है। अत: इसमें सौम्य, रुचिकर, आनन्ददायक आहार-विहार एवं आचार अपनाना चाहिए।

द्वितीय मद, तृतीय मद एवं चतुर्थ मद

द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ मद की अवस्थाओं में गीत-वाद्य सुनाकर विचित्र-अद्भुत द्रव्य दिखाकर एवं प्रिय कथाएं सुनाकर विचलित मन को एकाग्र करने का प्रयास करना चाहिए। मूर्च्छा व सन्यास की अवस्था में तीक्ष्ण प्रधमन व अवपीड़न नस्य देकर अंजन,

1. "मद्ये मोहो भयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रितः।
सोन्मादमदमूर्च्छायाः सापस्मारापतानकाः॥" (च.चि. 24/56)

कवलग्रह, तीक्ष्ण धूम्रपान कराकर रोगी को तीक्ष्ण संशोधन (वमन विरेचन कर्म) देकर संज्ञा की स्थापना करनी चाहिए। उसके बाद उपद्रवानुसार चिकित्सा करनी चाहिए[1]।

अन्य मद चिकित्सा

i. सुपारी[2] (पूग) खाने से उत्पन्न मद के लक्षणों यथा छर्दि, मूर्च्छा व अतिसार में शीतल जलपान, वन्य करीष घ्राण (जंगली उपलों को सूंघना) व लवण भक्षण कराना चाहिए।

ii. मदन (भंगा) एवं कोद्रव (कोदों) से उत्पन्न मद में गुड़ को कूष्माण्ड रस के साथ खिलाना चाहिये[3]।

iii. धत्तूर[4] से उत्पन्न मद में शर्करा मिश्रित क्षीर पिलाना चाहिये।

iv. चूना[5] से उत्पन्न मद में शर्करा मिश्रित जल का कवलधारण कराना चाहिये।

(ब) मदात्यय चिकित्सा सूत्र

(I) सभी मदात्यय रोग त्रिदोषज होते हैं। अतः जिस दोष के लक्षण अधिक हों सर्वप्रथम उसी दोष की चिकित्सा व्यवस्था करनी चाहिये[6]।

(II) जब मदात्यय रोग में तीनों दोषों की सामता रहे तो उस अवस्था में सर्वप्रथम कफ दोष की चिकित्सा व्यवस्था करनी चाहिये, तत्पश्चात् पित्त दोष एवं अन्त में वात दोष की चिकित्सा व्यवस्था करनी चाहिये। इसे ही **'कफ स्थानानुपूर्व्या'** चिकित्सा कहा गया है ।

(III) आम मद्य दोष के जीर्ण हो जाने पर जब रोगी को शरीर में हल्कापन लगे व अन्न सेवन में रुचि उत्पन्न हो तो रोगी के लिये हितकर मद्य का प्रयोग करना चाहिये। यह मद्य सौवर्चल, विड्नमक सैंधव, बिजौरा निम्बू रस, आद्रक स्वरस व जल से शीतल व संस्कारित होना चाहिये। इसे ही **'हेतु विपरीतार्थकारी'**

1. "अज्ञानान्यवपीडाश्च ..... ।
.....शरीरिणाम्॥" (च.सू. 24/46-58)
2. "सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मदं पूगफलोद्भवम्।
सद्यः प्रशमयेत् पीतमातृप्तेर्वारि शीतलम्॥
वन्य करीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणाद्वापि।" (च.द. 18/16-17)
3. "कूष्माण्डकरसः सगुडः शमयति मदमाशुमदनकोद्रवजम्।" (च.द. 18/19)
4. "धौस्तूरजन्य दुग्धं सशर्करं हरति पानयोगेन॥" (च.द. 18/19)
5. "शाम्यति पूगफल मदश्चूर्ण रुजा शर्करा बलात्।
शखंचूर्णरजोघ्राणात् स्वल्पंमदमपोहति॥" (च.द. 18/17-18)
6. "सर्वं मदात्ययं विद्यात् त्रिदोषमधिकं तु यम्।
दोषं मदात्यये पश्येत् तस्यादौ प्रतिकारयेत्॥" (च.चि. 24/107)
7. "कफस्थानानुपूर्व्या च क्रिया कार्या मदात्यये।
पित्तमारुत पर्यन्तः प्रायेण हि मदात्ययः॥" (च.चि. 24/108)

चिकित्सा कहा जाता है[1]। इस प्रकार इस 'मद्यचिकित्सा' से स्रोतोरोध दूर होकर वायु का अनुलोमन होता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(IV) तीक्ष्ण-उष्ण-अम्ल-मात्राधिक्य-दाहकारक (विदाही) मद्य के पीने से अन्न रस विदग्ध होकर क्षार रस में परिणित हो जाता है। वह क्षार उदर प्रदेश में अन्तर्दाह, ज्वर, तृष्णा, प्रमोह, विभ्रम व मद (नशा) उत्पन्न करता है। अतः इन उपद्रवों के शमन के लिये 'मद्य' का ही प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि मद्य (अम्ल रस) से युक्त होकर क्षार शीघ्र ही मधुर बन जाता है। 14 गुणों के कारण सभी अम्ल द्रव्यों में मद्य श्रेष्ठ माना गया है[2]।

(V) मद्यपान के तुरन्त बाद एक से दो तोला (10-20 ग्राम) की मात्रा में घृत-शर्करा मिश्रण का सेवन करने से मद (नशा) नहीं आता है।

(VI) सभी मदात्यय रोगों में संशोधन, संशमन, लंघन व परिश्रम हितकर है।

विशिष्ट मदात्यय (भेदानुसार) चिकित्सा

I. वातज मदात्यय चिकित्सा

शास्त्रों में वातज मदात्यय हेतु निम्न चिकित्सा वर्णित हैं—

i. पिये हुये मद्य के जीर्ण हो जाने पर त्रिकटु चूर्ण, सौवर्चल नमक व अल्पजल मिश्रित मद्य ही मिलाना चाहिये। यही 'हेतुविपरीतार्थकारी चिकित्सा' है[3]।

ii. चावल के आटे से बनी हुई मद्य में बिजौरा निम्बू स्वरस, वृक्षाम्ल चूर्ण, अम्लबदर चूर्ण, अम्लदाड़िम स्वरस, अजवाइन चूर्ण, हपुषाचूर्ण, अजाजी (जीरा) चूर्ण, शुण्ठी चूर्ण, सैंधव लवण मिलाकर पीने को दें, तत्पश्चात भोजनार्थ यव सक्तु में घृत मिलाकर दें[4]।

iii. लावक, तित्तिर, मुर्गा, मोर आदि पक्षियों के मांस रस से एवं मृग-मत्स्य-आनूप मांस रस-भूशय-प्रसह मांस रस को स्निग्ध व अम्ल द्रव्यों से संस्कृत कर उनके साथ षष्टिक शालि चावल (औदन-भात) देना चाहिये[4]।

iv. अभ्यंग, उबटन, उष्ण स्नान, गुरु प्रावरण, अगुरुलेप, यौवना आलिंगन, उष्ण शयनागार, उष्ण आच्छादन, उष्ण प्रावरण करने से वातज मदात्यय शीघ्र ही नष्ट होता है[5]।

1. "मिथ्यातिहीनपीतेन..... ।
..... प्रमाणवित्॥" (च.चि. 24/109-111)
2. "तीक्ष्णोष्णे नाति मात्रेण..... ।
..... तिष्ठति॥" (च.चि. 24/112-116)
3. "मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम्।
जीर्णमद्यायदातव्यं वातपानात्ययापहम्॥" (च.द. 18/3)
4. "बीजपूरक वृक्षाम्ल..... ।
..... शाल्योदनेन च॥" (च.चि. 24/121-124)
5. "रागषाडव..... सदात्ययः॥" (च.चि. 24/132-135)

v. **पथ्य**[1]

* स्निग्ध-उष्ण-लवण-अम्ल पदार्थ
* वेशवार (बकरे का अस्थिरहित मांस जिसमें मसाले डाले गये हों)
* गेहूं
* वारुणीमण्ड
* पूप (कचौरी), माषपूपलिका (बड़े, पकोड़े)
* मांस में मरिच, आर्द्रक, आमलकी रस, दालचीनी चूर्ण, सूक्ष्म एला चूर्ण, तेजपत्र चूर्ण, धनियां आदि मिलाकर अवलेह की तरह प्रयोग करें।
* कांजी, दधिमस्तु, शुक्तोदक पानार्थ दें।

II. पित्तज मदात्यय चिकित्सा

i. पैत्तिक मदात्यय में यदि दोष अधिक मात्रा में हों, रोगी दाह तथा तृष्णा से पीड़ित हो, आमाशय में कफ व पित्त उत्क्लिष्ट हों तो उसे मद्य, द्राक्षारस जल (या सक्तु में जल मिलाकर) वमन के लिये पिलाना चाहिये। वमन के पश्चात् क्षुधा लगने पर तर्पण (यवसक्तु व जल घोलकर) देना चाहिये[2]।

ii. तृष्णा लगने पर भव्यफल (कमरख), खर्जूर, मुनक्का, फालसा एवं अम्ल दाड़िम के रस को मद्य में मिलाकर शीतलकर शर्करा व यव सक्तु घोलकर देना चाहिये[3]।

iii. **अनुतर्ष**-तृष्णा लगने पर अधिक जल मिला हुआ मद्य थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बार-बार देना चाहिये। मात्रा इतनी होनी चाहिये कि जिसके सेवन से मन में विकृति न आ सके। इसे ही आचार्य चरक ने 'अनुतर्ष' कहा है[4]।

iv. तृष्णा का शमन करने के लिये अन्य योग निम्न प्रकार हैं[5]—

(अ) पंचाम्ल (कोल, दाड़िम, वृक्षाम्ल, चुक्रीका, चुक्रिका रस) के रस को मुख के भीतरी भाग में लेप करें।

---

1. "स्निग्धोष्ण लवणाम्लैश्च..... । ..... शुक्तोदकमथापि वा ॥" (च.चि. 24/125-130)
2. "आमाशयस्थमुत्क्लिष्टं..... । ..... दोषशेषान्नपाचकः ॥" (च.चि. 24/141-143)
3. "भव्यखर्जूर..... । ..... पित्तमदात्यये ॥" (च.चि. 24/136-137)
4. "अनुतर्षस्य मात्रा सा यथा नो दूष्यते मनः । तृष्यते मद्यमल्पाल्पं प्रदेयं स्याद्धृदूकम् ॥ तृष्णा येनोपशाम्येत मदं येन च नाप्नुयात्।" (च.चि. 24/148)
5. "परुषाणां..... । ..... नियच्छति ॥" (च.चि. 24/149-151)

(ब) फालसा या पीलू का शीतल रस

(स) पर्णिनी (सरिवन, पिठिवन, वनमूँग, वन उड़द) का षडङ्गपानीय विधि से बनाया हुआ शीतल जल

(द) मुस्तक-दाड़िम-लाजा से सिद्ध शीतल जल

(इ) शीतल अंगूर का रस

(फ) स्वाभाविक शीतल जल

v. पैत्तिक मदात्यय में कास, सरक्तनिष्ठीवन, पार्श्वशूल, स्तनशूल, दाह, तृष्णा, हृदय उत्क्लेश आदि लक्षण होने पर गुडुची, नागरमोथा, पटोल के स्वरस में शुण्ठी चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये। तत्पश्चात् तीतर के मांसरस के साथ शालि चावल औदन (भात) दें[1]।

vi. **पथ्य**[2]

i. शीतल अन्न-जल सेवन
ii. शीतल शय्या-आसन
iii. शीतल वायु, जल स्पर्श, धारागृह निवास (A.C.)
iv. शीतल उपवन भ्रमण
v. कमल, उत्पल, मणि, मोती धारण
vi. सिता सेवन
vii. परिषेक, अवगाहन
viii. मुनक्का, आंवला, फालसा, खर्जूर के रस से बने तर्पण (मन्थ), यूष एवं मांस रस सेवन।

III. कफज मदात्यय चिकित्सा

i. लंघन (उपवास), वमन, व्यायाम, जागरण, उद्वर्त्तन, उद्घर्षण, प्रघर्षण, रुक्ष अन्नपान, उष्ण जलपान आदि कफ नाशक कर्म कराने चाहियें[3]।

ii. दीपन (पंचकोल चूर्ण) औषध देना हितकर है[4]।

iii. आमदोष रहित शरीर होने पर जब रोगी को क्षुधा लगे तब शर्करा या मधु से बने हुए पुराने अरिष्ट या सीधू में रुक्ष तर्पण मिलाकर तथा अजवाइन-शुण्ठी का चूर्ण मधु मिलाकर पानार्थ दें[5]।

---

1. "कासे सरक्तनिष्ठीवे..... । ..... भोजनम् ॥" (च.चि. 24/144-145)
2. (च.चि. 24/138, 139, 140, 152, 153, 154, 155, 162)
3. "रुक्षोष्णेनान्नपानेन..... । ..... शीघ्रमेवोपशाम्यति ॥" (च.चि. 24/185-188)
4. "दीपनीयौषधोपेतं पिवेन्मद्यं समाहितः ॥" (च.द. 18/5)
5. "निरामं..... । ..... यवानीनागरान्वितम् ॥" (च.चि. 24/168-169)

iv. स्नेहादि मांस रस का प्रयोग करें।
v. आम दोष रहित होने पर दीपनीय द्रव्यों से सिद्ध मद्य का पान कराना चाहिये।
vi. तृष्णा शमन हेतु सुगन्धबाला या पृश्निपर्णी या कण्टकारी पंचाग से सिद्ध जल पानार्थ दें।
vii. **अष्टाङ्ग लवण**[1]-सौवर्चल, अजाजी, वृक्षाम्ल, अम्लवेतस, दालचीनी, सूक्ष्म ऐला, मरिच, चीनी इन अष्ट द्रव्यों से बनाया हुआ चूर्ण कफज मदात्यय में स्रोतो विशोधन कर जठराग्नि प्रदीप्त करता है।
viii. **पथ्य**-कफज मदात्यय में यव, गोधूम कुल्थी से बने रुक्ष आहार द्रव्य देना चाहिये।

IV. सन्निपातज मदात्यय चिकित्सा

i. पृथक्-पृथक् वातादि दोष की जो चिकित्सा पूर्व में वर्णित है उसी के अनुसार सन्निपातज मदात्यय रोग में चिकित्सा व्यवस्था करनी चाहिये[2]।
ii. **हर्षणी चिकित्सा**[3]-हास्यगीत, मधुर कथायें आदि हर्षण कर्म से मन में हर्ष उत्पन्न होकर शरीर स्वस्थ होता है।
iii. **दुग्ध सेवन**[4]-उपर्युक्त चिकित्सा विधियों से मदात्यय शमन न होने पर दुग्ध का पान कराना चाहिए। तत्पश्चात् मदात्यय रोग के नष्ट हो जाने पर शरीर में बल उत्पन्न हो जाने के पश्चात् क्षीर का प्रयोग बन्द कर मद्य का प्रयोग क्रमशः थोड़ी-थोड़ी मात्रा में प्रारंभ करना चाहिए। इस मद्य सेवन से रोगी "ध्वंसक" व "विक्षय" रोग से बचा रहता है। क्योंकि सात्म्य हो गयी मद्य सहसा त्याग देने से ध्वंसक व विक्षय रोग उत्पन्न होते हैं जो निम्न प्रकार प्रकट होते हैं-

ध्वंसक[5]- इसमें निम्न लक्षण मिलते हैं-

i. मुख से कफ का प्रसेक होना
ii. कण्ठ व गले का सूखना

1. "सौवर्चलमजाजी च वृक्षाम्लं साम्लवेतसम्।
त्वगेलामरिचार्धांशं शर्कराभागयोजितम्॥
एतल्लवणमष्टाङ्गमग्निसंदीपनं परम्।
मदात्यये कफप्राये दद्यात् स्रोतोविशोधनम्॥" (च.चि. 24/177-178)
2. "यदिदं कर्म निर्दिष्टं पृथग्दोषबलं प्रति।
सन्निपाते दशविधे तद्विकल्प्यं भिषग्विदा॥" (च.चि. 24/189)
3. "नाक्षोभ्यं हि मनो मद्यं शरीरमविहत्य च।
कुर्यान्मदात्ययं तस्मादेष्टव्या हर्षणी क्रिया॥" (च.चि. 24/194)
4. "आभिः क्रियाभिः .....।
.....हि तौ॥" (च.चि. 24/195-199)
5. "श्लेष्मप्रसेकः कण्ठास्यशोषः शब्दासहिष्णुता।
तन्द्रानिद्रातियोगश्च ज्ञेयं ध्वसंक लक्षणम्॥" (च.चि. 24/201)

iii. शब्द (ध्वनि) सहन न कर पाना
vi. तन्द्रा व निद्रा का अधिक होना।

विक्षय[1]

इसमें हृदय रोग, कण्ठ रोग, मोह, छर्दि, शरीर पीड़ा, ज्वर, तृष्णा, कास, शिरःशूल आदि लक्षण मिलते हैं।

ध्वसंक व विक्षय की चिकित्सा[2]

वातज मदात्यय रोग में जो चिकित्सा कर्म वर्णित है वही चिकित्सा ध्वंसक व विक्षय रोग में करनी चाहिए। यह रोग क्षीणदेह (कृश शरीर) और दुर्बल पुरुष को ही होते हैं। अतः वातनाशक बस्ति, घृतपान, दुग्धपान, अभ्यंग, उबटन, स्नान, अन्नपान का प्रयोग कराना चाहिए।

चिकित्सा क्रम

मदात्यय रोग में निम्न शोधन एवं शमन चिकित्सा का प्रयोग करना हितकर है-

(अ) शोधन चिकित्सा

दोषानुसार पूर्व में वर्णित चिकित्सा क्रम से संशोधन कर्म कराने चाहिए जो निम्न प्रकार हैं-

(i) वमन कर्म
(ii) विरेचन कर्म
(iii) बस्ति कर्म

(ब) शमन चिकित्सा

मदात्यय रोगी में शमन चिकित्सा के अंतर्गत निम्न औषध योग युक्तिपूर्वक प्रयुक्त करें-

1. **रस/भस्म**

मात्रा	: 125-250 मि. ग्राम
अनुपान	: मधु, घृत, शर्करा
(i) बृहत्वातचिन्तामणि रस	: सुवर्ण, रजत, अभ्रक
(ii) कञ्जली रस	: पारद, गन्धक, मिश्री
(iii) राजावर्त रस	: रस सिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, लाजावर्त

1. "हत्कण्ठरोगः संमोहश्छर्दिरङ्गरुजा ज्वरः।
तृष्णा कासः शिरःशूलमेतांद्वि क्षय लक्षणम्॥" (च.चि. 24/202)
2. "तयोः .....।
.....व्याधि रुपजायते॥" (च.चि. 24/203-205)

(iv) उन्माद गजांकुश रस : कज्जली, वङ्ग, स्वर्ण, धत्तूर
(v) स्वर्णमाक्षिक भस्म : ताम्र, गन्धक, लौह
(vi) मुक्तापिष्टी : गुलाब जल भावित मुक्ता

2. **वटी/मोदक**
मात्रा : वटी : 250-500 मि. ग्राम
मोदक : 2-6 ग्राम
अनुपान : मक्खन, मधु
(i) महाकल्याण वटी : कज्जली, स्वर्ण, अभ्रक
(ii) अर्कवटी : अर्क मूल, मरिच, सैंधव
(iii) सौवर्चल पाक वटी : सौवर्चल, इमली, जीरा
(iv) एलाद्य मोदक : एला, मधूक, त्रिफला

3. **चूर्ण**
मात्रा : 2-6 ग्राम
अनुपान : जल, मद्य
(i) त्रिकटु चूर्ण : शुण्ठी, मरिच, पिप्पली
(ii) अष्टाङ्ग लवण : सौवर्चल, वृक्षाम्ल, मरिच
(iii) चव्यादि चूर्ण : चव्य, सौवर्चल, हिंगु
(iv) फलत्रिकाद्य चूर्ण : त्रिफला, निशोथ, देवदारु
(v) सर्पगन्धा चूर्ण : सर्पगन्धा

4. **आसव/अरिष्ट**
मात्रा : 20-40 मि.ली.
अनुपान : जल
(i) श्री खण्डासव : श्वेतचन्दन, मरिच, जटामांसी
(ii) द्राक्षारिष्ट : मुनक्का शर्करा, मधूक
(iii) चण्डासव : मुनक्का, जटामांसी, एला

5. **घृत**
मात्रा : 10-20 मि.ली.
अनुपान : दुग्ध
(i) कल्याणक घृत : इन्द्रायण, त्रिफला, देवदारु
(ii) पुनर्नवाद्य घृत : पुनर्नवा, मधुयष्टी

6. **पाक/लेह**
मात्रा : 10-20 ग्राम
अनुपान : दुग्ध, जल
(i) कूष्माण्डावलेह : कूष्माण्ड, आमलकी, गोदुग्ध
(ii) अष्टांगावलेह : कायफल, पुष्करमूल, शुण्ठी
(iii) अमृतभल्लातक : भल्लातक

7. **तैल** — बाह्य अभ्यंगार्थ
(i) ब्राम्ही तैल : ब्राम्ही, भृङ्गराज, शंखपुष्पी

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन (पादांशिक क्रम से)
2. संशोधन चिकित्सा - यथावश्यक व चिकित्सक निर्देशानुसार
3. प्रातः सायम्
स्वर्ण माक्षिक भस्म : 65 मि.ग्रा.
मुक्ता पिष्टी : 250 मि.ग्रा.
त्रिकटु चूर्ण : 2 ग्रा.
अश्वगंधा चूर्ण : 2 ग्रा.
मधु से 1×3 मात्रा
4. भोजनोत्तर
अष्टाङ्ग लवण : 2 ग्राम
जल से 1×2 मात्रा
5. भोजनोत्तर
द्राक्षारिष्ट : 20 मि.ली.
समभाग जल से : 1×2 मात्रा
6. कूष्माण्डावलेह : 20 मि.ली.
दुग्ध से 1×2 मात्रा
7. सत्वाजय, तनावहर, आश्वासन चिकित्सा
8. योगाभ्यास / प्राणायाम चिकित्सा
9. सात्विक आहार-विहार

पथ्यापथ्य

मदात्यय रोगी में निम्न पथ्य अपथ्य का पालन करना लाभदायक रहता है—

पथ्य[1]

आहार	विहार
शाली चावल,जौ (यव), मूंग, उड़द, गोधूम, मुरब्बा, बेशवार, सिता, मद्य, पटोल, आँवला, मातुलुङ्ग, फालसा, द्राक्षा, खर्जूर, दाड़िम, नारियल, पुराण, घृत, दुग्ध, खट्टा अचार (षाड़व) बथुआ, परवल, लौकी, तोरई, चंदन आदि।	लंघन (उपवास), ठण्डी वायु, धारागृह, शीतल किरणें, मणि धारण मित्र मण्डली, प्रिया आलिंगन, गीत, संगीत, स्नान आदि।

अपथ्य[2]

आहार	विहार
ताम्बुल सेवन	स्वेदन, अंजन, धूम्रपान, नस्य, दन्तघर्षण आदि।

Latest Developments
Alcoholism

मद-मदात्यय रोग का सामञ्जस्य 'नशा निर्भरता' या 'अतिमद्यपान' (Addiction & Alcoholism) से कर सकते हैं।

Addiction—Dependence on narcotics, alcohol, tobacco and drug of abuse.

ALCOHOLISM

A chronic progressive, some times fatal disease marked by chronic intake of and dependence on Alcoholic drinks.

Types

(i) Acute alcoholism
(ii) Chronic alcoholism
(iii) Convulsive alcoholism
(iv) Delirium alcoholism
(v) Insanity, hysterical alcoholism

Sign/Symptoms

Acute
(i) Motor instability
(ii) Blurred/Double vision

1. "संशोधनं..... । ..... सेव्यमेतन्मदात्यये ॥" (भै.र. 22/34-38)
2. "स्वेदोऽञ्जनं..... । ..... विकारिणाम् ॥" (भै.र. 22/39)

(iii) Impaired reflex action
(iv) Reduced mental function
(v) Increased pulse rate (Tachycardia)
(vi) Hypertension
(vii) Dilated pulpils
(viii) Drowsiness (stupor)

Chronic
(i) Malnutrition
(ii) Vitamin Deficiency
(iii) Alcoholic cirrhosis of liver
(iv) Gastritis
(v) Pancreatitis
(vi) Hallucinations
(vii) Delirium tremors
(viii) Seizures
(ix) Coma
(x) During pregnancy-congenital defects
(xi) Death

Detection—Alcohol concentration in the blood can be measured.

Management : Principles

(i) Gastric lavage
(ii) Adequate nutrition and rest
(iii) Manage Hypoglycaemia, unconsciousness, metabolic acidosis, Delirium, coma etc.
(iv) Intravenous fluid for correction of electrolyte & fluid imbalance.
(v) Tranquilizing drugs.
(vi) Correction of vitamin Deficiency.
(vii) Psychotherapy.
(viii) Councelling for Deaddiction.

अध्याय-32

शोथ रोग
OEDEMAS

व्याधि परिचय

आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान में शोथ को स्वतन्त्र व्याधि के रूप में माना गया है तथा अनेक अन्य रोगों में यह एक लक्षण के रूप में भी पाया जाता है। शोथ करीब 184 रोगावस्थाओं[1] में पूर्वरूप, रूप या उपद्रव के रूप में मिलता है। आयुर्वेद में शोथ, शोफ तथा श्वयथु शब्द सामान्यतया 'सूजन' के लिये प्रयुक्त किये गये हैं। जिस अवस्था में दोष, त्वचा व मांस का आश्रय ग्रहणकर उभार उत्पन्न करते है तथा जिस में पाक की प्रवृत्ति नहीं होती है उसे ही शोथ कहा जाता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे 'Oedema' कहा जाता है। इसके विपरीत व्रणशोथ (Inflammation) में पाक की प्रवृत्ति होती है तथा दोष त्वचा, मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि, कोष्ठ एवं मर्म इन अष्ट व्रण वस्तुओं को दूषित करते हैं। प्रस्तुत रोग में काय चिकित्सा (Internal Medicine) सम्बन्धी शोथ (Oedema) का ही वर्णन किया गया है। यद्यपि जलोदर, गलगण्ड, गण्डमाला, अर्श, अर्बुद, विसर्प, श्लीपद, वृद्धि रोग आदि रोग भी एक प्रकार के शोथ ही हैं। अनेक आचार्य निज कारणों से उत्पन्न अवस्था (उत्सेध) को शोथ तथा आगन्तुज कारणों से उत्पन्न पाकयुक्त उत्सेध को व्रण शोथ (Inflammation) मानते हैं।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चरक संहिता, सूत्र स्थान-अध्याय 18
2. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 12
3. सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थान-अध्याय 23
4. अष्टाङ्ग हृदय, निदान स्थान-अध्याय 13
5. अष्टाङ्ग हृदय, चिकित्सा स्थान-अध्याय 17
6. माधव निदान-अध्याय 36

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

'टुओश्वि-गतिवृद्धो:' से 'टु ओ' की इत्संज्ञा कर श्वि से वृद्धि अर्थ में अथुच् प्रत्यय लगाने पर 'श्वयथु' शब्द बनता है, जिसका अर्थ 'बढ़ा हुआ' होता है। अर्थात् शोथ का शाब्दिक अर्थ है उत्सेध युक्त शरीर का प्रदेश।

1. साभार-निदान पंचक (वैद्य शिवचरण ध्यानी) पृष्ठ क्रमांक 79

परिभाषा

स्वप्रकोपक कारणों से प्रकुपित वायु, अपने कारणों से दूषित हुए रक्त, पित्त एवं कफ को उत्तान सिराओं में ले जाकर, उनके द्वारा अवरुद्ध होकर त्वचा व मांस के बीच आश्रित होकर रक्त सहित त्रिदोषों के संचय से उभार को उत्पन्न करता है, उसे शोथ कहते हैं[1]।

OEDEMA

Oedema is the collection of fluid in the interstitial spaces or serous cavities or extra cellular spaces.

INFLAMMATION

Inflammatioin is the local defence of tissues of the site of damage which is caused by bacterial infections, injury or chemicals.

पर्याय

शास्त्रों में शोथ के निम्न पर्याय मिलते हैं—

i.	शोफ	ii.	श्वयथु
iii.	दवथु	iv.	सूजन

निदान

आचार्यों ने निज व आगन्तुक शोथ के निदानों का पृथक्-पृथक् वर्णन निम्न प्रकार किया है—

(अ) निज शोथ निदान[2]

i. पंचकर्म का मिथ्या प्रयोग करना।
ii. संसर्जन क्रम का मिथ्या प्रयोग करना
iii. छर्दि, विसूचिका, श्वास, कास, अतिसार, शोष, पाण्डु, उदररोग, ज्वर, प्रदर, भगन्दर तथा अर्श इत्यादि रोगों द्वारा शरीर का अतिकर्षण (उपद्रव स्वरूप)

1. "पित्तरक्तकफान् वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिः सिराः।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम्॥
उत्सेधं संहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः।" (अ.ह.नि. 13/21-22)

2 i) "निजाः पुनः .....।
..... सामान्यो हेतुः॥" (च.सू. 18/6)

ii) "शुद्धयामयाभक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरुपसेवा।
दध्माममृच्छाक विरोधि दुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च॥
अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्मोपघातो विषमाप्रसूति।
मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथो प्रदिष्टः॥" (च.चि. 12/5-6)

iv. कुष्ठ, कण्डू, पिड़का का होना
v. छर्दि, क्षवथु, उद्गार, शुक्र, अपानवायु, मूत्र एवं पुरीष के वेगधारण से
vi. व्याधि, उपवास व अध्वगमन से कृशित होने पर
vii. अति गुरु, अम्ल, लवण, पिष्टान्न, फल, शाक, राग, दधि, हरितक, मद्य, मन्दक, नवशूकधान्य, शमीधान्य आनूप मांस का अति उपयोग करना
viii. अतिलवण व मिट्टी का सेवन करना
ix. गर्भ संपीड़न, गर्भ प्रपतन (Miscarriage) से
x. सद्यः प्रजाता द्वारा मिथ्योपचार करना
xi. मर्माघात (हृदय, यकृत, वृक्क विकृति)

(ब) आगन्तुक शोथ निदान[1]

i. आघात-छेदन, भेदन, भञ्जन, पिच्छन, उत्पेषण, प्रहार, वध, बन्धन, वेष्टन, व्यधन, पीड़न इत्यादि
ii. भल्लातक पुष्प-फल रस, आत्मगुप्ता (केंवाच) शूक, कृमिशूक, विषज पत्र-लता-गुल्म के स्पर्श से
iii. विषैले प्राणियों के स्वेद, मल, मूत्र स्पर्श से
iv. विषैले प्राणियों के दंष्ट्रा, दन्त, विषाण, नख लग जाने से
v. सामुद्रिक वायु, विषज वायु, विषज हिम व अग्नि के स्पर्श से

आधुनिक कारण

(I) Causes of Bilateral Oedema

i. Cardiac- CCF, LVF, Pericarditis
ii. Renal- Acute nephritis, Nephrosis
iii. Hepatic- Cirrhosis of liver, Portal Hypertension
iv. Venous- Inferior vena cava obstruction
v. Endocrinological- Myxoedema
vi. Allergic-Angioneurotic oedema
vii. Nutritional- Anaemia, Hypoproteinaemia, Beri-beri
viii. Toxic- Epidemic dropsy

(II) Causes of Unilateral Oedema

i. Lymphatic- Filaria, Pressure by metastatic new growth, Radiation.

1. i) "तत्रागन्तवश्छेदन..... । ..... समुपजायन्ते ॥" (च.सू. 18/4)
ii) "बाह्यास्त्वचो दूषयिताऽभिघातः काष्ठाश्मशस्त्राग्निविषायसाद्यैः । आगन्तुहेतुस्त्रिविधो निजश्च सर्वार्धगात्रावयवाश्रितत्वात् ॥" (च.चि. 12/7)

ii. Traumatic- Bruises, Sprain, fractures
iii. Infections- Cellulitis, Boils, Carbuncles
iv. Metabolic- Gout
v. Venous- Venous thrombosis, varicose veins
vi. Hereditary- Milroy's disease

सम्प्राप्ति

निदानों से प्रकुपित वायु बाह्य शिराओं में जाकर कफ, रक्त व पित्त को दूषित कर देता है। ये दूषित तथा मात्राधिक्य कफ, रक्त, पित्त वायु के मार्ग को रोक देते हैं तब रुकी हुई वायु विसर्पण कर उत्सेध युक्त शोथ को उत्पन्न करती हैं[1]।

सम्प्राप्ति चक्र

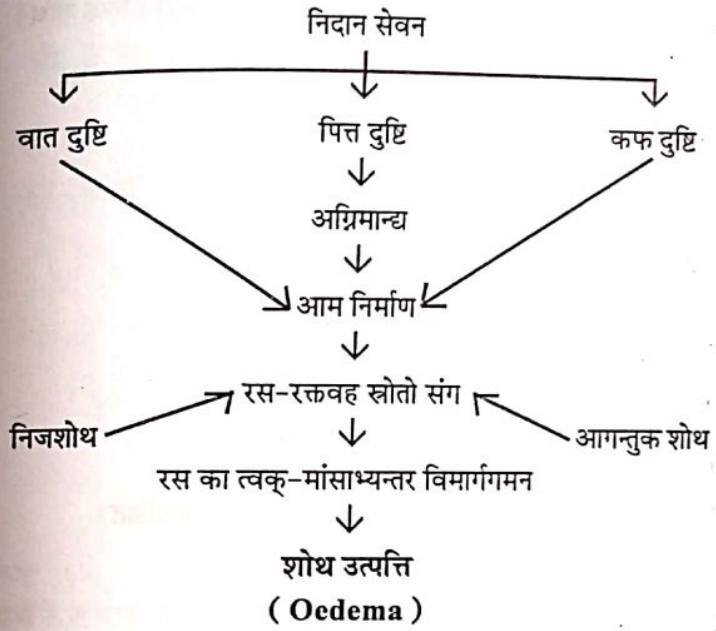

Mechanism of Oedema formation

One or more of the following factors may be responsible for appearance of oedema-

i. Increased capillary permeability, when it is damaged e.g. Acute inflammation.
ii. Increased capillary pressure e.g. Cardiac-failure.

1. "बाह्याः सिराः प्राप्य यदा कफासृक्पित्तानिसंदूषयतीह वायुः । तैर्बद्धमार्गः स तदा विसर्पत्युत्सेधलिङ्गं श्वयथुं करोति ॥" (च.चि. 12/8)

iii. Decreased osmotic pressure of the blood e.g. Hypoproteinaemia.

iv. Damaged Lymphatic drainage e.g. filaria.

सम्प्राप्ति घटक

दोष	वात प्रधान त्रिदोष
दूष्य	रस, रक्त
स्रोतस्	रसवह (निज शोथ), रक्तवह (आगंतुक शोथ)
स्रोतो दुष्टि प्रकार	संग पश्चात् विमार्गगमन
अधिष्ठान	त्वचा-मांस मध्ये
अग्नि	मन्दाग्नि
व्याधि स्वभाव	आशुकारी (आगन्तुक शोथ), चिरकारी (निज शोथ)

भेद

विभिन्न आचार्यों ने शोथ के निम्न भेद किये हैं—

(1) आचार्य चरक[1]

I. 2 भेद	1. निज
	2. आगन्तुक
II. 3 भेद	1. वातज
	2. पित्तज
	3. श्लेष्मज
III. निजशोथ (3 भेद)	1. सर्वाङ्ग
	2. अर्धाङ्ग
	3. एकाङ्ग (अवयवाश्रित)
IV. दोषानुसार (7 भेद)	1. वातज
	2. पित्तज
	3. श्लेष्मज
	4. वात पित्तज

1. i) "त्रयः शोथाः भवन्ति वातपित्त श्लेष्म निमित्ताः, ते पुनर्द्विविधा निजागन्तुभेदेन॥" (च.सू. 18/3)
   ii) "निजश्च सर्वार्धगात्रावयवाश्रितत्वात्॥" (च.चि. 12/7)
   iii) "यथास्वकारणाकृति संसर्गाद..... ।
   ..... सप्तविधो भेदः॥" (च.सू. 18/7)
   iv) "उरः स्थितैरुर्ध्वमधस्तु..... ।
   ..... स्याच्छवयथुस्तदाख्यः॥" (च.चि. 12/9)

5. वात श्लेष्मज
6. पित्त श्लेष्मज
7. सन्निपातज

(2) आचार्य सुश्रुत

I. 2 भेद	1. सर्वाङ्ग
	2. एकांङ्ग

(3) आचार्य वाग्भट[1]

I. 2 भेद	1. सर्वाङ्ग
	2. एकाङ्गं
II. 2 भेद	1. निज
	2. आगन्तुज
III. 3 भेद	1. पृथु (चौड़ा)
	2. उन्नत (उठा हुआ)
	3. ग्रथित (गाँठदार)
IV. 9 भेद	1. वातज
	2. पित्तज
	3. श्लेष्मज
	4. वात पित्तज
	5. वात श्लेष्मज
	6. पित्त श्लेष्मज
	7. सन्निपातज
	8. अभिघातज
	9. विषज

पूर्वरूप[2]

आचार्यों ने शोथ के निम्न पूर्वरूप वर्णित किये हैं—

i. शोथ स्थान में उष्मा (Feeling of warmth in the affected area)

ii. स्थानिक एवं अक्षिदाह (Burning in localised area/eyes)

1. "दोषैः प्रथग्द्वये सर्वैरभिघाताद्विषादमि।
   द्विधा वा निजमागन्तुं सर्वाङ्गैकाङ्गज च तम्॥
   पृथून्नतग्रथिताविशेषैश्च त्रिधा विदुः।" (अ.ह.नि. 13/22-23)
2. i) "तत्पूर्वरूपं दवथुः सिरायामोऽङ्गगौखम्।" (अ.ह.नि. 13/30)
   ii) "उष्मा तथा स्याद्दवथुः सिराणामायाम इत्येव च पूर्वरूपम्।
   सर्वस्त्रिदोषोऽधिकदोषलिङ्गैस्तच्छब्दमभ्येति भिषग्जितं च॥" (च.चि. 12/10)

iii. सिराओं में तनाव (Vasodilation)
iv. अङ्गगौरव (Heaviness in affected parts)

सामान्य रूप

सभी शोथों में सामान्यतया निम्न लक्षण पाये जाते हैं[1]—

i. गौरवता (Heaviness)
ii. शोथ की अस्थिरता (Pitting/Nonpitting)
iii. उत्सेध (Swelling)
iv. उष्मा (Calor, Heat)
v. सिरातनुत्वम (↑Capillary Permeability)
vi. लोम हर्ष (Horripilation)
vii. अङ्गविवर्णता (Discolouration)

विशिष्ट रूप (भेदानुसार लक्षण)

शास्त्रों में शोथ के दोषानुसार निम्न लक्षण वर्णित किए गए हैं—

(अ) वातिक शोथ के लक्षण[2]

i. यह शोथ चल/अस्थिर होता है अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान में फैलने वाला व घटने-बढ़ने वाला होता है।
ii. शोथ स्थान की त्वचा तनु, परुष, अरुण व कृष्ण वर्ण की होती है।
iii. त्वचा में प्रसुप्ति (Anaesthesia), हर्ष (Hyperaesthesis) व अर्ति (वेदना) होती है।
iv. बिना कारण ही शोथ में अल्पता आ जाती है (प्रशाम्यति)
v. शोथ युक्त भाग को दबाने पर दब जाता है (Rapidly Pitting) किन्तु शीघ्र ही उठ जाता है (प्रोन्नमति प्रपीड़ितो)
vi. शोथ दिन में बढ़ता है व रात्रि में घट जाता है (दिवावली)
vii. शोथ में स्पदंन (Pulsation) होता है
viii. स्नेहन, स्वेदन व मर्दन से शोथ नष्ट हो जाता है।

1. "सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ सिरातनुत्वम्।
सलोमहर्षाऽङ्गविवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम्॥" (च.चि. 12/11)
2. i) "अयं त्वत्र विशेषः-शीतरुक्ष.....।
..... वातशोथः (1)॥" (च.सू. 18/9-17)
ii) "शूयन्ते यस्य.....।
..... वातिकः॥" (च.सू. 18/9-10)
iii) "चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः, प्रसुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्तः।
प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो, दिवाबली च श्वयथुः समीरणात्॥" (च.चि. 12/12)

वातिक शोथ का सामञ्जस्य प्रायः हृदय रोगजन्य शोथ (Oedema due to cardiac disorders) से किया जाता है। हृदयजन्य शोथ भी अस्थिर (Unstable) प्रोन्नमति प्रपीड़ितो (Rapidly Pitting) व दिवाबली (Dependent pedal Oedema) होता है। रात्रि में विश्रामावस्था (लेटने पर) से कम हो जाता है।

(ब) पैत्तिक शोथ लक्षण[1]

i. शोथयुक्त भाग मृदु, विशेष गन्ध से युक्त तथा वर्ण में काला-पीला होता है।
ii. शोथ दाहयुक्त व पाकयुक्त होता है।
iii. नेत्र रक्त वर्ण के होते हैं।
iv. रोगी को भ्रम, ज्वर, स्वेदाधिक्य, तृष्णाधिक्य व मद होता है।
v. शोथ मध्य शरीर से उत्पन्न होता है (Hepatic origin)
vi. रोगी अतिसार पीड़ित होता है
vii. रोगी को शीतल आहार-विहार की इच्छा होती है।

पैत्तिक शोथ के उपर्युक्त सभी लक्षण व्रण शोथ (Inflammation) या शोथ की पच्यमानावस्था के हैं। आचार्य वाग्भटोक्त अभिघातज (Traumatic), विषज (Toxic) आदि आगंतुज शोथ में भी पैत्तिक शोथ के लक्षण मिलते हैं।

(स) श्लेष्मज शोथ के लक्षण[2]

i. शोथ युक्त भाग स्पर्श में गुरु, स्थिर, पाण्डुवर्णी होता है।
ii. शोथ युक्त भाग पर कण्डू होती है।
iii. शोथ दबाने पर दब जाता है एवं देरी से उठता है (Slowly pitting oedema)
iv. रोगी को अरोचक, लाला प्रसेक, निद्रा, छर्दि, अग्निमांद्य भी रहता है।
v. शोथ रात्रिबली होता है (Lying down Decubitus oedema)

कफज शोथ की तुलना वृक्क-रोग जन्य (Nephrotic syndrome & Renal failure) से की जा सकती है। यह शोथ प्रायः शरीर के उर्ध्वाङ्ग में पाया जाता है। रात्रि में विश्राम पश्चात्, प्रातःकाल मुखमण्डल पर नेत्रों के आसपास यह शोथ पाया जाता है।

1. i) "यः पिपासाज्वरार्तस्य.....।
..... स उच्यते॥" (च.चि. 18/11-12)
ii) "मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान् भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः।
य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृत् स पित्त शोथो भृशदाहपाकवान्॥" (च.चि. 12/13)
2. i) "शीतः.....।
..... कफसंभवः॥" (च.सू. 18/13-14)
ii) "गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः, प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्य कृत।
स कृच्छ्रजन्म प्रशमो निपीडितो, न चौन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः॥" (च.चि. 12/14)

(द) द्वन्द्वज व सन्निपातज शोथ के लक्षण

निदान व लक्षणों के संसर्ग से द्वन्द्वज शोथ तीन प्रकार का होता है एवं सभी दोषों के लक्षणों के मिलने से सन्निपातज शोथ उत्पन्न होता है[1]।

अत: संक्षेप में शोथ के विभिन्न स्वरुप एवं सम्प्राप्ति का वर्णन निम्नानुसार है[2]-

क्र. सं.	शोथ भेद	आयुर्वेदोक्त स्वरुप	आधुनिक स्वरुप	सम्प्राप्ति	उदाहरण
1.	वातिक शोथ	चल, अस्थिर, प्रसुप्त, प्रोन्नति-प्रपीड़ितो, स्पन्दन-शील, दिवाबली	Rapidly Pitting Oedema	Due to increased Hydrostatic pressure (चलस्तनु)	Oedema of Cardiac origin
2.	पैत्तिक शोथ	दाह-पाक युक्त, ज्वर, भ्रम, स्वेदाधिक्य, तृष्णाधिक्य	Tender & painful (Inflamm-atory oedema)	Due to increased Capillary Permeability (सिरातनुत्वम्)	Oedema of Hepatic origin or Inflammatory Oedema
3.	कफज शोथ	कण्डूता, गुरु-स्थिर, पाण्डु-वर्णी, निपीड़ितो न उन्नयेत रात्रिबली	Slowly Pitting Oedema	Due to lowered Osmotic pressure	Oedema of Renal or Nutritional origin

दोष व रोग मार्ग[3]

i. आमाशय स्थित दोष (कफ) शरीर के उर्ध्व भाग में शोथ उत्पन्न करते हैं जिसे आमाशयोत्थ (कफज) शोथ कहा जाता है।

ii. पक्वाशय (पच्यमानाशय) में स्थित दोष (पित्त) शरीर के मध्य भाग (उदर रोग, जलोदर, यकृद्दाल्युदर) में शोथ उत्पन्न करते हैं जिसे पित्तज शोथ कहा जाता है।

1. "निदानाकृतिसंसर्गाच्छवयथु: स्याद् द्विदोषज:।
सर्वाकृति: सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रहेतुज:॥" (च.सू. 18/15)
2. "कायचिकित्सा (द्वितीय भाग) प्रो. रामहर्ष सिंह से साभार उद्घृत॥"
3. दोषा: श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थित:।
पक्वाशयस्था मध्ये च वर्च: स्थानगतास्त्वध:॥
कृत्स्नं देहमनुप्राप्ता: कुर्यु: सर्व सरं तथा।" (सु.चि. 23/6-7)

iii. वर्च स्थान गत (मलाशय स्थित) दोष (वात) शरीर के अधोभाग (पादगत) में शोथ उत्पन्न करते हैं जिसे वातज शोथ (हृदयजन्य) कहा जाता है।

iv. सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त दोष सर्वशरीर गत शोथ (General Anasarca) उत्पन्न करते हैं जिसे सन्निपातज शोथ कहा जाता है।

एकदेशीय शोथ (अवयवाश्रित शोथ)

आचार्य चरक ने विभिन्न एकदेशीय (Localised) शोथ का वर्णन किया है जो निम्नानुसार हैं[1]-

i.	उपजिह्विका	ii.	गल शुण्डी
iii.	गलगण्ड	iv.	गलग्रह
v.	विसर्प	vi.	पिड़का
vii.	तिलक	viii.	पिप्लु
ix.	व्यंग	x.	नीलिका
xi.	शंखक	xii.	कर्णमूलिक शोथ
xiii.	प्लीहा वृद्धि	xiv.	गुल्म
xv.	वृद्धि रोग	xvi.	उदर रोग
xvii.	आनाह	xviii.	उत्सेध
xix.	रोहिणी	xx.	विडालिका
xxi.	कण्ठशालूक	xxii.	तालुविद्रधि
xxiii.	अधिजिह्विका	xxiv.	उपकुश
xxv.	दन्तविद्रधि	xxvi.	ग्रन्थि रोग
xxvii.	अलजी	xxviii.	विस्फोटक
xxix.	कक्षा (यज्ञोपनीत)	xxx.	ब्रघ्न
xxxi.	मूत्रवृद्धि	xxxii.	भगन्दर
xxxiii.	श्लीपद	xxxiv.	जालगर्दभ

साध्या साध्यता[2]

1. **साध्य शोथ**

(i) उपद्रव रहित नवीन शोथ

(ii) एक दोषज शोथ

1. i) "यस्य श्लेष्मा ..... । ..... संपद्यते सुखी॥" (च.चि. 18/19-36)
ii) "शोफास्तु ..... । ..... जालकगर्दभस्य॥" (च.चि. 12/74-100)
2. i) "यस्तु ..... । ..... स्युरुपद्रवा:॥" (च.सू. 18/16-17)
ii) "कृशस्य ..... । ..... साधने॥" (च.चि. 12/15-16)
iii) "यो मध्यदेशे ..... । ..... बालस्थविराबलानाम्॥" (मा.नि. 36/17-20)

(iii) बलवान व्यक्ति का शोथ
(iv) मांस क्षीण न हुआ हो।

2. **कृच्छ्र साध्य शोथ**
(i) शरीर के मध्य भाग गत शोथ
(ii) सर्व शरीर गत शोथ

3. **असाध्य शोथ**
(i) बालक, वृद्ध, कृश व दुर्बल व्यक्ति में शोथ
(ii) कुक्षि-उदर-गल तथा मर्म स्थान गत शोथ
(iii) अतिस्थूल व अति खर शोथ
(iv) पुरुषों (Males) में अर्धाङ्ग में होने वाला शोथ जो ऊपर की ओर बढ़ता है
(v) उपद्रव युक्त व पैरों में होने वाला शोथ
(vi) मुख से उत्पन्न तथा नीचे की ओर बढ़ने वाला स्त्री को एवं गुह्य स्थान से उत्पन्न स्त्री व पुरुष दोनों को मारक होता है
(vii) ज्वर, पिपासा, छर्दि, दौर्बल्य, श्वास व अरुचि से युक्त शोथ असाध्य होता है।

उपद्रव- आचार्यों ने शोथ रोग के निम्न उपद्रव वर्णित किये हैं[1]-

i.	छर्दि	ii.	श्वास
iii.	अरुचि	iv.	तृष्णा
v.	ज्वर	vi.	अतिसार
vii.	दुर्बलता	viii.	हिक्का
xi.	कास।		

चिकित्सा सूत्र

(अ) सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त

शोथ रोग की चिकित्सा में निम्न सामान्य सिद्धांतों को युक्तिपूर्वक प्रयुक्त करते हैं[2]-

i. निदान परिवर्जनम्।
ii. आतुर के बल, दोष व काल का निर्धारण करना।
iii. जल व लवण का निषेध।

---

1. i) "छर्दिः श्वासोऽरुचिस्तृष्णा ज्वरोऽतीसार एव च।
सप्तकोऽयं सदौर्बल्यः शोथोपद्रवसंग्रहः॥" (च.सू. 18/18)
ii) "श्वास पिपासा दौर्बल्यं ज्वरश्छर्दिररोचकः।
हिक्कातीसारकासाश्च शूनं सङ्क्षपयंन्ति हि॥" (सु.चि. 23/8-9)
2. "निदानदोषर्तुविपर्ययक्रमैरुपाचरेत् बलदोषकालविता अथामजं लङ्घनपाचन .....।
..... समूत्रतक्रासवयुक्तिभिर्जयेत्॥" (च.चि. 12/16-19)

iv. आमदोषजन्य शोथ में लंघन-पाचन चिकित्सा।
v. दोषाधिक्यता (मात्राधिक्य) में संशोधन (वमन, विरेचन कर्म)।
vi. दोषादिक प्रादेशिक चिकित्सा, यथा-
1. शिरःप्रदेश गत शोथ- शिरो विरेचन कर्म
2. अधः प्रदेश गत शोथ- विरेचन कर्म
3. उर्ध्व प्रदेशगत शोथ - वमन कर्म
vii. अतिस्नेहजन्य शोथ में रुक्ष क्रियाएं, अति रुक्षता जन्य शोथ में स्नेहन क्रियाएं करानी चाहिए।
viii. वातिक शोथ में विबन्ध रहने पर निरुह बस्ति दें।
ix. वातपित्तज शोथ में तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत दें।
x. कफज शोथ में क्षार-कटु-उष्ण द्रव्यों से युक्त गोमूत्र, तक्र, आसव दें।
xi. कफ पित्तज शोथ में मूर्च्छा, अरति, दाह, तृष्णा होने पर तिक्त द्रव्य साधित क्षीर दें। यदि शोधन आवश्यक हो तो गोमूत्र सिद्ध योग दें।
xii. आगन्तुक शोथ में व्रणोपचार की तरह दशाङ्ग लेप का स्थानिक प्रयोग करें।
xiii. शोथी के विबन्ध में भोजन पूर्व एरण्ड तैल मांसरस में मिलाकर पिलाना चाहिए।
xiv. यदि स्रोतोरोध होकर अग्निमांद्य व अरुचि हो तो विभिन्न मदिरा व अरिष्टों का पान करना चाहिए[1]।

(ब) विशिष्ट चिकित्सा सिद्धांत

शोथ रोग के दोषज भेदों में निम्न चिकित्सा सिद्धान्त व चिकित्सा युक्तिपूर्वक प्रयुक्त करनी चाहिए-

(I) वातिक शोथ चिकित्सा[2]

i. स्नेहन, स्वेदन, प्रदेह, परिषेचन (अवगाह स्वेद) कराना चाहिए।
ii. अभ्यंगार्थ दशमूल तैल या पुनर्नवा तैल या गन्धविरोजा तैल प्रयुक्त करें।
iii. घृत, तैल, वसा (त्रिवृत स्नेह) या एरण्ड तैल को अर्धमास (15 दिन) या एक मास तक पिलावें।

---

1. "विडवातसङ्गे पयसा रसैर्वा प्राग्भक्तमद्यादुरुबूक तैलम्।
स्रोतो विबन्धेऽग्निरुचि प्रणाशो मद्यान्यरिष्टांश्च पिबेत सुजानात्॥" (च.चि. 12/28)
2. i) "स्नेहान् प्रदेहान् परिषेचनानि स्वेदांश्च वातप्रबलश्च कुर्यात्।" (च.चि. 12/64)
ii) "तत्र वातश्वयथौ त्रैवृतमेरण्डतैलं वा मासमर्धमासं वा पाययेत्॥" (सु.चि. 23/11)
iii) "शुण्ठीपुनर्नवैरण्ड पञ्चमूलश्रृतं जलम्।
वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे।
दशमूलं सर्वथा च वातशोथे विशेषतः॥" (च.द. 39/1)

iv. शुण्ठी, पुनर्नवा, एरण्डमूल, बृहत् पंचमूल से सिद्ध क्वाथ या दशमूल क्वाथ को प्रयुक्त करें।

v. कृष्णादि चूर्ण को त्रिफला क्वाथ के साथ दें।

(II) पित्तज शोथ चिकित्सा[1]

i. अभ्यंग, मर्दन, प्रदेह, स्नान, लेपन कराना चाहिए।

ii. न्यग्रोधादिगण कषाय साधित घृत पान करायें।

iii. चन्दनादि तैल, पंचक्षीर क्वाथ प्रयुक्त करें।

iv. त्रिफला क्वाथ को गोमूत्र के साथ पिलावें।

v. पटोलमूलादि क्वाथ का पान करावें।

vi. दुग्धपान कर निशोथ, अमृता, त्रिफला क्वाथ का पान करावें।

(III) श्लेष्मज शोथ चिकित्सा[2]

i. विभिन्न लेप, प्रलेप, परिषेक का प्रयोग करें।

ii. आरग्वधादि क्वाथ साधित घृतपान करावें।

iii. पुराण गुड़, पिप्पली एवं शुण्ठी चूर्ण का प्रयोग करें।

iv. गुड़ार्द्रक प्रयोग करें।

v. गोमूत्र के साथ हरीतकी चूर्ण का सेवन कराना चाहिए।

vi. नवायस लौह, पुनर्नवामण्डूर, पुनर्नवाष्टक क्वाथ तथा पुनर्नवाद्यरिष्ट का प्रयोग कफज शोथ में विशेष लाभकारी रहता है।

(IV) सन्निपातज (सर्वदोषज) शोथ चिकित्सा[3]

i. लेपन, उबटन व स्नान करायें।

ii. कृष्णादि चूर्ण (पिप्पली, पाठा, चित्रक मूल)।

---

1. i) "सवेतसाः क्षीरावतां ..... । ..... चंदनलेपनं च ॥" (च.चि. 12/68-69)
   ii) "न्यग्रोधादिककषायसिद्धं सर्पिः पित्तश्वयथौ।" (सु.चि. 23/11)
   iii) "क्षीराशनः पित्तकृतेऽथ शोथे, त्रिवृद्गुडूची त्रिफला कषायम्। पिबेद्गवां मूत्रविमिश्रितं वा, फलत्रिकाच्चूर्णमथाक्षमात्रम् ॥" (च.द. 39/2)
2. i) "व्योषं त्रिवृत्तिक्तकरोहिणी च सायोरजस्का त्रिफलारसेन। पीतं कफोत्थं शययेत्तु शोफ गत्येन मूत्रेण हरीतकी च ॥" (च.चि. 12/21)
   ii) "कफे तु कृष्णा ..... । .....च ॥" (च.चि. 12/70)
   iii) "आरग्वधादिसिद्धं सर्पिः श्लेष्मश्वयथौ।" (सु.चि. 23/11)
3. i) "कृष्णा सपाठा .. .. । ..... त्रिफलारसेन ॥" (च.चि. 12/41-42)
   ii) "विभीतकानां ..... । ..... मूलकतोयसेकः ॥" (च.चि. 12/71-73)
   iii) "पुनर्नवानिम्ब ..... । ..... निहन्ति ॥" (च.द. 39/10)

iii. कंसहरीतकी या दशमूल हरीतकी का प्रयोग करें।

iv. शिलाजतु को त्रिफला क्वाथ के साथ प्रयुक्त करें।

v. पुनर्नवाष्टक क्वाथ (पटोल, निम्ब, पुनर्नवा, शुण्ठी, कुटकी, अमृता, देवदारु, हरीतकी)।

vi. अजाज्यादि चूर्ण (च.द.) प्रयोग करें।

vii. क्षार गुड़िका (च.स.) प्रयोग (गुटिका) करें।

चिकित्सा क्रम

(I) संशोधन चिकित्सा- यथावश्यक दोषानुसार वमन, विरेचन, शिरोविरेचन व निरूह बस्ति दें। शोथ में विशेषकर मल विरेचक व मूत्र विरेचक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

प्रमुख मूत्र विरेचक औषधियाँ- पुनर्नवा, गोक्षुर, तृणपंचमूल, श्वेत पर्पटी आदि।

प्रमुख मल विरेचक औषधियाँ- हरीतकी, कुटकी दन्ती आदि।

(II) संशमन चिकित्सा

(अ) हृदय-श्वास रोग (प्राण) जन्य शोथ में

1. कंस हरीतकी
2. दशमूल हरीतकी
3. हृदयार्णव रस
4. पुनर्नवा मण्डूर
5. अर्जुनारिष्ट
6. श्वासकासचिन्तामणि रस
7. शृङ्ग भस्म आदि।

(ब) यकृत् रोग (अग्नि) जन्य शोथ में

1. यकृत प्लीहारि लौह
2. पुनर्नवामण्डूर
3. आरोग्यवर्धिनी वटी
4. फलत्रिकादि क्वाथ आदि।

(स) वृक्क विकार (अपान) जन्य शोथ में

1. शुद्ध शिलाजतु
2. पुनर्नवा मण्डूर
3. शोथादि लौह
4. वरुणादि लौह
5. गोक्षुरादि गुग्गुलु
6. श्वेत पर्पटी

7. चन्दनादि वटी आदि।

शोथ शामक अन्य औषध योग

1. **रस/लौह**

मात्रा	: 125–250 मि.ग्रा.
अनुपान	: त्रिफला क्वाथ, मधु
(i) पुनर्नवा मण्डूर	: पुनर्नवा, निशोथ, मण्डूर
(ii) शोथारि लौह	: त्रिकटु, यवक्षार, लौह
(iii) शोथकालानल रस	: चित्रक, जातीफल, कज्जली
(iv) त्र्यूषणादि लौह	: त्रिकटु, लौह
(v) शोथ शार्दूल रस	: पंचलवण, रस सिन्दूर
(vi) हृदयार्णव रस	: त्रिफला, काकमाची, ताम्र
(vii) वरुणादि लौह	: वरुण, अभ्रक, लौह
(viii) श्वेत पर्पटी	: सोरा, शुभ्रा, नरसार
(ix) अग्निमुख लौह	: त्रिवृत, चित्रक, शिलाजतु

2. **वटी/गुग्गुलु**

मात्रा	: 250–500 मि.ग्रा.
अनुपान	: सुखोष्ण जल
(i) तक्र वटी	: कज्जली, वत्सनाभ, ताम्र, मण्डूर
(ii) दुग्ध वटी	: वत्सनाभ, अहिफेन, लौह, अभ्रक
(iii) आरोग्यवर्धिनी वटी	: कज्जली, लौह, अभ्रक, ताम्र, कुटकी
(iv) प्रभाकर वटी	: स्वर्णमाक्षिक, शिलाजतु, अर्जुन
(v) सप्तविंशति गुग्गुलु	: त्रिकटु, त्रिफला, इन्द्रायण
(vi) गोक्षुरादि गुग्गुलु	: त्रिकटु, त्रिफला, गोक्षुर
(vii) पुनर्नवादि गुग्गुलु	: पुनर्नवा, देवदारु, हरीतकी

3. **चूर्ण**

मात्रा	: 2–6 ग्राम
अनुपान	: त्रिफला क्वाथ, तक्र, जल
(i) पुनर्नवादि चूर्ण	: पुनर्नवा, देवदारु, हरीतकी
(ii) शोथादि चूर्ण	: मूलक, अपामार्ग, त्रिकटु
(iii) त्रिफला चूर्ण	: हरीतकी, विभीतकी, आमलकी
(iv) कृष्णादि चूर्ण	: पिप्पली, पाठा, चित्रकमूल

4. **क्वाथ**

मात्रा	: 20–40 मि.ली.
अनुपान	: स्वतंत्र रूप से
(i) पुनर्नवाष्टक क्वाथ	: पुनर्नवा, निम्ब, पटोल
(ii) फल त्रिकादि क्वाथ	: त्रिफला, दारुहरिद्रा, इन्द्रायण मूल
(iii) दशमूल क्वाथ	: गोक्षुर, पृश्निपर्णी, पाटला, कंटकारी

5. **आसव/अरिष्ट**

मात्रा	: 20–40 मि.ली.
अनुपान	: समभाग जल से
(i) पुनर्नवासव	: त्रिकटु, त्रिफला, गोक्षुर, पुनर्नवा
(ii) पुनर्नवाद्यरिष्ट	: पुनर्नवा, बला, पाठा
(iii) गण्डीराद्यरिष्ट	: गण्डीर, भल्लातक, चित्रक
(iv) अभयारिष्ट	: हरीतकी, आमलकी, इन्द्रायण

6. **घृत/तैल**

मात्रा	: प्रयोगानुसार
अनुपान	: प्रयोगानुसार
(i) शुण्ठी घृत	: शुण्ठी, दशमूल
(ii) पुनर्नवाद्य घृत	: पुनर्नवा, चिरायता, भंगा
(iii) चित्रक घृत	: चित्रक मूल, घृत
(iv) शुष्कमूलाद्य तैल	: शुष्क मूलक, पुनर्नवा, देवदारु

7. **लेह**

मात्रा	: 10–20 ग्राम
अनुपान	: क्षीर, उष्णोदक
(i) कंस हरीतकी (दशमूल हरीतकी)	: दशमूल, हरीतकी, गुड़
(ii) पुनर्नवादि लेह	: पुनर्नवा, देवदारु, अमृता
(iii) गुड़ार्द्रक	: गुड़, आर्द्रक

8. **रसायने**

मात्रा	: रसायनानुसार
अनुपान	: रसायनानुसार
(i) शिलाजतु	
(ii) हरीतकी	
(iii) पुनर्नवा	

9. **कल्प चिकित्सा**

(i) पिप्पली वर्धमान कल्प (किंशुकोदक भावित) : संख्या के अनुसार बढ़ते (आरोही) व घटते (अवरोही) क्रम में 40 दिन तक निरान्न सेवन कराते हैं।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
2. निर्जल, निर्लवण चिकित्सा
3. प्रातः सायम्

पुनर्नवा मण्डूर	: 250 मि.ग्रा.
यवक्षार	: 250 मि.ग्रा.
श्वेत पर्पटी	: 250 मि.ग्रा.
पुनर्नवाष्टक क्वाथ + मधु से	1×2 मात्रा

4. आरोग्यवर्धिनी वटी : 2 वटी × तीन मात्रा
   गोक्षुरादि गुग्गुलु : 2 वटी × तीन मात्रा
   अर्क मकोय से
5. भोजनोत्तर
   पुनर्नवासव : 20 मि.ली.
   समभाग अर्क पुनर्नवा से : 1×2 मात्रा
6. रात्रि में
   त्रिफला चूर्ण : 3 ग्राम
   अर्क मकोय से 1 मात्रा
7. पिप्पली वर्धमान रसायन
8. निर्धारित आहार-विहार पालन

पथ्यापथ्य—शोथ रोगी में निम्न पथ्यापथ्य का युक्तिपूर्वक प्रयोग कराना लाभप्रद रहता है[1]-

1. i) "ग्राम्यात्जानूपं ..... ।
   ..... वर्जये-मैथुनं च ॥" (च.चि. 12/19-20)
   ii) "संशोधन ..... ।
   ..... च ॥" (भै.र. 42/188--206)

पथ्य

आहार	विहार
शुण्ठी, यव, मूंगयूष, परवल, सहजन, मकोय, मूली, निम्ब, पुराण शालि-चावल, प्रोटीन युक्त अन्न, तक्र, कुल्थी, मधु, हरड़, करेला आदि।	उपवास (लंघन), स्वेदन, यथावश्यक विश्राम आदि।

अपथ्य

आहार	विहार
जल, लवण, अम्ल, आनूप मांस, नवान्न, गुड़, पिष्टान्न, दधि, तिल, मद्य, समशन, गुरु, विदाही, अभिष्टयन्दी द्रव्य, घृत, तैल, क्षीर आदि।	दिवाशयन, मैथुन कर्म, वेगावरोध आदि।

Latest Developments

Oedema (Edema)

A local or generalized condition in which the body tissues contain an excessive amount of tissue fluid.

Etiology

(i) Cardiac disorders
(ii) Hepatic disorders
(iii) Renal disorders
(iv) Malnutrition
(v) Electrolyte imbalance etc. (Sodium retention)

Types

(i)	Localised	(ii)	Generalised
(iii)	Unilateral	(iv)	Bilateral
(v)	Pitting	(vi)	Non pitting etc.

Management : Principles

(i) Avoidance of cause
(ii) Bed rest / rest to the a fected part
(iii) Salt & water restriction
(iv) Diuretics - Administration of drugs which increase urination.
(v) Antinflammatory drugs
(vi) Diet - Adequate in protien, high in calories, rich in vitamins and low in salt.